



श्रीपरमात्मने नमः

विमलनाथपुराण

भाषा

भाषाकारका संगलाचरण

वंदौ विमल जिनेशपद शांतिसुधारसवान ।
हर्ता भवदुखके विमल सुखमय मोक्षनिदान ॥ १ ॥

प्रथकारका संगलाचरण

सर्वेशं शंकरं, सिद्धं वृषीयांसं प्रजापतिं ।
समीडकेऽहकं सिद्धयै लेखेशादीडितं जिनं ॥ १ ॥

शेषांस्तौर्थाकृतो नौमि सादरं ज्ञानभास्करान् । कर्माश्रयिणः समुन्मूल्य शिवसाम्राज्यभूमिपान् ॥ २ ॥ विमलं विमलं स्तौमि
विमलज्ञानशालिनं । दुर्बोधरजसाकीर्णमूलं चारिदायितं ॥ ३ ॥ परमेष्ठिगुणांस्तौमि पंचपंकनिरासकान् । सज्जानादिगुण
श्रातशुक्तिजामरणायितान् ॥ ४ ॥ भारतीं भाभरीं भूत्यै स्वर्णाभां विश्वमातरं । मरालवाहनं चाये वृद्धमेशास्यनिर्गतां ॥ ५ ॥ द्वादशा-

जो आदीश्वर भगवान् सर्वेश--संसारवर्ती समस्त जीवोंके स्वामी हैं। शंकर--समस्त संसारका
कल्याण करनेवाले हैं। सिद्ध--ज्ञानावरण आदि समस्त कर्मोंसे रहित सिद्ध परमात्मा हैं। प्रजापति
युगकी आदिमें असि मणि कृषि आदिकी सृष्टिका विधान बतलानेके कारण ब्रह्मा स्वरूप हैं एवं
जिनकी स्तुति बड़े बड़े देवोंके इंद्र भी करते हैं उन जिनेंद्र भगवान् आदिनाथकोंमें (ग्रंथकार)
इस ग्रंथकी आदिमें मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ भगवान् आदिनाथके सिवाय
अजितनाथ आदि अन्य तीर्थकरोंको भी मैं सादर नमस्कार करता हूं जो कि ज्ञानके सूर्यस्वरूप
हैं एवं कर्मरूपी वैरियोंका सर्वथा नाशकर मोक्षरूपी साम्राज्यके स्वामी हैं ॥ २ ॥ तरहवे तीर्थकर
भगवान् विमलनाथको भी मैं नमस्कार करता हूं जो विमलनाथ भगवान् समस्त कर्मरूपी मलोंसे
रहित होनेके कारण विमल हैं। विमलज्ञान--केवलज्ञानसे शोभायमान हैं एवं जिसप्रकार धूलिसे
व्याप्त पृथ्वीतलको मेघ शांत कर देता है उसीप्रकार मिथ्याज्ञानसे परिपूर्ण समस्त जगतको शांति
प्रदान करते हैं--समस्त जगतके मिथ्याज्ञानको नष्ट करनेवाले हैं ॥ ३ ॥ अहंत सिद्ध आचार्य आदि
पांचों परमेष्ठियोंके गुणोंकी भी मैं स्तुति करता हूं क्योंकि ये पांचों परमेष्ठियोंके गुण अहिंसा
आदि पांचों पापोंके नाश करनेवाले हैं एवं सम्यग्ज्ञान आदिगुण स्वरूप मुक्तामयी भूषण हैं अर्थात्
जिसप्रकार सुंदर मोतियोंके बने भूषण शरीरकी शोभा बढ़ानेवाले होते हैं उसीप्रकार परमेष्ठियोंके
गुण भी आत्माको आदर्श बनानेवाले भूषण हैं ॥ ४ ॥ मैं उस सरस्वती देवीको भी अपने कल्याण
की इच्छासे नमस्कार करता हूं जो कि महा मनोज्ञ शोभासे परिपूर्ण है। सुवर्णके समान कांतिकी
धारक है। समस्त जगतकी माता है। इसकी जिसकी सवारी है और भगवान् ऋषभदेवके मुखसे

गात्रिपाद्रीणान् ध्यानसंस्थान् शिवप्रदान् । ननम्ये मामके चित्ते भृशं भृशितमन्मथान् ॥ ६ ॥ गुरुसामर्थ्यसंततपसा व्योमगा-
मिनः । गुरुन् गाम्भीर्यधैर्यादिवारिधातांश्च चित्तिधरः ॥ ७ ॥ रामसेनाम् महाविद्यान् कीर्त्या रामयशोधरान् । प्राचीभवन् यके नौमि
बानिनरसिंहकाञ्च तान् ॥ ८ ॥ चिकीर्षुर्हमस्म्येव पुराणं वैमलं ध्रुवः । यथा पूर्वमेष्टाप्राज्ञैर्जितसेनादिसूरिभिः ॥ ९ ॥ क्वेदं क्व मे
जिसका उदय हुआ है ॥ ५ ॥ जो महानुभाव आचारांग आदि बारह अंगोंके पारगामी हैं ।
ध्यानमें लीन हैं । मोक्षमार्ग प्रदान करनेवाले हैं और समस्त संसारको अपने वशमें करनेवाले
दुष्ट कामदेवके जीतनेवाले हैं उनकी भी मैं अपने चित्तमें पूर्ण भक्ति रखता हूँ ॥ ६ ॥ मैं विद्या-
धरोंके समान गुरुओंको भी नमस्कार करता हूँ क्योंकि जिसप्रकार विद्याधरगण आकाशमें गमन
करनेवाले हैं उसीप्रकार गुरुगण भी विशिष्ट सामर्थ्यसे तपे गये तपके द्वारा आकाशगामिनो ऋद्धिकी
प्राप्तिसे आकाशमें गमन करनेवाले होते हैं । जिसप्रकार विद्याधरगण गंभीरता धीरता आदि
गुणोंके धारक होते हैं उसप्रकार गुरुगण भी गंभीरता धीरता आदि गुणोंकी खान होते हैं । जिस
प्रकार विद्याधरगण 'चित्तिधरः', चित्-विद्याओंसे देदीप्यमान रहते हैं । उसप्रकार गुरुगण भी ज्ञान
आदि गुणोंसे जाज्वल्यमान रहते हैं । जिसप्रकार विद्याधरगण 'रामसेनान्' सीताहरणके समय
रावणसे युद्धके समय रामचन्द्रकी सेनास्वरूप हुए थे उसीप्रकार 'रमंते योगिनोऽस्मिन्निति रामः'
अर्थात् जिनके ध्यानमें मुनिगण आनन्दका आस्वादन करें वे राम-सिद्धपरमेष्ठी कहे जाते हैं । उन
सिद्धपरमेष्ठीकी निर्ग्रन्थ गुरुगण सेनास्वरूप हैं क्योंकि मुख्यरूपसे सिद्धपरमेष्ठीको ही उन्होंने अपना
पूर्णस्वामी समझ रक्खा है । जिसप्रकार विद्याधरगण 'महाविद्यान्' अनेक महाविद्याओंके धारक
होते हैं उसीप्रकार गुरुगण भी महाज्ञानके धारक हैं । जिसप्रकार विद्याधरगण 'कीर्त्या रामयशोध-
रान्' कीर्तिके साथ रामचन्द्रके यशको सहन करनेवाले थे अर्थात् समान जातीय और अपना स्वामी
होने पर भी वे रावणके विजय होनेपर उसकी कीर्तिसे अपनी कीर्ति नहीं समझते थे क्योंकि उसने
परस्त्रोहरणरूप पातक किया था किन्तु वे रामचन्द्रके विजय करनेपर जो उनकी कीर्ति संसारमें फैली

मुनिमतिः स्वतया वचयस्तेऽहं च वच । महाबुद्धयूर्मालात्त्वसारंगार्णवगामठः । १० । स्वतपीयायापि बुद्ध्याहं चर्करीमि मनोगतं ।
 भित्तिमिवारः प्रवेशो न दीपस्य स्यान्न तत्र किं । ११ । यदकारि महोत्कृष्टैः पूर्वप्राज्ञैरहं क्रमात् । कुम्भोद्भवेन क्षुद्रेण किं हि नाचमितोऽ-
 र्थो उससे अपनी कीर्ति समझते थे । उसीप्रकार गुरुगणभी सिद्धोंके यश-स्वरूपको कीर्ति पूर्वक
 धारण करनेवाले होते हैं अर्थात् उनके निष्कलंक स्वरूपका ध्यान करना ही अपना पूर्ण कर्तव्य समझते
 हैं । इन विशिष्ट शक्तिके धारक गुरुओंके सिवाय और भी ज्ञानी पुरुषोंमें सिंहके समान पराक्रमी
 महात्मा विशेषरूपसे हुए हैं उन्हें भी मैं इस ग्रन्थके प्रारम्भमें भाक्तपूर्वक नमस्कार करता हूँ । ७ द्वा ।
 महान बुद्धिके धारक जिनसेन आदि पूर्व आचार्योंने जिसरूपसे भगवान विमलनाथके चरित्रका उल्लेख
 किया है ठीक उसीके अनुसार मैं भगवान विमलनाथके पुराणके कहनेका इच्छुक हूँ अर्थात् मैं जो इस
 पुराणको कह रहा हूँ वह स्वतन्त्ररूपसे अपना मन गढ़न्त नहीं कह रहा हूँ किन्तु भगवान जिनसेन
 आदिके वचनोंके अनुसार कह रहा हूँ । ८ । ग्रन्थकार अपनी लघुता प्रगट करते हुए कहते हैं कि
 कहां तो यह भगवान विमलनाथका महागम्भीर पुराण और कहां मेरी अत्यन्त अल्पबुद्धि । तथा
 कहां तो जिनसेन सरीखे पुराण पारीण कवि और कहां मैं अत्यन्त तुच्छ, तथापि महाबुद्धिरूपी
 तरंगोंकी मालासे व्याप्त शास्त्रपारंगत आचार्यरूपी समुद्रोंके सामने मैं गामठ सरीखा हूँ
 अर्थात् गामठका अर्थ प्रकारणसे यहां पर खाई है तो जिसप्रकार खाईका जल खास समुद्रका ही
 जल होता है परन्तु वह समुद्रस्वरूपसे नहीं होता उसीप्रकार मैं भगवान जिनसेन आदिके सामने
 तुच्छ हूँ तथापि उनकी महाबुद्धिके द्वारा मुखसे निकले वचन मेरे हृदयमें भी विद्यमान हैं इस
 लिये इस पुराणमें जिन वचनोंका मैंने उल्लेख किया है वे वचन भगवान जिनसेन आदिके ही
 वचन मानकर प्रमाणीक समझना चाहिये । इसरूपसे यह बात ठीक है कि मैं भगवान जिनसेन

१ 'नरसिंहकंच, यहांपर भी ग्रन्थकारने श्लेषालंकारका उपयोग किया है क्योंकि अन्यधर्मी हिंदूसंप्रदायमें नरसिंह नामका एक अवतार माना है । यहांपर 'नरसिंहका, वह अर्थ न लेकर जो अर्थ लिखा गया है वही ठीक है ।

मृधिः । १२ । सज्जना अपि नन्दन्तु दुर्जनाश्च विशेषतः । स्तुतिनिन्दकरा नू

मल०

५

आदिके सामने तुच्छबुद्धिका धारक हूँ तथापि मेरे मनमें जो चरित्र विद्यमान है उसे मैं अपनी थोड़ीसी बुद्धिसे भी वर्णन करनेका विशेष आकांक्षी हूँ यहांपर यह कल्पना न कर बैठना चाहिये कि जब जिनसेन आदि सरीखे उद्भट विद्वान हैं तब तुम्हारा आवश्यकता क्या है ? क्योंकि जहांपर सूर्यका प्रवेश नहीं होता वहांपर दीपकसे भी काम चला लिया जाता है अर्थात् जो महानुभाव जिनसेन आदि सरीखे उद्भट विद्वानोंके गम्भीर वचनोंका तात्पर्य नहीं समझ सकते वे मेरे साधारण वचनोंसे अर्थलाभ कर सकते हैं । इसलिये मेरे द्वारा किये गये पुराणका वर्णन व्यर्थ नहीं । १० । ११ । फिर भी यह बात है कि मैं अपनी बुद्धिको कल्पनासे कुछ कहूँ तब तो वह कल्पना भगवान् जिनसेन आदिकी कल्पनाके सामने फीकी मानी जा सकती है क्योंकि उनकी बुद्धि विशाल है और मेरी तुच्छ है परन्तु सो तो बात है नहीं किन्तु मुझसे महान् और उत्कृष्ट पूर्व आचार्यों ने तो कहा है कमसे मैं उसको कहता हूँ । यहांपर भी यह न समझ बैठना चाहिये कि जब तुम्हारी बुद्धि तुच्छ है तब विमलनाथ पुराण सरीखे विशाल कार्यमें तुम्हारा प्रवृत्त होना व्यर्थ है क्योंकि लोकमें ऐसी कहावत है कि अगस्त नामका ऋषि मामूलो था परन्तु वह सारे समुद्रको पी गया था इस लिये चंद्र भी अगस्त ऋषिने जब विशाल भी समुद्र पी डाला था तब अलर बुद्धिका धारक भी मैं विशाल पुराणका वर्णन कर सकता हूँ क्या आश्चर्य है ? ॥ १२ ॥ बहुतसे लोग स्तुति करनेवालोंको अच्छा समझते हैं और निन्दा करनेवालोंको बुरा समझते हैं परन्तु ग्रन्थकार कहते हैं कि यह बात मुझे पसंद नहीं मैं तो यह कहता हूँ कि स्तुतिके करनेवाले सज्जन भी संसारके अन्दर बुद्धिको प्राप्त हों और निन्दाके करनेवाले भी विशेषरूपसे बुद्धिको प्राप्त हों क्योंकि उनके भयसे कविकी विशुद्धता बढ़ती है । दुर्जन जितने जितने दोष निकालते जायेंगे कविता भी उतनी

भूमिहास्यथा । चेद्विगुणः कजसौगांधिर्वातेरिव सुतन्यते । १४ । वृषमेरास्य पादाब्जे चंचरीकत्वमेव वे । विधीयतेऽस्म
 कामिश्च पुराणं परमादरात् । १५ । बहूनां भव्यजीवानां कथाश्चोर्बाकथास्तथा । धर्मस्वयंभुवोः तथातिस्वैर्गहनं समुद्रवत् । १६ ।
 अधो असंख्यद्वीपानां मध्ये राजेव राजते । कुलाचलसदाहुर्भोगभूमिमुदरेः श्रितः । १७ । गंगासिंध्वादिभामाभिः सेव्यमानो निरंतरं ।
 उतनी ही शुद्ध होती चली जायगी ॥१३॥ अथवा सज्जन और दुर्जनोंके सामने संसारमें हंसी कग-
 नेवाली इस व्यर्थ प्रार्थनासे भी क्या प्रयोजन क्योंकि यदि कविके अन्दर गुण होगा तो जिसप्र-
 कार कमलकी सुगन्धि पवनके द्वारा चारो ओर फैल जाती है उसीप्रकार उस गुणके द्वारा कवि-
 त्वकी शक्तिकी प्रशंसा भी चारो ओर फैल जायगी ॥१४॥ ग्रन्थकार अपने पवित्र भाव भलकाने
 हुए कहते हैं कि-मैं भगवान् स्वयंभु देवके चरण कमलोंका भ्रमर वन इस भगवान् विमलनाथके
 पुराणको बड़े आदरसे कह रहा हूँ यह पुराण मामूली पुराण नहीं किन्तु इसके अन्दर बहुतसे भव्य
 जीवोंकी कथा और उपकथाओंका वर्णन है । धर्म नामके बलभद्र स्वयंभू नामके नारायणके
 पवित्र चरित्रका कथन है इसलिये उनके निमित्तसे यह पुराण समुद्रके समान गम्भीर है अतः
 मनको स्थिरकरही हर एक विषयका पठन पाठन, हित करनेवाला होगा ॥१५॥१६॥

मध्यलोकके असंख्याते द्वीपोंके मध्यभागमें एक जम्बूद्वीप नामका प्रसिद्ध द्वीप है जो कि
 साक्षात् राजाके समान शोभनीक जान पड़ता है क्योंकि राजा जिसप्रकार विस्तीर्ण भुजाओंसे
 शोभायमान रहता है उसीप्रकार यह जम्बूद्वीप भी कुलाचल रूपी विस्तीर्ण भुजाओंसे शोभायमान
 है । राजा जिसप्रकार अनेक सुभटोंसे व्याप्त रहता है उसीप्रकार यह जम्बूद्वीप भी भोगभूमि रूपी
 सुभटोंसे व्याप्त है । जिसप्रकार राजा अनेक स्त्रियोंसे सेवित होता है उसीप्रकार जम्बूद्वीप भी गंगा
 सिन्धु आदि अनेक नदी रूपी स्त्रियोंसे सेवित है । राजा जिसप्रकार गर्जना परिपूर्ण किन्तु मधुर
 बोलनेवाला होता है । जम्बूद्वीप भी पद्म महापद्म आदि सरोवरोंके मनोज्ञ शब्दोंसे मधुर बोल-
 नेवाला है । राजाके जिसप्रकार नेत्र होते हैं जम्बूद्वीपके भी सूर्य चन्द्रमा रूपी नेत्र विद्यमान हैं ।

पद्मद्रहादिनिर्द्वादगर्जनामधुरं च दः । १८ । सूर्याचंद्राक्षिकस्ताराभरणभरविभूषितः । खगाचलमहापादः पद्मरागादिकांतिभृत् । १९ । जंबूशाल्मलिसद्वेतिः क्षारोऽर्णोऽर्धशुकावृतः । नानापत्तनमहारावधेयशंसिगजध्वनिः । २० । जंबूद्वीपः (पं) पवित्रः (त्रं) सन् (रू) लक्षैकभोजनप्रमाणः । विदेहक्षेत्रं तिलहृदो यो हृदयं गतः । २१ । लक्षैकयोजनो मेरुर्निमाति रंजिताशयः । त्रिषष्टिषु सहस्राणां योजनानां विचित्रत्विष्टः । २२ । अत्रशिष्टो हि तन्मध्ये शातकुंभात्मकोलकः । नानाचेत्यालयाकोर्णश्चतुराराममंडितः । २३ । तस्य दक्षिणकाष्ठायां भारतं वर्तते स्फुटं । खगाचलगणेनैव कार्मुकाकृतिराजितं । २४ । तत्रैवार्यो महाखंडो द्वात्रिंशद्विष्वभृतः । राजा जिसप्रकार आभरण-भूषणोंसे शोभायमान रहता है उसीप्रकार जम्बूद्वीप भी तारा रूपी भूषणोंसे शोभायमान है । राजाके जिसप्रकार पैर होते हैं जम्बूद्वीपके भी खगाचल विजयार्ध-पर्वत रूपी पैर मौजूद है । राजा जिसप्रकार पद्मराग आदि भूषणोंकी कांतिसे देदीप्यमान रहता है जम्बूद्वीप भी खानियोंमें विद्यमान पद्मराग आदि मणियोंकी कांतिसे व्याप्त है । राजा जिसप्रकार अस्त्रशस्त्रोंका धारक होता है जम्बूद्वीपके भी जम्बूवृक्ष और शाल्मालिवृक्षरूपी शस्त्र विद्यमान हैं । राजा जिसप्रकार वस्त्रोंसे वेष्टित रहता है जम्बूद्वीप भी लवणोदधि समुद्रसे चारो ओरसे वेष्टित है । राजाके जिसप्रकार हाथियोंके चीत्कार होते रहते हैं उसीप्रकार जम्बूद्वीपके भी अनेक पत्तनोमें रहने वाले प्राणियोंके कोलाहलोंके वेग ही प्रशस्त गजोंके चीत्कार हैं । तथा यह जम्बूद्वीप पवित्र एक लाख योजन चौड़ा है । विदेह क्षेत्र आदि क्षेत्र रूपी विशाल हृदयका धारक है एवं चित्तको अत्यंत आनन्द प्रदान करने वाला ॥ १७ १८ ॥ इसी जंबूद्वीपके ठोक मध्यभागमें एक सुमेरु नामका पर्वत है जो कि एक लाख योजन प्रमाण ऊंचा है । अपनी शोभासे कपने समीपवर्ती स्थानको शोभायमान करनेवाला है । त्रिसठ हजार योजनोंके इर्द गिर्दमें विद्यमान है । विचित्र कांतिका धारक है । सुवर्णमयी खोल स्वरूप है । अनेक चैत्यालयोंसे व्याप्त है एवं नन्दनवन सौमनस आदि वनोंसे रमणीक है ॥ २२ २३ ॥ मेरुपर्वतको दक्षिण दिशामें भरत क्षेत्र है जो कि खगाचलों (पर्वतों)के समूहसे धनुषके समान आकारवाला शोभायमान जान पड़ता है ॥ २४ ॥ इस भरत क्षेत्रके

समाप्ते लेख्यतां च नाजाश्चर्यरुतो नृणां ॥ २५ ॥ तन्मध्ये मगधो देशश्चित्तरत्नमिव ध्रुवं । रारकि निवृत्तं हारमध्ये वै हीरको
यथा ॥ २६ ॥ यो घोषादिमटंघैश्च कर्बटैर्वाग्नेहाय माप्रामेनेऽपुमिराश्रितो घस्तु वंकुलः ॥ २७ ॥ यत्र नद्यो विराजन्ते सत्रलाः पद्म-
मंडिताः । राजहंसचकोरादितारसैर्मुखरीकृताः ॥ २८ ॥ कुर्कुटोत्पातसंलक्ष्णं ग्रामा यत्र पदे पदे । तडागानि प्रपाः पांथसंनर्पिण्यो
धमुस्तयः ॥ २९ ॥ सरलास्तरवो यत्र बह्वोवातसनाश्रिताः । समुद्रमस्संराधमंडिताः पिकवत्स्वभाः ॥ ३० ॥ ध्वनिनो दानशोलाश्च
धर्माध्याः सत्प्रभाविणः । व्याताश्रिता भवंत्येष ध्वनिनो एव सच्छिद्ये ॥ ३१ ॥ तत्र राजगृहं नाम्ना पुरं परमगावनं । चमिताकं
अन्दर एक आर्य नामका महाखण्ड है जो कि वत्तीस विशाल देशोंका धारक है देवेन्द्र और मनु-
ष्योंको अनेकप्रकारके आश्रयोंका करनेवाला है ॥ २५ ॥ भरतक्षेत्रके मध्यभागमें मगध नामका
प्रसिद्ध देश है जो कि मनुष्योंकी अभिलाषा पूरण करनेके लिये चिन्तामणि रत्नके समान है एवं
हारके मध्यभागमें जितप्रकार हीरा रत्न मनुष्योंके चित्तको रंजायमान करनेवाला होता है उसी
प्रकार भरतक्षेत्रके मध्यभागमें मगध देश भी मनुष्योंके चित्तको आनंद प्रदान करनेवाला है ॥ २६ ॥
यह मगध देश घोषमटंघ कर्बटोंसे अनेक प्रकारके वाहनोंसे बड़े बड़े गांवोंसे और बड़े बड़े शहरों
से व्याप्त है एवं अनेक प्रकारको मनोज्ञ २ चीजोंका खजाना है ॥ २७ ॥ इस देशके अंदर बड़ी बड़ी
विशाल नदियां हैं जो कि निर्मल जल और महा मनोहर कमलोंसे शोभायमान हैं एवं राजहंस
चकोर और सारस (स्यास) आदि पक्षियोंके मनोहर शब्दोंसे शब्दायमान हैं ॥ २८ ॥ इसी देशमें एक
गांवसे उड़कर कुक्कुट दूसरे गांवमें जा सकें इसरूपसे विलकुल पास पास बसे हुये गांव हैं और
उसके तालाव प्रपा (प्याऊ) पथिकोंके मनको सन्तुष्ट करने वाले महामनोहर जान पड़ते हैं ॥ २९ ॥
इस मगध देशके अन्दर महामनोज्ञ सीधे वृक्षोंकी पंक्तियां विद्यमान हैं जो कि नानाप्रकारकी
लताओंसे व्याप्त हैं । घूमते हुए भौरोंकी मधुर भुनभुनाहटसे चित्तको हरण करनेवाली हैं एवं
कोकिलाओंकी मीठी मीठी ध्वनियोंसे शोभायमान हैं ॥ ३० ॥ इस देशके धनी मनुष्य स्वभावसे ही
दानी हैं- आहार आदि किसी भी दानका अवसर देख कभी भी उससे मुह मोड़नेवाले नहीं ।

च शक्रस्य पत्तनं देवपत्तनं ॥३१॥ यत्र धान्यादिसंयुक्ता नराः सद्गममंडिताः । कलाविज्ञानपारीणाः परमोत्साहिनो वभुः ॥३२॥ सुंदर्यः कामदीप्तांगा मृगाक्ष्यः पिकसुस्वराः । उत्तुंगस्तनभारेण नम्रा ईषत्सुर्मदगाः ॥ ३४ ॥ सशोलाः मुखचन्द्रैश्च भूषितांतः स्वधामकाः । दानपूजादिसंस्कारा व्रताचारलसत्क्रियाः ॥३४॥ गतागतैः स्तनाश्लेषसंघट्टैश्च परस्परं । कामिनां हृदये दाहं कुर्वन्त्य इव चावभुः ॥३५॥ तत्रोपश्रुणिको राजा राजते रजनीशवत् । कुवलयानन्दको लोकचकोराह्लादकारकः ॥३७॥ वृषपक्ष्मः प्रतापो च अत्यंत धर्मात्मा है सदा सत्य बोलनेवाले हैं एवं मोक्षलक्ष्मीकी अभिलाषासे सदा ध्यानी और ज्ञानी हैं ॥ ३१ ॥

इसी मगध देशके अन्दर एक राजगृह नामका नगर है जो कि परम पवित्र है उत्कृष्ट है, सदा अनेक प्रकारकी ध्वजाओंसे शोभायमान रहता है अतएव अपनी दिव्य शोभासे यह इंद्रकी राजधानी स्वर्गलोककी उपमा धारण करता है ॥ ३२ ॥ उस समय यह नगर अनेक प्रकारके धान्योंसे व्याप्त था । इसमें रहने वाले मनुष्य परम धर्मात्मा थे । नाना प्रकारके कार्य और कौशलोंके पारगामी थे एवं प्रत्येक कामके करनेमें बड़े उत्साही थे इसीलिये वे राजगृहपुरकी शोभा स्वरूप थे ॥ ३३ ॥ राजगृहपुरके अन्दर रहनेवाली सुंदरियां भी कामदेवसे देदीप्यमान अंगकी धारक थीं । हरिणियोंके समान नेत्रोंवाली थीं । कोकिलाओंके समान सुरीली थीं । विशाल स्तनोंके भारसे आगेका कुछ झुकी हुई थीं । मंद मंद चलनेवाली थीं । अत्यंत शीलवती थीं । अपने कांति परिपूर्ण मुखरूपी चंद्रमाओंसे अपने महलोंको प्रकाशमान करती थीं । दान पूजा आदि जितने भी पवित्र कार्य हैं उनमें लीन थीं । वे जितनी भी क्रियायें करती थीं व्रत और आचारके अनुकूल करती थीं इसलिये उनकी सारी क्रियायें निर्दोष होनेसे अत्यंत मनोहर होती थीं तथा राजगृहपुरमें नर नारियोंका इतना जमघट था कि वहांकी नारियां आने जानेसे तथा स्तन और आलिंगनोंके संघर्षणोंसे कामियोंके हृदयोंमें काम जनित दाह उत्पन्न कर देती थीं । अतएव वे मनको हरण करनेवाली होती थीं ॥ ३४-३६ ॥

हेलानिर्जितशात्रवः । महाबाहुर्महारुढो मकरध्वज एवापरः ॥ ३८ ॥ दानी धर्मी गुणी ज्ञानी महामानी महोद्धुरः । पीनग्रीवः कम्प-
पाणिश्चक्रमत्स्ययवांघ्रिपः ॥ ३९ ॥ तस्यैव हृदयानन्दकारिणी मदनप्रियां बिडम्बमाना सत्कांतिश्चन्द्रास्या च कुरंगदृक् ॥ ४० ॥ पट्ट-
राक्षी महाप्रोत्था राक्षो जीवाधिका प्रिया । स्म बोधवतीति चेद्राणी नाम्नेद्रस्य प्रिया परा ॥ ४१ ॥ स्निग्धवेणी विराजेत सर्पिणी नु
भवेत्किमु । मुखचन्द्रसुधापानं कर्तुं मस्तकमास्थिता ॥ ४२ ॥ भालमाभाति यस्यानु समर्धेदुरथो स्थितः । द्रुकुरंगधरो जंघूनदकुण्डल
चक्रगः ॥ ४३ ॥ एतया सह संभुजन् भोगान् ऋतुसमुद्रयात् । हास्यक्रीडाचिनोदैश्च रूपरंजितमन्मथः ॥ ४४ ॥ तयोः पुत्रोऽजति राज्य

इसप्रकारके महामनोहर राजगृह नगरका रक्षण करनेवाला राजा उपश्रेणिक था जो कि
रजनीश--चंद्रमाके समान महा मनोहर था । चंद्रमा जिसप्रकार कुवलय--रात्रिविकासी कमलोंको
आनंद प्रदान करनेवाला होता है उसीप्रकार वह राजा भी कु-वलय--पृथ्वीमंडलको आनंद प्रदान
करनेवाला था । चंद्रमा जिसप्रकार चकोर जातिके पक्षियोंको आनंद प्रदान करता है उसीप्रकार वह
राजा भी लोकरूपी चकोर पक्षियोंको आनंद प्रदान करनेवाला था । वह महानुभाव राजा बैलके समान
उन्नत स्कंधोंका धारक था । प्रतापी था । समस्त शत्रुओंका जीतना खेल समझता था । विशाल
भुजाओंका धारक था । सुभट था । सुंदरतामें दूसरा कामदेव सरीखा था । दानी धर्मात्मा गुण-
वान और ज्ञानवान था । उत्तम क्रियाओंके करनेमें पूरा घमण्ड रखता था । महान धीर वीर था ।
फुली हुई गर्दनसे युक्त था । कमलोंके समान शोभायमान हाथ तथा चक्र मच्छी और जोके
चिन्होंसे शोभायमान पैरोंका धारक था ॥ ३७--३९ ॥

महातेजस्वी राजा उपश्रेणिककी पटरानीका नाम इंद्राणी था जो कि महाराजके हृदयको
अत्यन्त आनंद प्रदान करनेवाली थी । कामदेवकी प्रिया रतिको भी अपनी शोभासे नीचा दिखाने
वाली थी । चंद्रमाके समान मुखसे शोभायमान थी । हरिणीके समान विशाल नेत्रवाली थी ।
राजाको अपने जीवसे भी अधिक प्यारी थी एवं अपनी अनुपम सुंदरतासे इंद्रकी प्यारी दूसरी
इंद्राणी सरीखी थी । उस महाराणी इंद्राणीकी काली लंबी चिकनी बेणी (चांदी) काली नागिनी

राज्यलक्षणलक्षितः । श्रेणिकाख्यो वरीयांश्च रूपरंजितमन्मथः ॥ ४५ ॥ अन्ये पंचशतान्येव पुत्रा आसन् सुभूपतेः । तैः साकं विविधान् भोगान् भुञ्जन् स सुखतः स्थितः ॥ ४६ ॥ अथ चंद्रपुराधीशः सोमशर्मातिविश्रुतः । मनुते नैव भूपस्य शासनं शुभशासनं ॥ ४७ ॥ तदोपश्रेणिको राजाऽलीलिखत्सद्वलं वरं । द्रष्टुं दूतकरे शीघ्रं प्रेषयामास तं प्रति ॥ ४८ ॥ मतिस्तागराभिधो दूतो गत्वा द्रष्टुं न्यसरीखी थी और वह मुखरूपी चंद्रमासे अमृत पीनेकी अभिलाषासे उसके मस्तकपर विद्यमान थी ऐसी जान पड़ती थी । उस महाराणीका ललाट भाग आधे चंद्रमाके समान शोभायमान था क्योंकि चंद्रमा जिसप्रकार हिरण्यके चिह्नका धारक माना जाता है, ललाट भी नेत्ररूपी हिरण्यका धारक था । चंद्रमा जिसप्रकार मंडलके बीचमें (पारसेमें) रहता है ललाट भी सुवर्णमयी कुंडलरूपी चक्रके अर्ध भागमें था । इसप्रकार अपने मनोहर रूपसे कामदेवके समान वह राजा प्रीतिपूर्वक उस रानी इंद्राणीके साथ जुड़ी जुड़ी कृतुओंके नानाप्रकारके भोग भोगता था एवं हास्य नानाप्रकारकी क्रीड़ा और विनोदोंसे वह भोगोंकी सुंदरताका अनुभव करता था ॥ ४०—४४ ॥

महाराज उपश्रेणिकके महाराणी इंद्राणीसे उत्पन्न पुत्र श्रेणिक था । वह कुमार श्रेणिक उत्तमोत्तम राजलक्षणोंसे मंडित था । उत्कृष्ट था और अपने मनोहर रूपसे कामदेवकी तुलना करता ॥ ४५ ॥ कुमार श्रेणिकके सिवाय राजा उपश्रेणिकके और भी पांचसौ पुत्र थे जिनके साथ अनेक प्रकारके भोगोंको भोगता हुआ वह राजा सुखपूर्वक काल व्यतीत करता था ॥ ४६ ॥

इसी पृथ्वीपर एक चंद्रपुर नामका नगर है । चंद्रपुर नगरका स्वामी उस समय राजा सोमशर्मा था जो कि अत्यंत पराक्रमी और प्रसिद्ध था । राजा उपश्रेणिककी आज्ञा यद्यपि शुभ थी तथापि वह सोमशर्मा उनकी आज्ञा मानना नहीं चाहता था ॥ ४७ ॥ राजा उपश्रेणिकको यह बात पसंद न थी इसलिये शीघ्र ही उन्होंने एक आज्ञापत्र लिखवाया । दूत बुलाकर उसे तोपा एवं शीघ्र ही उसे राजा सोमशर्माके पास भेज दिया ॥ ४८ ॥ दूतका नाम मतिस्तागर था । राजाकी

द्विदशत् । पत्रं नत्वेव पश्यच्छ सोमशर्माभिधश्च तं ॥ ४६ ॥ कस्येदं दूत सत्पत्रं प्रोवाच मत्तिसागरः । राजगृहपुराधीशा राजोपश्रेणि-
केन ॥ ५० ॥ प्रेषितं भो नराधीश ! श्रुत्वा पत्रं लुलोक सः । स्वस्तिश्रोदं निपत्याशु मातृदेवं मनोहरं ॥ ५१ ॥ राजगृहात्पुरात्
श्रोमान् महाराजोपश्रेणिकः प्रणिगदति शुभार्थं वै चन्द्रपुर्यां च तत्पतेः (तिः) ॥ ५२ ॥ सर्वे सामंतभूपाश्च शासनं पालयन्ति मे ! शुद्ध-
स्तवं च कथं सेवां नाकरोषि स्वगर्वतः ॥ ५३ ॥ यदि राज्ये भवेदाशा ह्यागंतव्यं त्वया तदा । श्रुत्वेति पत्रसद्भावं प्रतिपद्य ससर्ज तं ॥
५४ ॥ चिंतयामास चित्ते स्वे सोमशर्माभिधो नृपः । येनोपायेन पंचत्वं प्राप्नोति तं करोम्यहं ॥ ५५ ॥ ध्यात्वेत्थं विद्यया कृत्वा घोटकं
दुर्धरं द्रुवं । मुक्ताफलाविसृजस्तुभ्राभृतं प्राहिणीसकं ॥ ५६ ॥ तदोपश्रेणिको दृष्ट्वा मुमोद मानसे स्वके । परीक्षायै चटित्वा सौ
आज्ञासे वह चंद्रपुरकी ओर चल दिया । सभामें पहुँचकर राजाको नमस्कारकर और पत्र देकर
अपने योग्य स्थानपर बैठ गया । पत्र पाकर राजा सोमशर्माने कहा—अरे दूत ! कहांसे तू आया
और किसका यह पत्र लाया है ? उत्तरमें दूतने कहा—राजन् ! राजगृहके स्वामी प्रसिद्ध राजा उप-
श्रेणिक हैं उन्होंने ही यह पत्र आपके लिये भेजा है । दूतके मुखसे यह वचन सुन राजा सोम-
शर्माने पत्र हाथमें ले लिया और उसे अपने मंत्रीको वांचने दे दिया वह भी स्वस्ति और लक्ष्मी
को प्रदान करनेवाले महा मनोहर सिरनामेंपर लिखे हुये भगवान् ऋषभदेवके वाचक शब्दोंको
अर्थात् सिरनामेको छोड़कर जो कुछ भी उसमें आज्ञा लिखी थी इसप्रकार उसे वांचने लगा—
चंद्रपुरीमें उसके स्वामी राजा सोमशर्माके कल्याणकी अभिलाषासे राजगृहपुरसे श्रीमान्
महाराजा उपश्रेणिक यह आज्ञा प्रदान करते हैं कि समस्त बड़े बड़े सामंत और राजा विनय-
पूर्वक मेरी आज्ञाका पालन करते हैं उनके सामने तुम बहुत चुद्र राजा हो परंतु अहंकारके पुतले
होकर मेरी आज्ञा स्वीकार नहीं करते, यह सर्वथा अनुचित है । आजतक जो हुआ सो हुआ परंतु
अबसे तुम्हारे लिये मेरी यह आज्ञा है कि यदि तुम्हें राज करनेकी इच्छा है तो तुम यहांपर
आओ और मेरी सेवा करो । वस पत्रके लेखको इसप्रकार सुनकर और उसका भीतरी तात्पर्य
समझकर दूतको तो विडा कर दिया एवं “राजा उपश्रेणिक जिस उपायसे प्राण रहित हो जायं

सत्क्रोडं सुवनं ययौ ॥ ५७ ॥ कुर्मन्त्रो दुष्टचतस्रको नोत्वाऽश्वकः प्रगतेके । अबोक्षिषद्गः क्वापि दुर्निरोक्ष्यं हि दैवतं ॥ ५८ ॥ अहो
 लुलोकयामासुः श्रेणिकायाः सुताः परे क्वापि दृष्टो न भूवालो व्याघ्रुद्य सन्ननि स्थिताः ॥ ५९ ॥ अथो इन्द्राणिका राज्ञो विललापा-
 पतद्बुवि । गार्हं चकंद हाराद्यप्रोटयद्वेणिकां त्वपि ॥ ६० ॥ हा हा नाथ ! मतोऽसि क्व मां त्यक्त्वा त्वं दुराशयां । हा प्रणनाथ !
 वह उपाय मुझे करना चाहिये” ऐसा अपने चित्तमें विचार करने लगा । थोड़ी देर विचार करनेके
 बाद उसने एक मायामयी घोड़ा तयार किया जो कि अशिक्षित और दुष्ट था एवं उस घोड़ाका
 तथा और भी मुक्ताफल आदि मनीहर चीजोंको राजा उपश्रेणिककी सेवामें भेंट स्वरूप भेज
 दिया ॥ ४६ — ५६ ॥ राजा सोमशर्माको भेजी हुई भेंट जिससमय महाराज उपश्रेणिकने देखी
 वे अपने मनमें अत्यन्त प्रसन्न हुए । भेंटकी चीजोंमें सबसे उत्तम घोड़ा उन्हें जना पड़ा इसलिये
 उसके अच्छे बुरेकी परीक्षा करनेके लिये वे शीघ्र ही उसपर सवार हो लिये और उत्तम क्रीड़ाके
 स्थान बनकी ओर चल दिये । वह दुष्ट घोड़ा सर्वथा अशिक्षित था चित्तमें दुष्ट अभिप्राय धारण
 किये था । वस जिस समय वह बनके अन्दर पहुँचा शीघ्र ही उसने किसी भयंकर गढ़में महाराज
 उपश्रेणिकको डाल दिया और तत्काल कहीं चला गया ठीक ही है भाग्यकी महिमा दुर्निरीक्ष्य
 है—क्यासे क्या होगा, यह सूझ नहीं पड़ता ॥ ५६ ५८ ॥ महाराज उपश्रेणिकके इसप्रकार लापता
 हो जानेपर उनके श्रेणिक आदि पुत्रोंको बड़ा दुःख हुआ । अपने पूज्य पिताको वे इधर उधर
 खोजने लगे जब कहीं भी उनका पता न लगा तो वे समस्त पुत्र लौटकर अपने राजमहल चले
 आये ॥ ५९ ॥ अचानक ही महाराजके लापता हो जानेपर महाराणी इन्द्राणी विलाप करती करती
 जमीनपर गिर गई । दयाजनक रोने लगी । हार आदि भूषण तोड़कर फेंक दिये । चोटीके बाल
 बिखर गये एवं इसप्रकार कहने लगी—हा स्वामी ! मुझ अभागिनीको छोड़कर आप कहां चले
 गये । हा प्राणप्यारे देव ! मैंने ऐसा कौनसा घोर पाप किया था जिसका फल यह हुआ कि मुझे

हा देव ! हा हा किं दुष्टतं कृतं ॥ ६१ ॥ मुनीनां निन्दया कंदमूलात्तितां सुभक्षणत् । धर्मवाक्योपवातान्मे पातकं समुपस्थितं ॥ ६२ ॥
 दुर्गंधे नरकात्तत्र चकाण व्यथितो नृपः । जपन् जापं स्थितो यावत्तावदन्यकथोत्तरं ॥ ६३ ॥ अथ वैवच्छवासाख्यपत्न्यामभिधिया
 यमः । स जात्या क्षत्रियो राजा भिल्लानां विद्यते भृशं ॥ ६४ ॥ विद्युन्मालो प्रिया तस्य पुत्र्यस्ति तिलका तयोः । क्रीडायां चागतः
 सोऽपि ददर्श पतितं नृपं ॥ ६५ ॥ दृष्ट्वौ तदा यमः प्रायः क्वायं राजगृहाधिपः । क्वायस्थेयं विवित्येत्यमदितो राजसन्निधौ ॥ ६६ ॥
 आपसे जुदा होना पड़ा ॥ ६०—६१ ॥ हाथ क्या मैंने मुनियोंकी निंदा की थी वा कंद मूल
 आदिका भक्षण किया था अथवा धर्मवाक्योंका उल्लंघन किया था जिससे तीव्र पापका बंध होकर
 मुझे यह दुःख भोगना पड़ा ॥ ६२ ॥ राजा उपश्रेणिकके कुटुंबी जन तो इधर इसप्रकार दुःख
 मना रहे थे उधर जिस गढ़में घोड़ाने उन्हें ले जाकर डाला था वह गढ़ा नरकसे भी अधिक दुर्ग-
 धमय था इसलिये उन्हें बड़ी व्यथा होने लगी । उन्हें उस समय सिवाय परमात्माके शरणके
 अन्य किसीका भी शरण न सूझ पड़ा इसलिये वे उन्हींके नामका जप वहां बैठकर करने लगे ॥ ६३ ॥
 जिस वनके गढ़में महाराज उपश्रेणिक पड़े थे उसी वनमें एक वैवच्छ (त्व) वास नामकी भीलोंकी
 पत्नी थी । उस पत्नीका स्वामी यम (यमदंड) नामका भीलोंका राजा था जो कि क्षत्रिय जातिका
 था और सदा वहींपर रहता था । राजा यमदंडकी स्त्रीका नाम विद्युन्माली था । उससे उत्पन्न
 एक परम सुंदरी कन्या थी जिसका शुभ नाम तिलका (तिलकवती) था । क्रीडाका प्रेमी वह भिल्लराज
 यमदंड उस गढ़के पास आ निकला और गढ़में शोचनीय अवस्थामें पड़े राजा उपश्रेणिकको
 उसने देखा । प्रसिद्ध महाराजको इसप्रकार बुरी हालतमें देख वह विचारने लगा कि-देखो कर्मकी
 विचित्रता, कहां तो यह राजगृहपुरका स्वामी उपश्रेणिक और कहां इसकी यह दुःखमय शोच-
 नीय अवस्था ! बस वह शीघ्र ही राजाके विलकुल पास पहुंच गया एवं मनोहर शरीरका धारक
 वह मीठे प्यारे शब्दोंमें कुशल पूछने लगा । महाराज उपश्रेणिकने भी जो बात जिसतरह बोली
 थी सारी कह सुनाई । रंचमात्र भी न छिपाई क्योंकि कर्मोंकी गति बड़ी विचित्र है—किस समय

पप्रच्छ परमानन्दवाक्यैर्ललितचिग्रहः । राजा प्रोक्तं च तद्वृतं विचित्रा कर्मणां गतिः ॥ ६७ ॥ पादोश्रेणिको धोमान् कोऽसि त्वं
वससि क्व च । स्वोयराज्यप्रणाशत्वमत्रैव वसतिर्मम ॥ ६८ ॥ एहि राजन् ! ममागारे देहीडासुशांतये । गत्वाचारं समालोक्य
प्रोवाच वचनं श्रुतीम् ॥ ६९ ॥ नो भुवजिह्व तवागारे स्वाचारपट्विजिते । तदाह यमदंडाख्यः शृणुताद्वचनं मम ॥ ७० ॥ तिलकादिवती
पुत्री सामुद्रलक्षणांकितः । पृथ्यं विद्याय सद्भवत्या भोजयिष्यति भूपते ? ॥ ७१ ॥ संज भूपतिर्भवत्या तस्या रूपेण मोहितः । ययाचे
तां यमं भूपं द्विजश्रीरात्रितोत्सभः (य.) ॥ ७२ ॥ तदाप्राश्नोद्यमो प्रोत्था मृगाल पालितप्रजं । तच्चैव सुंदरीघातो विद्यतऽत्यंतरूपवान्
नीचेसे ऊंचापन और ऊंचेसे नीचापन होगा किसीको जान नहीं पड़ता । अंतमें महाराज उपश्रे-
णिकने कहा—

प्रिय महानुभाव ! तुम कौन हो और तुम्हारा निवासस्थान कहां है ? उत्तरमें भिल्लराज यम-
दंडने कहा—राजन् ! जिस समय मेरा राज्य मेरे हाथसे चला गया और मैं राज्यरहित हो गया
तबसे मैं इसी वनमें आ गया हूँ और यहींपर रहने लगा हूँ । भयंकर गढ़में गिरनेसे आपका
शरीर पीड़ायुक्त हो गया है कृपाकर इस पीड़ाकी निवृत्तिके लिये आप मेरे घरपर चलें । भिल्ल-
राजकी प्रार्थना राजा उपश्रेणिकने मंजूर करली । वे उसके साथ चले आये । घरमें आकर जिस
समय उन्होंने यमदंडका आचार भीलों सरीखा देखा उन्हें वह सहन न हो सका इसलिये शीघ्र
ही उन्होंने यमदंडसे कहा—भाई यमदंड ! तुम्हारा घर स्वाचार—श्रावककी क्रियायोंसे रहित है मैं
तुम्हारे घरमें भोजन नहीं कर सकता । उत्तरमें यमदंडने कहा—कृपानाथ ! यदि यही बात है तो
आप मेरी बात सुने— । मेरे एक तिलकवती नामकी पुत्री है । सामुद्रिक शास्त्रमें कहे गये शुभ
लक्षणोंसे युक्त है । श्रावकोंके घरमें जैसी भोजन क्रिया प्रचलित है वैसा ही भोजन बना सकती
है इसलिये भक्तिपूर्वक वह आपके अनुकूल भोजन बनाकर आपको जिमा सकती है । महाराज
उपश्रेणिकने यमदंडकी यह प्रार्थना स्वीकार करली एवं वे उसके हाथका बना महामिष्ट भोजन
करने लगे ॥ ६४—७१ ॥ वह कन्या तिलकवती परम सुंदरी थी । उसका सौंदर्य और गुण देख

॥ ७३ ॥ अतः पुत्र्याः सुखं न स्यात् पुत्रो भावी न वा प्रतो ! भविष्यत्यथ वा पुत्रः सेवया जीवितं वृथा ॥ ७४ ॥ मत्पुत्रीजाय राज्यं च ददासि त्वं यदा तदा । ददामि पुत्रिकां तुभ्यं प्रतिपन्नं तथैव तत् ॥ ७५ ॥ उपयम्य सुतां तस्य यस्य सैन्यविराजितः । जंगम्यते स्म राज्ये स्वे विवेश नगरं निजं ॥ ७६ ॥ उत्तराकं पुरं कृत्वा तोरणादिमुत्सृज्य । सर्वसामंतमंत्र्याद्या विद्ध्युर्मंगलक्रियां ॥ ७७ ॥ हावैर्भावेर्वि कर महाराज उपश्रेणिकका चित्त ठिकाने न रहा । वे हृदयसे मोहित हो गये एवं अपने मनोहर दाँतोंकी प्रभासे विशाल सभाको शोभायमान करनेवाले वे महाराज उपश्रेणिक भिल्लराज यमडंडसे कन्या तिलकवतीकी याचना कर बैठे ॥ ७८ ॥ राजा यमडंडने महाराज उपश्रेणिककी जिस समय यह याचना सुनी तो वह उनकी प्रार्थना नामंजूर तो न कर सका क्योंकि महाराज उपश्रेणिक नीतिपूर्वक प्रजाके पालन करनेवाले एक महान् राजा थे परंतु वह अपनी पुत्रीकी कल्याणकी दृष्टिसे इसप्रकार कहने लगा—

कृपानाथ ! आप इससमय एक प्रधान राजा माने जाते हैं और आपके रणवासमें अगणित सुंदरियां मौजूद हैं जो कि सुंदरतामें एकसे एक बढ़ी चढ़ी हैं, संभव है उनकी मौजूदगीमें मेरी पुत्री तिलकवतीको सुख चैन न मिले । अथवा पुत्रकी उत्पत्तिसे स्त्रियां विशेष सुख अनुभव करती हैं संभव है इसके पुत्र न हो जिससे भी इसे कष्ट भोगना पड़े । अथवा शुभ भाग्यसे उसके पुत्र भी हो जाय परन्तु अन्य पुत्रोंके विद्यमान रहते वह राजा न बन सके उनका सेवक ही बना रहे ऐसा दशामें भी मेरी पुत्रीको सुख मिलना कठिन है क्योंकि सेवासे जीवनका विताना निरर्थक समझा जाता है इसलिये पुत्रीके सुखकी अभिलाषासे मेरी यह प्रार्थना है कि यदि आप यह बात स्वीकार करें कि इस पुत्रीसे जो पुत्र हो वही राज्यका अधिकारी समझा जाय उसके रहते अन्य कोई पुत्र राजा न बनाया जाय तो मुझे आपको पुत्री देनेमें कोई उज्र नहों-मैं सहर्ष उसे आपको प्रदान कर सकता हूँ । महाराजा उपश्रेणिक तो उससमय कामांध थे । योग्य अयोग्यका कुछ भी विचार

लासेञ्च चुम्बनेरभणैस्तथा । रेमे राजा रतिक्रीडापर्वते स्ववने गृहे ॥ ७८ ॥ पुत्रो जातस्तयोः क्रीडाशक्तयोर्लक्षणान्वितः । चलातीत्यभिधो
 वालो ववृधे बालचन्द्रवत् ॥ ७९ ॥ यौवनाढ्यो यदा जातश्चित्तयामास भूपतिः । राज्यं हि श्रेणिकस्यैव वरो दत्तोऽस्मकै मया ॥ ८० ॥
 संज्ञित्येत्यं निमित्तज्ञं समाहूय जगादिति । भो भो निमित्तसंज्ञानिन् कलाविज्ञानपारग ! ॥ ८१ ॥ एतेषां मम पुत्राणां राज्यभाक्
 न कर राजा यमदण्डकी बात उन्होंने स्वीकार कर ली । सुन्दरी तिलकवतीके साथ उनका विवाह
 हो गया । राजा यमदण्डकी सेनासे वेष्टित हो बड़े ठाट वाटसे वे अपने राजधानीकी ओर चल
 दिये एवं अपने नगरमें प्रवेश कर गये ॥ ७३-७६ ॥ अपने महाराजकी फिरसे प्राप्ति दुर्लभ जान
 नगर निवासियोंको बड़ा आनन्द हुआ । महाराजकी प्राप्तिकी खुशीमें राजगृह नगर ध्वजा पताका
 तोरण आदिसे सजा दिया गया एवं समस्त सामंत मन्त्री आदिने भगवानकी पूजा अभिषेक
 आदि मंगलीक कार्य किये ॥ ७७ ॥ राजमहलमें प्रवेश कर राजा उपश्रेणिक रतिक्रीडाके योग्य
 पर्वत वगीचें और महलोंमें रमणी तिलकवतीके साथ सतन्त्र भोग भोगने लगे । कभी तो महाराज
 उपश्रेणिकने नानाप्रकारके हाव भाव और विलासोंके साथ भोगोंके सुखोंका अनुभव किया एवं
 कभी कभी वे चुम्बन और आलिंगनोंसे भोगोंका रस आस्वादनने लगे ॥ ७७-७८ ॥ नानाप्रकारकी
 क्रीडाओंमें आसक्त उन दोनोंके भोगोंका फलस्वरूप एक पुत्र हुआ जो कि राजलक्षणांसे युक्त था
 'चलाती, इस शुभ नामका धारक था एवं वह पुत्र बालचन्द्रमाके समान दिन दिन बढ़ने लगा
 ॥ ७९ ॥ कामांध्र महाराज उपश्रेणिक चिलाती पुत्रको राज्य देनेका वायदा कर चुके थे इसलिये
 जिस समय कुमार चिलाती युवा हो गया महाराज उपश्रेणिकको चिन्ताने अपना स्थान बना
 लिया । वे मन ही मन सोचने लगे कि सब पुत्रोंमें कुमार श्रेणिक राज्यके योग्य है इसलिये हक
 प्राप्त तो राज्य श्रेणिकका ही है परन्तु मैं चिलाती पुत्रको उसे देनेका वायदा कर चुका हूँ ऐसी
 दशामें क्या करूँ ? बहुत कुछ सोच विचारके बाद महाराज उपश्रेणिकने ज्योतिषी बुलाया और
 उससे इस प्रकार कहने लगे—

को भविष्यति । लग्नं चिचिंत्य च दृष्टं स्वामिदृष्टं शुभाश्रितं ॥८२॥ योगाधियोगिकः प्राह शृणु सामंतनायक ! शर्कराकुम्भको देयः प्रत्येकं सर्वसत्तुजां ॥ ८३ ॥ कुम्भमन्येन गोघेन यः सप्त प्रति नेष्यति । राज्यभाजं विजानीयाः प्रांशुलं गतविक्षिप्तं ॥ ८४ ॥ ओसजैः सलिलैः कृत्वा भृत्वा कुम्भं समेष्यति । राज्यभाजं विजानीयास्तृतीयांशं निगद्यते ॥ ८५ ॥ नानावर्जनसद्गोत्रं पूषापायससंयुतं । कारयित्वा सुतान् सर्वान्नेकपंकौ निवेशय ॥ ८६ ॥ शुनकान् मोचयेः पश्चात्तान्निवार्य भुनक्ति यः । राज्याधिपं त्वकं विधा रुपनिर्जितमन्मथं ॥ ८७ ॥ दहमाने पुरं यस्तु छत्रचामरविष्टरं । नीत्वा प्रयाति राजा सपंचमाकं समुच्यते ॥ ८८ ॥ खड्गलालुकपर्याप्तान् करण्डान् संविधाय च । कौर-

प्रिय ज्योतिषी । तुम अनेक प्रकारकी कला और कौशलोंके पारगामी हो कृपाकर बताओ तो कि मेरे इन समस्त पुत्रोंमें राज्य प्राप्त करने वाला कौन पुत्र होगा ? क्योंकि जो बात लग्न विचारकर देखी जाती है और जो स्वामी भगवान् केवली द्वारा देखी जाती है वह शुभजनक अर्थात् ठीक ही निकलती है ॥८०--८२॥ वह ज्योतिषी समस्त ज्योतिषियोंमें मुख्य था । महाराज उपश्रेणिकके वैसे वचन सुनकर वह कहने लगा—हे अनेक सामन्तोंके स्वामी राजा ! मैं राज्यकी प्राप्तिके कुछ निमित्तोंका वर्णन करता हूँ तुम ध्यान पूर्वक सुनो—

१. महाराज । राज्यकी प्राप्तिका सबसे पहिला निमित्त यह है कि आप अपने सब पुत्रोंको बुलाइये और उन्हें अपने अपने घर ले जानेके लिये एक एक घड़ा दीजिये जो प्रतापी पुत्र उस घड़े को अपने शीशपर दून रखकर किसी अन्य मनुष्य (चाकर) के शिरपर रखवाकर अपने घर ले जाय, समझ लो राज्यका प्राप्त करने वाला वही है और वही बलवान और शत्रुओंका वश करनेवाला है अन्य नहीं ॥८३--८४॥ दूसरा, राज्यकी प्राप्तिका निमित्त यह है कि आप अपने समस्त पुत्रोंको बुलाकर प्रत्येकको एक एक कोरा घड़ा दीजिये और यह आज्ञा कीजिये कि हर एक कुमारको ओसके जलसे भरकर घड़ा लाना होगा जो प्रतापी कुमार घड़ाको ओससे भरकर ले आवे समझ लो वही राज्यकी धुरा धारण कर सकता है अन्य नहीं । राज्यकी प्राप्तिका तीसरा निमित्त यह है कि पूआ खीर आदि नाना प्रकारके व्यंजनोंसे महा मिष्ट भोजन आप तयार कराइये । जिस समय भोजन

कुम्भान्जलैः पूर्णान् समुद्रान् वस्त्रसंस्कृतान् ॥८६॥ कृत्वा प्रत्येकपुत्रेभ्य एवैतः सः प्रदीयतः । उज्जलमिति सो पुत्रः । अनुकूपाद्य सुमुंजत ॥ ८७ ॥ तथा करिष्यति हे राजन्नाधिपत्याधिपो हि सः । एवं पंचनिमित्तांकाणि गद्य विरराम सः ॥८८॥ तथा कार्ष्णिग्रामो लक्ष्मणेन परीक्षणं । श्रेणिकं राज्यनाथं हि भत्वा चित्तेऽन्वचिंतयत् ॥ ८९ ॥ अहो जलातिपुत्राय दत्तं राज्यं मया पुरा । लक्ष्मणैः सन्नयं राजा किं तयारहो जाय समस्त पुत्रोंको बुलाकर एक पंक्तिमें जीमनेके लिये बिठा दीजिये और पीछे से उनपर भयंकर कुत्तोंको छोड़ दीजिये जो प्रतापी पुत्र अपनी उग्र शक्तिसे उन कुत्तोंको हटाकर सानन्द भोजन करता रहेगा समझ लीजिये महाराज ! वही अपने मनोहर रूपसे कामदेवको भी जीतने वाला कुमार राजा बनेगा अन्य नहीं । राज्य प्राप्तिका चौथा निमित्त यह है कि नगरमें आग लगानेपर जो पुत्र राज्यके मुख्य चिन्ह छत्र चमर और सिंहासनको लेकर भागे बस वही राजा बननेका अधिकारी है अन्य नहीं । तथा राज्यप्राप्तिका पांचवा निमित्त यह है कि आप खाजे और लाडुओंसे भरवाकर पिटारोंको रखवा दीजिये और जलसे परिपूर्ण कोरे घड़े जिनपर कि मोहर लगी हो और जिनका मुख वस्त्रसे ढांका हुआ हो रखवा दीजिये जिस समय यह कार्य हो चुके उस समय आप समस्त पुत्रोंको बुलाइये । उन्हें एक एक पिटारा और एक एक जलसे भरा घड़ा दीजिये और यह आज्ञा कर दीजिये कि वे पिटारे और घड़ोंका मुख खोले बिनाही खाजे आदि पदार्थ खावें और पानी पीवें । समस्त पुत्रोंमें जो प्रतापी पुत्र यह कार्य करेगा बस वही राजा बनेगा अन्य राज्यका भार नहीं सह सकता । बस राज्यकी प्राप्तिके पांच निमित्त बतलाकर वह ज्योतिषी चुप रह गया ॥८५—८९॥ ज्योतिषीके कहे अनुसार महाराज उपश्रेणिकने भी पूर्वोक्त निमित्तोंसे राज्यकी प्राप्तिके योग्य पुत्रकी परीक्षा करनी प्रारम्भ कर दी । समस्त परीक्षाओंमें पास

१ कुमार श्रेणिकने ओसके जलसे पूर्ण घासपर कपड़ा बिछाकर और उसे नीचोड़कर घड़ा भर लिया था और किसी पुत्रको यह अवल नहीं सूझी थी । २ कुमार श्रेणिकने पिटारा हिला २ कर चूरकर सब माल खा लिया था । घड़ा टेढ़ाकर पानी पी लिया था ।

करोमि गुणप्रियः ॥ ६३ ॥ नार्पयामि यदा राज्यं चलातिसूनवे भृशं । याति वाक्यं मदीयं वै वैयर्थ्यं जीवितं तदा ॥ ६४ ॥ वचनं हारितं येन तेन पुण्यादि हारितं एवं तं चिंतया ग्रस्तं दृष्ट्वामात्यो जगाद भो । सुप्रत्याख्यो गुणाम्बोधिः सख्यश्चिंतातिवर्तकः ॥ ६५ ॥ राजंस्तेऽस्ति च का चिंता गर्जति गजराज्यः । मदोन्मत्तामहातुंगा पुष्करोद्गनस्पृशः ॥ ६६ ॥ जविनस्ताण्डवारंभकुशला जवशालिनः । हृषंति सुभटाग्रण्यो योद्धारश्च रणाजिरे ॥ ६७ ॥ मृगीदृशो महाप्रोत्या सेवन्ते त्वां विवेकतः । चित्तस्तेयास्तनोद्धारनमिता रात्रिपाननाः कुमार श्रेणिकको ही पाया इस लिये बड़ी भारी चिन्ता उनके हृदयमे प्रविष्ट होगई एवं वे मन ही मन दुःखित हो इस प्रकार विचारने लगे—

मैं चिलाती पुत्रको राज्य देनेका पहिले संकल्प कर चुका हूं परन्तु ज्योतिषी द्वारा बतलाये गये निमित्तोंसे राज्याका अधिकारी गुणोंका प्रेमी कुमार श्रेणिक ही सिद्ध होता है ऐसी हालतमें क्या करूं । यदि मैं चलाती पुत्रको राज्य न देकर कुमार श्रेणिकको देता हूं तो मैं पहिले जो वचन दे चुका हूं वह व्यर्थ होता है एवं वचनके व्यर्थ होनेपर मेरे जीवनका कोई मूल्य नहीं होता क्योंकि संसारमें यह कहावत प्रसिद्ध है कि 'जो वचन हार हो गया वह पुण्य आदि सबही उत्तम गुणोंका हारनेवाला हो गया—वचन हारनेवालेकी आत्मामें पुण्य आदि कभी स्थान नहीं पा सकते । इसलिये मुझे क्या करना चाहिये कुछ सूझ नहीं पड़ता ? महाराज उपश्रेणिकके प्रधान मंत्रीका नाम सुमति था । वह मंत्री सुमति गुणोंका समुद्र था । अत्यंत सभ्य था एवं चिंताको दूर करनेवाला था । अंतरंग चिन्तासे ग्रस्त महाराज उपश्रेणिकको उसने ताड़ लिया और शांति जनक मीठे शब्दोंमें वह उनसे यह कहने लगा—

महाराज ! आपके हाथियोंके समूहके समूह त्रियमान हैं । जो कि मदोन्मत्त हैं । खब उंचे उंचे हैं एवं अपनी सूढ़से आकाशको स्पर्श करनेवाले हैं ॥ ६२—६६ ॥ आपके बहुतसे घोड़े हींस लगाते हैं जो कि अपनी चालसे तांडव नाच नाचते हैं और पवनके समान शीघ्रगामी हैं । बड़े बड़े सुभट और योद्धा भी आपके यहां मौजूद हैं जो कि रणके मैदानमें गर्जनेवाले हैं । आपके रण-

॥ ६८ ॥ देशाधीश जिताः सर्वे नमन्ति त्वां नराधिपं । किन्नूरं विद्यते स्वामिनित्युक्त्या योषमाश्रितः ॥ ६९ ॥ श्रुत्वाहासौ नराधीशः
 सुमते ! श्रूयतां वचः । राज्यं चलातिपुत्राय पुरा दत्तं मया मुदा ॥ १०० ॥ निमित्तज्ञानतो नूनमाधिपत्यं महर्षिकं । अधिश्रेणिकमस्त्ये
 व चिंतायाः कारणं त्विदं ॥ १०१ ॥ जगो मंत्री तदा सुखः सुखं तिष्ठ नराधिप । श्रेणिकं देशतो नूनं निर्गमयामि सांप्रतं ॥ १०२ ॥

बासमें बहुतसी रानियां हैं जो कि हरिणियोंके समान सुंदर नेत्रवाली हैं । बुद्धिपूर्वक बड़े प्रेमसे आपकी सेवा करनेवाली हैं । अपनी सुंदरतासे चित्त चुरानेवाली हैं । स्तनोंके भारोंसे आगेको कुल झुकी हुई हैं एवं चंद्रमाके समान मनोहर मुखोंकी धारण करनेवाली हैं ॥ ६७—६८ ॥ देशोंके स्वामी जितने राजा थे वे समस्त आपने जीत लिये जिससे वे आपको मस्तक झुकाकर नमस्कार करते हैं इस रूपसे जब आपके कोई बातकी कमी नहीं दीख पड़ती फिर नहीं मालूम होता आप किस चिंतामें भीतर ही भीतर घुले जाते हैं—कौन चिंता आपके पीछे लगी हुई है । बस इतना कहकर जब मंत्री सुमति चुप रह गया तब उत्तरमें महाराज उपश्रेणिकने कहा—

प्रियमंत्री सुमति ! तुमने जो कुछ भी कहा है सब ठीक है परंतु मेरी बात सुनो—मैं पहिले प्रसन्नता पूर्वक चलाती पुत्रको राज्य देनेका वायदा कर चुका हूं परंतु ज्योतिषीने अपने निमित्त ज्ञानसे राज्यप्राप्तिके जो भी निमित्त बतलाये हैं उनसे इस विशाल राज्यका अधिकारी श्रेणिक ही सिद्ध होता है बस मेरी सारी चिंताका कारण यही है क्योंकि ऐसा होनेसे मैं वचन हार होता हूं ॥ ६९—१०१ ॥ मंत्री सुमति बुद्धिमान था । महाराज उपश्रेणिककी यह आत्मकहानी सुन उसने कहा—महाराज आप सुखपूर्वक रहें, कुमार श्रेणिकको मैं अभी देशसे बाहिर किये देता हूं । श्रेणिकके चलेजानेपर आप चलाती पुत्रको राज्य देकर अपने वचनकी रक्षा कर सकते हैं । बस इसप्रकार राजाको प्रसन्न कर मंत्री सुमति कुमार श्रेणिकके पास गया । पहिले तो मीठे २ वचनोंमें बात चीत की पीछे कुछ चेहरेपर गौरव लाकर गंभीर वचन बोलने लगा—

राजा ' सुखिनं कृत्वा गतः श्रेणिकसन्निधौ । समाभाष्य शुभैर्वाक्यैर्व्याजहार गिरं गुहं ॥ १०३ ॥ नो पुत्र ! ख्येतामय महान् कोपोस्ति भूपतेः कुतो मंत्रिस्त्वर्कं ब्रूहि ? कुमार ! श्रूयतां वचः ॥ १०४ ॥ कस्माच्चित्पुरुषात् राज्ञा श्रुतं निघ्नं कर्दर्यमा । पुस्त्र्येर्नि- तरां भुक्तं तद्वक्तुं श्रेणिकेन च ॥ १०५ ॥ इति राज्ञो महाद्वेषो बभूव तवकोपरि । तस्मात्क्षणं विलम्ब्यो न राज्ञः कोपो हि दुर्गमः ॥ १०६ ॥ विद्याविभववाणिज्यं व्यसनं वै विचित्रता । वादो घाणीविलासश्च भ्रश्यन्ते राजकोपतः ॥ १०७ ॥ इति श्रुत्वा कुमारोऽसौ व्याजहार वरं वचः । यकोर्भोज्यं न रक्षयेत् राज्यं रक्षयेत् तैः कथं ॥ १०८ ॥ वदिष्यन्तीति लोकौघाश्चातुर्याभोजि मे त्वतः । विधीयते

कुमार ! राजगृह नगरमें इस समय तुम्हारा रहना उचित नहीं क्योंकि महाराज तुम्हारे ऊपर इस समय अत्यन्त कुपित हैं । मंत्रीकी यह आश्चर्य भरी बात सुन कुमारने पूछा—महाराजका कोप मेरे ऊपर क्यों है ? मंत्रीने उत्तर दिया—महाराज उपश्रेणिकने किसी पुरुषके मुखसे यह निर्दित और दुद्र बात सुनी है कि कुमार श्रेणिकने कुत्तोंका भूठा खाया है, जीमते समय कुत्तोंके आजानेपर जिसप्रकार और कुमार उठकर खड़े हो गये वह नहीं उठा था-जीमता ही रहा था, वस तुम्हारे ऊपर यही राजाके कोपका कारण है । तुम्हें अब क्षण भर भी यहां नहीं रहना चाहिये क्योंकि यह कहावत प्रसिद्ध है कि ' राजाका क्रोध महा दुर्गम—भयंकर होता है । राजाके क्रोधके सामने विद्या ऐश्वर्य व्यापार विशिष्ट भोजन चातुर्य वाद करना और सरस्वतीका विलास, सबके सब एक ओर किनारा कर जाते हैं—रंचमात्र भी किसीका आदर नहीं होता । मंत्रीकी यह विचित्र बात सुन कुमारने मनोहर वचनोंमें यह उत्तर दिया—

भाई मंत्री ! तुम्हारी बात मुझे युक्ति पूर्ण नहीं जचती । आश्चर्यकी बात है कि जो अपने भोजनकी रक्षा नहीं कर सकते वे राज्यकी रक्षा करनेमें कैसे समर्थ हो सकते हैं ? भाई ! सारा संसार यह कह रहा है कि मैंने बड़ी चतुरता और वीरतासे भोजन किया है और वास्तवमें मेरा उसी तरह भोजन करना उपयुक्त था परंतु वल्लभ—अपने प्रिय पुत्रके प्राणोंका हरण करनेवाला महाराजका यह कोप क्यों ? कुमारका यह युक्तिपूर्ण उत्तर सुन विज्ञ भी मंत्रीसे कुछ भी जबाब न

कथं राज्ञः कोपो बल्लभप्राणहृत् ॥ १०६ ॥ तदा जगद् मंत्रीशो राज्यं नूनं तवैव भो । परंतु शासना राज्ञः पालनीया प्रयत्नतः ॥ ११० ॥
 निस्ससार कुमारोऽसौ श्रुत्वा दुर्वचनं हि तत् । भटैः पंचायुतैर्गुप्तैर्मृग्यमाणो विषण्णधीः ॥ १११ ॥ अथ माता तदा श्रुत्वा चक-
 रेति मनोभव ! हा हा पुत्र ! सुवर्णं भू ? शोभाभृत् सांध्यरागजित् ॥ ११२ ॥ मार्गे गच्छन् ददर्शासौ कुमारो मारविग्रहः । नन्दिग्रामं गुणा-
 रामं दृष्ट्वा कृती न्यवीविशत् ॥ ११३ ॥ सभामंडपमासाद्य यावत्पश्यति कौतुकं । तावदग्रे स्थितो दृष्ट इन्द्रदत्तो वरार्थिकः ॥ ११४ ॥ एहि
 वना, केवल वह इसप्रकार चापलूसी करने लगा—

कुमार ! यह तुम निश्चय समझो कि राज्य तुम्हारा ही है—तुम्हारे प्रतापके सामने अन्य
 पुत्र राज्यका अधिकारी नहीं बन सकता परंतु महाराजकी आज्ञा इस समय ऐसी ही है, वह तुम्हें
 निःसंकोच भावसे इस समय अवश्य पालन करनी चाहिये इसीमें कुशल है ॥ १०२-११० ॥
 बलवानके सामने कुछ बश चल नहीं सकता । मंत्रीके उसप्रकारके दुर्वचन सुन कुमार श्रेणिकको
 बड़ा खेद हुआ एवं वे महाराज उपश्रेणिक द्वारा नियुक्त पांच (?) जासूस सुभटोंकी देख रेखमें खिन्न
 चित्त नगरसे निकल दिये ॥ १११ ॥ माताका प्रेम विलक्षण होता है कुमारको ऐसी हालतसे चले
 जानेपर उनकी मा इन्द्राणीको बड़ा दुःख हुआ । वह माता हा कामदेव ! हा पुत्र ! हा सुवर्णके समान
 देदीप्यमान कांतिके धारक ! एवं हा संध्याकालकी ललोईको फीकी करनेवाले कुमार ! तू कहां
 गया ? इसप्रकार करुणाजनक स्वरसे रोने लगी ॥ ११२ ॥

कामदेवके समान सुंदर शरीरके धारक कुमार श्रेणिकने मार्गमें जाते जाते एक नन्दिग्राम
 नामका गांव देखा जो कि गुणोंका साक्षात् वर्गीचा स्वरूप था । वह पुरुषवान कुमार उसमें प्रवेश
 कर गया । गांवके मध्यभागमें राज्यकी ओरसे बने सभा मंडपके पास पहुंचकर कुमार चकित दृष्टिसे
 उसे देख ही रहे थे कि सामने एक इन्द्रदत्त नामका वैश्य दीख पड़ा । अपने समान उसे भी
 अधिक जान उसे मामा बनाया और उससे इसप्रकार कहने लगे—राज्यकी ओरसे यहांपर एक दान-
 शाला खुली हुई है उसका स्वामी एक विप्र है । आओ अपन दोनों उसके पास चलें और उससे

सामक ? यावो वां द्विजाम्भे भोजनाय च । गतौ निर्घाटितो विप्रैर्द्विजाः पश्चिमबुद्धयः ॥ ११५ ॥ जठराग्निमडं प्राप्य स्थितस्तेन समं
मुश । कुमारं श्रेणिकं मत्वा भोजनादिपुरस्कृतः ॥ ११६ ॥ ततोऽवादीक्षरां बौद्धः श्रेणिक ! शृणु मद्रवः । बौद्धं धर्मं गृहाण त्वं येन
राज्यं भविष्यति ॥ ११७ ॥ विप्रः संपदायंते कष्टं याति विरागवत् । बौद्धधर्मात्परो धर्मो नोऽमूत्रैव भविष्यति ॥ ११८ ॥ प्रतिपद्य
तदा गंतुमुत्तुकोऽग्रे कुशाग्रधीः । तेनासाविद्रश्चेन मार्गं कौतुककृच्छठात् ॥ ११९ ॥ उवाच श्रेणिको धीमान् भो भो मातुल ! श्रेष्ठ-
भोजनकेलिये कहें । बस दोनोंके दोनों विप्रके पास गये परंतु उसने इनकी एक भी न सुनी ।
विप्रोंने उन्हें सूखा ही टाल दिया । ठीक ही है विप्रगण विचित्र बुद्धिके धारक होते हैं—अपने
घमंडके सामने किसीको भी नहीं सुनते ॥ ११३—११५ ॥ उसी गांवके अंदर एक बौद्धोंका भी
मठ था । कुमार श्रेणिक विप्रोंके उत्तरसे हताश हो मामा इंद्रदत्तके साथ उसी मठमें जाकर
अवेश कर गये और आनन्दवार्ता करने लगे । वहांपर एक बौद्ध सन्यासी जो कि कुमार श्रेणिकको
पहिचानता था, रहता था । कुमार श्रेणिकको पहिचानकर उसने कुमारका भोजन आदिसे
पूरा आदर सत्कार किया एवं अंतमें कुमारके संतुष्ट हो जानेपर वह इसप्रकार कहने लगा—

प्रिय कुमार ! मालूम होता है तुम राज्य प्राप्तिकी कोई आशा न रख यहां वहां मारे फिर रहे
हो और अत्यंत दुःखका अनुभव कर रहे हो । तुम बौद्धधर्मको धारण कर लो । इस बौद्ध धर्मकी
कृपासे नियमसे तुम्हें राज्य मिलेगा क्योंकि इसी बौद्ध धर्मकी कृपासे जो घोर विपत्तियां हैं वे
संपत्तियां हो जाती हैं एवं जिसप्रकार विरागी पुरुष धन धान्य आदिको छोड़ देता है उसीप्रकार
बौद्ध धर्मके सेवन करनेवालेको कष्ट छोड़कर भाग जाता है उसे किसी प्रकारका कष्ट भोगना नहीं
पड़ता विशेष क्या यह बौद्धधर्म इतना उत्तम धर्म है कि न तो इससे उत्कृष्ट धर्म संसारके अन्दर
हुआ न होगा ॥ ११७—११८ ॥ कुशाग्रबुद्धि कुमार श्रेणिकने बौद्धसाधुके कहे अनुसार बौद्ध धर्म
स्वीकार कर लिया । सेंट इंद्रदत्तके साथ वे नंदिग्रामसे आगेको चल दिये एवं कौतूहली और
बुद्धिमान वह कुमार श्रेणिक मार्गमें इसप्रकार वार्तालाप करता करता चलने लगा—

जिह्वारथं समाख्या भावां यावः प्रमोदतः ॥१२०॥ तदा श्रेष्ठो विंचित्येत्यं गगोयं गुणवर्जितः । जिह्वामाख्या वेगेन कथं जगम्यते स्फुटं ॥
१२१ ॥ कियन्मार्गे पुनः प्राप्तो निर्मले सज्जलाशये । पादत्राणं पदे कृत्वा निर्गतः कौतुकान्वितः ॥१२२॥ व्यतकंयत्तदा श्रेष्ठो मूर्खोयं मन
सिस्वके । अग्रमार्गे पुनर्गत्वा जगाद् मधुरं प्रियं ॥१२३॥ भो मातुलाय तिष्ठावो वृक्षे पत्रिविराजिते । ध्रुत्वा वाक्यं स्थितः श्रेष्ठो सोऽपि
पर्णमयं महत् । आतपत्रं विधायाशु मस्तके धृतवान् खलु ॥ १२४ ॥ (षट्पदी) श्रियोऽसौ तर्कयामास तापहृत्सत्तरोरधः । मूर्खं गर्गं वि
हायान्यः कः छत्रं मस्तके धरेत् ॥ १२५ ॥ अग्रे ग्रामं विलोक्यासावप्राक्षोदिन्द्रदत्तकं । भो भो मामोदसो ग्रामो वसते वा चद त्वकं

मामा ! आओ जिह्वारूपी रथपर सवार होकर अपन दोनों आनंदपूर्वक शीघ्र चलें । कुमारकी यह चतुरताकी भी बात न समझकर सेठ इन्द्रदत्त कहने लगा—यह बालक तो मूर्ख जान पड़ता है, भला जिह्वारूपी रथपर बैठकर भी कभी जल्दी जाया जा सकता है ? ॥ ११६—१२१ ॥ मार्गमें कुछ दूर आगे जाकर एक नदी पड़ी । कौतूहली कुमार श्रेणिक जूता पहिन कर ही उस नदीके जलमें चलने लगा । उसकी यह चेष्टा देख फिर इन्द्रदत्त अपने मनमें विचार करने लगा कि यह बालक अवश्य मूर्ख है । आगे मार्गमें अनेक प्रकारके पक्षियोंसे व्याप्त एक विशाल वृक्ष पड़ा उसे देखकर कुमारने मीठे स्वरमें कहा—मामा ! आओ थोड़ी देर इस वृक्षके नीचे आराम करलें । कुमारके कहने से सेठ इन्द्रदत्त ठहर गया । कुमारने वृक्षके पत्तोंकी उसी समय एक छत्री बनाई और मस्तकपर छत्री तानकर वह बैठा । कुमारकी यह चेष्टा देख इन्द्रदत्त विचार करने लगा । धूपके संतापको दूर करनेके लिये मस्तकपर छत्री तानी जाती है । यह उत्तम वृक्ष धूपका संताप दूर करनेवाला है—छत्री तानकर बैठनेकी कोई आवश्यकता नहीं परंतु यह बालक इस वृक्षके नीचे भी मस्तकपर छत्री तानकर बैठा है इसलिये यह बड़ा हठी और मूर्ख है ॥ १२२—१२५ ॥ मार्गमें आगे चलकर एक गांव पड़ा उसे देख कुमारने इन्द्रदत्तसे पूछा—मामा ! कृपाकर यह बताओ तो यह गांव उजड़ा हुआ है या बसा हुआ है ? कुमारकी यह बात सुन और उसका असली तात्पर्य न समझ इन्द्रदत्तने अपने मनमें विचार किया कि यह बालक पक्का मूर्ख है क्योंकि यह गांव अनेक प्रकारके उत्तमोत्तम पदा-

॥ १२६ ॥ ध्रुव्यास निश्चिनोतिस्म गगोयं संभ्रमी शठः । नानाधस्तुसमाक्षीर्णं पुरं पृच्छति वार्तकं ॥ १२७ ॥ केनचित्ताड्यमानां हि
 दृष्ट्वा रामां जगाद तं । भो माम ! ताड्यते वद्धा मुक्ता वा कथय द्रुतं ॥ १२८ ॥ पूर्ववर्धितयन् श्रेष्ठो तावद्दृष्ट्वा शवं जगौ । भो
 माम ! द्राक् सृतं किंवा सांप्रतीदं सृतं वद ॥ १२९ ॥ तथाकर्ण्य पुनश्चित्ते चिंतयामास पूर्ववत् । पुरस्ताच्छालिकेश्वरं दृष्ट्वा प्रोवाच
 तं प्रति ॥ १३० ॥ माम ! मोक्ष्येत किं क्षेत्रं भुक्तं वा त्वं निरूपय । समाकर्ण्य तदा श्रेष्ठिदमीयं ऊघितं च धिक् ॥ १३१ ॥ लांगलं च

थोंसे व्यास है तो भी व्यर्थ पूछता है कि यह उजड़ा हुआ है या बसा हुआ ? ॥ १२६—१२७ ॥
 आगे चलकर क्या देखा कि एक स्त्रीको बांधकर कोई पुरुष मार रहा है । उसे देख कुमारने
 सेठसे पूछा मामा ! कृपाकर जल्दी बताओ तो कि जिस स्त्रीको यह पुरुष मार रहा है यह बंधा
 हुई है वा मुक्त—छूटी हुई है । कुमारकी बातका तात्पर्य न समझकर फिर भी वह सेठ विचारने
 लगा कि यह बालक तो बज्र मूर्ख है । सबको दीखती है कि यह स्त्री बंधी हुई है तो भी यह झूठा
 जवाब सवाल करता है । आगे चलकर एक मुर्दा पड़ा उसे देखकर कुमारने पूछा—मामा ! कृपा
 कर कहो कि यह मुर्दा पहिले ही मर चुका है कि अभी मरा है ? सेठ इन्द्रदत्त कुमारके इन वच-
 नोंका भी तात्पर्य न समझ सका इसलिये पहिलेके समान वह पुनः भी यही मनमें कहने लगा कि
 यह बालक भारी मूर्ख है । अभीके मरे मुर्देको भी नहीं जान सकता । आगे चलकर एक शालि
 धान्योंका क्षेत्र पड़ा उसे देखकर कुमारने फिर इन्द्रदत्तसे पूछा—बताओ मामा ! इस खेतके
 मालिकने इस खेतके फलोंको पहिले खा लिया है कि अब खायगा ? कुमारके वचनोंका तनिक भी
 तात्पर्य न समझ अबके तो इन्द्रदत्त झुलझुला उठे क्योंकि वे समझते थे कि जब धान कटे ही
 नहीं तब पहिले कैसे खाये जा सकते हैं ? कुमारने खेतको देखकर जो प्रश्न किया है वह बज्र मूर्खताका
 है इसलिये वे यही कहने लगे कि ऐसे मूर्खता परिपूर्ण जीवनके लिये धिक्कार है ॥ १२८—१३१ ॥
 आगे चलकर एक हल दीख पड़ा । उसे देखकर कुमारने इन्द्रदत्तसे पूछा—बताओ मामा ! इस

पुरो दृष्ट्वा ह्यन्वयुं कति तं प्रति । भो मामक ! हठीपेशा विद्यते कतिका इमे ॥ १३२ ॥ समाकर्ण्य तथा प्रोक्तं पुनः प्रोवाच तं प्रति
 वदयाः कंटका माम ! कति संत्येव निश्चितं ॥ १३३ ॥ चिंतयामास मूर्खोऽयं श्रेष्ठो चिंतापरायणः । एवं प्रभ्रवितर्केषु सत्सु तौ जग्मतु-
 स्तरां ॥ १३४ ॥ वेणातडागमयेति पश्यन् एवं समायत्त तः । उच्यते तं भूपजं प्राह कुत्र यासि त्वत्कं वद ॥ १३५ ॥ तदा कुमार आहति
 तिष्ठामि सरसस्सटे । इन्द्रदत्तो वणिक् प्राह विनाज्ञां नैव गम्यतां ॥ १३६ ॥ इत्युक्त्वा स्वशृङ्गे यात इन्द्रदत्तो वणिग्वरः । श्रेष्ठो वणिक्
 तयामास धिक्कृत्वा वाणिज्यामिति ॥ १३७ ॥ वेश्यमैत्रीमहिकीडां द्यूतकर्म विषादनं । योषिच्छमं त्यजेद्विद्वान् मुदाकांक्षी कुसंगतां ॥
 १३८ ॥ पितरं भ्रमसंयुक्तं दृष्ट्वा बोवाच सुता मुदा । नन्दश्रीर्नामकन्येव रूपरंजितरंभिका ॥ १३९ ॥ हे तात ! सह केनैव चागतस्त्वं वद
 हलमें कितनी शाखायें (हिस्से) हैं । कुमारके ये वचन सुनकर भी सेठ इन्द्रदत्त उसे मूर्ख समझ
 चुप रहगये । आगे चलकर एक बढरीवृक्ष पड़ा उसे देख कुमार श्रेणिकने पूछा--बताइये मामा ! इस
 वृक्षमें कितने कांटे हैं । कुमारका यह प्रश्न सुन इन्द्रदत्तके मनमें पूरा विश्वास हो गया कि यह बालक
 अवश्य पूरा पागल है । बस इसप्रकार प्रश्न और वितर्क करते करते वे दोनों मार्गमें सानंद गमन
 करते जाते थे ॥ १३२—१३४ ॥ सेठ इन्द्रदत्तकी जन्मभूमि वेणातडाग नामका नगर था । मार्गमें
 चलते चलते जिस समय वेणातडाग आया सेठ इन्द्रदत्त वहीं ठहर गया एवं कुमारसे यह कहने
 लगा कि भाई मेरा घर तो आ गया, मैं अब अपने घर जाता हूँ, तुम अब यहांसे कहां जाओगे
 कहो ? उत्तरमें कुमारने कहा—इससमय तो मैं इसी तालावके किनारे ठहरूंगा । कुमारकी यह
 बात सुनकर इन्द्रदत्तने कहा—अच्छा ठीक है परंतु मेरी आज्ञाके बिना आगे मत जाना । बस ऐसा
 कह कर सेठ अपने घर चला गया । सेठ इन्द्रदत्तके ऐसे सूखे व्यवहारसे कुमार श्रेणिकको कुछ
 कष्ट हुआ । वे मन ही मन यही विचारने लगे कि वणिकोंके साथ की गई मित्रताके लिये धिक्कार है ।
 जो विद्वान् कल्याणके इच्छुक हैं उन्हें वणिकोंके साथ मित्रता, सर्पोंके साथ क्रीड़ा जूआ खेलना विष
 खाना स्त्रियोंकी संगति और खोटी संगतिका करना सर्वथा त्याग देना चाहिये ॥ १३५—१३८ ॥

सेठ इन्द्रदत्तकी एक नन्दश्री नामकी कन्या थी जो कि अपने मनोहर रूपसे अप्सराकी

भृशं । तवा वभाणहे पुत्रि ! मूर्खेणामा समागतः ॥ १४० ॥ कथं हातस्त्वया मूर्खः, शृणु पुत्रि ! निगद्यते । जिह्वारथादिसंप्रोक्तः श्रुत्वा हर्षमुपागता ॥ १४१ ॥ उक्तं च—

जिह्वारथः पादसुरक्षणं च छत्रं तथा ग्रामचिनिश्चयश्च ।

नारी शब्दं शालिवनं च डा (हा) लं कांटव्यधातेति च कल्प्यतेस्म ॥ १४२ ॥

नंदश्रीः पितरं ग्राहनासौ मूर्खः कृपानिधे ! द्वात्रिंशलक्षणैर्युक्तो वर्तते कुत्र हे पितः ? ॥ १४३ ॥ इन्द्रदत्तस्तदा प्राह सरस्तीरे स्थितोऽस्ति सः । श्रुत्वा सा चिंतयामास परीक्ष्येऽहं शुभं नरं ॥ १४४ ॥ तदा विपुलमत्याख्यां सखीमाकार्यं वेगतः । प्राहेति वचनं रम्यं कुरु कार्यमिदं त्वकं ॥ १४५ ॥ नखेन तैलमोदाय याहि त्वं सर्वसस्तटे । तत्रस्थितस्य गोघस्य देहि स्नानार्थमंजसा ॥ १४६ ॥ प्रतिपद्य गता उपमा धारण करती थी । जिस समय सेठ इन्द्रदत्त घर पहुँचे उन्हें अत्यंत थका हुआ जान नंदश्री ताड़ गई कि इनके साथ कोई न कोई अन्य मनुष्य भी आया है क्योंकि अकेला चलनेवाला मनुष्य अपने स्वभावानुकूल गतिसे चलता है इसलिये विशेष नहीं थक सकता किंतु साथमें अन्य मनुष्य के रहते दोड़ा दोड़ी चलना पड़ता है इसलिये विशेष थकावट हो जाती है, इसलिये उसने शीघ्र ही पूछा—पिताजी ! तुम किसी न किसीके साथ आये जान पड़ते हो कृपाकर कहिये आपके साथमें जो आया है सो कौन है ? उत्तरमें इन्द्रदत्तने कहा—पुत्री ! मैं अवश्य किसी अन्य पुरुषके साथ आया हूँ परंतु मेरे साथ आनेवाला वज्र मूर्ख है । पिताके ऐसे वचन सुन नंदश्रीने फिर पूछा—पूज्य पिता ! आपने यह कैसे जाना कि आपके साथ आनेवाला पुरुष मूर्ख है ? उत्तरमें सेठ इन्द्रदत्तने जिह्वारूपी रथपर सवार होकर चलना, जूता पहिने ही नदीमें प्रवेश कर जाना, वृक्षके नीचे छत्री लगाकर बैठना, गांवको उजड़ा बसा कहना, स्त्रीको बांधी छूटी कहना, यह मुर्दा आज मरा है वा पहिले, धान्यके खेतके फल खा लिये वा खाये जावेंगे हल और बढरीके कांटोंके विषयमें जो भी बात चीत हुई थी सारी कह सुनाई । जिस समय कन्या नंदश्रीने सारी बातें सुनी उसे बड़ा हर्ष हुआ । शीघ्र ही उसने अपने पितासे कहा—कृपानाथ ! ऊपर कही हुई बातोंसे जो आपने उसे

मूर्ख समझा है सो वह मूर्ख नहीं बड़ा भारी बुद्धिमान है । कुमारने जो जो बातें कही थीं उनका खुलासा इसप्रकार है—

उस कुमारने जो आपको मामा कहकर पुकारा था उसका मतलब यह था कि संसारमें भानजा अत्यंत माननीय और प्रिय होता है इसलिये मामा कहकर कुमारने आपके विशिष्ट प्रेम की आकांक्षा की थी । जिह्वा रथका अर्थ कथा कौतूहल है । कुमारने जो जिह्वा रथ कहा था वह भी उसका कहना बहुत उत्तम था क्योंकि जिससमय सज्जनपुरुष मार्गमें थक जाते हैं उस समय वे उस थकावटको अनेक प्रकारके कथा कौतूहलोंसे दूर करते हैं । कुमारका लक्ष्य भी उससमय थकावट दूर करनेका ही था । कुमार जो नदीके जलमें जूता पहिनकर घुसा था वह कार्य भी उसका एक बड़ी बुद्धिमानोका था क्योंकि जलके अन्दर बहुतसे कंकड़ पत्थर और सर्प आदि जीव रहते हैं जो कि सूझ नहीं पड़ते, यदि जूता पहिनकर जलमें प्रवेश न किया जाय तो कंकर पत्थरोंके लगजानेका और सांप आदिके काटनेका भय रहता है इसलिये कुमारका जलमें जूता पहिनकर प्रवेश करना मूर्खताका कार्य न था । कुमार वृक्षके नीचे जो छत्री तानकर बैठा था वह भी उसका कार्य बुद्धिमानोका था क्योंकि वृक्षके ऊपरसे पत्तियोंकी बीट आदिका गिरना संभव है । छत्रीसे बचाव हो सकता है । नगरको देखकर कुमारने जो यह प्रश्न किया था कि यह बसा हुआ है वा उजड़ा हुआ है वह प्रश्न भी कुमारकी बड़ी बुद्धिमत्ताका था क्योंकि जिस नगरमें धर्मात्मा मनुष्य और धर्मके आयतन विद्यमान हों वह नगर बसा हुआ माना जाता है और जिसमें ये बातें न हों वह उजड़ा समझा जाता है कुमारका तात्पर्य इसी बातको लेकर था । स्त्रीको बांधकर मारते देख जो कुमारने यह पूछा था कि यह स्त्री बंधी हुई है वा छूटी हुई है ? यह प्रश्न भी कुमारका बड़ी चतुरताका था क्योंकि बंधी हुईका अर्थ विवाहित है और छूटी हुईका अर्थ अविवाहित है । कुमारका

खास तात्पर्य उस समय यही था कि यह पुरुष जो इस स्त्रीको मार रहा है वह स्त्री इसकी व्या-
हिता है वा भगाई हुई है । मरे मनुष्यको देखकर जो कुमारने यह प्रश्न किया था कि ' यह मुर्दा
आजका मरा है वा पहिले ही मर चुका है ' ? यह भी उनका प्रश्न बड़ी निपुणताका था क्योंकि
जो मनुष्य धर्मात्मा दानी तेजस्वी आदि उत्तम गुणोंका भंडार होता है और वह मर जाता है
उसको तो आजका मरा हुआ कहते हैं और जो दुर्गुणोंका खानि होता है वह भले ही आज ही
मरा हो तो भी वह पहिलेका मरा हुआ ही माना जाता है । कुमारका आशय भी उस समय यही
था । धान्यके खेतको देखकर जो कुमारने यह पूछा था इस खेतके स्वामीने इस खेतका उपभोग
कर लिया है वा करेगा ? यह प्रश्न भी कुमारका बड़ी बुद्धिमानीका था क्योंकि जो खेत कर्ज लेकर
बोया जाता है उसके धान्यका तो पहिले ही उपभोग कर लिया जाता है और जो कर्ज न लेकर
बोया जाता है उस खेतके धान्यको उसका स्वामी भोगेगा, ऐसा कहा जाता है । कुमारका
प्रश्न भी उस समय इसी आशयको लेकर था । कुमारने जो यह प्रश्न किया था कि इस हलमें
कितनी शाखा हैं ? यह प्रश्न भी कुमारका बड़ा मार्केका था क्योंकि उस समय कुमारका यह
आशय था कि इस हलके स्वामी कितने किसान हैं ? इसलिये यह प्रश्न भी कुमारका मूर्खता परि-
पूर्ण न था । तथा इस बदरी वृक्षपर कितने कांटे हैं ? यह जो कुमारने पूछा था वह पूछना भी
उनका बड़ी कुशलतासे था क्योंकि कांटे दो प्रकारके होते हैं एक सीधे दूसरे टेढ़े । दुर्जनोके वचन
भी सीधे टेढ़े दोनों प्रकारके होते हैं कुमारका पूछना भी इसी आशयको लेकर था " इसलिये
हे पूज्यपिता ! जिस कुमारको आपने मूर्ख समझ रक्खा है वह बत्तीस शुभ लक्षणोंका धारक
अत्यंत बुद्धिमान है कृपाकर अब शीघ्र बताइये कि वह चतुर कुमार इससमय कहाँ है ? उत्तरमें
इंद्रदत्तने कहा—

तत्र वृत्तांतं प्रतिपादितं । तैलेन मण्डनं कृत्वा गंतव्यं मम सहगृहे । श्रुत्वाथ चिंतयित्वास्मै तोये तैलं क्षिपाह तं ॥ १४७ ॥ (वटपदी)
 किमर्थं सा जगौ रम्या येन सार्धं समागतः । तस्यास्ति रूपसद्वारभूषिताकन्यका शुभा ॥ १४८ ॥ तथा नंदश्रिया त्वं भो आकारित
 इव ध्रुवं । तदा प्राह कुमारोऽसौ कुत्रास्ते सदनं तव ॥ १४९ ॥ दर्शयित्वा तदा कर्णतालं सैव ययौ गृहं । स्नात्वा विश्रान्तो यावदा-

वह कुमार इससमय तालावके किनारे बैठा है । मैं उससे यह कहकर आया हूँ कि मेरी आज्ञाके बिना तुम कहीं भी मत जाना इसलिये जबतक मेरी आज्ञा उसके पास न पहुँचगी वह कहीं जा नहीं सकता । अपने पिताके ये मनोहर वचन सुन कुमारी नंदश्री विचारने लगी यद्यपि वह कुमार संसारमें एक बुद्धिमान पुरुष रत्न है तथापि और भी उसकी परीक्षा करलेना परमावश्यक है इसलिये शीघ्र ही उसने अपनी विपुलमती नामकी प्रियसखी बुलवाई और प्रेममय वचनोंसे उससे यह कहा कि मैं जिस कार्यके करनेकी तुमसे प्रेरणा कर रही हूँ उसे शीघ्र करो । देखो तालावके किनारे कोई अन्य देशका पुरुष बैठा है । नखमें तेल भरकर तुम शीघ्र उसके पास जाओ और उससे कहो कि आप यह तेल लेकर शीघ्र स्नान करिये ॥ १४६—१४६ ॥ कुमारी नंदश्रीके वचन सुन सखी विपुलमती शीघ्र ही तालावके किनारे जा पहुँची । नंदश्रीने जो कहा था सारा समाचार कुमारसे कह सुनाया एवं तेल लगाकर स्नानकर आप मेरे घर चलें, यह निवेदन भी कर दिया विपुलमतीके वचनोंपर थोड़ी देर तक कुमारने विचार किया एवं 'इस तेलको इस जलमें डाल दो, ऐसा कहकर उससे यह पूछा—

तुम्हारे घर मुझे क्यों चलना चाहिये ? उत्तरमें मनोहरांगी विपुलमतीने कहा--प्रिय महानुभाव जिस महापुरुषके साथ तुम आये हो उसके एक नंदश्री नामकी पुत्री है जो कि दिव्य सौंदर्यके भारसे शोभायमान है और शुभ है उसी कुमारीने आपको बुलाया है आप किसी प्रकारका संदेह न करें । विपुलमतीकी यह बात सुन कुमारने पूछा तुम्हारा घर कहां है ? इसके उत्तरमें विपुलमती ने कुछ भी नहीं कहा उसके कानमें जो तालवृक्षके पत्तेका बना भूषण था उसे धीरेसे दिखाकर वह चुप

याति सदनं प्रति ॥ १५० ॥ तावन्नन्दश्रिया द्वारं कारितं कर्दमाकुलं । जानुषंगं दृषद्गंगं स्थिता पश्यति कौतुकं ॥ १५१ ॥ ताडचिह्नेन मत्वा स द्वारे समागतस्तदा । दृष्ट्वा कर्दमसन्तानं चिंतयामास मानसे ॥ १५२ ॥ पुरमध्ये पुरान्यर्णे प्रतोल्यो प्रतिसन्न च नो दरी-चाप अपने घरको चली गई । बुद्धिमान कुमारने अपनी चतुरतासे उसका इशारा समझ लिया एवं जिस घरमें तालवृक्ष हो वही कुमारी नंदश्रीका घर है ऐसा विचारकर वह कुमार स्नानकर उसी घरकी ओर सीधा खाना हो गया ॥ १४७-१५० ॥ विपुलमतीके मुखसे कुमारका आना सुन नंदश्रीने अपने दरवाजेके सामने घोंटू पर्यंत कीचड़ भरवा दी । ठीक दरवाजेके सामने पत्थर रखवा दिये जिससे यह जान पड़े क भीतर जानेका रास्ता इन पत्थरोंके टुकड़ोंके ऊपरसे है एवं कुमारका कौतूहल देखनेके लिये वह सामने खिड़कीमें बैठ गई ॥ १५१ ॥ नंदश्रीके घरमें ताड़का वृक्ष था ताड़के चिह्नसे उसी घरको नंदश्रीका घर जान कुमार उसके दरवाजेपर आ गये एवं दरवाजे के आगेका भाग कीचड़से भरा हुआ देख वे इसप्रकार मन ही मन विचाने लगे--

न तो नगरके मध्यभागमें कीचड़ दीख पड़ती है न नगरके पास कहीं कीचड़ दीख पड़ती है । किसी गली वा किसी मकानमें भी कीचड़ नहीं दीख पड़ती परंतु इस मकानके सामने कीचड़ दीख पड़ती है इसलिये इस कीचड़के होनेमें अवश्य कोई न कोई रहस्य छिपा हुआ है—क्या बात है सो कुछ जान नहीं पड़ती घरके भीतर जानेके लिये जो यह पत्थरके टुकड़ोंका मार्ग बनाया गया है जान पड़ता है मेरी बुद्धिकी परीक्षाके लिये यह धोखावाजी की गई है यदि मैं इन पत्थरके टुकड़ोंके बने मार्गसे घरके भीतर जाऊंगा तो अवश्य नीचे कीचड़में गिर जाऊंगा तो सारा लोक मेरी हँसी करेगा इसलिये मुझे कीचड़में होकर हो जाना चाहिये बस इसप्रकार विचारकर वे कीचड़के भीतरसे जाकर—नंदश्रीके दरवाजेपर पहुँच गये । कुमारके इस तीव्र कौशलको देखकर नंदश्रीने मन ही मन उनके कौशलकी सराहना की एवं दिल्लगीसे फिर भी कुमारकी बुद्धिकी परी-

दृश्यते पंकः समस्यात्र कथं तनु ॥ १५३ ॥ यामि प्रस्तरपंक्याऽहं पतिष्यामि यदा तदा । हसिष्यंत्यखिला लोका अतः पंके प्रयाम्यहं ॥
 चिंतित्वं गतवान् सतुमद्वारे नंदश्रिया तदा । कौशलं चिंतयामासे (स) सन्नरस्य सकौतुकं ॥ १५५ ॥ सख्या संप्रेषयामास पादक्षालनहेतवे । अंजलिप्रमितं तोयं दृष्ट्वास्तौ तदुच्यचिंतयत् ॥ १५६ ॥ इयं धूर्ता समीक्ष्येत कौतुकं यत्करोत्यदः । वेणुचीर्घास्तदुत्तार्य क्षालयामास पत्कजं ॥ १५७ ॥ नंदश्रीश्च तदा स्वांते क्षतुरं तं व्यचिंतयत् । मुदं गत्वालिकां प्राहाकारयेति सुभोजने ॥ १५८ ॥ आकारितस्तदा तत्र स्मर्यांगो राजलक्षणः । आगतो लीलया युक्तः प्राधूर्णक इव स्थितः ॥ १५९ ॥ आगतस्वागतं कृत्वा नंदश्रीर्ध्वनं जगौ । तिष्ठ तिष्ठासने साधो ! कुरु भोज्यं मनीषितं ॥ १६० ॥ तदाकर्ण्य कुमारोऽसाधवबोत्तां शुभाशयां । ध्रूयसे चतुरा लोके त्वं ललांमि ! चकोरद्वक् ॥ १६१ ॥ प्रतिहाय कृता वाले ! मया विज्ञानशालिना । द्वात्रिंशत्तुला रम्या विद्यते मम पार्श्वके ॥ १६२ ॥ तेषां चेद्-

चाके लिये नंदश्रीने अंजुलीप्रमाण जल उनके पैर धोनेके लिये सखीके हाथ भेजा । कुमार उस थोड़े से जलको देखकर मन ही मन विचारने लगे कि मेरे साथमें जो दिललगी हो रही है वह इसी धूर्त नंदश्री द्वारा की जा रही है खैर, उन्होंने वांसकी फच्चट लेकर शीघ्र ही सारी कीचड़ उतार डाली और उस थोड़ेसे जलसे अपने पैर धो डाले । कुमारकी इसप्रकार बुद्धिमानी देख नंदश्रीने मन ही मन उन्हें अत्यंत चतुर समझ लिया । बड़ी खुश हुई एवं अपनी सखीसे यह कहा कि कुमारको भोजनके लिये लिवा लाओ । नंदश्रीके कहे अनुसार सखीने कुमारको भोजनके लिये बुलाया । मनोहर अंगके धारक एवं राजलक्षणोंसे शोभायमान वह कुमार भी क्रीडापूर्वक नंदश्रीके पास आ गया एवं जिसप्रकार अतिथि आकर बैठ जाता है उसप्रकार आकर बैठ गया ॥ १५२—१५९ ॥ अतिथिका जिसरूपसे स्वागत करना चाहिये नंदश्रीने बड़े उत्साहके साथ उनका स्वागत किया एवं मनोहर वचनोंमें वह इसप्रकार कहने लगी—

महानुभाव ! आइये इस आसनपर विराजिये और इच्छानुसार भोजन कीजिये ॥ १६० ॥ शुद्ध हृदयवाली नंदश्रीके ये मनोहर वचन सुन कुमारने कहा—चकोरके समान नेत्रवाली मनोह-

विता भोज्यं सर्पिःशाकादिपूरितं । तदा भुनक्ति गौरांगि ! ततज्जम्बूनदप्रमे ॥ १६३ ॥ भर्तृस्खलितया घाण्या श्रुत्या तद्वर्णितं सका
अचोचदेहि तान् रम्यान् कुर्वेऽहं भोजनं वरं ॥ १६४ ॥ आदाय चूर्णकं कृत्वा पूषं कृत्वा ददौ करे । आलिकायास्तदा सापि नीत्वा
द्यूतगृहं ययौ ॥ १६५ ॥ भाजनं द्यूतकारिष्वपटुकूलं प्रसारितं । बिलोक्य जगदे साहि श्रूयतां सद्ब्रह्मो मम ॥ १६६ ॥ देवताधि-
ष्ठितं पूषं यो गृह्णाति वराक्षिकः । लाभं मनीषितं सोऽपि लभेतालं न संशयः ॥ १६७ ॥ अत्याग्रहं विधायाशु दत्त्वा द्रव्यं धनं धनी ।
नाम्ना जग्राह पूषं तं धनं नीत्वा गृहं ययौ ॥ १६८ ॥ स्वामिन्या तेन द्रव्येण पूषापायसव्यंजनं । निर्माण्य भोजयामास तांबूलं च
रांगी । संसारमें तुम बड़ी चतुर सुनी जाती हो मैं भी कुछ चतुरताका अभ्यास रखता हूँ मैंने आज
यह प्रतिज्ञा की है कि मेरे पास बत्तीस चावल है यदि केवल उन्हींसे धी और शाक आदिसे परिपूर्ण
मेरे लिये भोजन तयार किया जायगा तो मैं उसे खाऊंगा बीच नहीं खा सकता । सुवर्णके समान
प्रभावाली गौरांगी ! यदि तुम इसरूपसे भोजन तयार कर सको तो मैं खा सकता हूँ । कुमार
श्रेणिक जिससमय यह कह रहे थे विशिष्ट आनंदसे उनकी वाणी कुछ कुछ स्खलित निकलती थी
चतुर नंदश्री स्खलितवाणीसे उनके मनका अभिप्राय समझ कहने लगी—कृपाकर उन बत्तीस चाव-
लोंको दीजिये मैं अभी आपके लिये मिष्ट और मनोहर भोजन तयार करती हूँ ॥ १६९—१६५॥
कुमारने उसी समय बत्तीस चावल दे दिये । कुमारी नंदश्रीने शीघ्र उन्हें पीसकर पूवे बनाये ।
सखीको बुलाकर उन्हें बजार बेचनेके लिये भेज दिया । वह सखी भी बड़ी चतुर थी जहां ज्वारियों
का अड्डा था वहां पहुंची । ज्वारी लोग कपडा बिछाकर जिससमय जूआ खेलना प्रारंभ करने लगे
उस समय उस सखीने इसप्रकार मनोहर वचनोंमें कहा—

देखो भाइयो ! ये पूवे जो मैं लाई हूँ देवमयी हैं । जो महानुभाव इन पूवोंको खावेगा वही
उत्तम ज्वारी इच्छानुसार धन उपार्जन करेगा इसमें किसी बातका संदेह नहीं । ज्वारियोंको कल
कहां ? बड़े आग्रहसे शीघ्र ही उन्होंने पूवे खरीद लिये । मुंहमागा धन दिया एवं उस धनको लेकर वह
सखी शीघ्र ही अपने घर आ गई ॥ १६६—१६८ ॥ कुमारी नंदश्रीने उस द्रव्यसे पूवा खीर आदि

तदुत्तरं ॥१६६॥ नन्दश्रीरंजिता तेन गत्या वाचा स्मरेक्षणैः । ददर्श व्याकुली भूत्वा कामवाणादि ता हि तं ॥१७०॥ स्वांगं सा दर्शयत्येव
कपोलौ दर्पणाविव । ईपद्मास्येन दंताश्च मुक्ताप्रणिवयानि च ॥ १७१ ॥ अन्योन्यं तौ च कामांगौ परं प्रेम प्रजग्मतुः । इन्द्रदत्तोऽनु-
रक्तां तां ज्ञात्वा तस्मै ददौ मुदा ॥ १७२ ॥ श्रेणिकोऽपि तथा साकं रेमे राजमुजः सुखं । रोहिण्या सीतया नाग्या चन्द्ररामधरेशवत् ॥

शीघ्र ही उत्तम व्यंजन तयार कर दिये । कुमारको उनकी इच्छानुसार भोजन करा दिया एवं भो-
जनके बाद तांबुल देकर उन्हें संतुष्ट कर दिया ॥ १६६ ॥ कुमार श्रेणिकने अपनी मनोहर गतिसे
मिष्ट वचनोंसे और तिरछी चितवनसे कुमारी नन्दश्रीको अपनेमें अनुरक्त कर लिया । कामवाणों
से व्याकुल हो वह उनकी ओर लालसा दृष्टिसे देखने लगी । कामके बशी भूत वह कुमारी कभी
अपना मनोहर अंग कुमारको दिखाने लगी कभी दर्पणके समान अपने कपोलोंको ती कभी कभी
मंद मंद मुसकानेसे मोतियोंके समान अपने दातोंके दिखलानेकी चंष्टा करने लगी ॥१७०--१७१॥
अपने आपसी व्यवहारसे वे दोनों कुमार कुमारी कामवाणोंसे पीड़ित हो अपना अपना प्रेमव्यक्त
करने लगे । सेठ इन्द्रदत्तको भी कुमारमें कन्याके अनुरागका पता लग गया, उन्होंने बड़ी खुशीसे
दोनोंका आपसमें विवाह कर दिया ॥ १७२ ॥ युवा कुमार श्रेणिक भी जिसप्रकार चन्द्रमा रोहि-
णिके साथ रमण करता है रामचन्द्र सीताके साथ रमते थे और नागेन्द्र नागकुमारीके साथ रमण
क्रियासे उपयुक्त रहता है उसप्रकार रमणी नन्दश्रीके साथ रमण क्रीडा करने लगे ॥ १७३ ॥

कुछ कालके बाद रमण क्रीडा करते करते कुमारी नन्दश्रीके गर्भ रह गया उस समय उसके
एक दोहला भी हुआ जिसकी सिद्धि कठिन जान वह दिनों दिन कृश होने लगी । किसी दिन
एकांतमें आलिंगन चुम्बनके बाद बड़े प्रेमसे कुमारने नन्दश्रीसे यह पूछा—प्रिये ! मैं देखता हूँ
दिनों दिन तुम कृश होती चली जाती हो । नहीं जान पड़ता तुम्हारी कृशताकी कारण कौन चिन्ता
है ? तुम्हें उसे प्रगट करना चाहिये । कुमारका इसप्रकार विशेष आग्रह देख नन्दश्रीने कहा—कृपा-

१७३ ॥ गर्भं वमाम सा धाला कियत्काले गते सति । दोहदेन कृशीभूता दृष्ट्वा श्रीश्रेणिकेन च ॥ १७४ ॥ पप्रच्छालिङ्ग्य संचुङ्ग्य रह-
स्ये रतिविह्वला । कृशत्वकारणं कांतः साप्रहादगदीदिति ॥ १७५ ॥ शृणु नाथ ! कृपाधार ! प्राणजीवन ! महच्चः । सप्तवासरपर्यंतं
देहोऽस्मिन्मयं यदा ॥ १७६ ॥ मयेन्नूनं तथा सौख्यं भुत्वासौ कुष्करं घचः । समाश्वस्य निजां रामां नंदास्तीरं गतस्तदा ॥ १७७ ॥
उपायं चिंतयन् यावत्सावदन्यकथांतरं । वसुपालनरेदस्य दृष्ट्वा चालानभंजनं ॥ १७८ ॥ पुरमाकुलयन् लोकांश्चासयन् पुष्करीं हठात् ।
गृहीष्यन्निध तिग्मांशुं पातयिष्यन् धरातलं ॥ १७९ ॥ गमिष्यन्निध चाकाशे निर्ययी मदनोद्धरः । अन्यायं ते गजं दृष्ट्वा चिंतया-
मास श्रेणिकः ॥ १८० ॥ अयं दुष्टो गजः केन वशीकर्तुं हि शक्यते । इति मत्त्वोल्लिखतः कोपाज्जघानैनं प्रमुष्टिभिः ॥ १८१ ॥ निर्मत्रं गलि-
धार ! प्राणजीवन प्राणनाथ ! सुनिये मुझे यह दोहला हुआ है कि इस देशमें सर्वत्र सात दिन
तक अभयदानकी प्रवृत्ति हो, कोई भी जीव किसीको न सतावे । यदि मेरा यह दोहला पूर्ण हो
जाय तब मुझे सुख मिले इसका पूर्ण होना कठिन जान पड़ता है इसीलिये मैं सदा कृश होती चली
जाती हूं मेरी कृशताका अन्य कोई कारण नहीं । प्राणधारी नंदश्रीका यह दोहला सुन कुमार
श्रेणिकको भी उसकी सिद्धिमें कठिनता सूझने लगी परंतु अपनी निर्वलता न प्रगट कर अपने धीर
वीर स्वभावसे उन्होंने उसे समझा दिया एवं कुछ उपाय खोजनेके लिये वे नदीके तटकी ओर चल
दिये ॥ १७४—१७७ ॥

नदीके किनारे बैठकर कुमार दोहलेकी सिद्धिका उपाय सोच ही रहे थे कि उस समय एक
नवीन ही घटना उपस्थित हो गई । उसी नगरका स्वामी एक वसुपाल नामका राजा था उसके
किसी मदोन्मत्त हाथीने आलान—अपने बंधनेका खूंटा तोड़ डाला । वह दुष्ट गज समस्त लोगोंको
व्याकुल करता, हथिनियोंको त्रास देता, अपनी उछल कूदसे सूर्यको ग्रहण करता, समस्त पृथ्वी-
तलको कपाता एवं अपनी ऊंचाईसे आकाशमें चलता हुआ जिस जगह कुमार बैठे थे उसी जगह
आया उस दुष्ट गजको अपने पास आता देख कुमार श्रेणिक मन ही मन सोचने लगे—यह गज
बड़ा दुष्ट मालूम पड़ता है । इसे वश करनेकी किसीकी हिम्मत नहीं जान पड़ती इसे अवश्य वश

तं क्षामं संविधाय करोहसः । हृष्ट्वा लोकारुतथाभूतं संसयामासुरेव तं ॥ १८२ ॥ वसुपालोऽवदद्वाक्यं प्रार्थय त्वं मनोगतं । सप्तवासरपर्यंतं देहि देशेऽभयं व्रतं ॥ १८३ ॥ प्रतिपद्य तथा राजा तस्थौ राज्ये सुखान्वितः । शुभे लग्ने महायोगेऽजीजनन्न दनं च सा ॥ १८४ ॥ दोहदाकांक्षया नाम्ना चक्रोऽभयकुमारकं । अनुक्रमेण संप्राप्तो यौवनं विद्ययान्वितः ॥ १८५ ॥ नंदश्रिया समं क्रीडन् श्रेणिकश्चतुरांगकः । कर्मपंकजसंसक्तो गतं कालं न वेदयसौ ॥ १८६ ॥ अथोपश्रेणिको राजा क्षयं ज्ञात्वा युषो ध्रुवं । सर्वसामंतसामक्ष्यं ददौ राज्यं

करना चाहिये बस चित्तमें क्रोधकर तत्काल उठ बैठे और मुष्टियोंके प्रहारोंसे उस मदोन्मत्त भी हाथीको देखते देखते वश कर डाला ॥ १७८—१८१ ॥ हाथी जिससमय मदरहित शांत आर सीधा हो गया कुमार उसके ऊपर चढ़ लिये उनका यह लोकोत्तर प्रभाव देख सारा लोक उनकी प्रशंसा करने लगा ॥ १८२ ॥ राजा वसुपालके कानतक भी यह समाचार पहुंचा वह आकर कुमारसे मिला और कहने लगा—कुमार ! तुमने बड़े साहसका कार्य किया है मैं तुमसे प्रसन्न हूं जो तुम्हें मांगना हो सानंद मांग सकते हो । कुमार श्रेणिक सातदिन तक अभय दानकी चिन्तामें थे इसलिये राजासे उन्होंने यही कहा कि कृपाकर आप सात दिनतक अपने देशमें अभय दानकी घोषणा कर दें । राजा वसुपालने कुमारकी बात स्वीकार कर ली और वह सुख पूर्वक अपना राज्य करने लगा । शुभ लग्न और शुभ योगमें रमणी नंदश्रीके पुत्र हुआ । दोहलेके अनुसार उसका अभय कुमार नाम रखवा गया । क्रमसे वह युवा हो गया एवं अनेक विद्याओंका भंडार बन गया ॥ १८२—१८५ ॥ चतुर अंगके धारक कुमार श्रेणिक रमणी नंदश्रीके साथ सानंद क्रीड़ा करने लगे एवं रतिक्रीडारूपी कमलमें इतने आसक्त हो गये कि जाता हुआ काल भी उन्हें नहीं जान पड़ने लगा ॥ १८६ ॥

कुमार श्रेणिक तो उधर इन्द्रदत्तके घर रहने लग इधर महाराज उपश्रेणिकको जब यह मालूम हो गया कि मेरी आयु बिलकुल समीप है तो उन्होंने समस्त सामन्तोंको इकट्ठा किया और सबोंके

चलातिने ॥ १८७ ॥ मृते राज्ञि स्वयं राजा भूत्वा पालयते प्रजाः । प्रसन्नान्मुखायादयो पुत्रं तिष्ठति त्रैलोक्यम् ॥ १८८ ॥ दुष्टान् संस्था-
पयामास शिष्टाज्ञाशयतिस्म सः । तदा संचिंत्य मंत्रीशो गूढपत्रमलीलिखत् ॥ १८९ ॥ दत्त्वा दूतकरे पत्रं प्राहिणोत् श्रेणिकं प्रति ।
गत्वा दत्तं शुभं पत्रं वाचयित्वा शमाप सः ॥ १९० ॥ आज्ञां श्री इन्द्रदत्तस्य नीत्वा मुक्त्या प्रियां सुतं । गृहीः पंचसहस्रैश्च सुभटैः स-
हितो ययौ ॥ १९१ ॥ ससैन्यं श्रेणिकं गत्वा नीत्वा द्रव्यभ्रजं भयात् । निःसृत्य नगरात्सोऽपि पल्लीमाश्रितवांस्तदा ॥ १९२ ॥ गजारूढो
महाराजा वृषस्कंधः प्रतापवान् । छत्रचामरसंयुक्तो विवेश निजपत्तनं ॥ १९३ ॥ शुभयोगेऽधितस्थौ यो विष्टरं राजलक्षणः । साधयित्वा
समक्षमे चलाती पुत्रको राज्य प्रदान कर दिया ॥ १९४ ॥ आयुके अन्तमें महाराज उपश्रेणिकका
मरण हो गया । वह राजा होकर प्रजाका पालन करने लगा । उसके राज्यकालमें इंद्राणी आदिक
जो रानियां थी वे चोरोंके समान बड़े दुःखसे रहने लगी । राजा चलाती तनिक भी उनके दुःख
सुखपर ध्यान नहीं देता था ॥ १९५ ॥ वह दुष्ट राजा अपने राज्यमें दुष्टोंकी बढ़चारी करता था
और शिष्ट—भले आदमियोंका विनाश करता था । समस्त प्रजा उसके शासनसे दुःखित थी । मंत्री
मतिसागरको बड़ी चिंता हुई । अच्छी तरह विचारकर उसने कुमार श्रेणिकको एक गूढ़ पत्र लिखा
एवं दूतके हाथमें देकर उसे कुमार श्रेणिकके पास भेज दिया । जहांपर कुमार श्रेणिक रहते थे
दूत सीधा वहां पहुंचा । कुमारके हाथमें पत्र दे दिया, जिसे वांचकर कुमारके चित्तको बड़ी भारी
शांति मिली ॥ १९६—१९७ ॥ उन्होंने शीघ्र ही अपने श्वसुर इन्द्रदत्तसे राजगृह नगर जानेकी
आज्ञा मागी । प्रियतमा नंदश्री और पुत्र अभयकुमारको वहीं छोड़ा एवं पांच हजार गूढ़ वेषधारी
सुभटोंके साथ शीघ्र ही राजगृह नगरकी ओर प्रस्थान कर दिया ॥ १९८ ॥ राजा चलातीने जिस
समय कुमार श्रेणिकको सैन्यसे मंडित आया सुना साथमें बहुतसा द्रव्य लेकर वह शीघ्र ही नगर
से बाहिर निकल गया एवं अपने नानाके पास जाकर भीलोंकी पल्लीमें रहने लगा ॥ १९९ ॥ कुमार
श्रेणिक उसी समय राजगृह नगरके महाराज बन गये एवं बैलके समान पुष्ट स्कंधोंके धारक महा
प्रतापी एवं छत्र और चमरोंसे शोभायमान वे महाराज श्रेणिक विशाल हाथीपर सवार हो अपनी

खिलान् देशान् सुखं राज्यं भुनक्ति सः ॥ १६४ ॥ अथेकदा सभामध्ये समागत्यैकलेखरः । नाम्नाऽऽकाशगतिर्नत्वा राजानं च व्यजि-
क्षत् ॥ १६५ ॥ हे राजन् विजयार्थस्य दक्षिणश्रेणिका मता । तत्रैव केरला पृथ्व तत्र राजा मृगांककः ॥ १६६ ॥ तस्य राज्ञी गुणागारं
मद्भगिनी मालतीलता । विलासवतिका पुत्रो रूपरंभा सयौवना ॥ १६७ ॥ मृगांकोऽपि तथाभूतां सुतां दृष्ट्वा पप्रच्छ सः । मुनिं
सुमतिनामानमस्याः को भविता पतिः ॥ १६८ ॥ श्रेणिकोऽस्या भवो राजन् ! भविता भूरिधिकमः । अतुल्यं निश्चयं कृत्वा स्थितः
श्रीकेरलापतिः ॥ १६९ ॥ तदा मरालद्वीपस्य रत्नचूड़ो नराधिपः । दृष्ट्वा तां रतिमां भूरिसद्वर्णां याचते स्म सः ॥ २०० ॥ नो ददौ
तस्मै राजा रत्नचूड़ाख्यः पूतिः । तदागत्य पुरं क्रोधाद्वेष्टयित्वा स्थितो हि सः ॥ २०१ ॥ तवाभ्यर्णे समायातोऽहं कथनाय वेगतः ।
राजधानी राजगृह नगरमे प्रविष्ट हो गये ॥ १६३ ॥ राजलक्ष्णोंसे मंडित महाराज श्रेणिकने राज-
सिंहासन अलंकृत किया एवं समस्त देशोंको जीतकर वे सुखपूर्वक राज्य भोगने लगे ॥ १६४ ॥

महाराज श्रेणिक सत्त्वन्व सिंहासनपर विराजमान थे कि उससमय एक आकाशगति नामका
विद्याधर राजसभामें आया और राजाको नमस्कार कर यह संदेशा कहने लगा—विजयार्थ पर्वत
की दक्षिण श्रेणिमें एक केरला नामकी नगरी है। उसका स्वामी राजा मृगांक है। राजा मृगांकी
पटरानीका नाम मालतीलता है जो कि अनेक गुणोंकी मंदिर है और नातेमें मेरी भगिनी लगती
है एवं उन दोनोंके विलासवती नामकी अत्यंत सुन्दरी और यौवनसे मंडित पुत्री है ॥ १६५-१६७ ॥
विवाह योग्य अपनी युवति पुत्रीको देखकर राजा मृगांकने सुमति नामके मुनिराजसे पूछा था कि
भगवन् ! मेरी पुत्रीका पति कौन होगा ? उत्तरमें मुनिराजने कहा था कि राजगृह नगरके स्वामी
राजा श्रेणिक इसके पति होंगे जो कि संसारमें एक प्रबल पराक्रमी राजा हैं । मुनिराजके ऐसे
वचन सुन राजा मृगांक पुत्रीकी ओरसे निश्चिन्त हो रहने लगे । किसी समय मराल द्वीपके स्वामी
राजा रत्नचूड़ने रतिके समान सुन्दरी और कमनीय वर्णसे शोभित वह पुत्री देख ली और उसे
मांग बैठा परंतु मुनिवचनके गाढ़ श्रद्धानी राजा मृगांकने रत्नचूड़को पुत्री नहीं दी । रत्नचूड़को
यह बात सहन न हो सकी और उसने जलकर अपने सैन्यमंडलसे केरला नगरी घेर ली । मैं यह

यथा वै रोचते तुभ्यं कर्तव्यं च तथो त्वया ॥ २०२ ॥ श्रुत्वा स्थितौ महाराजा श्रेणिकः कोपमानसः । भूमिगानां गतिर्नास्ति तत्र
 गंतुं यतो ध्रुवं ॥ २०३ ॥ तदा चिन्ताप्रपन्नः स तूष्णीभाधमुपागतः । जंबूर्नद्या गतस्तेन सार्धं विद्याधरेण वै ॥ २०४ ॥ गत्वा
 व्याजीभृत्तेन रत्नचूडैः पाणिना । आष्टेसाहस्रिकान् पार्श्वस्तस्यामीमरदुस्कटान् ॥ २०५ ॥ बंधयित्वा द्विषं दुष्टं मृगांकेण समं
 सुकं । कृत्वा कन्यां समादाय याधेदायाति तैः सह ॥ २०६ ॥ तावद्राजगृहाधीशं विंध्याटव्यां हि केरले । पर्वते संस्थितं मत्वा तैर्न-
 नाम महायशाः ॥ २०७ ॥ उपबभूव तयोः प्रीतिं विद्याधराय विज्ञापितः । गत्वा विलासवतीं तत्रैव तथा साकं सुखं स्थितः ॥ २०८ ॥

समाचार कहनेके लिये आपके पास आया हूँ अब जैसा आप उचित समझें शीघ्र करें ॥ १६८—
 २०२॥ विद्याधर आकाशगतिकी यह बात सुन महाराज श्रेणिक बड़े कुपित हुए परंतु “वहाँपर भूमि
 गोचरियोंकी गति नहीं इसलिये जा नहीं सकते” ऐसा विचारकर वे संचित हो चुप रह गये महा-
 राजको इसप्रकार संचित देख एक जंबूकुमार नामके व्यक्तिने महाराजको नमस्कार किया और
 वह विद्याधर आकाशगतिके साथ शीघ्र केरला नगरीको चल दिया ॥ २०३—२०४॥ केरला नगरीमें
 जाकर पापी रत्नचूड़के साथ उसने झगड़ा करना प्रारंभ कर दिया । उसके महा उत्कट आठ
 हजार योधाओंको मार भगाया । दुष्ट रत्नचूड़का बांध लिया । उसे, मृगांकको और उसकी
 कन्याको साथ ले राजगृह नगरकी ओर चल दिया । जिससमय जंबूकुमार केरला नगरीकी ओर
 गया था महाराज श्रेणिकने भी अपने जानेकी तयारी कर ली थी और वे चलते चलते विंध्या-
 चलकी वनीमें केरल नामके पर्वतपर जाकर ठहर गये थे । यशस्वी जंबूकुमार सर्वोंको साथ ले जिस
 समय विंध्याचल पर्वतके पास आया उसे मालूम पड़ गया कि महाराज श्रेणिक यहीं ठहरें हैं । वह
 शीघ्र उनके पास गया और उन्हें नमस्कार किया । कन्या विलासवतीके साथ महाराज श्रेणिकका
 विवाह हो गया । मृगांक आदिके साथ उन्होंने बहुत स्नेह जनया । वहाँसे अपनी राजधानी राज-
 गृह नगर लौट आये और रमणी विलासवतीके साथ सुखपूर्वक रहने लगे ॥ २०५—२०८ ॥

अथैकदा विशानाथो दुष्टतां चिंतय मानसे । नंदिग्रामद्विजानां हि लुटितुं योजयन्नरात् ॥ २०६ ॥ प्रकृतिस्तं तदागत्य विना छिद्रं न युज्यते । विद्यमाने तनौ छिद्रे न्यायश्च नाथो भवेत् ॥ २१० ॥ साधु साधु तथा कृत्वा मेवं च प्राहिणोक्षरैः । नो पुष्टो दुर्वलो नैव कर्तव्यो मम मेषकः ॥ २११ ॥ अन्यथा निगमं नीत्वा निर्गमयामि देशतः ॥ २१२ ॥ (षट्पदी) इति श्रुत्वा द्विजाः सर्वे व्याकुलीभूत-मानसाः । इन्द्रदत्तस्तदायातो नंदिन्यामाभयेन च ॥ २१३ ॥ पटुस्वितं नृपं मत्वा मिलनाय विशेषतः ॥ २१४ ॥ (षट्पदी) तदाभय-

महाराज श्रेणिक सानंद राज्य भोग कर रहे थे कि उन्हें नंदिग्रामके विप्रोंकी दुष्टताका स्मरण उठ आया और उन्हें लुटवानेके लिये कुछ मनुष्योंका शीघ्र ही वे प्रबंध करने लगे ॥ २०६ ॥ मंत्री आदिने आकर महाराजको समझाया राजन् ! नंदिग्रामके विप्रोंका छिद्र-दोष, विना प्रगट किये आपका यह कार्य अच्छा नहीं माना जा सकता इसलिये आप पहिले उनका कोई दोष प्रगट करिये, पीछे उन्हें दंडित कीजिये क्योंकि यह कहावत है कि जब अपने शरीरमें छिद्र होता है अर्थात् दंड देने-वाला स्वयं दोषी ठहरता है तब न्याय नहीं माना जाता-सब लोग उसे अन्याय कहते हैं ॥ २१० ॥ ठीक, ठीक कहकर महाराजने मंत्री आदिकी बात मान ली । शीघ्र ही एक बकरा मंगाकर सेवकों-के साथ उसे नंदिग्राम भेज दिया और यह आज्ञा कर दी कि नंदिग्रामके विप्र इसे खूब खिलावे पिलावे परंतु यह ध्यान रखें कि न तो यह बकरा पुष्ट हो और न कृश हो । यदि मेरी इस आज्ञा-का पालन नहीं किया गया तो मैं तुम्हारा सर्वस्व लुटवा लूंगा और देशसे बाहिर निकलवा दूंगा ॥ २११—२१२ ॥ महाराजकी यह घोषणा सुन नंदिग्रामके समस्त ब्राह्मण भयसे कप गये, महाराजकी आज्ञाका किस प्रकार पालन करें यह कुछ भी उन्हें न सूझ पड़ा ।

वेणातट नगरके निवासी सेठ इन्द्रदत्तने जब यह सुना कि श्रेणिक राजगृह नगरके राजा बन गये हैं तो वह अपनी पुत्री नंदश्री और अभयकुमारको साथ ले उनसे विशेष रूपसे मिलने आया और नंदिग्राममें ही दैवयोगसे आकर ठहर गया ॥ २१३—२१४ ॥ नंदिग्रामके समस्त ब्राह्मणोंको

कुमारो हि दृष्ट्वा चाकुलवाडवान् । जगादैषं वचस्तथ्यं कुतो विग्रहचेतसः ॥ २१५ ॥ तैश्च प्रोक्तं समाकर्ण्य प्रोवाच वचनं सुधीः ।
माकुला भवतो यूथं शृणुतोपायमित्यलं ॥ २१६ ॥ व्याघ्रयोरेतरे स्वाप्यो मेवो मिष्टान्नभक्षणेः । भयाद् बलतां चैव पुष्टतां नैव यास्यति ॥
२१७ ॥ तथाकृतैर्द्विजैस्तूर्णं मासार्धे प्रेषितो हि सः । दृष्ट्वा राजा तथाभूतं चित्रतां चिंतयन् हृदि ॥ २१८ ॥ इत्यादि दश संप्रश्नाः कृता
राज्ञा विवेकिना । नन्दिग्रामोणकैर्विप्रैः प्रोक्तास्त्वभययोगतः ॥ २१९ ॥

मेवञ्च वापी करिकादुत्तैलं क्षीराण्डजं घालुकषेष्टं च ।

घटस्फुष्पाण्डफलं शिशुनां दिवानिशावर्जसमागमश्च ॥ २२० ॥

अत्यंत चिंतित और दुःखित देख कुमार अभयने पूछा—भाई ! तुम लोग चित्तमें इतने दुःखित क्यों हो ! उत्तरमें विप्रोंने महाराज श्रेणिककी सारी आज्ञा कह सुनाई । सुनकर कुमारने धीरज बंधाते हुए मिष्ट वचनोंमें इसप्रकार उनसे कहा—व्याकुल होनेकी कोई बात नहीं है मैं तुम्हें एक उपाय बतलाता हूँ—

दो बाघोंके बीचमें बकराको बांध दो और खूब उसे मिष्टान्न भोजन खवाओ । मिष्टान्नोंके खानेसे न तो वह पतला होगा और न मोटा होगा । कुमारकी आज्ञानुसार विप्रोंने वैसा ही किया अर्धमास—पन्द्रह दिन रखकर उसे महाराजके पास भेज दिया । जैसा बकरा भेजा था वैसा ही देख महाराज श्रेणिक चकित रह गये एवं नन्दिग्रामके विप्रोंकी चतुरताकी मन ही मन सराहना करने लगे ॥ २१५—२१८ ॥ इसीतरह महाराज श्रेणिकने नन्दिग्रामके विप्रोंसे राजगृह नगरमें वावड़ी मगानेकी कही । हाथीका वजन मांगा, काठका नीचे ऊपरका भाग पूछा, तिलके बराबर तेल मांगा, गाय भैंस आदिके दूधसे अन्य दूध मंगाया, एक ही मुर्गा लड़ानेको कहा, बालू की बनी रस्सी मांगी, घड़ामें भीतर ही भीतर बड़ा हुआ कूष्माण्डफल मांगा शिशुओंकी बुद्धि परीक्षा की और रात दिन आदिके विभागको छोड़कर बुद्धिमान मनुष्यको राजगृह नगर बुलाया वह सब कुमार अभ-

एव प्रश्नः कृतो राहा दिवारात्रं विद्यर्ज्य भो । मार्गे नैव कुमारो च समागतव्यमेव च ॥ २२१ ॥ अभयस्वोपदेशेन शकटाक्षेषु यंत्रणं ।
वध्वा तत्र स्थिताः सर्वे आर्द्रचाणकपारकाः ॥ २२२ ॥ अभयेन समं सर्वे गतास्ते राजसन्निधौ । ननाम स्वसुतस्तस्य चरणौ बाडवैः
सह ॥ २२३ ॥ समालिख्य निजं पुत्रं सनयं प्राशशंस सः । मोचनं ब्राह्मणानां हि कृत्वा तत्र सुखं स्थितः ॥ २२४ ॥ पट्टे नंदधियं कृत्वा
यौवराज्येऽभयं बुधः । तथा मंत्रिपदं दत्त्वा गतं कालं न वैश्यसौ ॥ २२५ ॥ बौद्धधर्ममयं राज्यं कुर्वन् संतिष्ठते सदा । इभ्यः सागर-
यकी कृपासे पूरा किया गया ? अंतिम प्रश्नका खुलासा यह है कि महाराज उपश्रेणिकने नंदि-
ग्रामके विप्रोंके पास यह संदेशा भेजा कि सबोंमें बुद्धिमान मनुष्य मय अन्य ब्राह्मणोंके राजगृह
नगरमें आवे । उसके लिये यह कड़ी आज्ञा है कि न तो वह रातमें आवे न दिनमें आवे । न मार्गसे
आवे न कुमार्गसे आवे भूखे भी न आवे अफरे भी न आवे । किसी सवारीमें भी न आवे और न
पैदल ही आवे परन्तु राजगृह नगर आवे अवश्य । महाराजका यह कठिन संदेशा सुन कुमार अभ-
यने गाढ़ियोंके अन्दर छीके बंधवा दिये । सब लोग उनमें बैठ गये, चनाका भोजन किया जिससे
न पेट भरा ही माना जा सकता है और न खाली ही । गाढ़ियोंका एक पहिया लीखपर चलाया गया
और एक वे लीखपर चलाया गया बस अभयकुमारके साथ वे सबके सब राजाके समीप पहुँच
एवं कुमार अभयने अपने पिताके चरणोंको साथमें गये विप्रोंके साथ भक्तिपूर्वक नमस्कार किया ।
॥ २१६—२२३ ॥ विनयशील पुत्र अभयकुमारको देख महाराज श्रेणिकको परमानंद हुआ । स्नेह
से गद गद हो उसे छातीसे लगा लिया । उसके बुद्धिबलकी बड़ी भारी प्रशंसा की । कुमारने
ब्राह्मणोंको क्षमा करा दिया एवं वह सुखपूर्वक राजसभामें बैठ गया ॥ २२४ ॥ महाराज श्रेणिकने
अपनी प्यारी रानी नंदश्रीको पटरानीका पद प्रदान किया । कुमार अभयको युवराज बनाया और
मंत्री पद भी प्रदान किया जिससे उन्हें गया हुआ काल जरा भी न जान पड़ा ॥ २२५ ॥ इसप्रकार
वे महाराज श्रेणिक बौद्धधर्मके परम भक्त बन सानंद राज्य करने लगे ।

१ श्रेणिक चरित्र १०६ पृष्ठसे यह वर्णन विस्तारसे लिखा है ग्रंथके विस्तार मयसे यहां उसे उद्धृत नहीं किया गया है ।

वत्तोऽत्र वसत्येव गुणालयः ॥ २२६ ॥ तस्यास्ति मामिनीयुग्मं रेमित्रायां सुतोऽजनि । कदाकाले मृतः श्रेष्ठो तयोर्जातोऽतिचिद्वरः ॥ २२७ ॥ (२२८) अछिदत्ता वदत्येवं पुत्रोऽयं मामको भूशं । वसुमित्रा तथाऽवादीत् जलेयं मामकः सुतः ॥ २२९ ॥ विवदं त्यौ तदा ते द्वे गते श्रेणिकसन्निधौ । न्यायं कर्तुमशक्तत्वाद्यभयाय समर्पिते ॥ २३० ॥ अभयोऽपि चिरं ध्यात्वा शिशुं भूमौ निक्षिप्तवान् । स नीत्वा क्षुरिकां प्राह हार्धमर्धं प्रगृह्यतां ॥ २३१ ॥ वसुमित्रा तथा ब्रूयादयार्द्राः ससुवाच तं । एतस्मै वेहि पुत्रं भो न मे पुत्रः कदाचन ॥ २३२ ॥

राजगृह नगरमें उससमय एक सागरदत्त नामका वैश्य रहता था । अत्यंत धनाढ्य और अनेक गुणोंका मंदिर था, उसकी दो स्त्रियां थीं, एक वसुमित्रा और दूसरी अछिदत्ता (वसुदत्ता) उनमें वसुमित्राके एक पुत्र था वसुदत्ताके कोई संतान न थी । किसी समय सेठ सागरदत्तका मरण हो गया और उससमय उन दोनों स्त्रियोंमें रात दिन कलह होने लगी । वसुदत्ताका कहना था कि यह पुत्र मेरा है और वसुमित्रा यह कहती थी कि यह भूठी है । यह पुत्र मेरा है । जब दोनोंका विवाद इतना बढ़ गया कि वे आपसमें अपना निवटेरा न कर सकीं तो वे महाराज श्रेणिकके समीप राजसभामें अपना न्याय करानेके लिये गईं । उनका विवाद सुन महाराज श्रेणिक भी अवाक् रह गये—कुछ भी न्याय न कर सके इसलिये कुमार अभयको बुलाकर उन्हें न्याय करनेकी आज्ञा दे दी ॥ २२५—२३० ॥ अभयकुमार भी बहुत देर तक तो यह विचार करते रहे कि इसका निवटेरा किस प्रकार किया जाय अंतमें उन्हें एक बुद्धि सूझ गई । बालकको शीघ्र ही उन्होंने जमीनपर लिटालिया एवं हाथमें छुरी लेकर वे यह कहने लगे कि अच्छा भाई ! जब तुम दोनों ही इसे अपना अपना पुत्र बतलाती हो तो आधा आधा दोनों ले लो ॥ २३१ ॥ कुमारका यह न्याय देख पुत्रकी असली माता वसुमित्रा एकदम कप गई एवं दयासे आर्द्र हो वह इसप्रकार नम्र वचनोंमें कहने लगी—कुमार ! कृपाकर यह पुत्र वसुदत्ताको ही प्रदान करिये मेरे पुत्र कभी भी नहीं हुआ इस लिये मेरा पुत्र यह नहीं ॥ २३२ ॥ वसुदत्ताके अंदर किसी प्रकार दयाकी झलक न थी । कुमारने

दयामावाञ्छु तं तथा हात्वा तस्यै वदौ मुदा । परीक्षान्यायकर्तारं मत्वा न्यायं ददौ तुजे ॥ २३३ ॥ अथैकदामरावत्यां कुटुम्बी बलभ-
द्रवाक् । प्रिया तस्यास्ति भद्राख्या पीनसूक्ष्मयोधरा ॥ २३४ ॥ तत्र पुर्या वसत्येव क्षत्रियो हि वसंतकः । भद्रां दृष्ट्वैकदा कामबाण
व्याम गेहितोऽभवत् ॥ २३५ ॥ दूत्यानुरक्तां नीत्वा रमे साकं मुदा तया । एकदा सा वनं याता तत्र दृष्टो मुनिध्वजः ॥ २३६ ॥ भद्रा-

उस बालकको दयालु वसुमित्राका ही पुत्र जान उसे ही सुपुर्द कर दिया और अन्याय करनेवाली
वसुदत्ताको अपराधके अनुकूल दंड दिया इसप्रकार पुत्रकेलिये जो भगड़ा था न्यायकर कुमारने
उसका निबटेरा कर दिया ॥ २३३ ॥

मगध देशकी अमरावती नगरीमें एक बलभद्र नामका कुटुम्बी रहता था । उसकी स्त्रीका नाम
भद्रा था जो कि बलभद्रको प्राणोंसे भी अधिक प्यारी थी और पीन किंतु स्थूल स्तनोंसे शोभाय-
मान थी । उसी नगरीमें एक वसंत नामका क्षत्रिय पुरुष भी रहता था एक दिन रमणी भद्रा उस
के देखनेमें आगई जिससे वह उसके सौंदर्यपर मुग्ध हो कामबाणोंसे व्याकुल हो गया ॥ २३४—
२३५ ॥ शीघ्र ही उसने भद्राके पास अपनी दूती भेजी । भद्रा भी वसंत पर पूर्ण आसक्त हो गई
जिससे वसंत मनमानी उसके साथ आनंद रमण क्रीडा करने लगा । एक दिन भद्राको बाहिर
जंगलमें जानेका अवसर मिल गया वह वनमें गई । दैवयोगसे एक मुनिराजसे उसकी भेंट हो
गई । वे मुनिराज परम सुन्दर थे उन्हें देख भद्राका चित्त चलित हो गया एवं कामको सूचित
करने वाले वाक्योंमें वह इसप्रकार मुनिराजसे कहने लगी—

प्रिय साधो ! तुम सौंदर्य और कलाओंके स्थान हो तुम्हें स्त्रियोंकी अभिलाषा पूरण करनी
चाहिये । तुम जो यह ध्यान व्रत आचरण कर रहे हो यह तुम्हारा व्यर्थ है इसमें कुछ भी आनंद
नहीं प्राप्त हो सकता तुम्हें विषय भोगोंको आस्वादना चाहिये । भद्राके ये कड़वे वचन सुन उत्तर
में आत्मध्यानी मुनिराजने कहा—

सुरुपिणं दृष्ट्वा कामवाक्यैर्मुनिं जगौ । भो भो रूपकलागार ! स्त्रोत्रामाशाः प्रपूरय ॥ २३७ ॥ किं व्यानेन ब्रूतेनैव लेक्षित्वं स्मरमेदिरं ।
 श्रुत्वा कटुकं वाक्यं यथा मुनिरात्मवान् ॥ २३८ ॥ रं रं रण्डऽवलं ! बालं ! कथं बद्धं दुर्वचः । भर्तुं बलिनं मुक्त्वा रमसे त्वं
 कथं परैः ॥ २३९ ॥ भोगः संभोगिभो नित्यदुःखो रूपभञ्जकः । आद्रोयते कथं सद्भिः किणो वा वातपूरितः ॥ २४० ॥ शीलभंगाद्भवे-
 त्पापं तस्माच्च नरकं व्रजेत् । रौद्रदुःखं हि तत्र स्यात्कविवाचांमगोचरं ॥ २४१ ॥ अस्मत्पापोत्यवृत्तांतं कथं जानात्ययं मुनिः । इत्थं
 विचार्य सद्रूपं गृहीत्वा स्वगृहं ययौ ॥ २४२ ॥ पुनस्तेन तथा दूत्या द्रव्येण स्वस्य वाचया । नागतां भद्रिकां मत्वा चिंतयामास

अरी रांड मूर्ख अवला ! ऐसे कड़वे वचन क्यों तू अपने मुखसे निकालती है । तुझे लजा नहीं आती कि शक्तिमान भी अपने स्वामीको छोड़कर तू दूसरोंके साथ रमण किया करती फिरती है । देख ये दुष्ट भोग काले भुजंगके समान महा भयंकर हैं । सदा अनेक प्रकारके दुःखोंको देने वाले हैं । सुन्दरताको नष्ट करने वाले हैं इसलिये न मालूम बातसे पूरित तीव्रघावके समान इन भोगोंको लोग क्यों आदरकी दृष्टिसे देखते हैं । अर्थात् बातसे पूर्ण घावमें विशेष खुजली पड़ती है इसलिये उसके छेड़नेमें कुछ कुछ सुख जान पड़ता है परंतु खुजाते खुजाते घावके लोहू लुहान हो जानेसे अपरिमित दुःख भोगना पड़ता है उसी प्रकार भोगोंके छेड़े जाने पर प्रारंभमें तो कुछ सुख जान पड़ता है परंतु परिपाकमें अपरिमित कष्ट भोगना पड़ता है इसलिये विषयभोगोंमें लालसा रखना अपनेको दुःखमय गढ़में पटकना है । तथा और भी यह बात है कि संसारमें स्त्री पुरुषोंका शील ही भूषण है इस शीलके भंगसे पापका बंध होता है । पापसे नरक जाना होता है वहांपर महा भयंकर दुःख भोगना पड़ता है जिसे विद्वान् भी कवि अपनी वाणीसे वर्णन नहीं कर सकता ॥ २३६—२४१ ॥ मुनिराजकी यह विचित्र बात सुन भद्रा अवाक् रह गई वह मन ही मन विचारने लगी कि यह मुनिहमारे पापकी बात कैसे जानता है ? बस उसी समय उसने शीलव्रत धारण कर लिया और अपने घर चली आई ॥ २४२ ॥ वसंत रोजकी तरह भद्राके घर गया परंतु उसने

मानसे ॥ २४३ ॥ एकदा तत्र दुष्टैव समायातं कपालिनं । लोकैः सुपूजितं रुद्रं स्वकामेन ननाम सः ॥ २४३ ॥ भक्त्या न तोषयन्ति
त्यमोदनेव्यंजनै रसैः । मोदयैः कृष्णके पूरैः कर्णारिं मिं कृतेति ज ॥ २४४ ॥ दुष्टया संतुष्टमातं तं याचते स्वमनोपसितं । बहुरूपि-
णिकां विद्यां यतो लब्धा व्यलाभयत् ॥ २४५ ॥ एकदा गणरात्रे स वसंतः कामविह्वलः । ताम्रवृद्धवमादाय चुकृन्नागारसन्निधौ
॥ २४६ ॥ बलभद्रस्तदा प्रातर्जात्वा क्षेत्रं ययौ यदा । चतुष्पाच्चारणार्थं वै तद्रूपं धृतवान् मधुः ॥ २४८ ॥ मध्ये सन्न गतो धृष्टो ज्ञातो
गत्या विवेकतः । चुम्बापातं चकाराशु भद्रा पीनपयोधरा ॥ २४९ ॥ बलभद्रः समायातश्चलंतौ तौ परस्परं । तुल्यरूपौ गतौ राजगृहे

उसकी एक बात न सुनी । दूती भेजी, द्रव्यका लालच दिखा खयं जाकर चाटु वचन कहे परंतु
भद्रा उसके हाथ न आई इसलिये वह अपने मनमें बड़ी चिंता करने लगा ॥ २४३ ॥

एक दिन उस नगरीमें एक कपाली—मन्त्रवादी आया । उसके ढोंगका लोगोंपर प्रभाव पड़
गया । सबके सब उसे पूजने लगे । वसंतने भी उसका आना सुना, वह शीघ्र ही उसके पास गया ।
अपनी अभीष्ट सिद्धिके लिये भक्तिपूर्वक उसे नमस्कार किया । प्रतिदिन भात नाना प्रकारके
व्यंजन रस लाडू खाजे और पूर्वोका भोजन कराकर उसे संतुष्ट करने लगा ठीक ही है कार्यका
अर्थी स्वार्थी मनुष्य क्या नहीं करता ॥ २४४—२४५ ॥ वसंतकी सेवासे मन्त्रवादी संतुष्ट हो गया
अपने ऊपर मन्त्रवादीको संतुष्ट देख वसन्तने अपनी अभीष्ट सिद्धिकी प्रार्थना की । मन्त्रवादीने
उसे बहुरूपिणी विद्या प्रदानकी जिसे वसन्तने बहुत जल्दी साध लिया ॥ २४६ ॥

एक दिन कामसे अत्यंत व्याकुल हो वसन्तने जब कि बहुत रात्रि थी, मुर्गाका रूप धारण किया
और बलभद्रके घरके पास कूजने लगा ॥ २४७ ॥ भद्राका स्वामी बलभद्र यह समझ कि सवेरा हो
गया, पशुओंके चरानेके लिये अपने खेतपर चला गया और वसन्त बलभद्रका रूप धारण कर उसके
घरके भीतर घुस गया । चतुर भद्राने चाल ढालसे निश्चय कर उस दुष्टको पहिचान लिया इस
लिये उसने चिल्लाना प्रारंभ कर दिया । विशेष हुल्लाड़ सुन बलभद्र वापिस लौट आया । दोनों ही

न्यायार्थमजसा ॥ २५० ॥ मनःप्रसन्नतां कृत्वा जगदात्मयपङ्क्तिः । बल्लालकस्थ रंजो यो द्वयोर्मध्ये सुनिःसरेत् ॥ २५१ ॥ स स्याद्भद्रा
पतिर्नूनं निर्गतं तं व्यताडयत् ॥ २५२ ॥ (षट्पदी) पूर्वस्मै हलिने इत्वा भद्रात्मयपङ्क्तिः । तद्दिनादिप्रसिद्धोऽभूत् न्यायी सप्रतिमः
प्रदः ॥ २५३ ॥ श्रेणिकोक्तं समाकर्ण्य कृपांतपतितां शुभां । निष्कास्य मुद्रिकां बुद्ध्या प्रसिद्धोऽभूद्विशेषतः ॥ २५४ ॥ अथैकदाऽमरा-
वत्यां चित्रकृद्दस्तामिधः । पद्मावतीं महाविद्यां साधयामास तद्वने ॥ २५५ ॥ प्रसिद्धीभूयमागत्य प्राबोचत्फणिशेखरा । याचस्व त्वं
वरं वरस ! मनोऽभीष्टं यथावच्चि ॥ २५६ ॥ भुत्वाऽयोचन्महामातदहि मे चित्रशुद्धतां । यया (य) शुद्धया भवेत्सिद्धिर इह लिख्यते

समान रूपके धारक थे इसलिये दोनोंका आपसमें भगड़ा होने लगा इसलिये अपना न्याय कराने
के लिये चलते चलते वे राजगृह नगर आ गये ॥ २४८ ॥—२५० ॥ सब भगड़ोंका निवटेरा प्रायः
कुमार अभय ही करते थे जिससमय वे दोनों कुमारके पास आये, मनको प्रसन्नकर कुमारने कहा
देखो भाई । तुम दोनोंमेंसे जो इस तूँवीके छेदमें होकर बाहर निकल जायगा वही भद्राका पति
समझा जायगा । यह काम करना असली बलभद्रकी शक्तिके तो बाहिर था कुमारकी बात सुनते
ही नकली बलभद्र वसन्त देखते देखते छेदमें घुसकर बाहिर निकल गया वस कुमारने उसे ही
अपराधी समझ पकड़ लिया और दण्ड दिया ॥ २५१—२५२ ॥ कुमार अभयने अपनी बुद्धिकी
चतुरतासे असली बलभद्रको भद्रा दे दी । इस न्यायके बाद कुमार अभय अत्यंत बुद्धिमान प्रसिद्ध
न्यायी माने गये ॥ २५३ ॥ किसी दिन जलरहित कूवेमें एक अङ्गूठी गिर गई महाराज श्रेणिकने
बिना किसी लागके कुमारको निकालनेके लिये आज्ञा दी कुमारने अपनी बुद्धिमानीसे बिना किसी
लागके उसे बाहिर निकाल दिया इसलिये कुमारकी उस दिनसे और भी विशेष प्रसिद्धि हो गई ॥ २५४ ॥

अमरावतीमें उस समय एक भरत नामका चित्रकार भी रहता था एक दिन जंगलमें जाकर
उसने महाविद्या सिद्ध करनेके लिये पद्मावती देवीकी आराधना की । जिससमय वह विद्या सिद्ध
हो गई तो नागोंका मुकुट थारणकर वह प्रत्यक्ष हुई और स्नेहमय वचनोंमें इसप्रकार कहने लगी

यतः ॥ २५७ ॥ भरतो देशमध्ये हि प्रसिद्धीभूयमागतः । चित्रसत्कलया लोकान् रंजयन् सदने स्थितः ॥ २५८ ॥ सद्युक्तं सिंधुदेशे वै विशाला नगरी मता । षट्काण्ड्यः पतिस्तस्य सुभद्रा महिषी मता ॥ २५९ ॥ तस्थैव सप्तसत्पुत्र्यो विंबोष्ठ्यः स्मरवल्लभाः । यासां मध्ये प्रियादत्ता सिद्धार्थाय सुभुभुजे ॥ २६० ॥ द्वितीया च पिनाकाय तृतीया दशरथाय च । प्रभावती चतुर्थी तु महानुदयिने तथा ॥ २६१ ॥ कुमारिका हि विद्यते तिस्रः कन्याः प्रभाभराः । एकदा तत्र चायातश्चित्रकृद्भरताभिधः ॥ २६२ ॥ रूपं यत्सप्तपुत्रीणां पट्टे कृत्वा

प्रिय वरस ! जिस वरके मागनेके लिये तुम्हारी रुचि हो उस वरको मागो मैं तुमसे प्रसन्न हूँ । उत्तरमें भरतने कहा महामाता ! मुझे इसप्रकारकी चित्रशुद्धि प्रदान करिये जिस चित्रशुद्धिकी कृपासे विना देखे हुए पदार्थको भी पटपर अंकित कर सकूँ । तथास्तु, कह कर महाविद्या सिद्धि हो गई । उस महाविद्याके प्रभावसे चित्रकार भरतकी सारे देशमें ख्याति हो गई एवं अपनी चित्रकलासे समस्त लोकको आनंदित करता हुआ वह सानंद अपने घर रहने लगा ॥ २५५—२५८ ॥

अनेक सज्जनोंसे व्याप्त सिंधु देशमें एक विशाला नामकी नगरी है । उस समय उसका पालन करनेवाला राजा चेटक था और उसकी मुख्य पटरानी सुभद्रा थी । महाराणी सुभद्रासे उत्पन्न सात पुत्रियां थीं जो कि विंबोष्ठके समान लाल ओठोंकी धारक थीं और कामदेवकी परम प्यारी थीं । सबसे बड़ी पुत्रीका नाम प्रियादत्ता था और उसका कुण्डलपुरके स्वामी नाथवंशीय राजा सिद्धार्थके साथ विवाह हुआ था ॥ २५९—२६० ॥ दूसरी कन्या सुगावतीका विवाह वत्स देशके कौशांबापुरके स्वामी महाराज पिनाकके साथ हुआ था । तीसरी कन्या वसुप्रभा थी और उसका विवाह दशार्ण देशके हेरकच्छपुरके स्वामी राजा दशरथके साथ हुआ था तथा चतुर्थ कन्या प्रभावतीका विवाह कच्छदेशके रोरुकपुरके स्वामी महाराज महानुदयके साथ हुआ था । बाकी ज्येष्ठा कन्दना और चेलना ये तीन कन्या अभी तक अविवाहित थीं । प्रसिद्ध चित्रकार भरत घूमता २ एक दिन विशाला नगरीमें आ पहुँचा । एक पटपर उसने सातों कन्याओंकी तस्वीर अंकित की

सुलक्षणं । दर्शयामास भूगय दृष्ट्वा भूपो नन्दं तत् ॥ २६३ ॥ अन्यदा कन्यकास्तिष्ठः संप्राप्य चित्रकारकं । विचित्रत्वाद्बिहस्यैव प्रादुरेवं चचोवरं ॥ २६४ ॥ भो भो त्वं चेलिनीरूपं नग्नं चित्रय शीघ्रतः । चित्रितं तेन सद्रूपं गुह्यस्थौस्तिलकैर्युतं ॥ २६५ ॥ कर्णेजपः केनापि प्रोक्तं चेटकस्तन्निधौ । देवानामपि दुर्लभ्यं गुप्तं जानात्ययं कुतः ॥ २६६ ॥ श्रुत्वा महर्ष्यया राजा युकाप भ्रमसंगतः । तदा राज्ञः प्रकोपेण नष्टोऽसौ चित्रकृद्भयात् ॥ २६७ ॥ गत्वा राजगृहे रम्येऽदर्शयत् श्रेणिकाय तत् । दृष्ट्वा रूपं तदा राजा चित्रार्पित इवा भवत् ॥ २६८ ॥ स्वस्थो भूत्वा पप्रच्छेति कस्य रूपमिदं चण । अनुकूलं नृपं ज्ञात्वाऽस्मीकयत् शृणु चावरात् ॥ २६९ ॥ सिंधुदेशे

जो कि चित्रकलाके गुणोंसे युक्त थी तथा महाराज चेटकको दिखाई जिसे देख राजा चेटक भरत की चित्रकलाकी बड़ी प्रशंसा करने लगे ॥ २६१—२६३ ॥ किसी दिन ज्येष्ठा आदि तीनों कन्या यें मिलकर चित्रकार भरतके पास गई एवं एक विचित्रप्रकारकी हंसी हँसकर इसप्रकार उससे कहने लगी—

चित्रकार । हम जब तुम्हारी चित्रकलादिकी निपुणता समझें जब तुम कुमारी चेलनीका नग्नरूप शीघ्र चित्रित कर दो । चित्रकार भरतको यह बात कोई कठिन न थी, देखते देखते उसने चित्र बनाकर तयार कर दिया एवं महाविद्याके प्रभावसे जो भी चेलनीके गुप्तस्थानोंमें तिल आदि चिह्न थे सब उस चित्रमें अंकित करदिये ॥ २६४—२६५ ॥ संसारमें चुगल खोरोंकी कमी नहीं, चेलनीका वह नग्नचित्र देखकर एक चुगलखोर शीघ्र राजा चेटकके पास पहुंचा और यह कहने लगा—राजन् ! चेलनीके गुह्य स्थानोंके चिह्नोंको देव भी नहीं देख सकते उन्हें यह आपका चित्रकार कैसे जानता है ! यह बड़ी विचित्र बात है ॥ २६६ ॥ चुगलखोरकी यह बात सुन राजा चेटकको भी भरतपर संदेह हो गया इसलिये वह बिनाही विचारे प्रबल ईर्ष्यासे कुपित हो गया । राजा के क्रोधका पता चित्रकार भरतको भी लग गया । मारे भयके वह एकदम कपगया और शीघ्र ही राजगृह नगरके लिये रवाना हो गया । राजगृहमें जाकर कन्या चेलिनीका चित्र महाराज श्रेणिक को दिखाया जिसे देख वे चित्राम सरीखे निश्चल हो गये ॥ २६७--२६८ ॥ कुछ देर बाद स्वस्थ

विशालायां चेटकस्य सुभद्रिका । तत्पुत्री चेलिनी नाम्ना निम्ननाभिः कुशोदरी । २७० । प्रौढोन्नतनितंबा च विम्वेष्टो मारुजिनी । विशालाद्वरा चतुर्वर्णा केशवराज्यकी ॥ २७१ ॥ इत्यादिवर्णनोपेतां श्रुत्वा श्रेणिकभूपतिः । चिंतयामास चित्ते स्थे चित्रं शल्या-
यते नृणां ॥ २७२ ॥ समायातस्तदा तत्र सभायामभयाह्वयः । दृष्ट्वा तातं सदुःखं च तक्रिरूपय येगतः ॥ २७३ ॥ मनोगतं तदा
राज्ञा प्रोक्तं च दुस्तरं वचः । श्रुत्वाभयकुमारो हि प्रावोचन्ननायकं ॥ २७४ ॥ शृणु नाथ ! कृपाधार ! मा चिंतं कुरु सर्वथा ।

होनेपर उन्होंने भरतसे पूछा—कहो भाई ! चित्रमें अंकित यह मनोहर रूप किसका है ? महाराज-
को अपने अनुकूल समझ भरतने बड़े आदरसे कहा--राजन् ! आप सुनिये मैं समस्त वृत्तान्त
कहता हूँ—

सिंधुदेशकी विशाला नगरीके स्वामी राजा चेटक हैं उनकी पटरानीका नाम सुभद्रा है उससे
उत्पन्न एक चेलिनी नामकी कन्या है जो कि गंभीर नाभिकी धारक है । कुशोदरी है । प्रौढ़ और
उन्नत नितंबवाली है । विद्याफलके समान ओष्ठवाली, कामदेवके आनंदकी भूमि, विशाल हृदयकी
धारण करनेवाली चन्द्रमुखी एवं साक्षात् सरस्वती सरीखी है उसीका चित्र यह आपके सामने विद्य-
मान है । चित्रकार भरतसे इस दिव्य वर्णन युक्त कन्याको सुनकर महाराज श्रेणिक मन ही मन
गहरी चिंतामें लीन हो गये । ठीक ही है चित्र भी मनुष्योंको शल्य (कील) के समान दुःख देता
है अर्थात् कीलके गढ़ जानेपर जिसप्रकार गहरी वेदनाका अनुभव होता है उसीप्रकार चित्र भी
हृदयमें चुभ जानेपर विशेष दुःख भुगाता है ॥ २६६—२७२ ॥ जिस समय महाराज चिंतामें लीन
थे उसी समय कुमार अभय राज सभामें आये एवं अपने पूज्य पिता महाराजको दुःखित और
चिंतित देख जल्दी उस दुःख और चिंताका कारण पूछने लगे—महाराजके मनमें जो बात थी
उन्होंने कह दी एवं यह भी कहा कि यह बात होनी काठिन है । धीर वीर कुमार अभयने नरोत्तम
महाराजको उत्तर दिया--दयालु पिता ! तुम्हें तनिक भी चिंता न करनी चाहिये जो बात आपको

अथा वै रोचते तृप्तं करिष्यामि तथाहम् ॥ २७५ ॥ अतश्चाऽभयवचो राजा रराणेति सुतं प्रति । हे सन् ! देहज ? सोऽप्यस्ति जैन-
धर्मेण रंजितः ॥ २७६ ॥ अतो दास्यति नो मह्यं बौद्धधर्माय केवलं । ततोऽब्रवीत्सुतो धीरः करिष्येऽहमुपायकं ॥ २७७ ॥ सार्थवाहा-
धिपो भूत्वा जैनधर्मधुरंधरः । जैनलोकैः समं शुभ्रो विशालायां ययौ मिषात् ॥ २७८ ॥ सरत्नं प्राभृतं नीत्वा मिलितं चेटकस्य
सः । सन्माण्य चेटको भूपो व्याजहार गिरं वरं ॥ २७९ ॥ स्थीयतामत्र पुर्वा भो भवद्विः परमार्थिभिः । अस्माकं बलभा जैना
मिश्राणि धनबांधवाः ॥ २८० ॥ अत्याग्रहं नृपस्यैव मत्वा मंदिरसंनिधौ । गृहं संप्रार्थयामास तत्र संस्थितवांस्तदा ॥ २८१ ॥ एकदा

रुचेगी मैं उसे पूरी करदूंगा । कुमार अभयके ये वचन सुन पुनः महाराजने कहा-प्यारे पुत्र ! तुम
अवश्य बुद्धिमान हो और हर एक कार्य कर सकते हो परंतु तुम्हारे लिये यह कार्य करना कठिन
होगा क्योंकि राजा चेटक जैनधर्मका भक्त है और मैं बौद्ध धर्मका सेवक हूँ इसलिये विधर्मी जान
मुझे वह अपनी कन्या न दे सकेगा । धीर वीर कुमारने उत्तर दिया आप चिंता न कीजिये जिस
रूपसे बनेगा मैं चेलनीकी प्राप्तिका ठीक उपाय करूंगा ॥ २७३—२७७ ॥ वस परम जिनधर्मी उस
कुमारने क्या काम किया कि अनेक व्यापारियोंका स्वामी बन और कुछ जैनलोगोंको साथ लेकर
छलसे विशाला पुरीमें जा पहुंचा । रत्नमयी भेंट लेकर वह राजा चेटकसे मिला । राजा चेटकने
भी कुमारका पूर्ण सन्मान किया एवं इसप्रकार मनोहर वचनोंमें बात चीत की—

आप महानुभाव मोक्षप्राप्तिके अभिलाषी धर्मात्मा हैं । मेरी इस पुरीमें आप ठहरें क्योंकि
जो महानुभाव जैनी हैं । जैनधर्मका पालन करते हैं वे हमारे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं । मित्र हैं
और धन एवं बांधव भी वे ही हैं । कुमार अभय अत्यंत चतुर व्यक्ति थे राजा चेटकका जब
उन्होंने यह आग्रह देखा तो उन्होंने राजमहलके पास ही ठहरनेके लिये मकान लेनेकी प्रार्थना की ।
राजा चेटकने धर्मात्मा जान उनकी प्रार्थना स्वीकार करली एवं वे सानंद वहां ठहर गये ॥ २७८-२८१ ॥
एक दिन कुमार अभय अपने साथियोंके साथ उत्साह पूर्वक बड़े उच्चस्वरसे भगवान् जिनेंद्रकी

पचितीं कर्तुं स्थितस्तद्विद्योक्ते । तिस्रः कन्याः समायाताः पञ्चभूतं विदांबरं ॥ २८२ ॥ भो मकरध्वजाकाराश्चागतिर्भवतां कुतः । राजगृहात्समायातास्तत्र श्रेणिकभूमिपः ॥ २८३ ॥ कीदृशो भूयतिः सोऽस्ति तदा पटुं प्रसार्य सः । अदर्शयत्तदा दृष्ट्वा कन्यकाः कीलिता इव ॥ २८४ ॥ प्रोचुर्भो जैनसद्वर्ग्येदृशो हि धरः कुतः । तदीयमिगितं मत्वा सुरंगायां मिषं व्यधात् ॥ २८५ ॥ हारमौद्रिक-मेघेण उदेष्टा वै यद्वक्तुं गतः । तदातदाय तदा विद्धां चेलनां स्वपुरं गतौ ॥ २८६ ॥ सन्मुखं श्रेणिको भूयो गत्वा सामंतसंयुतः ।

पूजा कर रहे थे । राज महलके समीप होनेसे बराबर शब्द रणावांसतक पहुँचता था । पूजाकी ध्वनि सुन ज्येष्ठा चन्दना और चेलनी तीन कन्यायें चली आईं और कुमार अभयसे इसप्रकार पूछने लगीं—

कामदेवके समान आकृतिके धारक महानुभाव । आपका यहांपर आना किस देशसे हुआ है ? उत्तरमें कुमारने कहा-हम लोग राजगृह नगरसे आये हुए हैं जहांपर कि महाराज श्रेणिक न्यायपूर्वक प्रजाका अच्छीतरह पालन करते हैं । कन्याओंने फिर पूछा-महाराज श्रेणिक कैसे राजा हैं ? कुमार अभयने उनके सामने महाराज श्रेणिकका चित्रपट फैला दिया एवं स्पष्टरूपसे उनका स्वरूप दिखा दिया जिसे देख तीनों कन्यायें इसरूपसे निश्चल खड़ी रह गईं मानों कील दी हैं एवं इसप्रकार खेद प्रगट करतीं बोलीं—हे परम जितधर्मी महानुभाव ! हमें इसप्रकारके उत्तम वरकी प्राप्ति कहां हो सकती है । बुद्धिमान कुमार अभय उनके मनका भाव पहिचान गये एवं “मैं महाराज श्रेणिकसे मिला सकता हूँ” ऐसा वायदा कर पहिले ही से अपने मकानसे राज महलतक जो सुरंग खुदवा रखी थी उससे आनेका इशारा कर दिया । रूपकी लोलुपी वे कन्यायें सुरंगमें होकर अभय कुमारके मकानकी ओर चलदों परंतु आते आते ज्येष्ठा और चन्दनाको कुछ संदेह होगया इसलिये ज्येष्ठा हार लेनेके बहाने और चन्दना अपनी मुट्ठी लेनेके बहानेसे पीछे लौट गईं । अकेली विचारी चेलना रह गई । कुमार अभयने उसे अपनी ओर खींच लिया एवं उसे साथ लेकर राजगृह

जिनमत्यमिधागारे ओपयस्य सुखं स्थितः ॥ २८७ ॥ अयेकदा नृपस्यैवं दृष्ट्वाऽनारविचर्जितं । धर्मं बौद्धमयं चित्ते कृतोद गद्गदस्वरा
॥ २८८ ॥ पंडितैरभयैर्नूनं वंचिता मारमर्दिता । किंकरोम्यधुना धर्माद्विना व्यर्थं हि जीवितं ॥ २८९ ॥ तो भुनक्ति न वक्ति सा कृशीभूय-
मुपागतः । दुग्धं वा पालकं राजैः कल्पयन् दुर्बलासि भो ॥ २९० ॥ चेलिनी प्राह हे नाथ ! कुल्लाने पतिनास्म्यहं । जैनधर्मं विहा-
न्यो धर्मो नैवास्ति भूतले ॥ २९१ ॥ त्वदुष्टेऽहं समायाता गंगांमध्यं च चर्मणि । मूर्तिश्च वैद्यत्री राहौ पतच्छूरेषु सुश्रुतिः ॥ २९२ ॥

पुरकी ओर चल दिये ॥ २८२—२८६ ॥ चेलिनीके साथ कुमार अभयका आना सुन महाराज
श्रेणिक अनेक सामंतोंसे वेषित हो उनके सन्मुख आये । जिनमती नामके मंदिरमें चेलिनीके
साथ उनका पाणिग्रहण हो गया जिससे वे सुख पूर्वक रहने लगे ॥ २८७ ॥

एक दिन महाराणी चेलिनी गृहस्थोंके आचारसे रहित बौद्धधर्मको आचरण करते महाराज
श्रेणिकको देखकर चित्तमें बड़ी दुःखित हुई एवं गद्गद स्वरसे इसप्रकार रोने लगी—हा काम
की व्यथासे पीडित मुझे चतुर अभय कुमारने ठग लिया । बातोंमें फुसलाकर विधर्मी राजा
के साथ मेरा विवाह करा दिया । धर्मकी यहां कुछ भी मर्यादा नहीं सूझ पड़ती इसलिये मैं इस
समय क्या करूं ? क्योंकि बिना धर्मके जीवन विफल है ॥ २८८—२८९ ॥ बस अत्यंत दुःखित
हो उसने खाना बोलना सब छोड़ दिया जिससे वह एकदम दुर्बल हो गई । उसकी ऐसी दुःख-
दायी अवस्था देख महाराज श्रेणिकने पूछा-- प्रिये ! क्या कारण है जो तुम दिनों दिन दुर्बल
होती चली जाती हो ? उत्तरमें चेलिनीने कहा—प्राणनाथ ! मेरा विवाह तो हुआ परंतु मैं निकृष्ट
स्थानमें लाकर डाल दी गई क्योंकि सिवाय जैनधर्मके संसारमें अन्य कोई भी धर्म नहीं सब
धर्माभास हैं । राजन् ! जिसप्रकार महानिकृष्ट कुत्तेके चमड़ेमें गंगाजल सरोखी पवित्र जल भर
दिया जाता है, कौन पदार्थ कैसा है ? तनिक भी विचार नहीं किया जाता उसीप्रकार कुत्तेके चाम
के समान आपके घरमें मैं गंगाजल सरोखी आ गई हूँ तथा जिसप्रकार राहुके विद्यमान रहते भा

श्रुत्वा रराण राजेन्द्रः शृणु क्वक्षि ! महत्तवः । जाठराग्निमंशधर्मो यस्माद्राज्यं सुखं धनं ॥ २६३ ॥ प्रोवाच चेलिनो दक्षा जिनः स्या-
द्वादनयकः । रागद्वेषविनिर्मुक्तो ध्यानलीनो निर्जनः ॥ २६४ ॥ केवलज्ञानसर्वज्ञः तनुं तारयितुं क्षमः । तत्समो न भवेदन्यो देवः
शौद्धोधनादिकः ॥ २६५ ॥ निर्ग्रन्थगुरुमिस्तुत्या नापरे गुरवो मताः । संस्थाप्य सुमतं बौद्धमतं निर्मेत्स्य सा स्थिता ॥ २६६ ॥ प्रोवाच

उसकी स्त्री रोहिणी विधवा ही मानी जाती है अर्थात् परमतमें राहुको केवल शिरस्वरूप ही माना है इसलिये रोहिणीके लिये उसका रहना न रहना एकसा है उसीप्रकार विना धर्मके मेरा महाराणीपद भी व्यर्थ है । तथा जो शूद्र पतित हैं उनकेलिये वेद पढ़नेका अधिकार नहीं यदि वे पढ़ें तो उनका पढ़ना निकृष्ट माना जाता है उसीप्रकार मैं पवित्र वेदस्वरूप हूँ यह घर पतित शूद्रस्वरूप है इसलिये मेरा यहां रहना अयुक्त है अतः राजगृहमें आना मेरा बड़ा दुःख-दायी हुआ । महाराणी चेलिनोके ऐसे वचन सुन उत्तरमें महाराजने कहा—

हिरणीके समान नेत्रवाली महाराणी । जिसतरह तुम जैनधर्मको ही धर्म समझ रही हो उस प्रकार मेरा भी यह दृढ़ सिद्धांत है कि संसारमें बौद्धधर्म ही महाधर्म है । उससे बढ़कर कोई धर्म नहीं क्योंकि राज्य सुख धन जितने भी उत्तम पदार्थ हैं इस बौद्धधर्मकी ही कृपासे प्राप्त होते हैं । महाराणी चेलिनीको जैनधर्मका परिपूर्ण श्रद्धान था महाराजको बात उसे सहन न हो सकी इस लिये उसने शीघ्र ही उत्तर दिया—राजन् ! भगवान् जिनेंद्र स्याद्वाद-अनेकांत बादके स्वामी है । राग द्वेषसे रहित हैं । ध्यानमें लीन हैं । केवल ज्ञानसे युक्त होनेसे सर्वज्ञ हैं । स्वयं तरनेवाले और दूसरोंको भी तारनेवाले हैं । भगवान् जिनेंद्रके समान बौद्धधर्मके शौद्धोधन आदि देव नहीं हो सकते ॥ २६०—२६५ ॥ तथा जैनधर्मके अन्दर परिग्रहरहित निर्ग्रन्थ गुरु माने जाते हैं । निर्ग्रन्थ गुरुओंके समान संसारमें अन्य गुरु नहीं हो सकते बस इसप्रकार अपने मत-जैनमतका स्थापन कर और बौद्धमतका खंडनकर महाराणी चेलिनी शांत रह गई ॥ २६६ ॥ महाराज श्रेणिकने भी

भूयती रात्रि ! कुरु पूजादिकं सदा । दुःखं मुक्त्योन्मनी भूत्वा कुरु धर्मं यथाशक्ति ॥ २६६ ॥ श्रेणिकोद्दोहसंवा दि श्रत्वा रात्रयो-
ग्रहं तदा । प्रतिबोधनहेतुत्वादागतश्चेन्नित्यगृहे ॥ २६८ ॥ प्रोवाच शृणु भी बाले ! जैनाः कुगुरवो मताः । न नग्नाः पशवोऽपि स्य-
र्वयं ज्ञानाब्धिपारगाः ॥ २६९ ॥ तदा वक्ष्ये रात्री तं तावको धर्म ईदृशः । चेद्वेदोऽजित्वाऽहं गृहीष्यामि न संशयः ॥ २७० ॥

कुछ भी न कह कर यही कहा श्रियरानी ! तुम इच्छानुसार अपने देव जिनेंद्रकी पूजा आदि करो
दुःख छोड़ो एवं जिसरूपसे तुम्हें रुचें एकाग्रचित्त हो अपने धर्मका आराधन करो ॥ २६७ ॥
राजा श्रेणिकसे बौद्धगुरुओंने सुना कि महाराणी चेलनीको जैनधर्मके अन्दर बड़ा आग्रह है इस
लिये वे चेलनीके महलमें उसे समझानेके लिये आये और अपनी गुरुता प्रगट करते हुए यह
कहने लगे--

अरे मूर्ख लड़की ! तू जो जैन गुरुओंकी प्रशंसा करती है यह तेरा अज्ञान है । जैनियोंके
गुरु कुगुरु हैं । यदि उन्हें नग्न मानकर ही गुरु माना जाय तो नग्न तो पशु भी हैं उन्हें भी गुरु
मानना चाहिये । देख हमलोग ज्ञानरूपी समुद्रकी पारपर पहुँचे हुए हैं--परम ज्ञानी हैं इसलिये
हमको ही तुम्हें गुरु समझना चाहिये । बौद्धगुरुओंके वचन सुन बुद्धिमती रानी चेलनीने विशेष
विवाद करना उचित नहीं समझा बस यही उत्तर दिया कि यदि आपका धर्म इतना उत्तम है तो
मैं आप लोगोंको भोजन कराकर आपका धर्म ग्रहण करूंगी । इस बातमें जरा भी संदेह नहीं
॥ २६६—३०० ॥ दूसरे दिन रानीने बौद्धसाधुओंको निमन्त्रण दे भोजनके लिये बुलाया । उन्हें
भोजनके लिये बिठा दिया । एक एक जूता उनका उठवा मंगाया । खूब पीसकर उसे निकृष्ट छाल
में डाल मसाला मिला दिया और थोड़ा थोड़ा कर सबोंको परोस दिया गया । वे भी कोई स्वादिष्ट
चीज जान खा गये । जब बाहिर आकर अपने मठको जाने लगे तो जूते खोजने लगे । गुरुओंके
जूतोंकी चोरीका राजमहलमें हुल्लाड़ मच गया । रानी चेलनीने भी वह हुल्लाड़ सुना । उसने यही

तदा निमग्न्य बौद्धाध्यानुपासयदीया तथा । क्षिप्ता गीष्मोष्ण सुगन्धे व गते पतं दृढादिति ॥ ३०१ ॥ बौद्धसंघात्ततः श्रुत्वा राज्ञोपालं-
भिता च सा । शृणु राज्ञि ! महाधर्मादयो धर्मो न विद्यते ॥ ३०२ ॥ ततो जगाद सा भामा परीक्ष्य ध्यानसंस्थितान् । क्षणिकत्वादगुरुन्
बौद्धान् करिष्ये तावकं वृष ॥ ३०३ ॥ अन्यदा सा गत्वा तेषां ध्यानकाले कलाम्विता । सख्या संज्वालयाभास तदगृहं तैः पलायितं ॥

कहा कि बौद्धगुरु तो सर्वज्ञ हैं वे अपने दिव्य ज्ञानसे समझें कि उनके जूते कहां हैं ? रानीके ये
वचन सुन बौद्धगुरु अवाक रह गये । भक्त मार उन्हें यही कहना पड़ा कि हमारा ज्ञान ऐसा नहीं
जो यह बात जान सके । थोड़ी देर बाद निकृष्ट छाछ खानेके कारण उन्हें बमि हो गई । बमिमें
ज तोंके हिलके निकले इसलिये वे बड़े लज्जित हुए और चुप चाप अपने मठोंको चले गये ॥ ३०१ ॥
रानीने बौद्धगुरुओंका जो अपमान किया था सारा महाराजसे जाकर सुनाया गया । अपने गुरुओं
की यह अवज्ञा सुन उन्हें भी बड़ा क्रोध आया वे रानीके पास आये और उलहनोंके साथ उल्टी
सीधी सुना कर यही कहने लगे देखो रानी ! बौद्धधर्मही महाधर्म है उससे भिन्न अन्य कोई भी
संसारके अन्दर उत्तम धर्म नहीं । तुम्हें उसकी इसरूपसे अवज्ञा नहीं करनी चाहिये । महा
राजको कुपित देख रानी विशेष कुछ न कह कर यही कहने लगी—महाराज ! यदि आप
बौद्धधर्मको ही सर्व श्रेष्ठ धर्म मानते हैं तो अच्छी बात है 'क्षणिक धर्मके अनुयायी बौद्ध गुरु
जिससमय ध्यानमें लीन होंगे उस समय मैं उनकी परीक्षाकर आपका धर्म धारण करूंगी आप
विश्वास रखें ।

एक दिन जब कि समस्त बौद्धसाधु ध्यानमें लीन थे उस समय रानी चेलनी उनके मठमें
गई । पासमें खड़े रहने वाले किसी मनुष्यसे यह सुनकर कि "यद्यपि इन साधुओंके शरीर यहां पड़े
दीखते हैं परंतु इनकी आत्मा ध्यानके योगसे इससमय सिद्धालयमें विराजमान है" उनकी असली
परीक्षा करनेके लिये रानीने सखीके हाथसे मठमें आग लगवा दी । दोंग कबतक चल सकता है ?

३०४ ॥ राज्ञ्या कृतं नृणः श्रुत्वापीरपद्रात्रिपाननी । इदं कर्म न कर्तव्यं त्वया नियं च दुःखदं ॥ ३०५ ॥ चेरयं धर्मवती जैनी वृषापालन-
पंडिता । ज्वालयेस्त्व' कथं जीवान् करभोद ! विचारय ॥ ३०६ ॥ तदा स्मित्वाऽवदद्वाही शृणु गंभीरशासन ! मयेत्यवगतं मोक्षं
गताः संति प्रबोधकाः ॥ ३०७ ॥ कलेवरान् यद्वेप्यति तदा संसारवर्तिनः । संसारे वर्तते दुःखं यतो ज्वालयितं गृहं ॥ ३०८ ॥ (युग्मं)
एतस्योपरि वृत्तांतं गदापि शृणु भूयते ! । वत्सदेशेऽस्ति विख्याता कौशांबी नगरी शुभा ॥ ३०९ ॥ वसुपालोऽस्ति तद्राजा भामिनी

आगको देखते ही वे समस्त साधु मठ छोड़कर एकदम भाग गये । रानी चेलिनीके इस कृत्यका
पता महाराज श्रेणिकको लग गया वे शीघ्र रानीके पास आये और इसप्रकार उससे कहने लगे—

रानी ! साधुओंके मठमें जो तूने आग लगाई है यह बड़ा ही निंदनीक और दुःखदायी कार्य
किया है ऐसा निंदनीक और दुःखदायी कार्य तुझे नहीं करना चाहिये । तू तो जैनधर्मकी पालन
करने वाली और दया करनेमें पंडिता समझी जाती है जरा बता तो सही तूने मठको जलाकर
जीवोंके विध्वंस करनेका कार्य कैसे कर डाला ? महाराजके ये वचन सुन मुस्कराकर रानीचेलिनीने कहा

नरनायक प्राणनाथ ! एक मनुष्यके कहे अनुसार मैंने यह समझा था कि ये समस्त साधुगण
मोक्षमें चले गए हैं । तथा यह निश्चित बात है कि जबतक शरीरोंके अन्दर लालसा रहती है तब
तक संसारमें घूमना पड़ता है और संसारमें अनेक प्रकारके दुःख भोगने पड़ते हैं । उनका यह
समस्त दुःख नष्ट हो जाय इस आशासे मैंने उनके मठमें आग लगवा दी थी । मैं इसी विषय
को लेकर एक कथा सुनाती हूँ आप ध्यान पूर्वक सुनें—

वत्सदेशमें एक कौशांबी नामकी नगरी है जो कि पृथिवीपर प्रसिद्ध और शुभ है । किसी
समय उसका पालन करने वाला राजा वसुपाल था और उसकी रानीका नाम यशस्विनी था जिस
की कि कीर्ति अनुपम गुणोंसे सर्वत्र व्याप्त थी एवं वह संसारमें प्रसिद्ध और हरिणीके समान
मनोहर नेत्रवाली थी ॥ ३०२—३०६ ॥ उस नगरीमें एक सागरदत्त नामका सेठ भी रहता था

च यशस्विनी । यशस्विनी सुविख्याता तस्याभून्मृगलोचना ॥ ३१० ॥ श्रेष्ठी सागरदत्ताख्य आस्ते सगरदत्तनी । गंभीरी गुणवान्
वीर्यो राजमान्यो विदांबरः ॥ ३११ ॥ भार्या वसुमती तस्य तन्मनःपद्मचंद्रिका । चंद्रवक्त्रा विचारज्ञा तन्वंगी कठिनस्तनी ॥ ३१२ ॥
तत्रैवास्ते धनी चान्यः श्रेष्ठी श्रेष्ठक्रियाग्रणीः । समुद्रदत्त इत्याख्योः धर्मकार्यविदांबरः । अछिदत्ताभिश्च रामा वर्तते विमलानना
॥ ३१३ ॥ (षट्पदी) ताभ्यामेव कृता नूनं प्रतिज्ञा मम चेतसुतः । तत्रैव पुत्रिका भार्या भविती वा यदा तदा । तयोः पाणिग्रहो नूनं
भविता नात्र संशयः ॥ ३१३ ॥ (षट्पदी) एवं गते कियत्काले सिंधुदत्तात्सुतोऽजनि । वसुमत्याः सुमित्राख्यः सर्परूपधरो हि सः ॥
३१४ ॥ सुता समुद्रदत्ताश्च तस्या नागार्पणाऽभवत् । सा च रूपकलारंभा तयोः पाणिग्रहः कृतः ॥ ३१५ ॥ एकदा मातरं दृष्ट्वा रुदन्ती

जो कि सागरके लक्ष्मण अपरिमित बलका खानी था, गंभीर था, पराक्रमी था एवं राज्यमान्य
और विद्वानोंमें श्रेष्ठ था ॥ ३१० ॥ उसकी स्त्रीका नाम वसुमती था और वह सेठ सागरदत्तके
मनरूपी (रात्रिविकासी) कमलके प्रसन्न करनेमें चांदनी सरीखी थी । चन्द्रमाके समान मुख
वाली थी । विचारशील तन्वंगी और कठिन स्तनोंसे शोभायमान थी ॥ ३११ ॥ उसी नगरमें एक
समुद्रदत्त नामका और भी सेठ निवास करता था जो कि उत्तम क्रियाओंके करनेमें प्रधान था
और धर्मकार्योंके करनेमें अत्यंत बुद्धिमान समझा जाता था । उसकी स्त्रीका नाम अछिदत्ता था जो
कि निर्मल मुखसे शोभायमान थी ॥ ३१२ ॥ दोनों सेठोंने आपसमें प्रतिज्ञा करली थी कि यदि
मेरे पुत्र होगा और तुम्हारे पुत्री होगी अथवा मेरे पुत्री होगी और तुम्हारे पुत्र होगा तो उन दोनों
का आपसमें विवाह कर दिया जायगा इसमें कोई संदेह नहीं । इस प्रतिज्ञाके बाद बहुत कालके
बीत जानेपर सेठ सागरदत्तके सेठानी सुमित्रासे एक पुत्र हुआ जिसका नाम सुमित्र रखवा गया
और उसका स्वरूप सर्प सरीखा था । तथा सेठ समुद्रदत्तके सेठानी अछिदत्तासे उत्पन्न एक पुत्री
हुई जो कि रूप और कलाकी खानि थी और नागदत्ता उसका नाम था । प्रतिज्ञाके अनुसार उन
दोनोंका विवाह हो गया और वे अपने भाग्यानुसार रहने लगे ॥ ३१३—३१५ ॥ नागदत्ताकी मा

नागदत्तिका । पप्रच्छ कारणं मातः ? कथं रोविषि संप्रति ॥ ३१६ ॥ सुतामवीचवन्माता त्वं मृगाक्षी घनस्तनी । भर्ता ते सर्परूपोऽतो
 रौमीति रात्रियानने ! ॥ ३१७ ॥ सुतेत्यूचे च हे अंब ! मा दुःखं कुरु सर्वथा । रात्रौ भूत्वा नरः सोऽपि मुक्त्वा सर्पकलेवरं ॥ ३१८ ॥ रम-
 तेऽमा मया शुभ्रं प्रातर्गृह्णाति तद्वपुः । पतच्छ्रुत्वाऽवदन्माता प्रेषितव्योऽस्तु पुद्गलः ॥ ३१९ ॥ (युग्मं) एकदा समयं प्राप्य प्रेषितः
 पुद्गलस्तथा । जनन्या ज्वालितः सोऽपि नरो भूत्वा स्थितस्तदा ॥ ३२० ॥ एवं ज्ञात्वा महाराजन् ! मया च ज्वालितं गृहं ।

अछिदत्ता अपनी पुत्रीके दुःखका स्मरण कर रो रही थी कि उसपर नागदत्ताकी दृष्टि जा पड़ी
 एवं अपनी माताको रोती देखकर वह इसप्रकार कहने लगी—

मा ! विना कारण तू इससमय क्यों रो रही है ? उत्तरमें अछिदत्ताने कहा-पुत्री ! तू तो मृग
 लोचनी और कठिन स्तनोंसे शोभायमान परम सुन्दरी है और तुझे पति सर्पके अकारका मिला
 है । प्रियपुत्री ! मैं इसी दुःखका स्मरण कर रो रही हूँ ॥ ३१६—३१७ ॥ माताके ये वचन सुन
 नागदत्ताने कहा-मा ! तू किसी प्रकारका दुःख मत करे, मेरा पति रातमें सर्पका शरीर छोड़कर
 मनुष्यका रूप धारण कर लेता है । समस्त रात्रि मनुष्य रूपसे ही मेरे साथ रमण क्रिया करता है
 किंतु जब प्रातः काल होता है उस समय पुनः सर्पका शरीर धारण कर लेता है और सारे दिन
 सर्पाकारसे रहता है । पुत्रीके ये वचन सुन अछिदत्ताने कहा यदि यह बात सत्य है तब वह सर्पका
 शरीर मेरे पास भेज देना जिससे मुझे भी निश्चय हो जाय । नागदत्ताने अपनी माकी बात मान
 ली । अवसर पाकर एक दिन वह सर्पका शरीर उसने अपनी माके पास भेज दिया । उसकी माने
 उसे अग्निमें जला दिया बस उस दिनसे वह नागदत्ताका पति मनुष्यरूपसे ही रह गया । प्रिय
 महाराज ! यही समझ कर मैंने बौद्ध सन्यासियोंके मठमें आग लगवा दी थी क्योंकि मुझे निश्चय
 हो गया था कि समस्त बौद्ध साधु तो सिद्ध होकर मोक्षमें जा बिराजे हैं । ये जो इनके कलेवर
 रह गये हैं वे व्यर्थ पड़े हैं । इनका जला देना ही अच्छा अन्यथा फिर उन्हें आकर इन कलेवरों

बौद्धाः सिद्धाः स्थिता मोक्षे किमेतैश्च कलेवरैः ॥ ३२१ ॥ श्रुत्वा राजा गतस्तस्या दातुं प्रत्युत्तरं स वै । असक्तत्वान्मनोऽभीष्टं कुरु प्रोक्त्येति सद्रवः ॥ ३२२ ॥ अन्यथा मृगयार्थं स गतो राजा वनांतरे । यशोधरं मुनिं दृष्ट्वा पप्रच्छेति भटान्प्रति ॥ ३२३ ॥ कोऽयं नम्रो जटाधारी निश्चलो तेजसान्वितः । तैः प्रोक्तं च नराधीश ! । चेलिनीगुरुवित्त्यलं ॥ ३२४ ॥ तदा राजा महाकोपाच्चिंतयामास मानसे । राक्षसा चोपद्रवं मोता गुरवो मम संप्रति ॥ ३२५ ॥ पृच्छामि गौरवं वैरं मत्वेति पापसंचयं ॥ ३२६ ॥ (षट्पदी) कुर्कुरान् यमदंष्ट्राभान् शतपंचमितांस्तदा । मुमोच योगिनं गत्वा तेमुस्तत्पादपंकजं ॥ ३२७ ॥ कीलिताः शुनका नूनं मंत्रैः पाण्डिनाऽमुना ।

को धारण करना पड़ेगा और दुःख सहना होगा ॥ ३१८-३२१ ॥ महाराणी चेलनाके ये वचन सुन महाराज कुछ भी प्रत्युत्तर न दे सके किंतु असमर्थ हो यही कहने लगे बाबा ! तुझे सूझे सो कर. तुझसे कुछ कहना व्यर्थ है ॥ ३२२ ॥

एक दिन महाराज श्रेणिक अनेक सुभटोंके साथ शिकारके लिये गये । वनके मध्यभागमें उन्हें यशोधर नामके मुनिराज दीख पड़े । उन्हें देख अपने साथी सुभटोंसे उन्होंने पूछा—नग्न जटाधारी निश्चल और अपने शरीरकी प्रभामंडलसे व्याप्त यह कौन है ? उत्तरमें सुभटोंने कहा कृपानाथ ! यही तो महाराणी चेलिनीका गुरु है । राजा श्रेणिक तो महाराणी चेलिनीसे अपने गुरुओंका बदला लेनेके लिये लालायित थे ही । “यह चेलिनीका गुरु है” यह बात सुनते ही मारे क्रोधके उनकी आत्मा भबक उठी वे मन ही मन विचारने लगे—रानीने अनेक प्रकारके उपद्रव कर इससमय मेरे गुरु व्याकुल कर रखे हैं । इससमय रानीसे गुरुओंका बदला लेनेका मुझे अवसर मिला है वस इसप्रकार पापोंका संचय करनेवाला विचारकर यमराजके समान राजा श्रेणिकने दाढ़ोंके धारक शीघ्र ही पांचसौ कुत्ते मुनिके ऊपर छोड़ दिये परंतु जैसे ही वे मुनिराजके पास पहुंचे उनके प्रभावसे कुत्तोंका क्रोध शांत हो गया एवं वे सरलस्वभावसे मुनिराजके चरणकमलों को नमस्कार करने लगे ॥ ३२३—३२७ ॥ कुत्तोंकी यह विचित्रदशा देखकर राजा श्रेणिकका

तदोत्फणमहानागं मार्य कण्ठे ससर्ज सः ॥ ३२८ ॥ चतुर्थदिवसे राक्षा मध्यरात्रे निवेदितं । चेलिन्याश्च तदा ध्रुत्वा शोकं कृतवतो च
सा ॥ ३२९ ॥ अबोधमहिषीं राज्ञा मा त्वं दुःखं सुन्दरि ! । मंत्रवादी च पाखंडी गतो नूनं भविष्यति ॥ ३३० ॥ राक्षी वभाण राजेंद्र
यद्ययं मम सन्तुगुरुः । अमविष्यत्तदा नूनं नागमिष्यन्महायमी ॥ ३३१ ॥ इत्युक्त्वा चेलिनी राक्षी नृपेण सहसागता । ध्यानारुद्धं
मुनिं दृष्ट्वा हाहेति वचनं जगौ ॥ ३३२ ॥ पञ्चा चोत्तार्य वेगेन पिपीलोश्च द्विजिह्वकं । पश्चान्नताम सद्गतया धर्मध्यानस्थितं मुनिं
क्रोध और भी अधिक भबक गया वे कहने लगे इस दुष्ट पाखंडीने मन्त्रोंसे कुत्तोंको कील डाला
बस स्वयं वह मूर्ख राजा मुनिराजकी ओर भपटा और भयंकर महानागको मार कर उनके गलेमें
छोड़ दिया ॥ ३२८ ॥ राजा श्रेणिक राजगृह नगर लोट आये । राजकाजकी विशेष भूभटसे
तीन दिन तक तो वे रानी चेलिनीके महलमें न जा सके । चौथे दिन वहां गये और ठोक आधो-
रातके समय मुनिराजके साथ जो दुर्व्यवहार उन्होंने किया था सारा रानी चेलनासे कह सुनाया
धर्म भक्त रानी चेलनाने जिससमय भयंकर समाचार सुना वह एकदम कप गई और अनेक
प्रकारसे शोक करने लगी । उसकी यह दुःखित अवस्था देख महाराज श्रेणिकका भी हृदय पत्ती-
जने लगा वे बार बार महाराणीसे यही कहने लगे--सुन्दरी ! तू रंचमात्र भी शोक न कर । वह
मंत्रवादी पाखंडी साधु था । गलेसे सर्प फँककर वह अवश्य कहीं चला गया होगा । महाराजके ये
वचन सुन चेलिनीने कहा--राजन् ! यदि वह मेरा पवित्र गुरु होगा तो वह महामुनि वहांका वहीं
विराजमान--होगा वहांसे कहीं भी न जा सकेगा । ऐसा कहकर वह रानी चेलिनी उसी समय
राजाके साथ मुनिराज यशोधरके स्थानपर पहुंच । मुनिराज एकदम ध्यानारुद्ध थे--मुझे क्या कष्ट
दिया जा रहा है इस बातका उन्हें रंचमात्र भी विचार न था । मुनिराजको ध्यानारुद्ध देख धर्म-
भक्त चेलना हाय हाय कहने लगी । जल्दीसे पासमें जाकर सड़सीसे सपे खींच कर नीचे डाल
दिया । चिउंटी भी पोंछकर साफ करदी । पीछे धर्मध्यानमें स्थित उन मुनिको भक्तिपूर्वक प्रणाम
किया ॥ ३२९—३३३ ॥ वे मुनिराज परम वीतरागी थे । सदा शत्रु और मित्रोंमें समानताकी

॥ ३३३ ॥ क्वाभ्यामदायि सद्धर्मवृद्धिः श्रीमुनिनाऽमुना । तदा राजा निजे चित्ते दुःखं चक्रे महोत्कटं ॥ ३३४ ॥ अहो मया कृतं नूनं पापं श्रीमुनिघातजं । तदाऽवोचद्वृषीराजन् ! मा दुःखं कुरु चेतसि ॥ ३३५ ॥ आश्चर्यकं हि भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभं ॥ ३३६ ॥ (षट्पदी) श्रुत्वा राजा तदाऽवोचत् चेलिनीं प्राणवल्लभां । हे रामेऽयं कथं वेद ममांतर्गतमाधनां ॥ ३३७ ॥ अवीभणत्तदा राज्ञी का कथास्य लवस्य भावना भाते रहते थे । जिससमय “तुम्हारी धर्मवृद्धिहो” यह मुनिराजने आशीर्वाद दिया-अपनी भक्त रानी और द्वेषी राजामें कुछ भी भेदभाव न रख दोनोंको समान रूपसे समझा । उससमय मुनिराजकी यह लोकोत्तर क्षमा देखकर महाराज श्रेणिक बड़े लजित हुए एवं अपने मनमें उग्र दुःख करने लगे ॥ ३३४ ॥ मुनिराजके शिष्ट वर्तावसे वे मन ही मन यह विचारने लगे हाय मैंने श्रीमुनिराजके मारनेका घोर पाप किया है, मुझे धिक्कार है । मुनिराज दिव्य ज्ञानी थे अपने ज्ञानसे उन्होंने राजाके मनकी बात जान ली इसलिये वे यही कहने लगे कि--राजन् ! तुम्हें अपने चित्तमें किसी प्रकारका दुःख नहीं करना चाहिये जो शुभ और अशुभ कर्म किया गया है उसका अच्छा बुरा फल अवश्य भोगना पड़ता है ॥ ३३५ ॥ मुनिराजके ये अचरजभरे वचन सुन महाराज श्रेणिकने चेलिनीसे कहा--प्रिये ! मेरे मनके भीतरकी बात मुनिराजने कैसे पहिचान ला ? उत्तरमें चेलिनीने कहा--प्राणनोथ ! इस बातके लिये आप क्या अचरज कर रहे हैं मुनिराजने जो आपके मनका भाव पहिचान लिया यह तो बहुत ही तुच्छ बात है यदि आप पूछना चाहें तो अपने पूर्वभवोंका भी हाल पूछ सकते हैं । चेलिनीकी यह बात सुनकर महाराज श्रेणिकने अपने पूर्वभवोंकी पंछने की मुनिराजसे लालसा प्रगट की । मुनिराज भी अपनी गंभीर ध्वनिसे इस प्रकार कहने लगे—

इसी जंरूद्वीपके भरतक्षेत्र संबंधी आर्यखंडमें एक सूरकांत नामका देश है । इस सूरकांत देश में एक सूरपुर नामका नगर है उसका स्वामी राजा मिश्र था । उसकी पटरानीका नाम भाषिनी

भो । पूछय त्वं भवान् स्वीयास्तद्दामास्त्रिद्वयम् मुनिं ॥ ३३ ॥ तदा गंभीरधीरेण मुनिराजो जगाद तं । भूषु राजन् ! समाश्रय अंश-
 द्वीपेऽत्र भारते ॥ ३३६ ॥ भार्यकांश्चैव सुकांतवेशे सुपुरे पुरे । मित्रनाम्ना महाराजा भीमली तस्य भामिनी ॥ ३३७ ॥ तयोः पुत्रः सुमि-
 त्राख्यः प्रधानो मतिसागरः । तस्यैव रूपिणी कान्ता सुषेणस्तनुजोऽहनि ॥ ३३८ ॥ सुमित्रो मंत्रिपुत्रेण सार्धं क्रीडति सर्वदा । संता-
 पयति तं नित्यं भूमौ पात्य च महिभिः ॥ ३३९ ॥ एकदा जलकेत्यर्थं दीर्घिकायां ममज्जतुः । पञ्चदशसाक्षीणो निभग्नो जलमध्यतः ॥
 ३४० ॥ सविषेको विशालाक्षः सुमित्रो राज्यमाप वै । अत्कृत्यतदा स्थाते सुषेणः संभ्रमादिदं ॥ ३४१ ॥ कौमारत्वेऽप्ययं राजा मे-
 संतापितवांस्तदा । मुदिप्यत्यधिकं नूनं संप्रतीत्य विचिंत्य तः । मुनिं गत्वा वने गत्वा प्रवक्ष्यामि पपाट सः ॥ ३४२ ॥ (पटपट)

था और उन दोनोंके सुमित्र नामका पुत्र था । राजा मित्रके प्रधान मंत्रीका नाम मतिसागर
 था उसकी स्त्रीका नाम रूपिणी था और उससे सुषेण नामका पुत्र उत्पन्न था । राजपुत्र सुमित्र
 मंत्रीपुत्र सुषेणके साथ सदा क्रीड़ा करता था । सरलचित्त मंत्रीपुत्रको वह खेलते समय सदा
 संताप दिया करता था एवं जमीन पर डालकर खूब मुकोंकी मार मारता था ॥ ३३७—३४२ ॥
 एक दिन वे दोनों बाबड़ीपर जलक्रीड़ा करनेके लिये गये एवं कमलके पत्तोंसे मुंह ढांककर
 जलके भीतर पैठ गये ॥ ३४३ ॥ कदाचित् विवेकशाली और विशाल नेत्रोंके धारक राजपुत्र
 सुमित्रको राज्यकी प्राप्ति हो गई । उसे राजा जान मंत्रीपुत्र सुषेण मन ही मन भ्रमसे यह विचार
 करने लगा—

यह राजा सुमित्र जिससमय कुमार था उस समय भी मुझे मर्यादासे अधिक संताप देता
 था । अब यह राजा होगया है इसलिये यह अब और भी संताप देगा, बस ऐसा मनमें पक्का विचार
 कर वह सीधा वनमें मुनिराजके पास चला गया । उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया दिगंबरीदोक्षा
 धारण कर ली एवं सिद्धांत ग्रन्थोंका अध्ययन करने लगा ॥ ३४४—३४५ ॥ सुमित्र खिलाड़ी
 स्वभावका मनुष्य था सुषेणसे वह किसीप्रकारका द्वेष नहीं रखता था किंतु उसे बड़े प्रेमसे देखता

सुमित्रां हि निजं मित्रमदृष्ट्वा तद्गृहं गतः । विलोकनाय श्रुत्वा तं दीक्षितं दुःखयानभूत् ॥ ३४६ ॥ एकदा स्ववने राजा समायातं सुनीश्वरं । श्रुत्वा जगाम संप्रीत्या वंदनाय बहुश्रुतं ॥ ३४७ ॥ वंदित्वा प्राह हे मित्र ! त्वमेहि सदनं प्रति । अर्धराज्यं ददामोति श्रुत्वा प्राह मुनिर्वचः ॥ ३४८ ॥ तपसा प्राप्यते राज्यं स्वर्गो दिव्यं शिवं सुखं । रत्याभभामिनीवृंदं दुष्प्राप्यं तेन किं भवेत् ॥ ३४९ ॥ श्रुत्वा मौनीश्वरं वाक्यमवोचत्सादरादिदं । नागच्छसि यदा त्वं भीष्टुं शंखचर्जते ॥ ३५० ॥ एहि मे मंदिरे नूनं भोजनाय सुखेन च ॥

था । दिगंबरि दीक्षा ले लेनेके कारण जब सुमित्रका सुषेणसे मिलाप न हो सका तो वह स्नेहसे प्रेरित हो सुषेणको देखनेके लिये उसके घर गया परंतु वहांपर उसे मालूम हुआ कि वह मुनि हो गया है इसलिये वह बहुत दुःख मानने लगा ॥ ३४६ ॥ एक दिन राजा सुमित्रने सुनीश्वर को सूरपुरके वनमें मुनिराज सुषेण पधारें हैं, वह बड़े प्रेमसे बहुश्रुतके जानकार मुनिराज सुषेणकी वंदनाके लिये चल दिया ॥ ३४७ ॥ आस जाकर भक्तिपूर्वक मुनिराजको प्रणाम किया एवं स्नेहसे विह्वल हो इसप्रकार कहने लगा—

हे मित्र ! तुम घर चलो । मैं तुम्हें अपना आधा राज्य दूंगा—किसी बातका तुम्हें बलेश न होगा । उत्तरमें मुनिराजने कहा—राजन् ! संसारमें तप सर्वोत्तम पदार्थ है, इसीसे राज्य प्राप्त होता है इसीसे स्वर्ग इच्छानुसार द्रव्य मोक्ष एवं संसारके अन्य सुख भी प्राप्त होते हैं । रतिके समान सुन्दरी स्त्रियां भी इससे प्राप्त होती हैं विशेष क्या, संसारमें कोई भी ऐसी दुर्लभ वस्तु नहीं जो तपसे न मिलती हो ॥ ३४८—३४९ ॥ मुनिराजके ऐसे गंभीर वचन सुन राजा सुमित्रसे अन्य उत्तर तो न बना किंतु बड़े आदरसे वह यह कहने लगा—महाराज ! संसारका बढ़ाने वाले घरमें आनेकी यदि आपकी इच्छा नहीं है तो आप सुख पूर्वक भोजनके लिये मेरे मंदिरमें तो अवश्य पधारें इसका उत्तर भी मुनिराजने यह दिया—यदि मैं इसरूपसे भी तुम्हारे मंदिरमें भोजनके लिये आऊंगा तो अनुमोदना दोष लगेगा क्योंकि करना कराना और अनु-

३५२ ॥ मुनिराहेति राजानं यदेभि भोजनाय वै । अनुमोदनं तदा दोषोऽन्नततो जीवनं च धिक् ॥ ३५२ ॥ श्रुत्वा नत्वा ययौ राजाऽरं-
जयत्स्वप्रजाः प्रजाः । एकदा दायितस्तेन पटशो हि पुरेऽखिले ॥ ३५३ ॥ भो लोकाः ! योमिने यो हि दास्यत्याहारमात्रकं । राजप्राप्तो
भवेत्सोऽपि भोजयिष्याम्यहं खलु ॥ ३५४ ॥ एकदा मुनिराजोऽसावागतो भोजनकृते । मासोपवासिको ध्यानी नैव केनापि रश्मिः
राजद्वारे यदा यातो वैरिदूतस्तदागतः । मुनिराज्ञा हि न ज्ञातो विग्रहत्वान्मुनिर्गतः ॥ ३५५ ॥ मासद्वयोपवासी स पारणार्थं समा-

मोदन करना ये प्रायः एक समान ही हैं तथा इस अनुमोदन दोषसे व्रत भंग होगा और व्रतके
विना संसारमें जीना व्यर्थ है । मुनिराजका यह उत्तर सुन राजा सुमित्र और अधिक कुछ न
बोल सका बस मुनिराजके वचन सुन और उन्हें नमस्कार कर राजमहल लौट आया एवं अपने
पुत्रके समान प्रजाको रंजन करने लगा । एकदिन बैठे ही बैठे उसके मनमें उचंग उठ खड़ी हुई ।
उसने समस्त नगरमें ड्योढ़ी पिटवा दी और यह घोषणा कर दी—

समस्त प्रजाको सूचित किया जाता है कि मुनिराज सुषेणको कोई भी आहार न दे । मेरी
आज्ञा न मानकर जो उन्हें आहार देगा वह राजाकी ओरसे दण्डित किया जायगा क्योंकि उन्हें
आहार देनेका पूरा संकल्प मैंने कर लिया है । केवल मैं ही उन्हें आहार दूंगा ॥ ३५० ३५४ ॥
एक मासके उपवासके बाद ध्यान शील वे मुनिराज सुषेण एक दिन आहारकेलिये नगरमें आये
मुनि चर्याके अनुकूल वे जहां तहां घरोंमें घूमे परंतु राजाके भयसे किसीने भी उन्हें आहार दान
न दिया ॥ ३५५ ॥ जिससमय वे राजमहलमें आहारकेलिये गये तो उस समय राजा सुमित्रके
किसी बैरीका दूत राजसभामें आ गया । उसकी गड़बड़में राजा उन्हें न देख सका । वे मुनिराज
अंतराय कर्मका प्रबल उदय जान बनको चले गये ॥ ३५६ ॥ दो मासके उपवासके बाद वे
पुनः पारणाके लिये नगरमें आये । मुनिचर्यानुसार सर्वत्र घूमकर वे आहारके लिये राजमहल
में गये । जिससमय मुनिराज राजमहलमें प्रविष्ट हुए उसीसमय राजा सुमित्रके किसी दुष्ट

गतः । पुनः राज्ञो गजो दुष्टः स्तम्भमुत्क्षेप्य निर्ययौ ॥ ३५७ ॥ तदा सह त्रिंशत्तेन राज्ञा नावगतो मुनिः । द्विपक्षांतं तपो नीत्वा पुनः
कांतारमाप सः ॥ ३५८ ॥ तृतीयपारणायां स क्षीणमात्रो जटान्वितः । राजधान्यां तदा दाहो घमूय लयकालवत् ॥ ३५९ ॥ तदा भूपा-
दिभिर्नैव दृष्टः श्रीमुनिपुङ्गवः । प्रत्यूहं वै यदा कृत्वा याति लोकास्तदा जगुः ॥ ३६० ॥ अयं राजा महापापी भोजनं नैव यच्छति । दातारं
कारयत्येव श्रुत्वा राज्ञो चुकोप सः ॥ ३६१ ॥ क्रोधस्खलितपाद्योगी पतद्भूमौ निदानकः । अजीकरन्महादुष्टं हन्मीदृक्षो भवाम्यहं ॥
३६२ ॥ मृत्वा व्यंतरतां यातो धिक्छिन्नदानमनर्थकः । तमावेद्य मृतं राजा तद्दुःखात्तापसोऽजनि ॥ ३६३ ॥ कुतपःस्थः सुरो जज्ञे ततश्चपु-

गन्तव्ये जपने लंघनेका खूँटा लोड़ उल्ला । सारे महल और नगरमें खलबली पड़ गई बस उसदिन
भी मय अपने रणवासके राजा मुनिराजको न देख सका एवं दो पत्नोंका और भी आहारका
नियम लेकर वे मुनिराज वनको चले गये ॥ ३५७—३५८ ॥ तीन मासके उपवासके बाद वे पुनः
पारणाके लिये नगरमें आये । आहारके बिना उस समय उनका शरीर एकदम जोण हां गया था
और बड़ी बड़ी जटायें बढ़ गई थीं परंतु जिससमय मुनिराजने नगरमें प्रवेश किया उसी समय
प्रलय कालके समान नगरमें आग लग गई इसलिये किसी राजाआदिको दृष्टि मुनिराजपर न
पड़ी । वे अपना अंतराय समझ वनको लौट दिये । उनकी दुःखदायी जोण दशा देख कुछ लोग
आपसमें कहने लगे—

यह राजा बड़ा भारी पापी है न तो स्वयं मुनिराजको भोजन देता है और यदि कोई अन्य
दाता देता है तो उसे देने नहीं देता । बस पुरवासी लोगोंके ये शब्द सुन मुनिराज अशुभ काम
के उदयसे राजापर आग बबूला हो गये । चलते चलते तीव्र क्रोधसे उनके पैर लटपटाने लगे ।
असमर्थतासे जमीनपर गिर गये एवं तीव्र क्रोधसे अज्ञानी बन यह महादुष्ट निदान किया कि मैं
आगे ऐसा हों जो इसदुष्टको मार सकूँ ॥ ३५९—३६२ ॥ निदानके तीव्र पापसे वे व्यंतर जाति-
के देव हुए । हा इसप्रकारके अनर्थके कारण निदानके लिये धिक्कार है । राजा सुमित्र भी मुनि-

त्वा त्वभूस्त्वको । त्वद्वक्षोरुधिगाकाक्षी चेलिन्या उदरे हि सः ॥ ३६४ ॥ सुपेणखरदेवोऽभूत् कुणिकाख्यो निदानतः । एतस्मात्त्वं निजं
 नाशं दंजरे विद्धि निश्चयात् ॥ ३६५ ॥ श्रुत्वा जातिस्मर्यो जर्षं तदा श्रेणिकभूमिपः । जैनधर्मे समाधाय श्रद्धात् स्वगृहं ययौ ॥ ३६६ ॥
 जैनधर्मरतं मत्वा नृपं बौद्धाः समागताः । राजन् ! करोषि चेज्जैनं धर्मं कुर्याः परीक्ष्य भो ॥ ३६७ ॥ सप्रमथ्येऽस्थिसंतानं क्षिप्य राज्ञीं
 नृपो जगौ । भोजयेति मुनीन् जैनान् शतवृत्तीन्तस्तनी ॥ ३६८ ॥ एकदा त्रय आयाता मुनयो नृपसन्नि । तदांगुलीभिरित्येवं
 राजका इसप्रकार मरणं सुन बड़ा दुःखित हुआ एवं उसी दुःखमें राजकाज त्यागि वह मिथ्या
 तपस्वी हो गया । कुतपके प्रभावसे वह मिथ्यादृष्टि देव हुआ एवं वहांसे चयकर तुम राजा
 श्रेणिक हुए हो । तुम्हारे वक्षस्थलके रुधिरका आकांक्षी वह सूषेणका जीव देव अपने निंदित
 निदानसे रानी चेलिनीके गर्भमें अवतीर्ण हो गया है उसका नाम कुणिक होगा वह तुम्हें कठहरेके
 अन्दर बन्द रखेगा एवं उसके निमित्तसे उस कठहरेके अन्दर ही नियमसे तुम्हारा मरण होगा
 ॥ ३६३—३६५ ॥ मुनिराजके मुखसे अपने पूर्वभवका वृत्तांत सुन राजा श्रेणिकको भो अपने पूर्व
 भवका स्मरण हो गया एवं जैनधर्मका श्रद्धानी हो वह अपने राजमहल लौट आया ॥ ३६६ ॥
 बौद्ध साधुओंने सुना कि राजाने बौद्धधर्मका आचरण छोड़ दिया है और वह जैनधर्मका सेवक
 बन गया है । वे सबके सब राजाके पास आये, बहुतसी तर्क वितर्क हुई । अन्तमें जब उनकी एक
 भी न चली तो उन्होंने यही कहा--राजन् ! तुम जैनधर्मको धारण तो करते हैं परंतु ठीक समझ
 सोचकर धारण करना जिससे पीछे पश्चात्ताप न करना पड़े ॥ ३६७ ॥ बौद्धगुरुओंके वचनोंका
 राजा पर कुछ असर पड़ गया । जैनधर्मकी परीक्षाका कौतहल उसके शिरपर सवार हो गया ।
 एक दिन उसने आहारके स्थानपर रानीसे छिपाकर कुछ हड्डी आदि अपवित्र पदार्थ गढ़वा दिये
 और रानीसे यह कह दिया कि तुम जैन मुनियोंको आहार दान दिया करो । रानी चेलिनी
 बड़ी चतुर थी उसने राजाका अभिप्राय पहिचान लिया और वह चौकन्नी हो गई ॥ ३६८ ॥ एक
 दिन तीन मुनिराज मंदिरमें आहारके लिये आये । रानीने तीन अंगुली उठाकर यह भाव प्रगट

समस्या विहिता तथा ॥ ३६६ ॥ त्रिगुतिगुतास्तिष्ठन्तु लेपार्थं मम मंदिरे । अंगुलिद्वित्वं तेषां दर्शयित्वा वनं ययुः ॥ ३७० ॥
गुणसागरनामानं दृष्ट्वा यातं तथाऽकरोत् । प्रतिपद्य मुनिस्तस्यै राजप्रक्षालितांध्रिपः ॥ ३७१ ॥ मध्ये गृहं यदा योगी गत्वा तिष्ठति
भायतः । हात्वावधिचलाश्चर्मास्थ्यशुद्धिं गतवांस्तदा ॥ ३७२ ॥ अथाचक्षुषौ नृपो राक्षी ते त्रयो हि कथं गताः । लेपार्थमागताः पूर्वं ब्रूहि
त्वं तच्च कारणं ॥ ३७३ ॥ अवीक्ष्यसेदा राक्षी नो वेद्योति नराधिप ! । आवां यावच्च पृच्छावो वाहनाज्जगमतुर्वनं ॥ ३७४ ॥ धर्मघोषमुनिं

किया कि मनोगुति वचनगुति और कायगुति तीनों गुतियोंके धारक मुनिराज मेरे मंदिरमें
आहारके लिये ठहरे । तीनों मुनियोंमें तीनों गुतियोंका धारक एक भी मुनि न था इसलिये वे
अपनी दो २ अङ्गुलियां दिखा कर वनको चले गये । उनके बाद एक गुणसागर नामके मुनि-
राज आये । रानीने उनको भी तीन अङ्गुली उठाकर अपने हृदयका भाव प्रकट किया, वे मुनि
तीनों गुतिओंके धारक थे एवं तीन गुतिओंका धारक नियमसे अवधिज्ञानी होता है इसलिये
वे अवधिज्ञानी भी थे वस रानीके वचनानुसार उन्होंने अपनेको उपर्युक्त समझा । वे खड़े रह गये
राजाने उनके चरणोंका प्रक्षाल किया । घरके मध्यभागमें आहारके लिये वे भावपूर्वक जाकर
स्थित ही हुए थे कि उन्होंने अवधिज्ञानकी ओर अपना उपयोग लगाया एवं अवधिज्ञानके बलसे
चाम हड्डी आदि अपवित्र पदार्थोंको उन्होंने जान लिया । वे अपना अन्तराय समझ वनकी
ओर चले गये । गुणसागरके विषयमें तो राजाने कुछ भी नहीं कहा किंतु उनसे पहिले जो तीन
मुनिराज आहार विना ही लिये वन चले गए उनके विषयमें यह पछा—

प्रिय रानी ! तीन मुनि जो आहारके लिए राजमंदिरमें आये थे वे विना ही आहारके राज
मंदिरसे क्यों लौट गए ? उत्तरमें रानीने कहा—प्राणनाथ ! मैं भी कुछ नहीं समझ सकी चला
अपन दोनों उनके पास चले और उनसे विना आहार लिए लौट आनेका कारण पूछे । वस
दोनों ही स्वारियोंपर चढ़कर वनकी ओर चल दिये ॥ ३६६—३७४ ॥ सबसे पहिले वे धर्मघोष

नत्वा पप्रच्छेति नृपो ध्रुवं । चर्पाय मद्गुह्ये स्वामिन्नागतो निर्वृतः कथं ॥३७२॥ जगाद् मुनिराह भूपं शृणु श्रेणि न ! धोधनः । इत्युक्तं कांत्यास्माकं ये तु गुप्तित्रयात्मकाः ॥ ३७३ ॥ निवृत्तं भोजनार्थं ते नापरे कुराते भृशं ॥ ३७४ ॥ (पट्टरहा) नो गुप्तित्रयं नास्ति नास्माभिश्च स्थितं यतः । का गुप्तिर्नास्ति युष्माकं मातसीति कथं वद ॥ ३७८ ॥ धर्मघोषस्तदा प्राह शृणु राजन्तिगद्यते । कलिंग विषये दंतपुरे राजाहंके महान् ॥ ३७९ ॥ विहरन् भोजनार्थं वै कौशाभ्यामगमं नृप ! । तत्रैव गरुडामिष्यो राजमंत्री प्रवर्तते ॥३८०॥ नामक मुनिराजके पास गये । उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया एवं राजाने इसप्रकार उनसे पूछा स्वामिन् ! आहारके लिये आप राजमंदिर पधारे थे परंतु आहार बिना ही ग्रहण किये आप वापिस क्यों चले आये । उत्तरमें मुनिराजने कहा—सुनो राजा जिससमय हम राजमंदिरमें आहार के लिये गये थे उससमय रानी चेलिनीने तीन अङ्गुली उठाकर यह प्रगट किया था कि तीन गुप्तियोंके पालक मुनिराज मेरे यहां आहारके लिये तिष्ठें । जिनके तीनों गुप्तियां न हों वे न तिष्ठें । हमारे तीनों गुप्तियां थीं नहीं इसलिये हम वहां आहारके लिये नहीं ठहरें । न ठहरनेका अन्य कोई कारण न था । मुनिराजके ये वचन सुन राजा श्रेणिकने पूछा—महाराज ! तीनों गुप्तियोंमें आपके कौनसी गुप्ति नहीं है ? मुनिराजने कहा—हमारे मनोगुप्ति नहीं है । राजाने फिर पूछा महा राज ! आपके मनोगुप्ति क्यों नहीं है । उत्तरमें मुनिराजने अपने मनोगुप्ति न होनेका कारण इस प्रकार खुलासारूपसे वर्णन किया—

कलिंगदेशमें एक दंतपुर नामका नगर है । मैं वहांका एक बहुत बड़ा राजा था । भोजनके लिये विहार करता करता मैं एक दिन कौशांबी नगरमें जा निकला । वहांके राजाके मंत्रोका नाम गरुडदत्त था और उसकी स्त्री गरुडदत्ता थी । गरुडदत्ताने मुझे आहारके लिये ठहरा लिया और विधिपूर्वक वह मुझे आहार देने लगी । जिससमय वह केवल मुझे ही आहार दे रही थी प्रबल कर्मके उदयसे एक घास मेरे हाथसे नीचे जमीन पर गिर गया । घासके गिरते ही मेरी दृष्टि भी उस घासपर पड़ी । रमणी गरुडदत्ताका पैरका अंगूठा मुझे दीख पड़ा कर्मकी प्रबलतासे उस

भार्या गहवदत्ताख्या तयाऽहं स्थापितोऽदने । यदैव दीयते लेपस्तदा स्थैरं ममैव हि ॥३८१॥ तदा मत्करतः लिख्यं पतिनं वीक्ष्य वैगताः
दृष्टिर्गता यदा सिक्थे तदंगुष्ठो विलोकिताः ॥ ३८२ ॥ तदा सम्मार मन्तार्या अंगुष्ठं कर्मपाकतः । अतो मे मानसो गुप्तिर्न स्थिता न
नायक ! ॥ ३८३ ॥ श्रुत्वोत्तस्थौ तदा राजा गत्वा नत्वा मुहुर्मुहुः । जिनपालं पप्रच्छेति ध्यायंतं श्रुतमं प्रभुं ॥३८४॥ हे मुने ! मद्गृहा-
च्छोभं कथमत्रागतो यद् । वाग्योपिनी ममास्ते नो भर्ता न स्थितवान् नृप ! ॥ ३८५ ॥ कथं तदा मुनिः प्राह शृणु त्वं काश्यपोपते ! ।

अङ्गूठके देखनेसे मुझे अपना स्त्रीके अङ्गूठका स्मरण उठ आया एवं सहसा मेरे मनमें यह
भावना लड़ी हो गई कि अहा ऐसा ही सुन्दर अङ्गूठा मेरी रानीका था । बस राजन् ! उसदिन
से आज तक मेरे मनोगुप्तिका उदय नहीं हुआ इसलिये तीनो गुप्तियोंके न रहनेके कारण मैं राज
मंदिरमें आहारके लिये न ठहर सका ॥ ३७५—३८३ ॥ मुनिराज धर्मघोषकी कथा सुन राजा
श्रेणिक उन्हें नमस्कार कर वहाँसे उठे । जिनपाल नामक मुनिराजके पास गये वे भगवान उस
समय भगवान ऋषभदेवका ध्यानकर रहे थे राजाने पास जाकर उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया
और यह पूछा—

पूज्य मुनिराज ! आप मेरे राजमन्दिरमें आहारके लिये गये थे परंतु आहार बिना ही लिये
आप चले आये इसका कारण क्या ? उत्तरमें मुनिराजने कहा— राजन् मेरे कायगुप्ति न थी इसलिये
मैं राजमंदिरमें आहारके लिये नहीं ठहरा । राजाने पुनः पूछा—महाराज ! आपके कायगुप्तिका
उदय क्यों नहीं हुआ ? उत्तरमें मुनिराज अपना सारा हाल खुलासारूपसे इसप्रकार कहने लगे ।

भूमितिलक पुरका स्वामी राजा प्रजापाल है । उसकी पटरानीका नाम धारिणी और उससे
उत्पन्न एक मृगांका नामकी कन्या है । जो कि गोल और उन्नत नितंबोंसे शोभायमान है ।
सूक्ष्मकटिभागकी धारक है और उसका बक्षःस्थल विशाल है । अत्यंतरूपवती जान चंडप्रद्योतन
नामके राजाने उसे वसुपालसे सरलता पूर्वक मांगी थी परंतु अभिमानी वसुपालने उसे नहीं दी ।

भूमितिलकपुरे राजा प्रजापालोऽस्ति धीधनः ॥ ३८६ ॥ तस्मैव धारिणी जाया मृगांकारुया सुताभवत् । वृत्तोन्मत्तचित्तं वा च मध्य
क्षोमोरसि पृथुः ॥ ३८७ ॥ चंडप्रद्योतनो राजा श्रुत्वा तामतिरुषिणीं । ययाचि सादरं पित्रा नो दत्ता दर्वधारिणा ॥ ३८८ ॥ चतुरंगवला-
न्वीतो दुर्दमार्थं चंचाल सः । कमेण तत्पुत्रं प्राप्य वेधेऽपि बलिमिदं लैः ॥ ३८९ ॥ अस्त्रं घस्त्रे तयोर्जातो रणोरणविदोः पुनः ॥ ३९० ॥ (षट्पदी)
कुंतकुंतिनमूर्धातो योयुष्यते नरास्तदा । महारणसमुद्रेस्मिन् पतद्दत्तिमहाशिले ॥ ३९१ ॥ बहुवारक्षये युद्धे हारितः हि प्रजापवाक् ।
३९२ ॥ (षट्पदी) विषण्णस्तिष्ठते यावत्सर्वगमां च वनागतं । जितं वनपालाच्च श्रुत्वा धंदितुमाययौ ॥ ३९३ ॥ इत्थं जगाद नत्वा मां प्राहि
त्वं शरणागतं । सेवकं दुःखितं मत्वा ध्रुवं चिंतां निवारय ॥ ३९४ ॥ तदाकाशध्वनिर्जहं वनदेवतया कृतः । प्रजापाल ? अयं मागाः

चंडप्रद्योतन कांधसे भवक गया । राजा वसुपालको वश करने के लिये वह चतुरंग सेनासे दयास हो
भूमितिलक पुरको ओर चल दिया एवं अपनी बलवान सेनासे चारो ओरसे पुर घेर लिया ॥ ३८४-
३८६ ॥ दोनों ही राजा रणकुशल थे । दोनोंका आपसमें प्रतिदिन युद्ध होने लगा । उस महारण
रूपो समुद्रमें जिनके मस्तक भालोंसे कटे हुये हैं ऐसे पुरुष युद्ध करने लगे । शत्रोंके कठोर प्रहारों
से बड़ी बड़ी हाथीरूपी महाशिलायें पड़ने लगीं । बहुतसे वीरोंका नश्य होने लगा ऐसे भयंकर
संग्राममें राजा प्रजापालको हार खानी पड़ी ॥ ३९०—३९२ ॥ हारकर प्रजापाल खिन्न हो घरमें
बैठा हो था कि वनपालके मुखसे उसने मुझ जिनपालका वनमें आना सुना और मेरी वंदनाके लिये
चल दिया एवं मेरे पास आकर और नमस्कार कर वह इसप्रकार विनयपूर्वक कहने लगा—

भगवन् । मैं आपके शरणमें आया हुआ हूँ आप मेरी रक्षा कीजिये । सेवकको दुःखी जान
उसमी शीघ्र चिंता मेटिये मैं तो उससमय कुछ भी नहीं बोला परंतु वनदेवताकी ओरसे यह
आकाश ध्वनि हुई कि—प्रजापाल ! तुम किसी प्रकारका भय मत करो विजय तुम्हारा ही होगा ।
राजा प्रजापालने वन देवताकी इस ध्वनिको मुनिका वचन जानकर और यह पक्का श्रद्धान कर कि
मुनियोंका वचन सत्य होता है, वह अपने राजमहल लौट गया एवं नयारी कर

जयत्वं भाविता तत्र ॥ अग्निं मुनेर्वचो मत्वा सत्यं मौनीश्वरं वचः । इति कृत्वा गतो गेहे रणरंगे समागतः ॥ ३६६ ॥ चंडस्तदा समाकण्य जयत्वं तस्य भूयते । जैनं मत्वा यदायाति स्वगृहेषु रणान्वितः ॥ ३६७ ॥ प्रजापालामित्रो राजा प्रेषयामास सद्गताम् । ते गत्वा प्रोचुरित्येवं कथं यासि रणाद्विना ॥ ३६८ ॥ चंडप्रद्योतनोऽवादीच्छुः त्वा तेषां वचः स्फुटं । जैना मे बांधवा मित्रं कथं योयु-
ध्यते मया ॥ ३६९ ॥ गत्वान्ववेदयन्वीराश्चण्डप्रद्योतनोदितं । तथा श्रुत्वा द्रौ प्रीत्या मृगाश्रीं मारमंजरीं ॥ ४०० ॥ एकदा तौ च रेमाते तदा चंडो जगाद भो । कांते ! ते पितरं जैनं मत्वा मुक्तो रणांगणे ॥ ४०१ ॥ श्रुत्वा मृगाक्षिका प्राह शृणु त्वं नाथ ! मद्वचः ।

रणभूमिमें आ धमका ॥ ३६३—६६६ ॥ राजा चंडप्रद्योतनको किसी कारणसे यह भ्यास गई कि राजा प्रजापालका ही विजय है इसलिये वह उसे जैनी मान अपने घर जाने लगा । रणके लिये सर्वथा तयार राजा प्रजापालने अपने कुछ सुभट राजा चंडप्रद्योतनके पास भेजे और वे कहने लगे कि भाई रणको छोड़कर तुम क्यों जा रहे हो ? उत्तरमें राजा चंडप्रद्योतनने गंभीर वचनोंमें कहा—समस्त जैनी मेरे बंधु हैं और मित्र हैं मुझे उनके साथ युद्ध नहीं करना चाहिये । राजा प्रजापालके सुभटोंने चंडप्रद्योतनका संदेशा उससे जाकर कह दिया । चंडप्रद्योतनके ये वचन सुन राजा प्रजापाल प्रसन्न हो गया एवं कामकी मन्जरी स्वरूप अपनी मृगनयनी कन्याका उसके साथ विवाह कर दिया ॥ ३६७—४०० ॥

रमणी मृगांका और चंडप्रद्योतन एक दिन आपसमें रमण क्रीड़ा कर रहे थे उससमय चंडप्रद्योतनने कहा--प्रिये तुम्हारा पिता जैनी था इसलिये मैंने उसे रणसंग्राममें छोड़ दिया था यदि कोई दूसरा होता तो मैं उसे नहीं क्षमा करता । अपने स्वामीके ऐसे वचन सुन रमणी मृगांकाने कहा--प्राणनाथ ! मुनिराज जिनपालने उन्हें अभय दान दिया था इसलिये वे आपसे नहीं जीते जा सके । अपनी रानीके ऐसे वचन सुन चंडप्रद्योतनको बड़ा आश्चर्य हुआ वह कहने लगा--मुनियोंकी तो शत्रु मित्रमें समान वृत्ति रहती है इसलिये न तो वे किसीसे द्वेष कर सकते हैं और न

स्वामिना जिनपालेनाभयं दत्तं तत्रैव भो ॥४०२॥ चंडः प्राहेति हे कांति ! मुनीनां द्विष्टा कुतः । रागो हि विद्यते कुत्र साम्यत्वात्तुल्य-
रूपता ॥ ४०३ ॥ यद्येवं विद्यते चित्ते वैहि नंतुं गतौ तदा । जितपं वीक्ष्य नत्वेवं पप्रच्छेति मनोगतं ॥ ४०४ ॥ हे नाथ ! योगिनां
कस्याभयचिंतनमादरात् । कस्य चिन्नाशानत्वं हि युक्तं प्रोक्तं जिनागमे ॥ ४०५ ॥ मुनिर्योपं समाश्रित्य स्थितो ध्याने यदा तदा ।
कांता प्राह न तद्युक्तं परंतु गगनध्वनिः ॥ ४०६ ॥ भ्रांतिं चित्तस्थितां तौ च विनाश्य सद्मे गतौ । अहं तत्रालये राज्ञागतो भोजन-
रुते ॥ ४०७ ॥ तदोक्तमिति चेलिन्या त्रिगुप्तिर्भवतां यदि । तिष्ठंतु चान्यथा नैव तदभावात् स्थिता वयं ॥ ४०८ ॥ त्रिगुप्तीनां मुनीनां हि भव-

किसीसे राग कर सकते हैं । तुम जो कह रही हो यदि वह बात सत्य ही है तो चलो अपने मुनि
राजके पास चलें और यथार्थ बात उनसे पूछें वस वे दोनों मुझे जिनपालको बंधनेके लिये चल
दिये । मुझे देख कर भक्तिपूर्वक नमस्कार किया एवं अपने हृदयका भाव राजा चंडप्रद्योतन इस
प्रकार व्यक्त करने लगा—

भगवन् ! योगी लोग किसीका तो अभय चिंतन करें और किसीका नाश चिंतन करें
क्या यह बात जैनसिद्धांतमें ठोक मानी गई है ? मैंने इस बातका कोई उत्तर नहीं दिया । मैंने
धारण कर ध्यान करने लगा । रानी मृगांकाने कुछ भी उत्तर न देते जब मुझे ध्यान लीन देखा
तो उसने राजा चंडप्रद्योतनसे कहा—नाथ ! मुनिराजने अभय दानका सूचक वचन नहीं कहा था
किंतु उस प्रकारकी आकाश ध्वनि हुई थी । रमणी मृगांकाके ऐसे वचन सुन दोनोंकी भ्रांति मिट
गई और वे दोनों अपने राजमहल लौट आये । मैं भी उस उपसर्गसे अपनेको मुक्त जान राज
मंदिरमें आहारके लिये गया । रानी चेलिनीने तीन अङ्गुली उठाकर यह बात प्रगट की थी कि—
यदि आप तीन गुप्तियोंके धारक हों तो मेरे मन्दिरमें आहारके लिये ठहरें बीच नहीं । राजन् !
हमारे तीन गुप्तियां थीं नहीं इसलिये हम राजमन्दिरमें आहारके लिये स्थित न हो सके क्योंकि
यह नियम है जो मुनि तीन गुप्तियोंके धारक होते हैं वे नियमसे अवधिज्ञानी होते हैं और उससे

त्यवधिलोचनं । तेनेव शायते सर्वमन्येषां तद्धि नो भवेत् ॥४०६॥ ध्रुत्वा प्रशस्य धर्मं वै जैनं स कांतया सह । गत्वा पप्रच्छ वृत्तांतं तत्त्वा
 श्रीमणिमालिनं ॥ ४१० ॥ मद्वृत्तं कथंकारं निःसृतो भोजनादृते । मुमुक्षुर्वचनं ग्राह राजानं राजराजितं ॥४११॥ चेलिन्या विहितं
 मत्वा कायगुप्तिं मे यतः । अतः स्थितं न राजेन्द्र ! शृणु तद्दत्तमादरात् ॥४१२॥ मणिवाक्षिपये रम्ये मणिवत्पत्तने त्वध । मणिमाल्यहकं
 राजा गुणमाला प्रिया मम ॥ ४१३ ॥ मणिशखरपुत्रोऽभूत् राजराज इवापंगात् । एवं भोगान् प्रभुजानो गतं कालं न वेदम्यहं ॥ ४१४॥
 एतदा कांतया केशान् विह्वलयत्था ममोदितं । यमदूतः समायातः आगदात्महितं कुरु ॥ ४१५ ॥ तदा राज्ये नियोज्यासु पुत्रं च ज्ञान-
 वं अवधिज्ञानके विषयभूत पदार्थोंको जानते हैं किंतु जिनके तीन गुप्तियां नहीं होतीं उनके अवधि
 ज्ञान भां नहीं होता ॥ ४०१—४०६ ॥ मुनिराज जिनपालके ये वचन सुन महाराज श्रेणिकने जैन
 धर्मको बड़ो भारी प्रशंसा की । वे रानी चेलिनीके साथ वहांसे उठकर मुनिराज मणिमालीके पास
 गये और उनसे इसप्रकार पूछने लगे--

पूज्य मुनिराज ! राजमन्दिरमें आप आहारके लिये पधारे थे परंतु आहार विना ही लिये आप
 क्यों चले आये ? उत्तरमें मुनिराज मणिमालिनीने कहा-- रानी चेलिनीने तीन अङ्गुलियां उठा
 कर यह प्रकट किया था कि तीन गुप्तियोंके धारक मुनिराज मेरे मन्दिरमें आहारके लिए विराजे
 मेरे कायगुप्ति थी नहीं इसलिए हे राजेन्द्र ! मैं राजमन्दिरमें आहारके लिए न ठहर सका । मेरे
 कायगुप्ति क्यों नहीं थी इसका खुलासा इसप्रकार है--

इसी पृथिवीपर एक मणिवत नामका देश है । उसमें एक मणिवत ही नामका नगर है ।
 यहांका मैं मणिमाली नामका राजा था । मेरी स्त्रीका नाम गुणमाला था और मेरे पुत्रका नाम
 मणिशेखर था जो कि कुबेरकी उपमा धारण करता था इसप्रकार मैं सुखपूर्वक भोगोंको भोगता
 था और काल कहां चला जा रहा है ? यह मुझे तनिक भी नहीं सूझ पड़ता था ॥४१०--४१४॥
 मेरी स्त्री गुणमाला एक दिन मेरे केश संभाल रही थी । एक सफेद केश देख कर उसने कहा--
 यमराजका दूत आ पहुंचा है अब शीघ्र आत्माका हित करना उचित होगा ॥ ४१५ ॥ अपनी रानी

सागर । अधिगम्य गुरुं वेगाद् विदीक्षां नराधिप ! ॥ ४१६ ॥ तपस्यन्नेकदा मूष ! उज्जयिन्याः श्मशानके । ध्यानसिद्धये स्थितस्ता-
 वन्मन्त्रसिद्धः समागतः ॥ ४१७ ॥ कौलिकोऽस्थिभराभूषाभूषितो भूतसेवकः । वैतालीयमहाविद्यासिद्धयर्थं नग्नरूपकः ॥ ४१८ ॥ (युग्मं)
 महे हं कुणपं मत्वा द्वितीयं चौरमस्तकं । आनीयायोजयत्यध्यानमम मूर्ध्नि च कौलिकः ॥ ४१९ ॥ खुर्हीं शीर्षं ममैव तां कृत्वैव रंधनाय
 च । पायसस्य ततो मंत्री संजज्वाल धनंजयं ॥ ४२० ॥ बथान्निर्ज्वलते तत्र शीर्षं मे व्यधते तथा । तदाहं नारकोद्भूतदुःखं संस्मृत्य
 ध्यानवान् ॥ ४२१ ॥ शिरासंकोचयोगेनोद्गीभूय च करौ मम । दंडवत्संस्थितौ मूर्ध्नि कुण्ठपाते पलायितः ॥ ४२२ ॥ दिनरात्रौदये

के ऐसे वचन सुन मैंने ज्ञानके भंडार अपने पुत्रको शीघ्र राज्य प्रदान कर दिया । शीघ्र अपने गुरु
 के पास चला गया और मैंने दिगंबरो दीक्षा धारण करली ॥ ४१६ ॥ राजन् ! विहार करता करता
 मैं एक दिन उज्जयिनी नगरी जा पहुँचा और उसकी श्मशान भूमिमें ध्यानकी सिद्धिके लिये
 निश्चलरूपसे स्थिर हो गया । उसीसमय एक कौलिक (कोरिया) मन्त्रवादी जो कि हड्डियोंके
 भूषणोंसे भूषित था । भूतोंका सेवक था और नग्नरूपका धारक था । महावैतालीय विद्या सिद्ध
 करनेके लिये वहाँ आया । मेरे शरीरको उसने मुर्देका शरीर समझा । कहींसे वह एक दूसरा
 मस्तक उठा लाया और उसने पीछेसे मेरे मस्तकके साथ जोड़ दिया । खीर पकानेके लिये उसने
 मेरे मस्तकको ही चूल बनाई और उसने अग्नि जलानी प्रारंभ कर दी ॥ ४१७-४२० ॥

जैसी जैसी वह भयंकर अग्नि जलने लगी मेरे मस्तककी पीड़ा भी बढ़ती चली गई । वह
 दाहका दुःख मुझे नरकका दुःख जान पड़ने लगा इसलिये उसकी ओरसे हटकर मैंने अपने
 चित्तको आत्मस्वरूपके चिन्तनमें लगाया ॥ ४२१ ॥ अग्निके सम्बन्धसे नसोंके संकुचित हो
 जानेसे मेरे दोनों हाथ ऊपरको उठकर दंडाकार सीधे खड़े हो गये । मेरे मस्तकपर
 जो रांधनेका पात्र रक्खा था नीचे गिर गया उसका दूध फैल गया, यह देख वह मन्त्रवादी
 कौलिक भयसे भाग गया ॥ ४२२ ॥ मेरा सारा मस्तक दग्ध हो चुका था । प्रातःकाल होते ही

मालाकृद्विलोक्य च मामरं । वामभूषानमापत्स्थं जिनदत्तान्वोकथत् ॥ ४२३ ॥ हाहा चकुस्तदा सर्वे संभूयागत्य नम्य च । उद्धृत्य मां करैः पुर्यामानयन् आथकाः शुभाः ॥ ४२४ ॥ जिनदत्ताख्ये भक्त्या स्थापयामास मां नृप ! । जिनदत्तो भिषजं भव्यं पञ्चौषधमाद- रात् ॥ ४२५ ॥ वैद्योप्यलीलपत्सत्यं लक्ष्ममूलादूते वरित् । तैलाच्छांतिर्भवित्री न तत् क्वास्ते कथयेति मां ॥ ४२६ ॥ इति पृष्टः प्राग- शीर्षैः सोमशर्मा गृहेऽस्ति तत् । तदा नेतुं गतस्तस्य गेहे गहनकार्यवित् ॥ ४२७ ॥ तद्वार्यामववीदेवं नाम्ना तुंकारिकां प्रति । हे स्वस-

उस वनके मालीने मुझे देखा मुझे महा दुःखित जान शीघ्रही उस नगर निवासी जैनियोंके पास पहुँचा और सारा हाल कह सुनाया । मेरी यह भयंकर अवस्था सुन वे सबके सब हा हा करने लगे । सबके सब मिलकर श्मशान भूमिमें आये । मुझे नमस्कार किया । अपने हाथोंसे उठाकर वे भव्य श्रावक मुझे उज्जयिनी ले आये । जिनदत्त नामक सेठके घरमें मुझे लाकर रख दिया । जिनदत्तने एक वैद्यसे मेरी नीरोगताकी आशासे औषध पूछी । उत्तरमें वैद्यने भी बड़े प्रेमसे यह कहा कि—प्रिय वैश्य सरदार ! लाक्षामूल तेलके बिना इस दाहकी शांति नहीं हो सकती इस- लिये तुम्हें लाक्षामूल तेल लाना चाहिये । वैद्यराजकी यह बात सुन जिनदत्तने कहा—लाक्षामूल तेल तो यहांपर है नही कहिये कहां वह मिलेगा जिससे मैं उसे ले आऊं ? उत्तरमें वैद्यराजने कहा— यहां एक सोमशर्मा नामका ब्राह्मण रहता है उसके घरमें लाक्षामूल तेल मिल सकता है । भव्य जिनदत्त लाक्षामूल तेलके बिना दाहकी आगका सिटना अति कठिन जान वह शीघ्रही सोमशर्माके घर गया । उसकी स्त्रीका नाम तुंकारी था उससे जाकर इसप्रकार कहने लगा--

वहिन ! तुम अनेक गुणोंकी भंडार और अनेक कला कौशलोंकी खजाना हो ? मुनिराजका सारा मस्तक किसी दुष्टने जला दिया है । दाहकी बड़ी भारी आग भेरा रही है । उसको नाश करने वाला तुम्हारे यहां लाक्षामूल तेल सुना है इसलिये कृपाकर जितना उसका मूल्य हो वह लेकर मुझे दे दो बड़ा उपकार होगा । उत्तरमें तुंकारीने कहा—भाई जिनदत्त ! मैं मूल्य नहीं ले सकती

स्त्वं गुणागारा कौशलान्वितविग्रहा ॥ ४२८ ॥ मुमुक्षुनाशनाशार्थं देहि तैले सुमूल्यतः । तदा तु प्राह तुंकारी मूल्यं गृह्णाम्यहं नहि ॥ ४२९ ॥ विद्यतेऽहालिकायां भो काञ्चकुंभा समेव हि । यावत्प्रयोजनं कुंभं गृहाण त्वं तदंतरात् ॥ ४३० ॥ गत्वा गृह्णाति भग्नः स काञ्च कुंभो मनोहरः । तदागत्य भिया प्राह भगिनि ? भग्नो हि कुम्भकः ॥ ४३१ ॥ तदा सा प्राह हे भ्रातृगृहाण त्वं द्वितीयकं । यदा जिघृक्षति नूनं तदा भग्नो द्वितीयकः ॥ ४३२ ॥ एवं कुंभाच्च सप्तैव भग्नस्तस्या न क्रुद्धभूत् । तदाश्चर्यं समाप्याशु तां पप्रच्छेति कारणं ॥ ४३३ ॥ हे मातरीदृशी शान्तिमुनायपि न दृश्यते । सावीचद्वहं भ्रातरभोजं तत्फलं यतः ॥ ४३४ ॥ अशीशममतः क्रोधं प्राह सोऽपि कथं स्व

मेरी अटारीमें बहुतसी तेलकी भरी शीशियां रखी हैं तुम्हें जितने तेलकी आवश्यकता हो उसके भीतरसे उठाकर ले जाओ ॥ ४२३-४२६ ॥ तुंकारीका यह सज्जन स्वभाव जान जिनदत्त बड़ा प्रसन्न हुआ । वह ऊपर अटारीमें चढ़ गया । ज्यों ही उसने एक शीशीतेलकीभरी उठाई दिनारी होनेके कारण वह तत्काल टूट गई । शीशीको टूटी देख जिनदत्त भयसे कंपित होगया । डरता २ वह तुंकारीके पास आया और कहने लगा—बहिन ! वह शीशी तो फूट गई ? उत्तरमें तुंकारी ने कहा—भाई ! यदि वह फूट गई तो और दूसरी ले जाओ । जिनदत्तने दूसरी भी उठाई परंतु वह भी फूट गई । जिनदत्तने फिर तुंकारीसे उसके फूटनेका समाचार कहा । उत्तरमें तुंकारीने फिर भी अपने सज्जन स्वभावसे यही कहा अच्छा भाई ! यदि वह दूसरी शीशी फूट गई तो तुम तीसरी ले जाओ । जिनदत्तने फिर भी तीसरी शीशी उठाई परंतु फिर भी वह फूट गई इसप्रकार बराबर सात शीशी तक फूटत चली गई एवं वह तुंकारी बराबर दूसरी दूसरी ग्रहण करनेकी आज्ञा देती गई । उसे रंचमात्र भी क्रोध नहीं आया । तुंकारीकी यह लोकोत्तर क्षमा देखकर सेठ जिनदत्तको बड़ा आश्चर्य हुआ इसलिये प्रेमसे गद्गद हो वह इसप्रकार कहने लगा—हे माता ! जैसी अद्वितीय क्षमा तुम्हारे अन्दर विद्यमान है वैसी किसी मुनिके अन्दर भी जल्दी नहीं दीख पड़ती । सात शीशियोंके फूटनेसे तुम्हारी बहुत हानि हुई है तथापि तुम्हें तनिक

सः ॥ ४३५ ॥ (षट्पदी) शृण्वानन्दपुरे भ्रातः शिवशर्मा नृपो धनी । नाम्ना श्रेष्ठो वसत्यत्र कजध्रीस्तस्य भामिनी ॥ ४३६ ॥ तयोराष्टौ महापुत्रा यभूवुः सधनोन्मदाः । अहं भट्टेति नाम्नी वै पुत्री जाता चिचक्षणा ॥ ४३७ ॥ अथैकदा पिता भूपं विज्ञापयति सादरं । भवद्भिः स्मैति पौरैश्च मत्पुत्र्या बल्लभत्वतः । त्वंकारो नैव दातव्यः प्रमाणं कृत्वानृपः ॥ ४३८ ॥ (षट्पदी) नृपादेशं समाप्याह मेयं ग्राह सम-क्षकं । यो मां प्रति त्वकं दत्ते तस्यानर्थं करोम्यहं ॥ ४३९ ॥ तदाप्रभृति मन्नामं तुंकारीति कृतं जनैः । इत्थं तातादिसन्मान्या स्थिता धामिनि सकोपिका ॥ ४४० ॥ अथैकदा राजपत्याहं मुनिं शृणुणसागरं राजाद्या वदितुं जग्मुस्तदैवाहं गता मुदा ॥ ४४१ ॥ यथायथं

भी क्रोध नहीं आया । जिनदत्तके ये वचन सुन तुंकारीने कहा—भाई ! क्रोधका मैं भयंकर फल भोग चुकी हूँ इसलिये मैंने क्रोध एकदम करना छोड़ दिया है । तुंकारीके ये वचन सुन जिनदत्तने कहा सो कैसे ? उत्तरमें तुंकारी इस प्रकार कहने लगी—

आनन्दपुर नगरमें एक शिवशर्मा नामका सेठ है जो कि धनमें राजाकी तुलना करता है । उसकी स्त्रीका नाम कमलश्री है । सेठ शिवशर्माके आठ पुत्र हैं जो कि धनी और निर्भय हैं । मैं एक पुत्री हूँ और मेरा नाम भट्टा है ॥ ४३०—४३७ ॥ मैं इतनी घमंडिन थी कि मुझसे जो तू कह कर बोलता था वह मुझे विषसरीखा जान पड़ता था । मेरे पिताका मुझपर गाढ़ स्नेह था । वे मुझे सुखी बनानेके लिये एक दिन राजाके पास गये और यह कहा—मेरी भट्टापुत्री मुझे अत्यंत प्यारी है और तुंकारसे चिड़ती है इसलिये आप तथा कोई भी पुरवासी लोग उससे तू न कहें । राजाने भी सेठ शिवशर्माका वचन स्वीकार कर लिया ॥ ४३८ ॥ जब राजाकी वैसी आज्ञा मिल गई तब मेरा और भी अधिक माहस बढ़ गया और मैंने सबोंके सामने खुले शब्दोंमें यह कह दिया कि जो कोई भी मुझसे तू कह कर बोलेगा मैं उसका अनर्थ कर डालूंगी । वस लोगोंने उस दिनसे मेरा नाम तुंकारी रख दिया । यद्यपि मेरे पिता आदि मेरा पूरा आदर करते थे तथापि मैं सदा गुस्सा ही होकर घरमें रहती थी ॥ ४३९—४४० ॥ आनन्दपुरमें एकदिन मुनिराज गुण-

गृहीतं तैर्वृतं संसारतारकं । मयापीर्य्या चिना ब्रह्मवृतं नीतं मनोहरं ॥ ४४२ ॥ तद्दिनप्रभृति श्रातः ! भ्रातृभिः सह संस्थिता । मच्छीलं च परिज्ञाय कोऽपि मां भो ब्रणोति न ॥ ४४३ ॥ पितरावेकदा बोध्य यौवनाढ्यां लसद्भुतिं । चिंतयामासनुच्चित्तं वरान्वेषणहेतवे ॥ ४४४ ॥ एकदा सोमशर्माख्यो द्यूते द्रव्यं जहार च । तू तकारेस्तदा बध्वा ताड्यते मुष्टिभिस्तयां ॥ ४४५ ॥ तदैव मत्पिता गत्वा कैतवं प्रत्यबोधयत् । वृणुया यदि मे कन्यां तदा त्वां मोक्षयाम्यहं ॥ ४४६ ॥ स्वीकृतं भूमिदेवेन तदा तातेन मोचितः । पश्चात्प्रोक्तं च मत्पु-
त्र्यास्त्वंकारो नैव दीयतां ॥ ४४७ ॥ उद्धाहिता सुखं प्राप्ता भोगजं च यदा तदा । एकदा नाट्यशालायां लोकनार्य स्थितः पतिः

सागर पधारे । राजा आदि सब लोग उनकी वंदनाके लिये गये । मैं भी गई । उपदेशके अन्तमें सबोंने अपनी अपनी शक्तिके अनुसार संसारसे पार करनेवाले व्रत नियम लिये, मैंने भी शीलव्रत का नियम लेलिया ॥ ४४१-४४२ ॥ भाई जिनदत्त ! मैं उस दिनसे लेकर भाइयोंके साथ रहने लगी । मेरे क्रूर स्वभावको जानकर कोई भी मेरे साथ विवाह करनेको राजी नहीं होता था । एक दिन मुझे पूर्ण युवती देख मेरे माता पिता मेरे योग्य वर ढूँढनेके लिये चिन्ता करने लगे । सोमशर्मा नाम का ब्राह्मण जो कि इससमय मेरा स्वामी है ज्वारियोंके अड्डेमें जूआ खेल रहा था । दैवयोगसे वह अपने पासका सब धन हार गया जिससे अन्य ज्वारी उसे बांधकर मुकोंकी मार मारने लगे । मेरा पिता भी दैवयोगसे वहां आ निकला और वरके योग्य सुंदर जान सोमशर्मासे यह कहने लगा— यदि तुम मेरी कन्याके साथ विवाह करना पसंद करो तो मैं तुम्हें छुड़ा लूँ, परवश हो सोम-शर्माको स्वीकार करना पड़ा एवं मेरे पिताने उसे छुड़ाकर यह प्रतिज्ञा कराली कि मेरी पुत्रीसे तू कहकर न बोलना होगा ॥ ४४३—४४७ ॥ वस सोमशर्माने मेरे साथ विवाह कर लिया और समय समयपर भोगोंसे जायमान सुख भोगे । एक दिन मेरा स्वामी नाट्यशालामें नाटक देखने के लिये गया । देखते देखते आधीरात हो गई इसलिये आधीरातपर वह अपने घर लौटा एवं दरवाजेपर आकर इसप्रकार कहने लगा—

॥ ४४८ ॥ अतिक्रम्यार्धरात्रं स मंदिरं च समाययौ । द्वारान्ऽवीभणत्कांतां भो भो कमललोचने ! ॥ ४४९ ॥ उद्धाटयत सद्द्वारं
यूयं मोक्षादितं यदा । रे उद्धाटय द्वारं त्वं तदाहं निर्गता गृहात् ॥ ४५० ॥ सभूषां मां समालोक्य चौरैर्नीतवार्धरात्रके । भीममिह्राय दत्ता
हं स्वामिने परमादरात् ॥ ४५१ ॥ तेन प्रोक्तं त्वकं बाले ! मे पत्नी भव निश्चितं । मयेत्युक्तं तदा भीम ! युक्तं न कुल्योचितां ॥ ४५२ ॥
तदा कामाकुलो भूत्वा समागत्य सुचलाति । वनदेव्या तदाताडि सेवका अपि ताडिता ॥ ४५३ ॥ देवाः शीलं प्रशंसन्ति वाठमत्र स्फु-
रत्यतः । चक्रवर्तित्वं स्वर्गत्वं शिवत्वं दुर्लभं न च ॥ ४५४ ॥ तदा कोपाकुलो मिल्ही मूल्यं लात्वा हि मां ददौ । सार्धबाहस्य दुष्टस्य
पापपंकनिमज्जितः ॥ ४५५ ॥ सोऽपि मे भोजयत्येव मिष्टान्नं शर्करायुतं । पक्षे पक्षे शिरायाश्च मोचनं कुच्छे मम ॥ ४५६ ॥ तच्छो-

प्रियकमलनयनी ! कृपाकर आप द्वार खोलें । परंतु मैंने दरवाजा नहीं खोला । मेरे स्वामीको
क्रोध आगया इसलिये वे यह कहने लगे-अरी ! तू दरवाजा खोल । वस मैं सारे क्रोधके भवक गई ।
और कुछ भी न बोलकर एकदम घरसे बाहिर होगई ॥ ४४८—४५० ॥ वह समय ठीक आधीरात
का था और मैं भूषण पहिने थी इसलिये चोरोंने मुझे देख लिया । मुझे पकड़कर वे अपने स्वामी
भीम नामक भीलके पास ले गये और बड़े आदरसे बैठ कर दी ॥ ४५१ ॥ मेरे सौंदर्यपर मुग्ध
होकर भीमने कहा—बाले ? तू मेरी पत्नी हो । उत्तरमें मैंने कहा-भीम ! मैं कुल स्त्री हूँ कुलस्त्रियोंके
लिये यह कार्य करना युक्त नहीं । भीम कामसे अत्यंत व्याकुल था उसने मेरी नहीं सुनी । वह बल
पूर्वक कामसेवन करनेके लिये मेरे पास आ गया और डाट डपट करने लगा । शीलके साहात्म्यसे
वन देवता प्रगट हुई । उसने भीमको और उसके सेवकोंको फटकार डाला क्योंकि देवगण शीलका
प्रशंसा करते हैं । इस संसारमें शीलसे बढ़प्पन होता है तथा इस शीलसे चक्रवर्तीपना स्वर्गपना
मोक्षपना भी दुर्लभ नहीं ॥ ४५२—४५४ ॥ जब भील भीमकी कुछ भी नहीं चली तब वह बड़ा
क्रोधित हुआ एवं एक ऐसे व्यापारीके साथ जो कि निरंतर पापरूपी कीचड़में फसा रहता था और
अत्यंत दुष्ट था मुझे मूल्य लेकर बेच दिया ॥ ४५५ ॥ वह दुष्ट प्रतिदिन मुझे शर्कर आदि मिष्टान्न

पितेन पापोऽसौ कंवलानां हि रंजनं । कुष्ठे कृमिसूत्राणां रंजनं च विशेषतः ॥ ४५७ ॥ लक्ष्यमूल्याभिधं तैलं कृत्वा मे देहजां व्यथां ।
निवारयत्यसौ दुःखास्तत्र तिष्ठामि भीयता ॥ ४५८ ॥ तदैव चिंतितं स्वांते गृहे त्वं सोढुमक्षमा । एवं दुखं सहैवाहं विचित्रा कर्मणां
गतिः ॥ ४५९ ॥ अथैव धनदेवाख्यो भ्रातर्मे प्रेषितः कृते । विशालपतिना पारासुरभूषसमीपकं ॥ ४६० ॥ तदा मां वीक्ष्य नीत्वैव
गृहमागत्य सत्वरं । पश्चात्तमज्जनको नूनमदाच्छ्रीसोमशर्मणे ॥ ४६१ ॥ एकदा मुनिमासाद्य गृहीतं कोपसद्वृतं । भतः करोमि नो कोपं
भूरिदुःखप्रदायकं ॥ ४६२ ॥ तैलं नीत्वा गतो गेहे जिनदत्तो दयापरः । तैलाभ्यंगेन आतोऽहं निष्वाधिर्मगधाधिप ! ॥ ४६३ ॥ तदा भावदृ

खवाता था हर एक पक्षमें मेरी नसोंसे रक्त निकलता था । उस रक्तसे कंवलोंको रंगता था एवं विशेषकर रेशमको रंगता था । जिससमय नसोंसे रक्त निकलता था उस समय मुझे भयंकर कष्ट होता था उसके पास यही लाक्षामूल नामका तेल था इसलिये मेरे शरीरके कष्टको वह दूर करता था । मैं भी परवश हो सदा भयभीत होकर उसके घर रहती थी । उससमय प्रतिक्षण मुझे इस बातका विचार उठता था कि घरमें मैं “तु” शब्द भी नहीं सह सकती थी और यहां मैं यह भयंकर कष्ट भोग रही हूं । हा कर्मोंकी गति विचित्र है ॥ ४५६—४५९ ॥

मेरे भाईका नाम धनदेव है । विशालपुरीके स्वामीने किसी कार्यके लिये उसे पारासर राजाके पास भेजा दैवयोगसे वहांपर मैं रहती थी उसी मार्गसे वह निकला । मैं उसे देख पड़ी । मुझे वह घर ले आया और मेरे पित्ताने मेरे पति सोमशर्माको बुलाकर दे दी ॥ ४६० । ४६१ ॥ एकदिन मुनिराजका पधारना यहां पर होगया और मैंने कोपके त्यागका व्रत ले लिया । भाई जिनदत्त । क्रोधको इसप्रकार दुःखदायी जान मैंने सर्वथा उसका त्याग कर दिया है ॥ ४६२ ॥ रमणी तुंकारी की यह बात सुन दयालु जिनदत्त तेल लेकर अपने घर लौट आया और हे राजन् श्रेणिक । उस तैलके लगानेसे मैं नीरोग हो गया ॥ ४६३ ॥ उससमय वर्षाकाल चौमासा लग गया था । चौमासे में मैं वहीं टहर गया । जिनदत्तका पुत्र पक्का ज्वारी था इसलिये एकदिन अच्छी तरह सोच विचार

समायाता-तत्राहं प्रावृषि स्थितः । एकदा जिनदत्तोपि चिंतयित्वा स्वचेतसि ॥ ४६४ ॥ द्यूतरक्तस्य पुत्रस्य भयाद्रत्नभृतं घटं । समीपे यत्नितो भूमिं खनित्वा चाक्षिपत्तदा ॥ ४६५ ॥ (युग्मं) तं घटं दृष्टवान् पुत्रो निष्कास्यान्यत्र क्षिप्तवान् । मुनिर्ददर्श तत्सर्वं विचित्रं लोभसंभवं ॥ ४६६ ॥ चातुर्मासे गते ध्यानी विजहार महीतलं । पश्चात्स श्रेष्ठिना तत्र न दृष्टो रत्नसदृशः ॥ ४६७ ॥ तदा विचारयामास मुनिश्चासीदथ वा न च । तदा श्रुत्या स्वभृत्यान् स पूषयामास सर्वतः ॥ ४६८ ॥ एकमाश्वगतः सोऽपि मां दृष्ट्वा हर्षतो भृशं । नीत्वा गेहे समायातोऽलीलपन्नां पूतीति सः ॥ ४६९ ॥ कथामेकां शुभां नाथ ! कथय त्वं ममाग्रतः । भयाद्वाताभिप्रायेण प्रत्यपा-

कर जिनदत्तने मेरे समीपमें जमीनके अन्दर एक गढ़ा खोदा एवं ज्वारी पुत्रके भयसे रत्नोंका भरा घड़ा उसने लाकर रख दिया ॥ ४६४-४६५ ॥ जिनदत्तजिससमय यह घड़ा रख रहा था उसका पुत्र देख रहा था । जिनदत्त जब चला गया उसके पुत्रने वह घड़ा वहांसे उखाड़ कर अन्यत्र गाढ़ दिया । मैं उस लोभसे जायमान समस्त विचित्र कार्यको चुपचाप देखता रहा था ॥ ४६६ ॥ चौमासेके समाप्त हो जानेपर मैं वहांसे चल दिया और पृथ्वीतलपर विहार करने लगा । मेरे पीछे सेठ जिनदत्तने जब जमीन खोदी और वह घड़ा न मिला तो वह विचारने लगा—

मेरे रत्नोंके घटको चुराने वाले मुनि हैं या नहीं ? क्योंकि सिवा मुनिराजके अन्य किसीने भी वह घड़ा नहीं देखा था खैर पता लगाकर उनसे पूछनेमें कोई हानि नहीं बस उसने चारों ओर मेरे खोजनेके लिये सेवक भेज लिये । एक मार्गपर स्वयं भी मुझे खोजनेके लिये चल दिया । भाग्य से मैं मिल गया मुझे देखकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ । भक्तिपूर्वक मुझे घर ले गया एवं मुझसे विनय पूर्वक इसप्रकार कहने लगा—स्वामिन् ! मेरे सामने कोई शुभ कथा कहिये । मैं उसका अभिप्राय समझ गया था इसलिये मैंने गंभीरता पूर्वक यह कहा—भाई जिनदत्त ! तुम्हीं कोई कथा कहो मैं आनन्दपूर्वक उसे सुनूंगा मेरे ये वचन सुन अपने मनके भावोंको व्यक्त करता हुआ जिनदत्त कहने लगा—अच्छा भगवन् ! आप ने मैंसे कहता हूँ—

दीप्ति सङ्ख्यः ॥ ४७० ॥ त्वमेव कथयामास शृणोमि जिनदत्तक ! । तदोवाच निजं भावं शृणु त्वं मुनिपावन ! ॥ ४७१ ॥ वाराणस्यां
नृपो नाम्ना जितशत्रुर्जितारिः । तद्वैद्यो धनदत्ताख्यस्तस्य भामा धनार्पणा ॥ ४७२ ॥ राजदक्षां निजां वृत्तिं भुनक्त्येव सुखं तयोः
धनमिश्रधनेन्दुद्वौ पुत्रौ स्तोऽपि जडौ स्त्रितौ ॥ ४७३ ॥ कियत्काले मृतस्तातस्तदा वृत्तिं नृपोऽगृहीत् । अन्यवैद्याय तां वृत्तिं वदौ
शास्त्रविदे मुदा ॥ ४७४ ॥ तदा तौ भ्रातरौ चंपायां च गत्वा चिकित्सितं । पठित्वा शिवभूतेऽप्यपार्श्वे सभागमोत्सुकौ ॥ ४७५ ॥
आगच्छतौ तदारण्ये व्याघ्रमेतौ विलोचनं । विलोक्य धनमित्राख्यः प्रोवाचेति लघुं प्रति ॥ ४७६ ॥ मेषजैरंध्रव्याघ्रं मो करोमि निर्मल-
दृशं । निष्क्रिदोऽपि कनिष्ठेन मेषजं कृतं वास्तदा ॥ ४७७ ॥ गतपीडेन व्याघ्रेण भक्षितो धनमिश्रधाक् । कृतघ्ना नैव जानन्ति ह्युप-

किसी समय बनारसमें एक जितशत्रु नामका राजा था जो कि वैरियोंको जीतनेवाला था, उसका राजवैद्य धनदत्त था और उसकी स्त्री धनदत्ता थी । राज्यकी ओरसे जो उसे वृत्ति मिलती थी उससे वह सानंद भोग भोगता था । राजवैद्य धनदत्तके धनमित्र और धनचंद्र नामके दो पुत्र थे, दोनों ही महामूर्ख थे और मस्त पड़े रहते थे ॥ ४६६—४७३ ॥ कुछ कालके बाद वैद्य धनदत्तका अंतकाल हो गया । पुत्रोंको मूर्ख जान राजाने उनकी वृत्ति छीन ली एवं वैद्य शास्त्रके जानकार किसी अन्य वैद्यको दे दी । आजीविकाके छूट जानेसे दोनों भाइयोंको बड़ा दुःख हुआ । वे दोनों घरसे निकल दिये । चंपापुरीमें जाकर शिवभूति नामक प्रसिद्ध वैद्यके पास वैद्यशास्त्रका अभ्यास किया । वे पूर्ण विद्वान हो गये तब उन्होंने अपने घर आनेका विचार कर लिया । वहांसे चलकर वे एक जङ्गलसे होकर आ रहे थे कि मार्गमें उन्हें अंधा बाघ दीख पड़ा । दयालु धनमित्रने उसे दुःखी जान अपने छोटे भाई धनचन्द्रसे कहा—भाई ! यह अंधा बाघ बड़ा दुःख पाता है अपनी दवासे मैं इसे सूझता बना दूं ऐसी इच्छा है । छोटे भाई धनचंद्रने मना की तो भी धनमित्रने नहीं माना और उसे अपनी औषधसे सूझता कर दिया ॥ ४७४—४७७ ॥ जब बाघ सूझता हो गया तो उस कृतघ्नी दुष्ट बाघने अपने उपकारी धनदत्तको खा डाला, ठीक ही है जो मनुष्य कृतघ्नी होते हैं उनके हजारों उपकार किये जाय तो भी वे उपकारोंको नहीं मानते-अपकार ही करते हैं ।

कारसहस्रकं ॥ ४७८ ॥ एवं श्रुत्वा मुनिः प्राह श्रेष्ठिनं भ्रमिताशयं । विश्वासहेतवे नूनं श्रोतव्या कथिका त्वया ॥ ४७९ ॥ हास्तिनागपुरे राजा विश्वसेनोऽस्य भामिनी । वसुकांता तयोः पुत्रो वसुदत्तो गुणप्रियः ॥ ४८० ॥ एकदा केन चिद्ग्राहे सार्धवाहेन प्राभृतं । रसाल-फलमाचके पृष्ठं गच्छा ललेति किं ॥ ४८१ ॥ तदोवाच महीशं स आमप्रभृतिरोगहृत् । सुधासमंफलं धेतत् नीत्वा राजा स्त्रियै ददौ ॥ ४८२ ॥ सा पुत्राय ददौ मोहात् पुत्रो राज्ञे ददौ नृपः । बल्लभत्वात्फलं मेघं मालिने वपने ददौ ॥ ४८३ ॥ उक्तं च मालिना बीजं तदा तद्वरजायत । कियद्विर्वासरैः श्रेष्ठिन् ! प्रादुर्भूतफलं क्रमात् ॥ ४८४ ॥ विषेन इति पाठः । खे गृध्रे सर्पमास्ये च गृहीत्वा सति गच्छति । फलस्थोपरि सद्भिन्दु विषस्य पतितं तदा ॥ ४८५ ॥ (इति पाठः) विषौष्यफलं जातं सेठ जिनदत्तकी यह बात सुनकर और उसे अपनेमें भांत समझ कर विश्वास उपजानेके लिये मैंने कहा—मैं भी एक कथा कहता हूँ तुम ध्यानपूर्वक सुनो—

हस्तिनागपुरमें एक राजा विश्वसेन था । उसकी स्त्रीका नाम भामिनी था और उससे वसुदत्त नामका पुत्र उत्पन्न था जो कि गुणोंमें प्रेम करने वाला था ॥ ४७८—४८० ॥ एकदिन किसी यात्रीने आकर राजाको भेंटमें आमका फल दिया । नवीन किंतु सुन्दर चीज जानकर राजाने पूछा—भाई यह क्या है ? उत्तरमें व्यापारीने कहा—राजन् ! यह आम आदि रोंगोंका हरने वाला अमृतके समान आमका फल है । राजाने उसे ग्रहण कर लिया और अपनी प्यारी स्त्रीको दे दिया ॥ ४८१—४८२ ॥ माताका पुत्रपर विशेष स्नेह होता है इसलिये राजरानीने वह अपने पुत्रको दे दिया । पुत्र पिताको बहुत मानता था इसलिये उसने उठाकर राजाको दे दिया राजाने उसफल को चाकूसे बनाया खाया एवं उसे अत्यंत मनोज्ञ जान मालीको बुलाकर उसे बोनैके लिये दे दिया । मालीने बीज लेकर बगीचेमें उसे बोदिया । कुछ दिन बाद वह वृक्ष होगया और फल भी लग आये । एक गीध पक्षी मुखमें सर्प लेकर आकाशमें जा रहा था दैवयोगसे एक फलपर विषकी बूंद पड़ गई । विषकी गरमीसे फल पक गया । मालीने उसे पका जान राजाको आकर भेंट किया । राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसे धन देकर राजी कर दिया । पुत्रपर अत्यंत स्नेह

फलं नीत्वा स मालिकः । भूपालं दत्तवांस्तावदुभूपस्तस्मै ददौ धनं ॥ ४८६ ॥ पुत्राय मोहतो दत्तं तत्कलं तेन भक्षितं । विषेण पतितो
 मूमौ वृक्षं छेदयतिस्म सः ॥ ४८७ ॥ विषगाकारितो राजा तेन ज्ञाता विषोद्भवा । विक्रिया तत्कलं नीत्वा तदा दत्तं विषं गतं ॥ ४८८ ॥
 तदा राजा महादुःखं चर्करीतिस्म मानसे । अहो वृक्षो विषघ्नोऽयं ध्यर्थं छेदयितो मया ॥ ४८९ ॥ अविमृश्य न कर्तव्यमतो गुणिजनैः
 स्फुटं । अपरीक्ष्य न वक्तव्यं विमृश्यकारिभिर्नरैः ॥ ४९० ॥ पुनः श्रेष्ठो मुनिं प्राङ् कथामेकां शृणु प्रभो ! गंगातरेऽतिविषपातो विश्व
 भूतोऽस्ति तापसः ॥ ४९१ ॥ तच्छटे कुंजरं दृष्ट्वा बहंतं लघुकं स ख । निष्कास्य मळमानीतो वर्धितस्तेन भावतः ॥ ४९२ ॥ राजा तं
 कर वह फल उसने अपने पुत्रको खानेके लिये दे दिया ज्यों ही उसने खाया तोत्र जहरके प्रभावसे
 वह मूर्छित हो जमीनपर गिर गया । राजाको बड़ा कष्ट हुआ शीघ्र ही उसने वृक्ष कटवाकर फिकवा
 दिया । पुत्रकी खिदिस्साके लिये शनि हो वैद्य बुलवाया । उसने वह मूर्छा विषजन्य जानली ।
 तत्काल उसी आमका फल मगाया और उससे विषकी वेदना दूर करदो ॥ ४८३—४८८ ॥ आम
 फलका यह विचित्र प्रभाव जान राजाको बड़ा कष्ट हुआ एवं वह अपने मनमें इसप्रकार क्लेश
 करने लगा । हाय विषको दूर करने वाला वृक्ष मैंने वृथा खोद डाला । गुणोजनोंको विना विचारे कोई
 भी कार्य नहीं करना चाहिये और जो मनुष्य विचार शील हैं उन्हें किसी बातकी विना जांच किये
 कुछ कहना भी नहीं चाहिये ॥ ४८६—४९० ॥ मुनिराजकी यह कथा सुन फिर भी सेठ जिन-
 दत्तने यह कथा कहनी प्रारंभ कर दी—

गंगा नदीके तटपर एक विश्वभूत नामका तपस्वी रहता था । एक दिन एक हाथीका बच्चा
 नदीमें बहता चला जाता था । दयालु तपस्वीने उसे निकाला और अपने मठमें लाकर प्रेमपूर्वक
 पालन पोषण कर बढ़ाया । जब वह बड़कर सवारीके योग्य होगया तब उसे नगरका राजा ले आया
 और उसे शिक्षित करनेके लिये अंकुशसे वश करने लगा । हाथीको यह बात दुःखदायी जान पड़ी ।
 वह तत्काल भागकर गंगाके तटपर आ गया । तपस्वीने उसे वहां न रहने दिया । दुष्ट हाथीने क्रोध
 कर अपने पोषण करने वाले तपस्वीको मार डाला । भगवन् ! कृपाकर बताइये हाथीने जो तपस्वीके

सिंधुरं नीत्वा सांकुशं तं यदाकरोत् । तदा पलाय्य नंगायास्तीक्ष्णमागतवान् गजः ॥४६३॥ निवारितो यदा हस्ती तापसं तममोमरत् ।
एतद्युक्तमयुक्तं वा भो मुने ! वद संप्रति ॥ ४६४ ॥ इत्यादिवादसंघातैर्दुष्टभावं पितुश्च सः । स्नात्वा कुवेरदत्तो हि न्यश्चिदप्रतो घटं
॥ ४६५ ॥ धिग् द्रव्यं पापदं नीत्वं मुनिश्चौरायते यतः । विचार्य पितृपुत्राभ्यामिति दीक्षां समाश्रितौ ॥ ४६६ ॥ हे श्रेणिक नराधीश !
कायगुप्तिः स्थिता न मे । अतो व्याघ्रद्वयं त्वद्गुहेहादागतोऽहं घनांतरे ॥ ४६७ ॥ चेलिन्या सह भूपोऽपि ससम्यक्त्वो गृहागतः । जैनधर्म
मयो भूत्वा भुनक्तिस्म सुखं सुखं ॥ ४६८ ॥ बभूवुः सप्तपुत्राश्च चेलिन्या वेदसूनवः । कुणिको वारिषेणश्च शिवहल्लौ विहल्लकः ॥ ४६९
जितशत्रुः षष्ठमो जातः सप्तः सप्तः लिगद्यते । तौ सप्तः सप्तः सप्तः सप्तः सप्तः सप्तः सप्तः सप्तः ॥ ५०० ॥ आरुह्य सिंधुरं मत्तं प्रावृषि च भ्रमा
साथवर्ताव किया वह युक्त था वा अयुक्त ? ॥ ४६१ । ४६४ ॥ इत्यादि रूपसे जिससमय सेठ
जिनदत्त और मुनिराजका आपसमें वादविवाद हो रहा था, जिनदत्तका पुत्र कुवेरदत्त भी वहां बैठ
था । मुनिराजके विषयमें अपने पिताके दुष्ट भाव जान शीघ्र ही उसने रत्नोंका घड़ा लाकर रख
दिया एवं यह विचार कर कि—“यह द्रव्य पापोंका प्रदान करने वाला है महानीच है क्योंकि
इसके संबंधसे मुनिराजको भी चोर होना पड़ता है इसलिये इसे धिक्कार है, दोनों पिता पुत्रोंको
संसारसे वैराग्य हो गया एवं दोनोंने दिगंबरीदीक्षा धारण कर ली । इसी कारण हे राजन् श्रेणिक
मेरे कायगुप्ति न थी इसलिये मैं तुम्हारे मन्दिरमें आहार न लेकर सीधा बनको चला आया ॥ ४६५-
४६७ ॥ तीनों मुनिराजोंके मुखसे ये वचन सुन महाराज श्रेणिकका सम्यक्त्व दृढ़ हो गया वे
अपनी रानी चेलनाके साथ घर लौट आये एवं साक्षात् जैनधर्म स्वरूप होकर अनेक प्रकारके सुख
भोगने लगे ॥ ४६८ ॥ महाराज श्रेणिकके रानी चेलिनीसे सात पुत्र उत्पन्न हुए थे जोकि साक्षात्
इन्द्रके पुत्र समान थे उनमें पहिला पुत्र कुणिक था दूसरा वारिषेण तीसरा शिव चौथा हल्लक
पांचवा विहल्लक और छठा जितशत्रु था । सातवां पुत्र मेघकुमार था और उसका वर्णन इस
प्रकारहै—

म्यहं । दुधेरं तं परिहाय सचिंतोऽस्यान्नराधिपः ॥ ५०१ ॥ एकदा दुर्बलां ग्रीक्ष्य योषं धृत्वा स्थितस्ततः ॥ ५०२ ॥ दुःखितं वीक्ष्य राजानमभयः पृष्ठवाग्बिलः । कुतो दुर्बलता देहे त्वदीये स्पर्धस्तन्निभे ॥ ५०३ ॥ तदा प्रोक्तं समाकर्ण्य प्रागदीत्सरसं वचः । मा चिंतां कुट हे तात ! करिष्येऽदोऽविलंबतः ॥ ५०४ ॥ एवमुक्त्वा गतो रात्रौ श्मसानेऽतिभयंकरे । विलोकनाय प्रेतस्य खड्गहस्तो महोभुजः ॥ ५०५ ॥ फणिकूत्कारसंभवकुञ्जवृक्षे परस्परं । व्यंतरारधसंग्रामहकारावमहाकुले ॥ ५०६ ॥ युग्मं । भंजनाभाहयो यत्र वंद्यते दृढद्विजाः । व्याघ्रमल्लकगुग्गुदिधृतमांसा विधलिगताः ॥ ५०७ ॥ ज्वलंतोऽनलसंघाता रारट्पत्येव व्यंतराः । शाकिनी डाकिनी सिद्धो फि

जिससमय कुमार मेघ रानी चेलिनीके गर्भमें था उससमय उसे यह दोहला हुआ कि “मैं हाथीपर बैठकर वर्षा कालमें आकाशमें घूमूं” एवं वह उस दोहलेकी चिंतासे दिनों दिन दुर्बल होती चली गई । तथा महाराज श्रेणिकके पूछे जानेपर उसने सारा दोहलेका समाचार कह सुनाया जिससमय महाराज श्रेणिकने यह दोहला सुना उन्होंने उसकी पूर्ति अत्यंत कठिन समझी इसलिये उन्हें बड़ी चिंता हो गई वे चुप होकर घरमें रहने लगे परंतु उस तीव्र चिंतासे उनका शरीर दिनों दिन कुश होता चला गया ॥ ४६६—५०२ ॥ महाराज श्रेणिकको अत्यंत दुःखित देख कुमार अभयने पूछा—पूज्य पिता ! तुम्हारा शरीर सुवर्णके समान कांतिमान और पुष्ट था सो वह दुर्बल और फोका क्यों पड़ता चला जाता है । कुमारके ये वचन सुन उत्तरमें महाराज श्रेणिकने सारा किस्सा कह सुनाया । कुमार अभय बड़े चतुर और गंभीर थे शीघ्र ही उन्होंने मनोहर वचनों में कहा—पिताजी ! आप रंचमात्र भी चिंता न करें मैं बहुत जल्दी इस कामका करूंगा बस ऐसा कह कर रातके समय वह विशाल भुजाओंका धारक कुमार हाथमें खड्ग लेकर प्रेतोंके देखनेके लिये उस श्मसान भूमिकी ओर चल दिया जो श्मसान भूमि सर्पोंके फूत्कारोंकी गर्मीसे जले हुए वृक्षोंकी धारक थी एवं आपसमें लड़नेवाले व्यंतरोंके महाभयंकर शब्दोंसे व्याप्त थी ॥ ५०३-५०६ ॥ जिनके दांत दृढ़ थे जो अन्नजन पर्वतके समान महाकाले थे बाघ भालू और गीध आदिको मांसोंको ग्रहण करते थे एवं फुंगरते थे ऐसे महाभयंकर वहांपर सर्प थे ॥ ५०७ ॥ जगह जगह वहां अग्निकी चितायें

नन्दीकृतमोक्षनाः ॥ ५०८ ॥ तमिस्रा तामसी यत्र रुद्रालोका प्रवर्तते । भक्षयित्वाश्लिष्टं विश्वं तारिकास्त्रिविभूषणा ॥ ५०९ ॥ रात्रि
धुंकारसंरावा पर्वतस्तनमंडिता । ज्वलच्छवाहना नूनं राक्षसीव विराजते ॥ ५१० ॥ (युग्मं) ईदृक्षे कानने विद्वानभयो भीतिवर्जितः ।
दीपाकुले वटे वैकं विभीकं दृष्ट्वाचरं ॥ ५११ ॥ गत्वा पप्रच्छ कोऽसि त्वं कस्मात्त्वं च समादितः । मालया अपसि किं भो किं नाम
वद मधु मे ॥ ५१२ ॥ अरीरणवृक्षस्तं शृणु भ्रातर्निगद्यते । विजयाधोऽस्तरधेन्यां गगनप्रियपत्तनं ॥ ५१३ ॥ तत्राहं वायुधेगाख्यो राजे

जलतीं थीं । व्यंतर जातिके भूत पिशाच आदि देव जोरसे कोलाहल करते थे शाकिनी डाकिनी
भूतिनी और किन्नरियों के भयंकर शब्द होते थे ॥ ५०८ ॥ उससमय उ च श्मसान भूमि में विपुल
अन्धकारको धारण करनेवाली रात्रि सां सां शब्द कर रही थी । चांदनीका प्रकाश एकदम रुका
हुआ था इसलिये वह रात्रि उससमय ऐसी जान पड़ती थी मानो इसने समस्त जगत्को भक्षण
कर लिया है और यह तारा रूपी हड्डियों के भूषणोंको धारण किए हैं । वह श्मसान भूमि साक्षात्
राक्षसी थी क्योंकि राक्षसी जिसप्रकार धुंकार शब्द करती है उसीप्रकार वह श्मसान भूमि भी
धुंकार शब्दोंसे व्याप्त थी । राक्षसीके जिसप्रकार स्तन होते हैं । श्मसान भूमिके भी पर्वत रूपी
स्तन विद्यमान थे । एवं राक्षसी जिसप्रकार मुदोंको खाने वाली होती है उसीप्रकार वह श्मसान
भूमि भी मुदोंको भस्म करनेवाली थी । इसप्रकारके भयंकर वनमें निर्भीक एवं चतुर कुमार अभय
एक वट वृक्षकी ओर चला जिसपर कि एक दीपक टिमटिमा रहा था एवं वहांपर एक निर्भीक
मनुष्य दीख पड़ा । कुमार अभय शीघ्र ही उसके पास पहुंचा एवं इसप्रकार बात चीत करने लगा-

भाई ! तुम कौन हो ? कहाँसे यहांपर आये हो ? यह जो हाथमें माला लिये बैठे हो इससे
क्या जपना चाहते हो और तुम्हारा नाम क्या है ? मुझे शीघ्र कहो ॥ ५०९—५०१२ ॥ वटवृक्षपर
बैठा हुआ पुरुष कहने लगा—सुनो भाई ! मैं अपना सारा वृत्तांत सुनाता हूं तुम ध्यान पूर्वक
सुनो—

राजेव सद्धनः । एकदा मंदिरे नंतुं गतश्चैत्यालयान् ध्रुवं ॥५१४॥ यदा विजयार्थस्थस्य बालकाख्यस्य पुत्रिका । नाम्ना सुभद्रिका दृष्टा
तदाहं विस्मयं गतः ॥ ५१५ ॥ कामेषु प्रियितेनाशु श्रुता सा हृदये दधत् । तदा साहं तदा देव ! मानुष्यं सफलीकृतं ॥ ५१६ ॥ खग-
चक्री हृतां क्षात्वा तनूजां पूरयन्नभः । आजगाम महाक्रोधाज्ञानाविद्याविशारदः ॥ ५१७ ॥ सोऽपि मां संगरे जित्वा मम विद्या
निहत्य च । नीत्वा सुतां गतो मेहे वभूषाहं च भूचरः ॥ ५१८ ॥ द्वादशाब्दसुपर्यंतं मंत्रजाप्यं करोमि च । विद्यार्थं भो तथाप्यत्र
सिद्धिर्नाभूदगुणप्रिय ! ॥ ५१९ ॥ सांप्रतं तु गृहे गंतुं कामोऽस्मि गृहमायया । श्रुत्वा जगाद् मंत्रीशस्तन्मंत्रं मे समर्पय ॥ ५२० ॥

विजयार्थ पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें एक गगन प्रिय नामका नगर है मैं वहांका वायुवेग नामका विद्याधर राजा हूं । जो कि चन्द्रमाके समान शोभायमान और उत्तम धनसे मंडित हूं । मैं एक दिन (मेरुवा विजयार्थ) पर्वतके चैत्यालयोंकी बंदना करने गया था वहींपर विजयार्थ श्रेणिके स्वामी राजा बालककी सुभद्रा नामकी पुत्री भी आई थी जो कि परम सुन्दरी थी । उसे देखते ही मैं चकित हो गया । कामवाण मुझे बुरी तरह वेधनेलगे इसलिये वह मैंने बलपूर्वक हरण कर ली । अपनी प्राणधारी बनाई और उसके साथ मैंने अपना मनुष्यजन्म सफल बनाया ॥ ५१३-५१६ ॥ विद्याधरोंके स्वामी उसके पिता राजा बालकको यह पता लग गया कि मैं सुभद्राको हर लाया हूं, वह मारे क्रोधके पजल गया और समस्त आकाशको आच्छादता हुआ मेरी नगरीकी ओर चल दिया । वह अनेक विद्याओंका धनी था इसलिये मेरी और उसकी जिससमय मुठ मेंट हुई संग्राममें उसने मुझे जीत लिया । मेरी विद्याओंको नष्ट कर दिया । अपनी पुत्री सुभद्राको घर ले गया और मुझे विद्यारहित भूमिगोचरी बना दिया ॥ ५१७-५१८ ॥ गुणप्रिय कुमार ! विद्यासिद्ध करनेके लिये बराबर बारह वर्षोंसे मंत्रोंकी जाप कर रहा है तो भी मुझे विद्यासिद्ध नहीं हुई है । वस अब मैं हताश होकर घरकी चिंतासे अपने घर जा रहा हूं । वायुवेगकी यह बात सुनकर मंत्रीश अभयकुमारने कहा—भाई ! यदि तुम जाते हो तो उस मंत्रको मुझे बता दो । वायुवेगने मन्त्र बता

नीत्या मंत्रं जजापाशु दृढध्यानासनोदयात् । अभयस्य महाविद्या सिषेधाचिरकालतः ॥ ५२१ ॥ तत्प्रभावात् खगस्यापि विद्यासिद्धि-
रभूत्तरां । तयोस्तदा सुमित्रत्वाच्चान्योन्यं नेमतुस्तरां ॥ ५२२ ॥ मृगाक्षी-द्रव्यपुत्रादिविद्याराज्ययशांसि च । स्वर्गभोक्षसुखान्धेव
भवन्त्यद्भुतपुण्यतः ॥ ५२३ ॥ गत्वानगरेऽभयो धीमौञ्चके मेघं बलान्वितं । राश्याशां पूरयित्वा स ह्यौजिङ्गमन्दिरस्य तां ॥ ५२४ ॥ किय-
त्यपि गते काले राक्षी पुत्रमजीजनत् । दोहदकानुसारेण नाम्ना मेघकुमारकं ॥ ५२५ ॥ श्रेणिकस्य सुतो धीमानभयाख्यो चिचक्षणः ।
बुद्ध्या गुरुरिषोद्भूतो देवराड्य लीलया ॥ ५२६ ॥ पूरमल्लापतिः कृष्ण इवार्धचरणप्रियः । मंगलो वा महाप्राज्ञो धैर्यगांभीर्यगौरवः ॥
५२७ ॥ पट्टराश्याः सुताः सप्त बभूवुः सप्त सागराः । गंभीरा इव सद्बुद्धिपारगाः परमोदयाः ॥ ५२८ ॥ एवं पुत्रादिसत्सौख्यलीलया देवरा-

दिया । दृढ ध्यान और दृढ आसन साढ़कर कुमार अभय बैठ गये और मन्त्र जपने लगे । पुण्यकी प्रबलतासे थोड़ी ही देरमें उन्हें महाविद्या सिद्ध हो गई । उनके प्रभावसे विद्याधर वायुवेगको भी विद्यासिद्ध हो गई । दोनों आपसमें मित्र हुए और प्रेमपूर्वक दोनोंने आपसमें नमस्कार किया । ठीक ही है पुण्यके उदयसे संसारमें स्त्री द्रव्य पुत्रविद्या राज्य यश स्वर्ग और मोक्षके सुख सभी कुछ प्राप्त होते हैं ॥ ५२६—५२३ ॥ मन्त्र सिद्धकर कुमार अभय घर लौट आये । विद्याबलसे मेघकी रचना की उसमें रानीको घुमाकर उसकी आशा पूरी की । एवं घमा फिराकर उसे राजमन्दिर में लौटा लाये । कुछ दिनबाद रानी चेलिनीके पुत्र हुआ और दोहलेके अनुसार उसका नाम मेघ कुमार रक्खा गया ॥ ५२४—५२५ ॥ महाराज श्रेणिकका पुत्र कुमार अभय बड़ा भारी बुद्धिमान और चतुर था । बुद्धिमें बृहस्पतिके समान था और इन्द्रसरीखी लीला करनेवाला था ॥ ५२६ ॥ तथा वह पूरमल्लाके स्वामी मुक्त कृष्णदासके समान भगवान् अर्हतके चरणोंका प्रेमी था । मेरे छटे भाई मंगल-दासवा मंगल ताराके समान महा विद्वान् एवं धीरता गंभीरता और गौरवका खजाना था ॥ ५२७ ॥ महाराणी चेलिनीके सात पुत्र थे जो कि साक्षात् सात समुद्र थे । महागंभीर थे । उत्तम बुद्धिके पारगामी थे और परम उपमाके धारक थे । शेष नागके समान पराक्रमी वे राजा श्रेणिक उत्तम पुत्र दिव्य सुख

दिव । गतं कालं न जानाति श्रेणिकः शेषविक्रमी ॥ ५२६ ॥ प्रतापजितमार्तदो वषट्पनिर्जितचंद्रमाः । बुद्ध्या चातिगुरु राजा राजते
जितशाश्वतः ॥ ५२७ ॥ स्वाम्यमात्यसुहृत्कोषदेशदुर्गवल्गुम्बितः । ससांगमिथ सद्राज्यं भुनक्ति मगधाधिपः ॥ ५२८ ॥ स्वर्णसद्वर्ण
काश्मीरललामललभालकः । स्वर्णानुविजमुक्तानां हारान्वितगलः कलः ॥ ५२९ ॥ स्वर्णाभः स्वर्णदो स्वर्णविभूषितगजाश्वकः ।
स्वर्णग्राही च शशुभ्यः स्वर्णकुंडलमंडितः ॥ ५३० ॥ मुक्ताफलरदोन्मुक्तालीनोमुक्तानलप्रभः । मुक्ताकांक्षी मुमुक्षुर्णां गुणग्राही सुद-
र्शनः ॥ ५३१ ॥ दविर्दानं सुपात्रेभ्यः पयिर्धर्माभृतं परं । सजनौघान् समाजहिष्मन्क्रिष्णाहितखंडनां ॥ ५३२ ॥ सहस्रद्वयभूपालकिरीटा-

और उत्तमोत्तम क्रीडाओंसे इन्द्रके समान थे और जाते हुए कालको तनिक भी नहीं जानते थे । महाराज श्रेणिकने अपने दीप्त प्रतापसे सूर्यको जीत लिया था । मुखकी सुंदरतासे चंद्रमा नीचा कर दिया था । बुद्धिसे इन्द्रके गुरु बृहस्पतिको हरा दिया था एवं समस्त वैरियोंको जीत लिया था इसलिये वे अत्यंत शोभायमान थे । तथा मगध देशके स्वामी वे महाराज श्रेणिक, राजा मन्त्री मित्र खजाना देश किला और सेना रूप राज्यके सात अङ्गोंसे वंष्टित हो उत्तम राज्यका इच्छानुसार भोग करते थे ॥ ५२८—५३१ ॥ वे महाराज श्रेणिक ललाटपर सुवर्णके समान उत्तम वर्णके काश्मीरी चंदनका तिलक लगाते थे । मलेमें सुवर्णके तारमें पिरोए हुए मोतियोंका हार पहिने थे । मनोहर थे । सुवर्णके समान कांतिवाले थे । याचकोंको सुवर्णका दान देनेवाले थे । उनके हाथी और घोड़े सुवर्णके भूषणोंसे भूषित थे । शत्रुओंसे वे न्यायानुकूल ऋण लेते थे । सुवर्ण कुण्डलोंसे भूषित थे । उनके दांत मोती सरीखे थे । जिस चीजको छोड़ देते थे—दान कर देते थे फिर उसकी लालसा नहीं रखते थे । मोतियोंके समान नखोंकी कांतिसे शोभायमान थे । मोक्ष की सदा अभिलाषा रखते थे । जो महानुभाव मोक्षाभिलाषी थे उनके गुणोंको ग्रहण करनेवाले थे सम्यग्दृष्टि थे । सुपात्रोंको अच्छी तरह दान देनेवाले थे । धर्मरूपी अमृतको सदा पीनेवाले थे । सज्जनोंको सदा प्रसन्न करने वाले थे । जो बात अहितकारी होती थी उसका सदा खंडन करते थे

नित्यपादकः । एवं महाविभूत्या च राज्यं शक्तिं सुरैर्दधत् ॥ ५३६ ॥ अथैकदा महावीरो विपुलाचलमस्तकि । अपकाण जगत्पूज्यः
परमानन्ददायकः ॥ ५३७ ॥ लोकेषामनुमतात् श्रीदशैकसीतिस्य विष्टरं । मरुतोद्भूतसत्पीठं चसुर्गतिविराजितं ॥ ५३८ ॥
(युग्मं) पञ्चसद्वितिकविंशतिसङ्ख्यप्रदखलं । गणैर्द्वादशभिर्युक्तं मानस्तंभैरलंकृतं (५३९) स्थांसि यत्र राजति
सपत्नानि पराणि च । हंससारसरावाणि पद्मरागमयानि च ॥ ५४० ॥ धेनुशावै रमतेऽत्र व्याघ्रशावा मदोत्कटाः । नकुलाः
सकला नागैः रंभ्यन्ते स्वभावतः ॥ ५४१ ॥ सुवने सर्वजंतूनां गतं कृतपरस्परं । जन्मादिकं त्रिधा वैरं जगन्नाथप्रभावतः ॥
५४२ ॥ नकुलाद्यादिजंतूनां गतं कृतपरस्परं । जन्मादिकं त्रिधा वैरं जगन्नाथप्रभावतः ॥ ५४३ ॥ निर्जला वापिकाः सर्वा मातृभ्यो
भारपूरिताः । हंससारसचक्रांगपंकजामरण्यायिताः ॥ ५४४ ॥ शुष्कवृक्षा विराजते त्रमद्भूमरसंकुलाः । लतांतकुसुमैर्नद्याः फलैश्च
एवं दो हजार मुकुटवद्धराजा उनके चरणोंकी सेवा करते थे इसप्रकार वे महाराज श्रेणिक देवोंके
इन्द्रके समान बड़ी विभूतिसे राज्यका पालन करते थे ॥ ५३२—५३६ ॥

एक दिन विपुलाचल पर्वतके ऊपर समस्त जगतके पूजनीक और परमानन्द प्रदान करनेवाले
भगवान महावीरका शुभ आगमन हो गया । इन्द्रकी आज्ञासे कुवेरने उनके समवसरणकी रचना की
और उस समवसरणकी भूमि नीलमणिकी बनाई जो कि चारों गतिके जीवोंसे शोभायमान थी ॥ ५३७-
५३८ ॥ वह समवसरण पांच विशाल उत्तमोत्तम भीतियोंसे शोभायमान था । बीस हजार पैडियोंका
धारक था । बारह कोठे और मानस्तंभोंसे शोभायमान था । उस समवसरणके अन्दर पद्मराग मणि
के बने हुये सरोवर थे जो कि उत्तमोत्तम कमलोंसे व्याप्त थे और हंस एवं स्यास आदि पक्षियोंके
शब्दोंसे शोभायमान थे ॥ ५३९—५४० ॥ उस समय वहां गायोंके बच्चे मदसे मत्त भी सिंहोंके
बच्चोंके साथ और नौले सर्पोंके साथ स्वभावसे ही सानंद कीड़ा करते थे आपसमें कोई किसीसे
वैर नहीं निभाता था ॥ ५४१ ॥ तीन जगतके स्वामी भगवान् जिनेन्द्रके माहात्म्यसे संसारके समस्त
जीवोंका वा नौला सर्प आदि समस्त जीवोंका जन्म आदि तीन प्रकारका आपसी वैर नष्ट हो
गया था ॥ ५४२-५४३ ॥ जल रहित समस्त बावडिये जलसे भरी हुई थीं । हंस स्यास चकवा

पिकराचिणः ॥ ५४४ ॥ पट्टमल्लूनां फलान्येव कुसुमानि विशेषतः । आङ्गमयुगपत्काले धीतरागप्रभावतः ॥ ५४५ ॥ राज्ञत्यप्सरसो
 वृंदं वृंदारकसमाश्रितं । नर्तत्ययोधराभोगं वृंदं वा हैमवीरुधौ ॥ ५४६ ॥ मालाकारः समायातो वाटिकायां बिलोकयन् । तदा ददर्श-
 संभूतां सर्वशोभां फलान्वितां ॥ ५४७ ॥ किमेतदिति चित्ते स त्यक्तकालकुसुमादिकं । व्यतर्कयच्चिरं भ्रांत्या नु माया मृगतृष्णिका ॥
 ५४८ ॥ कियद्दूरं ततो गत्वा यावत्पश्यति कौतुकं । दध्वान् दुंदुभीरावः पुरयन् गगनांगणं ॥ ५४९ ॥ कियत्यपि पुनर्गत्वा मार्गे
 शोभां लुलोक सः । देवदेवकृतां त्रिशत्सहस्रध्वजराजितां ॥ ५५० ॥ जयारवेविमानस्थभङ्गविभङ्गकृतीकृतां । सुरांगनामुखोद्भूतैर्वधि-
 रीकृतदिङ्मुखां ॥ ५५१ ॥ युग्मं । एवं दृष्ट्वा निवृत्त्याश्च नीत्वा कुसुमसत्फलं । गत्वा राज्ञः पुरस्तात्स मुक्त्वा चानृतुसंभव ॥ ५५२ ॥
 और कमलरूपी भूषणोंसे भूषित थीं । जो वृक्ष सूखे पड़े थे वे अतापर्यंत फूल और फलोंसे नम्री-
 भूत हो गये । भौरे घूम घूम कर गुंजार शब्द करने लगे और उनपर बैठकर कोकिला मनोहर और
 मधुर आलाप आलापने लगीं समस्त ऋतुओंके फल और फूलोंसे समस्त वृक्ष लदवदा गये ॥ ५४४-
 ५४६ ॥ देवोंसे व्याप्त जैसी अप्सरायें शोभित होती हैं उसीप्रकार कमलोंसे व्याप्त वहांकी सरोवरी
 अत्यंत शोभायमान थी तथा विशाल स्तनोंसे कंपित जैसा अप्सराओंका समूह अत्यंत शोभायमान दीख
 पड़ता है वैसा ही सुवर्णमयी लताओंका समूह भी अत्यंत शोभायमान था । माली जिस समय वनमें आया
 समस्त शोभा और फलोंसे युक्त जिस समय उसने वहांकी जमीन देखी वह मन ही मन विचार करने
 लगा कि यह समय तो फूल आदिके आनेका नहीं है फिर ये जो फूल आदि दीख रहे हैं यह क्या है ?
 क्या यह इन्द्रजाल है या मृगतृष्णा है ? तथा इसप्रकार तर्क वितर्क करता जिस समय वह थोड़ी दूर
 और आगे बढ़ा तो क्या देखता है कि दुंदुभि बाजेका उन्नत शब्द हो रहा है जिसने कि अपनी
 गुंजारसे समस्त आकाशरूपी आंगन पूर रक्खा था ॥ ५४७—५५० ॥ उससे भी आगे जब कुछ
 बढ़ा तो वह मार्गमें महामनोहर शोभा निरखने लगा जो शोभा देवोंके देव इन्द्रो द्वारा की गई
 थी । तीस हजार ध्वजाओंसे युक्त थी । विमानमें बैठनेवाले और भंकार करनेवाले देवोंके भंकारों
 से परिपूर्ण थी एवं देवांगनाओंके मुखोंसे जायमान जय जय शब्दोंसे समस्त दिशाओंको बधिर
 करने वाली थी ॥ ५५१-५५२ ॥ वस भगवान् महावीरके प्रभावसे होनेवाले दृश्यको देखकर एवं कुछ

अग्रग्रीवो नराधीश ? नन्द स्वं करुणालय ! महावीरागमेनैव चिरं जीव चिरं जय ॥ ५५३ ॥ श्रुत्वोत्थितो महीपालो गत्वा सप्तपदानि च
तां दिशं ननमीतिस्म परोक्षविनयान्वितः ॥ ५५४ ॥ हर्षितोऽदासदा राजा वस्त्रालंकारसद्वनं । मालाकाराय भावेन राजराज इवापरः
॥ ५५५ ॥ वंदितुं गंतुकामः सन्तानंदाख्यं सुदुर्दुभिं । दापयामास सद्गत्या पौरसन्नाहसंवृतः ॥ ५५६ ॥ सिंधुरांश्च मदोन्मत्तानंज
नामान् कियत्सतान् । विचित्रांश्चरितान्नामारंगराजिविचित्रितान् ॥ ५५७ ॥ दानतोयमहावृष्टिपंकाकुलितभूतलान् । सशृंगारितवान्
राजा वाम्रविद्युद्भमान् भृशं ॥ ५५८ ॥ षट्त्रिंशज्जातकानश्चान् खांभोभूमिगतीन् दृढान् । स्युष्टं गामिनो राजा भूषयामास सोऽरि

सुन्दर फूल और उत्तम फल लेकर वह महाराज श्रेणिककी राजसभामें गया । वनके अन्दर जो
बेचतुमें शोभा हुई थी सारी कह सुनाई एवं गद्गद बाणीसे इसप्रकार कहने लगा—

महाराज ! आपके उद्यानमें भगवान महावीर आकर विराजे है । उनके आगमनसे आप नादो
चिरकाल तक जीओ और चिरकाल तक जयवन्ते रहो ? वनपालकी यह आनंद प्रदान करनेवाली
बात सुनकर महाराज श्रेणिक एकदम सिंहासनसे उठे । जिस दिशामें भगवान महावीर स्वामी
विराजमान थे उस दिशामें सात पेड़ आगे बढे और बड़े विनयसे उस दिशाको परोक्ष नमस्कार
किया । महाराज श्रेणिकके आनंदका उस समय ठिकाना न था इसलिये जिसप्रकार कुवेर निःसं-
कोचरूपसे दूसरेको धन प्रदान करता है उसप्रकार महाराज श्रेणिकने भी बड़े उत्साहसे मालीको उत्तम
वस्त्र अलंकार और विपुल धन प्रदान किया ॥ ५५३—५५६ ॥ भगवान जिनेन्द्रकी बंदनाकी अभि-
लाषा चित्तमें उछलने लगी इसलिये उन्होंने शीघ्र ही बंदनाकी घोषणा करनेके लिये नगरमें
आनंद भेरी दिवादी एवं पुरवासी लोगोंके साथ चलनेके लिये उद्यत हो गये । उससमय महाराज
श्रेणिकने कईसौ हाथी सजवाये जो कि मदोन्मत्त थे अन्जन पर्वतके समान काले थे । अनेक
प्रकारकी झूलोंसे शोभायमान थे । नाना प्रकारके रंगोंसे चित्र विचित्र थे एवं झरते हुये मदरूपी
जलकी महावृष्टिसे उन्होंने समस्त पृथिवीतल कीचमयकर दिया था इसीलिये वे हाथी आकाशमें

जित् ॥ ५५६ ॥ मासमयसतेः पट्टकलेनामभ्युपगमः । साधिकीद्वयस्यैवाम्नायः श्रेणिकेन स्वकारिता ॥ ५५७ ॥ अथयम् दिङ्मुखाग्नेव
 रंजयन् लोकसंघकान् । जयानन्दप्रभोरेतात् समुद्रमोहिनीयुतः ॥ ५५८ ॥ चतुर्गणसेनायाः छत्रचामराजितः । निर्ययौ पट्टध्वानैर्वद्रितुं
 सप्तमतिं जिमं ॥ ५५९ ॥ मल्लस्त्रं त्रिलोकमाशु दूरतो नरनायकः । गजामुत्तीर्णं भौतिकम् साष्टांगं छत्रवर्जितः ॥ ५६० ॥ निःसहीति
 पठन् राजा विवेश समवसृतिं । सुगमिस्तोः समुल्लंघ्य पश्यन् शोभां गतोऽतरे ॥ ५६१ ॥ शिष्टं स्वमहावीरं तेजसा व्यासद्विक्वपं ।
 त्रिः प्रक्षिणिकां कृत्वा नमाम काश्यपोदतिः ॥ ५६२ ॥ अर्धयित्वाय संस्तुत्वा निविष्टो नरकोष्ठके । संदृष्ट्वा हि महोपालो जिनं

विजलीसे युक्त काले काले मेघ सरोखे जान पड़ते थे । छत्तीस प्रकारकी जालिके घोड़े सजाये गये
 जो कि अपनी कलाओंसे आकाश जल और स्थलपर चलनेवाले थे । दृढ़ थे और ओरेवी चाल
 चलनेवाले थे । महाराज श्रेणिक क्षायिकसम्यग्दृष्टि थे इसलिये उन्होंने समवसरणकी जमीनपर्यंत
 रंग विरंगे कपड़ोंको बिछाकर चलनेका मार्ग सजाया था ॥ ५५७—५६१ ॥ भगवान महावीर
 जिनेन्द्रकी बंदनाकेलिये महाराज श्रेणिक धूल दिये, जिससमय वे चले अपने बाजोंके शब्दोंसे
 समस्त दिशायें उन्होंने शब्दायमान कर दीं । जीओ नादो इत्यादि शब्दोंसे समस्त लोक उन्होंने
 आनंदित कर दिया । समस्त पुत्र और रानी चेलिनीको अपने साथमें ले लिया । चारो प्रकारकी
 सेना उनके साथ चलने लगी । उनके शिरपर छत्र फिरता और चमर दुरते जाते थे एवं दुंदुभि
 बाजे बजते जाते थे । बनमें पहुँचकर जिससमय राजा श्रेणिकको मान स्तंभ दीख पड़ा वे तत्काल
 हाथीसे उतर पड़े । छत्र चमर आदि विभूति छोड़ दी एवं दूरसे ही उसे साष्टांग नमस्कार किया ॥
 ५६२--५६४ ॥ समवसरणके प्राप्त आकर "निःसहि निःसहि निःसहि" इसप्रकार तीनवार निःसहि
 शब्दका उच्चारण करने लगे । समवसरणके भीतर प्रवेश किया एवं ऊंची ऊंची भीतोंको उल्लांघकर
 वे समवसरणकी शोभा मिरखने लगे ॥ ५६५ ॥ समवसरणके मध्यभागमें भगवान महावीर जिनेन्द्र
 विराजमान थे जिनके कि प्रखंड सेजसे समस्त दिशायें जगमगा रहीं थीं । राजा श्रेणिकने उनकी

शमप्रदं शिवं ॥ ५६६ ॥ स्वभवावलिकं श्रुत्वा तूष्णीत्वं संस्थितो यदा । अभयाख्यो जितं नत्वा पप्रच्छ स्वभवावलिं ॥ ५६७ ॥
 शृणु वत्स ! भवान् स्वीयान्कथयामि समासतः । द्विज एको याति वेदाभ्यासार्थं श्रावकेण च ॥ ५६८ ॥ कियन्मार्गे द्विजो गच्छन् दृष्ट्वा
 चाभमुखं वटं । परीत्य भावयुतः सन्ननाम विनयान्वितः । ५६९ ॥ श्रावको हि तदा स्मित्वा नीत्वा पत्राणि तत्तरोः । स्वपादं च
 परिसृज्य क्षिप्तवान् काश्यपीतले ॥ ५७० ॥ दृष्ट्वा द्विजो महाक्रोधादब्रवीत् श्रावकं प्रति । किं कस्यपि न जानासि देवाचित्रं हि कष्टद
 ॥ ५७१ ॥ श्रावकोऽपि द्विजं प्राह यदीयं शुद्धदेवता । तर्हि मम विनाशं च कारयत्येव नान्यथा ॥ ५७२ ॥ द्विजो त्रिशं पुनः प्राह कं
 तीन प्रदक्षिणा दीं । भक्तिपूर्वक नमस्कार किया । पूजा की । पूजाके अंतमें स्तुति की । अनुच
 कोठेमें जाकर विराज गये । अनेक प्रकारसे कल्याणोंको प्रदान करनेवाले और साक्षात् मोक्ष
 स्वरूप भगवान् जिनेंद्रसे अपने पूर्वभव पूछे । भगवान्ने अपनी दिव्यध्वनिसे उनका वर्णन किया ।
 सुनकर राजा श्रेणिक शांत होकर अपने स्थानपर स्थिर होकर बैठ गये । राजा श्रेणिकके साथमें
 कुमार अभय भी गये थे उन्होंने भगवान् जिनेंद्रको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और विनयपूर्वक अपने
 पूर्वभवोंको पूछा । भगवान् जिनेंद्र भी यह कहकर कि—वत्स ! मैं संक्षेपसे तुम्हारे पूर्वभव कहता
 हूँ । उसके पूर्वभव वर्णन करने लगे—

बेणातड़ागपुरका निवासी एक ब्राह्मण वेदाभ्यास करनेके लिये चला । दैवयोगसे उसके साथ
 साथ एक श्रावक भी चल दिया । चलते चलते कुछ दूर जब वह विप्र पहुँचा तो सागमें उसे एक
 बड़का वृक्ष दीख पड़ा । ब्राह्मणने भक्तिभावसे उसकी प्रदक्षिणा दी और मस्तक झुकाकर नमस्कार
 किया । ब्राह्मणके साथमें जो श्रावक गया था वह जैनधर्मका परम भक्त था । ब्राह्मणने जो कार्य किया
 था उसे देख वह मुसकराने लगा । वृक्षके थोड़े पत्ते तोड़ लिये । उनसे पैर पोंछे और उन्हें जमीन
 पर डाल दिया ॥ ५६६—५७१ ॥ श्रावककी यह चेष्टा देख ब्राह्मण अपना क्रोध न संभाल सका
 शीघ्र ही उसने श्रावकसे कहा—अरे भाई ! तुम क्या करते हो ? क्या तुम नहीं जानते कि देवकी
 अवज्ञा महा कष्ट प्रदान करने वाली है । उत्तरमें श्रावकने ब्राह्मणसे कहा—भाई ! यदि तुम्हारा

देवो भवतामिति । अग्रेऽस्ति द्विज ! मे देवः किमर्थं पृच्छसि त्वकं ॥ ५७३ ॥ वसित्वा वाडवोऽवोचत् पश्चिन्निपदं नव । देवं नेष्या-
 म्यहं तद्वत् परीक्षार्थं न शंसयः ॥ ५७४ ॥ कियत्यपि ततो दूरे गत्वा स श्रावकोत्तमः । कपिकच्छतां दृष्ट्वा नरत्वायान्वह्निजं प्रति ॥
 ५७५ ॥ देवोऽयं सकलो विप्र ! मदीयो भक्तिभिः सदा । इति श्रुत्वा गृहीत्वा तत्पत्राक्षीनि विनादतः ॥ ५७६ ॥ अत्राग्रे पश्चिन्निपदं
 चलत्येव यदा तदा । खर्जपीडाकुलो भूत्वा पपात धरणीतले ॥ ५७७ ॥ तदासौ श्रावकं प्राह तव प्रत्यक्षदेवता । प्रतिबोधेन विप्रस्य
 देवमौढ्यं निराकरोत् ॥ ५७८ ॥ मार्गे गच्छंस्ततः प्राप्तं गंगातीर्थं ततो द्विजः । भागीरथी हरिर्विप्राः इत्युक्त्वा पतितांतरे ॥ ५७९ ॥
 ततोऽप्राश्नीत्युनः श्राद्धो द्विजं मिथ्यादृशं भृशं । किमेतस्य महात्म्यं भो तीर्थस्यावगतं वद ॥ ५८० ॥ वभाण श्रावकं विप्राः पवित्रयति
 यह देव पश्चिन्न और शक्तिमान होगा तो मेरा विनाश करेगा और यदि यह कुछ न होगा तो कुछ
 नहीं कर सकता । श्रावककी यह बात सुन वह ब्राह्मण उत्तर तो न दे सका केवल यही उसने पूछा
 कि भाई ! तुम्हारा देव कौन है ? उत्तरमें श्रावकने कहा— मेरा देव आगे है । तुम मेरे देवको
 क्यों पूछते हो ? हंसकर ब्राह्मणने उत्तर दिया जिसप्रकार तुमने मेरे देवका तिरस्कार कर उसकी
 परीक्षा की है उसप्रकार मैं भी तुम्हारे देवका तिरस्कार कर उसकी परीक्षा करूंगा इसमें जरा भी
 संदेह मत समझो । कुछ दूर चलकर एक कपिकच्छ (खुजली करने वाले) वृक्षकी बेल देखो ।
 उसे देख कर श्रावकने कहा प्रिय विप्र ! मेरा सबसे उत्कृष्ट देव यह है भक्तिपूर्वक सदा इसकी
 पूजा करनी चाहिये । सुनकर ब्राह्मणने हंसकर उसके पत्ते तोड़ लिये । उनसे अपना शरीर पोंछ
 डाला और जल्दी जल्दी आगे चल दिया बस आगे थोड़ी ही दूर पहुँचा था कि उसका सारा
 शरीर खुजलीसे व्याकुल हो गया एवं वह दुखित हो जमीनपर गिर गया तथा श्रावकसे कहने
 लगा भाई ! तुम्हारा देवता सच्चा है इस प्रकार प्रतिबोध देकर श्रावकने विप्रके अंदर जो देव मूढ़-
 ताका भाव विद्यमान था वह दूर कर दिया और वे दोनों आगे चलने लगे ॥ ५७२-५७६ ॥
 आगे चलकर गंगा नदीका तीर्थ पड़ा । भागीरथी हरि और विप्र, ऐसा उच्चारण कर वह ब्राह्मण
 गंगामें कूद पड़ा । मिथ्यात्वी ब्राह्मणकी यह चेष्टा देखकर श्रावकने पूछा—भाई ! इसतीर्थका

माहृशान् । पुनर्ददाति वैकुण्ठं पञ्चहत्याविनाशकं ॥५८६॥ श्रुत्वासौ श्रावको भोक्तुं कामो हितत्तटे स्थितः । भुक्त्योच्छिष्टं जातौर्मिष्टं कृत्वा
तस्मै समर्पितं ॥५८७॥ तदा ये च द्विजो हा हा भोजनं मे कदर्थितं । श्रावकः प्राह हे विप्र ! कथं नास्ति जघादिति ॥ ५८८ ॥ तदा भृशं वता
। त्वं भोक्षुर्नामि कथं वद ? । त्वयोच्छिष्टं कदर्थं च साक्षाच्छूद्रेण पापिना ॥५८९॥ अब्रवीदब्राह्मणं सोऽपि यत्पवित्रयितुं क्षमः ।
तज्जलैर्मिश्रितं धान्यं न भोक्तव्यं कथं हव्या ॥ ५९० ॥ इत्यादिहेतुभिः कृत्वा प्रतिबोधं गतो द्विजः । तं गुरुं प्रतिपद्याशु जैनतत्त्वं पपाठ
सः ॥ ५९१ ॥ गच्छन्तौ हि ततो मार्गे आत्त्या भ्रष्टपथौ तदा । जातौ गतौ महाद्व्यां संभृताशं कुजंतुभिः ॥ ५९२ ॥ तत्र सन्यस्य
चणिका सार्धं विप्रो मृतस्तदा । पूर्वस्वर्गे ससुहृतः सुरासुरनिर्षितः ॥ ५९३ ॥ ततश्च युत्वास्य राक्षस्य पुत्रो जातोऽभयाव्ययकः ।

तुमने क्या गहरा माहात्म्य समझ रखना है उत्तरमें ब्राह्मणने कहा— भाई श्रावक ! यह तीर्थ हम
सरीखे मनुष्योंको तारक है फिर वैकुण्ठको देता है जहाँपर कि गौ हत्या आदि पञ्च हत्याओंसे
छूटना होता है । ब्राह्मणकी यह बात सुन भोजन करनेकी इच्छासे श्रावक उसके तटपर बैठ गया ।
जब खा चुका और जो जूठा बच रहा वह जलमें मिलाकर उसे समर्पण कर दिया अर्थात् गंगामें
क्षेपण कर दिया । श्रावककी यह चेष्टा देख ब्राह्मण कहने लगा—हा हा तूने मेरा भोजन अप-
वित्र कर दिया उत्तरमें श्रावकने कहा—भाई विप्र ! तुम जल्दी क्यों नहीं खा लें ? ब्राह्मणने कहा-
बता मैं खाऊँ कैसे साक्षात् शूद्रस्वरूप पापी तूने सबका सब जूठा और अपवित्र कर दिया उत्तरमें
श्रावकने कहा भाई ब्राह्मण जो जलसंमिश्रित धान्य तुम्हें पवित्र बना सकता है उसे तुम खाते क्यों
नहीं हो । मेरे जूठे और अपवित्र करनेपर वह जूठा और अपवित्र नहीं माना जा सकता । इत्यादि
बहुतसी युक्ति प्रयुक्तियोंसे श्रावकने ब्राह्मणका मिथ्यात्व भगा दिया । ब्राह्मणने भी उस श्रावकको
अपना गुरु माना और उससे जैनधर्म पढ़ा । वहाँसे आगे फिर भी वे दोनों चल दिये आगे जाकर
वे रास्ता भूल गये और एक ऐसी महावनीमें जा निकले जो क्रूर जीवोंसे भरी हुई थी । दोनोंने
वहाँपर सन्यास मरण किया । विप्र मर कर पहिले स्वर्गमें अनेक सुर असुरोंसे सेवित देव हो गया

अस्मिन् भवे तदस्तप्यया यास्यसि परमं पदं ॥ ५८६ ॥ अथासी श्रेणिको धीमान् वर्धमानं जिनं शिवं । नत्वाचोत्तदा नूनं पुङ्गवली
 हृत्य हस्तयोः ॥ ५८७ ॥ हे नाथ जगतां आतर्जुणाम्मोघे जगत्प्रभो ! । सुरासुरनरार्थशस्त्रस्तुतांघ्रे ! शिवप्रद ! ॥ ५८८ ॥ ज्ञानरूप !
 तमोहारिण मोहारे ! कामधब् ! जिन ! किञ्चित्पृच्छाम्यहं देव ! सादराद्व्यवाहितं ॥ ५८९ ॥ श्रीविमलनाथस्य पुराणं हृदयंगमं ।
 श्रेतुमिच्छाम्यहं नाथ ! भव्यानां एकनाशनं ॥ ५९० ॥ तदसमये बलो जातो धर्माख्यो धर्मतत्परः । स्वयंभूश्चापि संजातः वंशयोत्यन्त
 विक्रमः ॥ ५९१ ॥ प्रतिचक्री महान् जज्ञो नाना मधुरिति स्मृतः । पतेषां किं घलं शौर्यं कथयात्र कृपामय ॥ ५९२ ॥ संजयन्तनाथ
 ध्यानं विधत्ते ज्ञानस्य कारणं । तद्गुणौ यामितौ जातौ तेषां वृत्तं वद प्रभो ॥ ५९३ ॥ मुनीनां दानिनां नाथ ! ध्यानिनां च भवदृशां ।

प्रिय कुमार ! वहांसे चयकर तुम राजा श्रेणिकके अभयकुमार नामके पुत्र हुए हो और तुम इस
 भवसे तप तपकर नियमसे परम पद मोक्ष प्राप्त करोगे ॥ ५८७—५८८ ॥ जिससमय कुमार अभय
 के पूर्वजोंका वर्णन समाप्त हो चुका उससमय राजा श्रेणिकने साक्षात् कल्याण स्वरूप भगवान्
 वर्धमानको नमस्कार किया एवं दोनों हाथोंको जोड़कर इसप्रकार भक्तिपूर्वक कहने लगे :—

स्वामिन् ! आप तीनों जगतके रक्षण करता हो । गुणोंके समुद्र हो । तीनों जगतके खाली हो
 आपके चरण कमलोंकी बड़े २ सुर असुर और मनुष्योंके स्वामी स्तुति करते हैं । सेवकोंको मोक्ष
 प्रदान करने वाले हो । ज्ञानस्वरूप हो । अज्ञान अंधकारको नाश करनेवाले हो । मोहरुगी बैरीको
 हरानेवाले और कामदेवको भस्म करने वाले हो । भगवान् ! जिस बातके विनयपूर्वक जाननेकी
 भव्योंको इच्छा है मैं उसे ही पूछना चाहता हूँ । प्रभो ! भगवान् विमलनाथका पुराण अत्यन्त मनो-
 हर है और भव्यजीवोंके पापोंका नाश करनेवाला है इसलिये मैं उसे ही सुनना चाहता हूँ । भगवान्
 विमलनाथके समयमें धर्म नामका बलभद्र हुआ है । स्वयंभू नामका नारायण हुआ है और मधु
 नामका प्रतिनारायण हुआ है इनका कितना बल था कितनी शूरवीरता थी, हे कृपानाथ ! आप
 कृपाकर कहें ॥ ५९१—५९२ ॥ मुनिराज संजयन्तका तप ध्यान उनपर जो उपसर्ग पड़ा था वह

शूराणां शीलागुणानां चक्रिणां प्रतिचक्रिणां ॥ ५६७ ॥ चरणांग मनोजानां कथां कल्याणमाजनं । श्रोतुमिच्छन्ति ते भव्या रागद्वेष-
पराङ्मुखाः ॥ ५६८ ॥ अतः पृच्छाम्यहं देव ! ज्ञानार्थं स्वस्व प्रेमतः । आसन्नभव्यजीवानां मुखात् सर्वविज्ञानं ! ॥ ५६९ ॥ श्रेणिको
यान्नयित्वेति नूयणीत्वं स्थित्वास्तदा । सपुत्रश्च जिनोयुक्तः क्षात्रिकोत्पन्नभावतः ॥ ६०० ॥

सुरनरपनिपूज्यं वर्धमानं जितेशं सकलकलजनानां पापहन्तारमेव ।

कनकनिषलकांतिं विष्टरे भासमानमिहरविवर्तितांतं श्रेणिकाथ्यं नमामि ॥ ६०१ ॥

और उनके ज्ञानका कारण कहें तथा मुनिराज संजयंतके गणमें उन्हींके समान जो दो मुनिराज
हुए हैं उनका भी वृत्तांत प्रतिपादन करें क्योंकि हे भगवान् ! जो महानुभाव मुनि हैं । दानी हैं
आपके समान ध्यानी हैं शीलवान् शूरवीर हैं । चक्री (चक्रवर्ती और नारायण) प्रतिनारायण
चरम शरीरी और कामदेव हैं उनकी कथा कल्याणोंकी करनेवाली है जो महानुभाव इनको
कथाको सुनना चाहते हैं वे भव्यजीव हैं और रागद्वेषसे विमुख हैं ॥ ५६७—५६९ ॥ इसलिये
हे देव ! हे सर्वज्ञ जिनेंद्र ! मैंने अपने ज्ञानको वृद्धिके लिये और जितने भी आसन्न भव्यजीव हैं
उन्हें आलस्य उपजानेके लिये भगवान् विमलनाथ आदिके चारित्र्य पढ़नेकी इच्छा प्रगटकी है
वस इसप्रकार अपनी जिज्ञासा प्रगट कर क्षात्रिक सम्यग्दृष्टि महाराज श्रेणिक अपने पुत्र और
महारानी चेलिनीके साथ शांत होकर अपने स्थानपर बैठ गये ॥ ६००—६०१ ॥

अन्वयकार अंतमंगलकी कामना करते हुए कहते हैं कि जो वर्द्धमान भगवान् सुरेंद्र और नरेंद्रों
से पूजित हैं । कर्मोंके जोतनेवाले महानुभावोंमें मुख्य हैं । समस्त प्राणियोंके पापोंको नष्ट करने
वाले हैं सुवर्णक समान मनाहर प्रभाके धारक हैं । सिंहासनपर देदीप्यमान हैं । अपनी उत्कट
प्रभासे रविवर्तिता—सूर्यको प्रभाकी भी फीकी करनेवाले हैं और राजा श्रेणिककी प्रार्थनाको पूरा
करने वाले हैं उन श्रीवर्द्धमान स्वामीको मैं नमस्कार करता हूँ ।

इति श्रीविमलनाथपुराणे कृष्णदासविरचितेऽनुजय श्रीमंगलदास सनेके नामान्य महाराजश्रीश्रेणिकृत प्रश्नो नाम प्रथमः सर्गः ॥१॥
इसप्रकार अपने छोटे भाई महं श्रीमंगलदासकी सहायतासे कृष्णदास द्वारा विरचित श्रीविमलनाथ पुराणमें महाराज
श्रेणिक द्वारा किये गये प्रश्नका वर्णन करनेवाला पाहिला सर्ग समाप्त हुआ ।

दूसरा सर्ग ।

पुराण पुरुषो जीयाज्जगच्छास्ता शिवप्रदः । मोहांधकार मार्तंडः कोटिसूर्याधिकः प्रभः ॥ १ ॥ अथैवं भगवान् दिव्यध्वनिक्षीरार्णवस्तदा ।
जगर्ज भगवद्वक्त्रपूर्णराश्रीशवंदितः ॥ २ ॥ मुख्यसत्तरंगात्म दशनज्ञानसेतुधान् । चारित्राभो अवध्वंसी महाघन इवापरः ॥ ३ ॥

तीनों लोकके शासन करने वाले जीवोंको कल्याणके कर्ता मोहरूपी अन्धकारके लिये सूर्य
स्वरूप एवं करोड़ों सूर्योंकी प्रभासे भी अधिक प्रभा धारण करनेवाले पुराण पुरुष भगवान तीर्थंकर
सदा जयवन्त रहे ॥ १ ॥ जिसप्रकार चंद्रमाके संबंधसे समुद्र उबलता और गर्जना है उस
प्रकार भगवानके मुखरूपी पूर्ण चंद्रमाके संबंधसे उनका दिव्य ध्वनिरूपी क्षीर समुद्र गर्जने लगा
॥ २ ॥ वह दिव्य ध्वनि साक्षात् महामेघ सरीखी जान पड़ती थी क्यों कि जिसप्रकार मेघ जलों
की नाना प्रकारकी तरंग स्वरूप होता है उसीप्रकार वह दिव्य ध्वनि भी स्यादस्ति स्थान्नास्ति
आदि सप्त भंग स्वरूप थी अर्थात् दिव्य ध्वनिसे जो भी उपदेश होता था वह सप्तभंगी वाणीके
अनुसार ही होता था । महामेघ जिसप्रकार सेतु (पुल) विशिष्ट होता है अर्थात् नदी आदि स्थानों
को पार करनेके लिये महामेघके समय खास कर पुलोंका उपयोग किया जाता है उसीप्रकार भग-
वान महावीरकी दिव्य ध्वनि भी दर्शन ज्ञानरूपी सेतुसे युक्त थी अर्थात् सम्यग्दर्शन और सम्य-

साधु पृष्ठं त्वया भूप ! सज्जनानां सुखं प्रदं । यस्य श्रवणतो भव्या सदुद्रता यांति मोक्षतां ॥ ४ ॥ चच्छ्रीविमलनाथस्य पुराण श्रवणोत्सुकः । तर्हि चंद्रे चकोरो वा भूत्वा त्वं सादरं शृणु ॥ ५ ॥ अथैव धातुकीखंडो वर्ततेऽनेकवस्तुभृत् । पद्मवेदूर्यनीलाभरत स्पर्णादि खानिकः ॥ ६ ॥ चतुर्लक्षप्रमैर्योजनकैर्विस्तारतां गतः । कुण्डलाकृति कालाब्धि वेष्टितोऽनेकचित्रधृत ॥ ७ ॥ तस्य पश्चिमका ग्लानके स्वरूपके वर्णनका उसमें विशेष संबंध था । महामेघमें जिसप्रकार जल रहता है भगवानकी दिव्यध्वनि भी चारित्ररूपी जलसे परिपूर्ण थी अर्थात् दिव्यध्वनि द्वारा वर्णन करनेका खास लक्ष्य सम्यक्चारित्र था । एवं महामेघके समय जिसप्रकार संसार उलट पुलट हो जाता है उस प्रकार वह दिव्य ध्वनि भी संसारको उलट पुलट—विच्छेद करानेवाली थी उसके संबंधसे लोग संसार के नाश करनेके लिये प्रवृत्त होते हैं ॥ ३ ॥ महाराज श्रेणिकके प्रश्नके उत्तरमें भगवान महावीरने अपनी दिव्य ध्वनिसे कहा—

हे राजन ! तुम सज्जन पुरुषोंको सुख प्रदान करनेवाले हो इसलिये तुमने जो प्रश्न किया है वह बहुत ही उत्तम किया है क्यों कि तुम्हारे प्रश्नके उत्तरमें जो भी कहा जायगा उसके सुननेसे भव्य जीव समीचीन व्रतोंसे भूषित होंगे और उन व्रतोंके संबंधसे मोक्ष प्राप्त करेंगे ॥४॥ नरपाल ! यदि तुम्हें भगवान विमलनाथके चारित्र सुननेकी विशेष उत्कंठा है तो चकोर पक्षी जिस प्रकार चंद्रमाकी ओर इकटक दृष्टि लगाता है उसी प्रकार तुम भी विमलनाथके चरित्रकी ओर दृष्टि लगाकर उसे ध्यानपूर्वक सुनो मैं उसका वर्णन स्पष्टरूपसे करता हूँ:—

इस पृथ्वीपर एक धातुकी खंड नामका द्वीप है जो कि अनेक मनोज्ञ वस्तुओंका भंडार है । नीलकमल और वैडूर्य मणियोंकी प्रभाका धारक है । रत्न और सुवर्णकी अनेक स्थानियोंसे शोभायमान है । चार लाख योजन प्रमाण चौड़ा है । कुण्डलके समान गोलाकार है । कालोदधि समुद्र चारों ओरसे उसे घेरे हैं एवं वह अनेक क्षेत्रोंका धारण करने वाला है

पठायं मेखर्ज्यूनदपभः । चतुरश्रोतिसहस्रैश्च योजनैरुन्नतः स्फुटं ॥ ८ ॥ गगनं जिगमिषुः स्वर्गं नु धरित्री स्ततोऽथवा । शानकुम्भ
मयस्तन्मो गगनोद्धार हेतुतः ॥ ९ ॥ चतुर्वन्तमको लेख कर्द्वकविषेवितः । सुरर्त्तीणां कुचायात कठिनोक्तसत्तयः ॥ १० ॥ अग्न्यस्य रति
सौगन्ध्युद्गारसंकीर्णपटपदः । सुरजातैर्जिनेन्द्राणां नानर्हश्चैत्य मंडितः ॥ ११ ॥ चतुर्भिः कटापकां गत्य पश्चिमदिग्भागे नद्याः सुदक्षिणे
तटे । महापद्मालयदेशस्य मध्ये तृतीय खंडकः ॥ १२ ॥ तन्मध्यो रम्यते रम्यो विषयो रम्यकावती । नानाशोभाकरः पुंसि द्विष्यो मरुतामपि
॥ १३ ॥ गोपुरोद्भासिषालानि यत्र भांति पुराणि च स्वर्णहर्षाणि प्रौढानि विद्वज्जन कुटानि च ॥ १४ ॥ यत्र खेटा विराजन्ते सत्तिर-

इसी धातुकी खंडकी पश्चिम दिशामें मेरु पर्वत है जो कि सुवर्णके समान प्रभाका धारक और
चौरासी हजार योजन ऊंचा उठा हुआ है सो ऐसा जान पड़ता है मानो यह स्वर्ग जानेका इच्छुक
है अथवा पृथिवीरूपी स्त्रीका उन्नत कुच है वा निराधार आकाश नीचे गिर न पड़े इसलिये उसे
रोक कर रखनेवाला सुवर्णमयी स्तंभ है । यह मेरु पर्वत नंदन वन आदि चारों वनस्वरूप है । देवों
के समूहके समूह यहांपर विहार करते हैं । इसके तटभाग देवांगनाओंके घटनोंसे अत्यंत कठिन
है । देवांगनाओंकी रतिसमयकी सुगंधिमें मत्त होकर सदा भोरें उसपर भुन भुनाट करते रहने है
अनेक देवोंसे नाना प्रकार पूजनीक है और भगवान् जिनेंद्रोंकी प्रतिमाओंसे मंडित है ॥ ५-११ ॥
उसी मेरु पर्वतकी पश्चिम दिशामें नदीके दक्षिण तटपर महापद्म देशके ठीक मध्यभागमें तीसरा
खंड है उस तीसरे खंडके मध्यभागमें एक रम्यावती देश है जो कि महामनोहर है । अनेक प्रकार
की शोभाओंका स्थान है एवं मनुष्य और देव सर्वोंके लिये एक दर्शनीय पदार्थ है ॥ १२—१३ ॥
इस रम्यकावती देशके गोपुर—सदर दरवाजोंसे चम चमाते हुए प्राकार और पुर अत्यंत शोभाय
मान जान पड़ते हैं । धनिकोंके घर सुवर्णमयी बने हुए हैं और वहांके विद्वान लोग अनेक प्रकार
की विद्या और कलाओंमें प्रौढ़ हैं ॥ १४ ॥ इस रम्यकावती देशके खेट चारों ओरसे नदी और
पर्वतोंसे घेरित महामनोहर जान पड़ते हैं और कर्वट चारों ओरसे पर्वतोंसे अत्यंत रमणीक दीप्ति

वर्तव्येष्टिताः । कर्बुटानि विभांत्येव परितः पर्वतैरपि ॥ १५ ॥ वृत्त्यैव वेष्टिता यत्र ग्रामा भांति पदे पदे । पर्वतोपरि संस्थानि वाह-
नानि विभांति च ॥ १६ ॥ यत्र राजतके द्रोणा धनद्रोणा इवापरे । पथोराशिश्चिता वाहं विद्रुमावलिरंजिता ॥ १७ ॥ शुकचंचुहस्तियंग-
शीर्षैः कर्बुरितानि च । शालिवप्राणि राजते कामस्य सदृश्या इव ॥ १८ ॥ इक्षुशोभा हि यत्रैव लोचनोद्भासिनी परा । पदे पदे लस-
त्येव स्वर्णिणाप्रापि दुर्लभाः ॥ १९ ॥ हंससारचकोराणि वक्षितानि सरांसि च । स्थव्रजलोयाणि राजते नानावृक्षतटानि वै ॥ २० ॥

पड़ते हैं ॥ १५ ॥ जिनके चारों ओर बाड़—परकोट खिचे हुए हैं ऐसे गांव जगह जगह वहांपर
सुंदरतासे बसे हुए हैं जो कि नेत्रोंको अत्यंत प्यारे जान पड़ते हैं तथा पर्वतोंसे भी ऊंचे रथ आदि
बाहन उस देशकी अत्यंत शोभा बढ़ाते हैं ॥ १६ ॥ उस देशके द्रोण--जलके भरे तालाब धनके
खजाने सरीखे जान पड़ते थे क्योंकि जिसप्रकार तालाब "पथोराशिश्चिताः" पथ--जलकी राशिसे
शोभायमान थे उसीप्रकार धनके खजाने भी पथ-रत्न आदिकी राशिसे शोभायमान थे । जिस
प्रकार तालाब 'विद्रुमावलिरंजिताः' विद्रुम--वृक्षोंकी पंक्तियोंसे शोभायमान थे उसीप्रकार धनके
खजाने भी विद्रुम--मृगोंके समूहसे शोभायमान थे ॥ १७ ॥ उस देशके पके हुए धान्योंके खेतोंमें
शुक-तोते पड़ते थे इसलिये शुकोंके लालवर्ण और अपने हरे वर्णसे रंग विरंगे वे अत्यंत शोभाय-
मान जान पड़ते थे अतएव लोग उन धान्योंके खेतोंको कामदेवके साक्षात् उत्तम घर समझते
थे ॥ १८ ॥ वहांपर जगह २ नेत्रोंको प्रफुल्लित करनेवाली ईखके वृक्षोंकी शोभा अत्यंत शोभाय-
मान जान पड़ती थी जिस शोभाका निरखना देवोंको भी अत्यंत दुर्लभ था ॥ १९ ॥ वहाँके तालाबों
पर हंस सारस और चकोर पक्षी बिचरते फिरते थे निर्मल जलसे वे परिपूर्ण थे और उनके तट
भागोंकी भांति भांतिके वृक्ष विचित्र शोभा बढ़ा रहे थे इसलिये वे तालाब नेत्रोंको परमानंद
प्रदान करते थे ॥ २० ॥ वहाँके आम वृक्षोंके बर्नामें जगह जगह भ्रमण करते हुए भौरोंके भुन
भुनाट शब्द सुन पड़ते थे । कोकिल हंस और भौरोंके महा मनोहर शब्द होते थे इसलिये वहाँकी

भ्रमद्भ्रमरभङ्गकाराः पिकहंसशिलङ्गिणां । आराधाभूतवृक्षेषु विराजन्ते पदे पदे ॥ २१ ॥ गोपभामा विलोक्याशु पीनवक्षोजमण्डिताः ।
स्वभामाः कोपयन्त्येष स्थूलवक्षोजवल्गुभाः ॥ २२ ॥ मकरन्दमरेणैव लसत्यङ्गकपोलकाः । अमराः सस्मिता यत्र चुम्बनाश्लेषरागिणः ॥ २३ ॥
यत्र नद्यो विराजन्ते कुटिला विभ्रमान्विताः । हृदयाभ्याः सपद्माश्च सर्वसेव्यपथोभराः ॥ २४ ॥ तटोन्नितं धारिण्यः पक्षिशब्दः

शोभा बड़ी ही मनको हरण करने वाली थी ॥ २१ ॥ वहांके ग्वालोंकी स्त्रियोंके स्तन स्वभावसे ही स्थूल थे इसलिये स्थूल स्तनोंकी अभिलाषा रखने वाली अन्य स्त्रियां रात दिन इस बातका डाह कर कि हमारे ऐसे स्थूल स्तन क्यों नहीं ? क्रोधमें भभकतीं रहतीं थीं । वह देश सुगंधित पदार्थों की सुगंधिसे सदा महकता रहता था अतएव वहांपर भ्रमण करनेवाले देवोंकी देवांगनाओंके शरीर और कपोल भी उत्कट सुगंधिसे सदा महकते रहते थे इसलिये देव गए वहांपर देवांगनाओं के कपोलोंके चुम्बन करनेमें और शरीरोंसे आलिंगन करनेमें ही सदा उत्सुक बने रहते थे ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ वहांकी नदियां संभोवकालमें रसास्वादन करने वाली वेश्या सरीखी जान पड़तीं थीं क्योंकि जिसप्रकार वेश्या कुटिल होती हैं उनका चित्त कभी भी सीधा साधा सरल नहीं दीख पड़ता उसी प्रकार वहांकी नदियां भी कुटिल थीं उनका बहाव सीधा न होकर सदा चक्रदार होता था । जिस प्रकार वेश्या “विभ्रमान्विताः” विलासप्रिय होती हैं नदियां भी जलके भ्रमरोंसे व्याप्त थीं । वेश्या जिसप्रकार हृदयकी गूढ़ होती हैं—कोई भी उनके मनका भाव नहीं पहिचान सकता उसप्रकार वे नदियां भी अपने हृदयभागमें अत्यंत गहरीं थीं । वेश्या जिसप्रकार शरीरपर कमल धारण किये रहतीं हैं उसप्रकार वे नदियां भी कमलोंसे अत्यंत शोभायमान थीं । जिसप्रकार वेश्याओंके पयो-धर स्तनोंका हर एक उपभोग कर सकता है उसीप्रकार उन नदियोंके जलका भी हर एक उपयोग करता था । जिसप्रकार वेश्यायें उन्नत नितंबोंको धारण करने वाली होती हैं उसीप्रकार वे नदियां उन्नत तटरूपी नितंबोंको धारण करनेवालीं थीं । वेश्या जिसप्रकार बोल चालमें बड़ी चतुर रहतीं

विचक्षणाः । निर्गमद्वाभगा रम्या वेश्या वा रसरा जिताः ॥ २५ ॥ मुमुक्षुवो विराजन्ते ध्यानस्था यत्र सत्पथाः । शैलारण्यसरि-
त्सानुनिवासाः साम्यधारिणः ॥ २६ ॥ यत्र सिद्धान्तवाणीभिः पंडितं शक्रः समं । महापुराभिधं सर्वशोभाभारभृतं भृशं ॥ २७ ॥
सप्तैकविंशतिभूका रत्नसंरञ्ज्य सत्पथाः । हेमस्तम्भा विराजन्ते गृहा यत्रैव चित्रिताः ॥ २८ ॥ उत्तुंगलोरणोपेताः स्वर्ण सोपानसत्पथः ।
रत्नचैत्याञ्च यत्रैव प्रसादाः सन्ति भूदिशः ॥ २९ ॥ वृत्तलं यत्र भातीव शिखरं रत्नगर्भितं । नु भानुश्चन्द्रमा किन्तु कामाक्ष्य शेषसन्मणिः

हैं उसीप्रकार नदियां भी पत्थियोंके महामनोहर शब्दोंसे व्याप्त थीं । वेश्यायें जिसप्रकार आर्द्र मूत्र मार्गकी धारक होती हैं उसप्रकार उन नदियोंमें भी जल निकलनेके अनेक स्थान विद्यमान थे एवं वेश्या जिसप्रकार अत्यंत मनोहर जान पड़ती हैं उसीप्रकार वे नदियां भी अत्यंत मनोहर जान पड़ती थीं ॥ २४—२५ ॥ वहांपर मोक्षकी इच्छा रखनेवाले मुनिगण सदा ध्यानमें लीन रहते थे । उत्तम मार्ग जैनमार्गके अनुगामी थे । पर्वत वन नदी और पहाड़ोंकी चोटियोंपर निवास करनेवाले थे और परम समरसी भावके धारक थे इसलिये वे उस देशकी अनुपम शोभा स्वरूप थे ॥ २६ ॥

उस रम्यकावती देशके अंदर एक महापुर नामका नगर है जिसमें कि विद्वान् लोग सदा जैन सिद्धान्तका प्रचार करते रहते हैं इसलिये वह साक्षात् पंडित स्वरूप है । शोभामें इन्द्रपुरीकी तुलना करता है एवं सदा अनेक प्रकारकी शोभाओंसे हरा भरा रहता है ॥ २७ ॥ महापुर नगरके घर सत् खने वा इकवीस खने तकके बने हुए हैं । लोगोंके प्रवेश करनेके मार्ग—रत्नमयी हैं । सुवर्णमयी स्तंभोंके धारक हैं एवं जगह जगह अनेक प्रकारके चित्रोंसे शोभायमान हैं ॥ २८ ॥ महापुरके निवासी धनियोंके घर ऊंचे ऊंचे तोरणोंसे व्याप्त थे । सुवर्णमयी सोपान—भीनोंसे देदीप्यमान थे और रत्नमयी स्तंभोंसे चम चमाने वाले थे ॥ २९ ॥ इन प्रासादोंकी गोलाकार और और रत्नोंकी बनी शिखरें अत्यंत शोभायमान थीं सो ऐसी जान पड़ती थीं मानो ये साक्षात् सूर्य हैं वा चंद्रमा है अथवा कामदेवके कमल हैं वा शेष नागके मस्तककी उत्तम मणि हैं ॥ ३० ॥ उन प्रासादोंके ऊपर

॥ ३० ॥ लसति वायुना यत्र पताका हृदयंगमाः । आह्वयंतीव भग्नानां सुराणां धर्महेतवे ॥ ३१ ॥ यत्राभिषेकमहीभिः
पटहैर्दुःखिभिः स्वनेः । गाननृत्यैः सुखालायैर्योषितामुत्सवो महान् ॥ ३२ ॥ ललिता भ्रांति यत्रैव कामलोलाः कजद्वराः । कठिनोन्नत-
नित्याश्च पीनस्थूल पयोधराः ॥ ३३ ॥ गतागतस्तनोत्पीत्तुट्यत्कचुकबंधनाः । हावभावविलासैश्च रंजयंति सुरानपि ॥ ३४ ॥
यत्रैव दानिनो लोका वर्तन्ते धनशालिनः । तपस्यंति नराः केचिद्धर्मार्थं शीलसंयुताः ॥ ३५ ॥ तत्रैव निर्धना मूढा निर्विवेका गत-

पवनसे फर फरातीं हुईं महामणोहर पतङ्गाय अत्यंत शोभा धारण करतीं हैं मानों भव्य देवोंको वे
यह कह कर बुलातीं हैं कि आओ भाई देवो ! यहां आकर धर्म सेवन करो ॥ ३१ ॥ इस महापुर
नगरमें सदा भगवान् जिनेंद्रका अभिषेक हुआ करता है सदा पूजा हुआ करती है । पटह जाति
के बाजे और नगाड़े बजते रहते हैं । रमणियोंके गान नृत्य और प्रेमपूर्वक संभाषण होते रहते हैं
इसलिये सदा अनेक प्रकारके उत्सवोंसे वह नगर जगमगाता बना रहता है ॥ ३२ ॥ महापुर की
स्त्रियां उसकी विचित्र ही शोभा बढ़ातीं हैं क्योंकि वे महा सुन्दरी होतीं हैं । अत्यंत कामिनी होतीं
हैं । कमलके समान नेत्रवालीं कठिन और उन्नत नितंबोंको धारक एवं पीन और स्थूल स्तनोंसे
शोभायमान रहतीं हैं । जिससमय वे आती जाती हैं उससमय आपसमें एक दूसरोंके स्तनोंके
भिड़ावसे उनके चोलियोंके बंधन टूट जाते हैं एवं अपने हाव भाव और विलासोंसे देवोंके भी
चित्तोंको हरण करतीं हैं ॥ ३३—३४ ॥ महापुर नगरके लोग धन पाकर उसे भोग विलासोंमें ही
व्यय करने वाले नहीं हैं किंतु उत्तम आदि पात्रोंको भक्तिपूर्वक दान देनेवाले हैं इसलिये वहांके
धनी परम दानी हैं तथा वहांके शीलवान् भव्यजीव धर्मकी प्राप्तिकी अभिलाषासे सदा मुनिलिंग
धारण कर उत्तम तप तपने वाले हैं ॥ ३५ ॥ उस नगरमें सब लोग धनी ही दीख पड़ते हैं कोई भी
निर्धन नहीं दीख पड़ता । सब चतुर ही हैं मूढ़ नहीं । सब विवेकी ही हैं विवेक रहित नहीं । सब
उद्योगी सज्जन और प्रशंसा करने वाले ही हैं आलसी दुष्ट और निंदा करनेवाले नहीं तथा सब

क्रियाः । खला निंदाकृतो रुपा विद्यन्ते नैव ह्रस्वकाः ॥ ३६ ॥ तत्रैवास्ति महीपालो हेलानिर्जितशात्रवः । पद्मसेनाभिधो धीमान्
प्रतापाक्रान्तभूतलः ॥ ३७ ॥ धीक्षो गंभीर सत्त्वसन् नागहो सिंहविक्रमी । कमलापीतसत्स्कन्धः शास्त्रवान् धर्मवत्सलः ॥ ३८ ॥
रणोत्साही मियस्त्राता सौम्यः क्रूरो यथायथं । दाता प्रियंवदः कामक्रीडाक्षः कमलेक्षणः ॥ ३९ ॥ पाति तत्परमानन्दी षड्वर्गो घन्द्र-
सद्यशाः । इन्द्रो वा नागदेवश्च स्वर्गलोकरसातलं ॥ ४० ॥ धृषस्कन्धो रणोत्साहो गूढसत्त्वं महोदमः । क्रूर- सौम्ये
च दातृत्वं महाराजस्य लक्षणं ॥ ४१ ॥ राज्यं पालयति यस्मिन् भयं नो विद्यते क्वचित् । दंडनं कुप्रवादश्च दुःखं नैव परा-

ही अमीर हैं कोई छोटा नहीं ॥ ३६ ॥ उस महापुर नगरका स्वामी राजा पद्मसेन था जिसके
लिये बलवान भी शत्रुओंका जीतना खेल सरीखा था । जो अत्यंत बुद्धिमान था । अपने प्रचंड
पराक्रमसे समस्त पृथ्वीतलको बश करने वांछा था । धीर गंभीर बलवान और सज्जन था । नागके
समान उसकी दोनों भुजायें थीं । सिंहके समान जो पराक्रमी था । लक्ष्मीके समान स्थूल स्कंधों
का धारक था । शास्त्रोंका ज्ञाता, युद्ध करनेके लिये सदा उत्साही भयसे रक्षा करने वाला सौम्य
समयानुसार क्रूर दाता प्रियवादी काम क्रीड़ाका जानकार कमलके समान प्रफुल्लित नेत्रोंका धारण
करनेवाला षड्वर्गी अर्थात् समयानुसार काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्यरूप छह वर्गोंका धारण
करने वाला और चंद्रमाके समान निर्मल यशका धारण करनेवाला था । तथा जिसप्रकार इन्द्र
स्वर्गलोककी रक्षा करता है और नागदेव अधोलोकका पालन करने वाला है उसीप्रकार वह राजा
पद्मसेन महापुरकी रक्षाका करनेवाला था । ॥ ३७—४० ॥ बैलके समान उन्नत स्कंधोंका होना
रणमें उत्साह रखना गुप्तरूपसे बलका धारण करना महान उद्योगी रहना क्रूर और सौम्यपना एवं
दातापना ये महाराजके लक्षण हैं राजा पद्मसेन इन समस्त लक्षणोंका धारक था ॥ ४१ ॥ राजा
पद्मसेनके राज्य पालन करते समय न तो कहीं भी किसी प्रकारका प्रजाको भय था । न दंडकी
शंका थी । न किसीकी निंदा सुन पड़ती थी । न किसी प्रकारका दुःख था और न कहीं किसीका

भवः ॥४२॥ आक्रमन्ति हि नोन्यायं लोका धर्मपरायणाः । नाक्रामन्ति च तान् भूयो नीतिशास्त्रार्थं दक्षिणः ॥४३॥ धर्मार्थकामशास्त्रा-
णां वेत्तास्तौ काश्यपीपतिः । सर्वसामन्तसंसेव्यपादसत्कमलः कलः ॥४४॥ तस्य राक्षी महास्नेहा पद्मा पद्मविलोचना ।
पद्ममृदुकरा पद्मवक्षोजा पद्मिनीषु नु ॥४५॥ ललन्ती लीलया लोल लक्ष्मणालालिता तनुः । इवोदपतिमो ज्योत्स्ना भोगार्थोधिप्रवर्द्धिनी
॥४६॥ मनया रमते राजा नामाकामकुतूहलैः । आश्लेषे ध्रुवनैरलैरासनैरौपरीपकैः ॥४७॥ कामाकुला महादेवी सेवते तं निरं-
तिरस्कार ही सुन पड़ता था । यह नियम है कि जोलोग धर्मात्मा होते हैं वे न्याय मार्गका उत्लं-
घन नहीं करते एवं जो मनुष्य नीति और शास्त्रमें कुशल होता है—धर्मात्मा होता है वह भी धर्मा-
त्माओंको कभी पीड़ा नहीं देता । महापुर नगरमें राजा प्रजा दोनों धर्मात्मा थे इसलिये वहां कोई
उपद्रव न था ॥४२—४३॥ वह राजा पद्मसेन धर्म अर्थ और काम शास्त्रोंका परिपूर्ण जानकार
था । समस्त सामन्त गण उसके चरण कमलोंकी बड़े प्रेमसे सेवा करते थे और वह महा मनोज्ञ
था ॥४४॥ राजा पद्मसेनकी रानीका नाम पद्मा था । रानी पद्मा अत्यंत स्नेह करने वाली थी
कमलके समान नेत्रोंवाली थी । उसके दोनों हाथ कमलके समान कोमल थे । स्तनोंका खिलाव
भी कमल सरीखा था इसलिये वह साक्षात् पद्मिनी सरोस्वी थी ॥४५॥ वह रानी लीलापूर्वक चलने
वाली थी । चंचल नेत्रोंकी धारक थी । सारा शरीर उसका अच्छी तरह लालित था । दुःखरूपी
अंधकारको नाश करने वाली ज्योत्स्ना—चांदनी थी अतएव भोगरूपी समुद्रको बढ़ानेवाली थी
॥४५—४६॥ इस रानी पद्माके साथ वह राजा पद्मसेन मनमानी रतिक्रीड़ा करता था कभी
वह उस रानीके साथ अनेक प्रकारके काम जनित कौतूहलोंको करता था कभी आलिंगन करता
था कभी चुंबन करता तो कभी हास्यमिश्रित वचनोंका उपभोग करता था तथा भोग विलास करते
समय कभी कभी अनेक आसनोंको काममें लाता था ॥४७॥ वह रानी पद्मा भी अत्यंत कामिनी थी
इसलिये वह भी बेधड़क हो सदा राजाके साथ विषयभोग भोगती थी । राजा पद्मसेन भी इतना

तरं । हातस्वादेऽपि राजा तां सेवते मोहतो ध्रुवं ॥ ४८ ॥ पूरमल्लेव श्रीकृष्ण कवीशमंगलाग्रजं । श्रीकृष्णोपी दूषक्यां तामिव
कृष्णश्च राधिकां ॥ ४९ ॥ (युग्म) सा रामा हावभावेश्च प्रोह्लासैर्भोगकंपनैः । मणितैः स्खलितैर्हास्यैश्चंपनै रंजयेद्धवं ॥ ५० ॥ स
कासी भगसंस्पर्शैर्वर्द्धनैश्चुम्बनैर्हृत् ॥ स्तम्भैर्वन्तघातैस्तां लिंगास्यादैस्त्वतोपयत् ॥ ५१ ॥ एवं विषयसंयोगे तयोरासीत्सुतं परः ।
पद्मनाभाह्वयः सर्वलक्षणांकितविगूढः ॥ ५२ ॥ भुंजानो विविधान् भोगान् निमग्नः सुखसागरे । गतं कालं न जानाति स्त्रीश्चादी

अधिक रानी पद्मापर स्नेह रखता था कि सदा उसके साथ वह विषय भोगोंमें मग्न बना रहता था
एक क्षणके लिये भी उससे विमुख नहीं होना चाहता था । ग्रन्थकार श्रीब्रह्मकृष्णदास भी अपने
नामकी छाप लगाते हुए कहते हैं कि जिसप्रकार पूरमल्ला मंगलदासके बड़े भाई श्रीकृष्णदासके
साथ सदा विषय भोगती थी एवं चंद्र वदनी उस पूरमल्लाको कृष्णदास भी एक क्षणकेलिये भी
नहीं छोड़ना चाहते थे तथा जिसप्रकार नवमे नारायण कृष्णकी स्त्री राधिका सदा कृष्णके साथ
विषय भोगती थी एवं कृष्ण भी क्षणभरके लिये भी उससे विमुख नहीं होना चाहते थे उसीप्रकार
राजा पद्मसेन और रानी पद्माकी दशा थी दोनोंमें अधिक प्रेम होनेसे एक दूसरेको छोड़ना नहीं
चाहता था ॥ ४८—४९ ॥ वह रानी पद्मा हाव भाव चित्तके उल्लास भोग समयमें कंपना भूषणोंके
शब्द अर्ध स्खलित वचन हास्य और शरीरकी कांतिसे सदा राजा पद्मसेनको प्रसन्न रखती तथा
कामाकुल वह राजा भी मर्दन, चुम्बन, आलिंगन और दंतच्छेदन आदि रतिकालीन क्रियाओंसे
सदा उस रानीको संतुष्ट रखता था । इसप्रकार मनमानी भोगक्रीड़ा करते करते उन दोनों दंपती
के पद्मनाभ नामका पुत्र हुआ जो कि समस्त राज लक्ष्णोंसे युक्त शरीरका धारक था ॥ ५०-५२ ॥
वह राजा इच्छानुसार विषय भोगोंको भोगता भोगता सदा सुख सागरमें मग्न रहता था । समय
कहां चला जा रहा है इस बातका उसे पता तक नहीं लगता था । ठीक ही है जो लोग स्त्रियोंका
रस चख चुके हैं उनसे वह स्वाद जल्दी नहीं छूटता ॥ ५३ ॥

दुस्त्यजो नृणां ॥ ५३ ॥ प्रीतिकरमहारण्ये समायातोऽयं केवली । सर्वगुप्ताभिधः सर्वजंतुरक्ष तत्परः ॥ ५४ ॥ तत्प्रभावा न्महा-
वृक्षाः कुसुमाढ्याः फलान्विताः । पैकषट्चरणारवि रेजुरुज्ज्वलीणछायकाः ॥ ५५ ॥ तदा मालाकरो दृष्ट्वा छायां वृक्षसमुद्रां ।
व्यतीतकर्मिणे चित्ते किं स्वप्नः शंखरीनु धा ॥ ५६ ॥ त्रिचतुरेषु यदा पश्यन् पदेषु गतर्थास्तदा । पर्येकासनमाकृढं ध्याना स्तिमिता
लोचनं ॥ ५७ ॥ निश्चलं वृक्षं तेन ध्यायन्तं करुणानिधिं । सौम्यं च कृपा व्याघ्रादिसैज्यमानं शशिप्रभं ॥ ५८ ॥ अद्राक्षीत्तेजसां पुंजं
मिहिरं वा तयोनिधिं । शोराण्ये सुखासोतं हंसं चंद्रससं नु धा ॥ ५९ ॥ (त्रिभिर्विशेषकं) हर्षकंचुकितांगा सनजगाम नृपसन्निधौ ।

महापुर नगरके समीपमें एक प्रीतिकर नामका महा बन था । एक दिन सर्वगुप्त नामके केवली जोकिसमस्त जीवोंकी रक्षा करनेमें सदा तत्पर रहते थे आकर उसमें विराज गये । भगवान केवलीके प्रभावसे प्रीतिकर बनके समस्त वृक्ष फूल और फलोंसे लदबदा गये । कोकिला अपनी सधुर ध्वनि अलापने लगीं और भौरे भुनभुनाट शब्द करने लगे इस लिये समस्त बन उस समय अत्यंत सोभायमान दीख पड़ने लगा ॥ ५४।५५ ॥ बनकी इस प्रकार वृक्षोंसे जायमान विचित्र शोभा देखकर उस बनका रक्षक माली चकित रह गया और उसके मनमें यह विचार उठने लगा कि क्या यह स्वप्न है अथवा देव कृत माया जाल है ? तीन चार पैड़ आगे बढ़कर जब उसने देखा तो केवली भगवान सर्वगुप्त उसे दीख पड़े वे भगवान पर्येकास (पलौती) से विराजमान थे । ध्यान करनेके कारण उनके नेत्र इकट्ठक निश्चल थे । निश्चल रूपसे भगवन ऋषभदेवका वे ध्यान कर रहे थे । दयाके सागर थे । सौम्यमूर्तिके धारक थे । क्रूर भी मृग व्याघ्र आदि उनकी सेवा करते थे । चंद्रमाके समान उज्ज्वल प्रभाके धारक थे । कांतिके पुंजस्वरूप थे । जाज्वल्यमान सूर्यके समान थे । तपके खजाने थे । एवं क्षीरोदधि समुद्रमें सुखसे बैठनेवाला जिसप्रकार हंस और चन्द्रमा दीख पड़ता है उसके समान विराजमान थे ॥ ५६--५९ ॥ भगवान केवलीको देख कर बनपालका शरीर आनंदसे पुलकित हो गया वह शीघ्र ही राजा पद्मसेनके पास गया एवं व्हों ऋतुओंके पुष्प और फल भेंटकर इसप्रकार निवेदन करने लगाः—

मुक्त्वा पुष्पकलवार्तं पुरस्तादग्रधीदिति ॥ ६० ॥ प्रभो ! प्रीतिकरेऽरण्ये सर्वगुप्ताख्यकेवली । समष्टिः प्रभोः पुण्याद्देवेन्द्रार्चित-
पत्कजः ॥ ६१ ॥ पद्मसेनो नराधीशः श्रुत्वा सामंतसंयुतः । चचाल बंदिनुं भक्त्या मुनिं राज्ञीसुतान्वितः ॥ ६२ ॥ अर्हश्चरणयोर्येऽत्र
चारण रुचिचंचुराः । लयीभाधं समेत्यांशु कुर्वति साधुवंदनां ॥ ६३ ॥ गत्वा नत्वा प्रपूज्याशु स्वष्टद्रव्यैर्मनोरमैः । गद्यपद्यैः सुखं
स्तुत्वा निविष्टः कलभासने ॥ ६४ ॥ मुनिर्मत्वा नराधीशं भव्यं तं मृदुचेतसं । अचीकथत्परं धर्मं तत्त्वगर्भं कृपामयं ॥ ६५ ॥ राजन्
स्रमत्ययं जीवः संसारे दुःखसंकटे । धनादिनिधनः केन कृतो नास्ते चिदात्मकः ॥ ६६ ॥ नरत्वं दुर्लभं लोके तत्रापि सत्कुलंपुनः ।

स्वामिन ! आपके पुराणके उदयसे प्रीतिकर वनमें सर्वगुप्त नामके केवली जिनके कि चरण कमलों
को बड़े बड़े इन्द्र आकर पूजते हैं, आकर विराजे हैं । वनपालकी यह आनंद प्रदान करने वाली
बात सुन कर राजा पद्मसेन बड़ा प्रसन्न हुआ और भक्तिपूर्वक मुनिराजकी वंदनाके लिये अनेक
सामंत महाराष्ट्री और पुत्रोंके साथ शीघ्र ही जल दिया ठीक भी है जो महानुभाव भगवान् अर-
हंतके चरणोंमें पूर्णभक्ति रखनेवाले हैं वे अवसर प्राप्त होनेपर उसी भक्तिमें लीन होकर भगवान्
अर्हंतके मार्गके अनुगामी मुनिराजोंकी वंदनाके लिये प्रतिसमय तैयार रहते हैं । वह राजा पद्म-
सेन मुनिराजके पास पहुंच कर भक्तिपूर्वक नमस्कार किया । महामनोहर अष्ट द्रव्योंसे
उनकी पूजा की । पूजाके अंतमें गद्य और पद्योंसे उनकी स्तुति की एवं अपने बैठने योग्य स्थान
पर अपने योग्य आसनसे बैठ गया ॥ ६०—६४ ॥ पद्मसेनकी इसप्रकार पवित्रभक्ति देखकर मुनि-
राजने अपने दिव्यज्ञानसे उसे भव्य और सरलस्वभावी समझा इसलिये वे तात्त्विक और दयापूर्ण
इसप्रकार धर्मोपदेश देने लगे :—

राजन् ! यह संसार नाना प्रकारके दुःखोंसे व्याप्त है उसमें यह जीव सदा यहांसे वहां और
वहांसे यहां चक्कर लगाया करता है यह जीव अनादि निधन है—इसके आदि अन्तका कोई
निश्चय नहीं । न इसे किसीने बनाया है तथा यह चैतन्य स्वरूप है ॥ ६५—६६ ॥ इस संसारमें
तिर्यंच आदि पर्यायोंकी अपेक्षा मनुष्यपना अत्यंत दुर्लभ है । यदि दैवयोगसे मनुष्यपना

सत्कुले दुर्लभो धर्मो दयादानप्रवर्धितः ॥ ६७ ॥ धर्मेण प्राप्यते राज्यं स्वर्गः सत्त्वं सुखं यथा । सुपुत्रा वसु सद्बुद्धी रामा पीन-
 पयोधराः ॥ ६८ ॥ विद्वत्त्वं चक्रवर्तित्वमार्यत्वं सुरनाथता । कामत्वं रूपसंपन्नं तीर्थकृत्त्वं यतो भवेत् ॥ ६९ ॥ ये नरा धर्मरिक्तास्तु ते
 भवन्ति विबुद्धयः । विपुत्रा निर्धना मूकाः पराशाः स्त्रीविघर्जिताः ॥ ७० ॥ विरूपास्तस्करा नीचाः किंकरा भारपीडिताः । आजन्म-
 व्यथिकाः कांता धर्महीना भवन्ति ते ॥ ७१ ॥ स च धर्मो द्विधा प्रोक्तो मुनिश्रावकभेदतः । मुनिधर्माद्वैष्णवमोक्षध्यान्यस्मात्संपदादिकं
 ॥ ७२ ॥ नक्तभोज्यं न कर्तव्यं मांसदोषकरं सतां । निशादने कृते नूनं घृतभंगो हि जायते ॥ ७३ ॥ पूजा स्नानं च दानं धा तर्पणं
 प्राप्तं भी हो जाय तो उत्तम कुलका मिलना कठिन है यदि प्रबलभावसे उत्तम कुल भी प्राप्त हो
 जाय तो जिसमें दया और दान प्रधान है ऐसा उत्तम धर्म प्राप्त नहीं होता । धर्म संसारमें चिंता-
 मणि रत्न है क्योंकि धर्मसे राज्य प्राप्त होता है एवं धर्मसे ही स्वर्ग, बल, सुख, यश, उत्तमपुत्र धन
 उत्तम बुद्धि पीन स्तनवाली स्त्रियां विद्वत्ता चक्रवर्तीपना आर्यपना देवेंद्रपना इच्छानुसार भोग उत्तम
 रूप और तीर्थंकरपना भी प्राप्त होता है ॥ ६७—६९ ॥ जो मनुष्य धर्मका सेवन करनेवाले नहीं—
 धर्मरहित हैं वे बुद्धि रहित मूर्ख होते हैं । पुत्रहीन होते हैं निर्धन गूंगे अभागे और स्त्रियोंसे रहित
 होते हैं तथा उस परम पावन धर्मसे रहित पुरुष विरूप बदसूरत होते हैं चोर होते हैं नीच किंकर
 रात दिन भार लादनेवाले जन्मपर्यन्त दुखी और अपमानित होते हैं ॥ ७०—७१ ॥ जिस धर्मका
 यह फल बतलाया गया है वह धर्म मुनि और श्रावकके भेदसे दो प्रकारका बतलाया गया है उनमें
 मुनिधर्मसे मोक्षकी प्राप्ति होती है और श्रावक धर्मकी कृपासे संसारकी अनेक विभूतियां आकर
 मिलती हैं ॥ ७२ ॥ रात्रिमें भोजन करनेसे अनेक जीवोंका कलेवर भक्षण करना पड़ता और
 व्रतोंका भी भलेप्रकार पालन नहीं होता इसलिये वृत्तियोंको कभी रात्रिमें भोजन नहीं करना
 चाहिये । रात्रिमें किये जानेवाले पूजा स्नान दान और तर्पण आदि भी किसीप्रकारकी शुद्धिप्रदान
 नहीं कर सकते । पक्षीगण जिनके कि अंदर किसी प्रकारका धर्मज्ञान नहीं होता जब वे भी रात्रिमें
 नहीं खाते तब आश्चर्य है मनुष्य क्यों रात्रिमें खाते हैं ? जब दो घड़ी दिन बाकी रह जाय तब

नैव शुद्धयति । पश्चिणोऽपि न भक्षति कथं भुजंति मानवाः ॥ ७४ ॥ घटीद्वये स्थिते शेष वासरेऽदति मानुषाः । अन्यथा राक्षसा एव
 पलासवादनतत्पराः ॥ ७५ ॥ त्रिसंध्यं येन भुजंति निर्धना रोगिणो नराः । अल्पायुषो भवन्त्येव कालदंष्ट्रा हताः खलु ॥ ७६ ॥
 महापाप कृतां पुंसां निंदा नैव विधीयते । तथा सैनसि वध्यते परत्र दुर्गतिं व्रजेत् ॥ ७७ ॥ निंदाकारी ब्रह्मवन्सी परछिद्रप्रकाशकः ।
 निद्राछेद्यंतरापी च चाण्डालाः पंच भाषिताः ॥ ७८ ॥ धर्मस्थाने नरा नार्यो निंदा कुर्वति ये रसात् । बलुलीघूकमार्जारस्वलज्जिह्वा
 भवन्ति ते ॥ ७९ ॥ असारे खलु संसारे कस्य चिद्बलमो न कः । स्वार्थ एव परः पुंसां न रामास्वजनादिकं ॥ ८० ॥ एक एव सुखी
 मनुष्योंको भोजन करना चाहिये क्योंकि यही आगममें विधान है किन्तु जो मनुष्य उसके बाद भी
 भोजन करते हैं वे मनुष्य नहीं किन्तु मांस खानेके लोलुपी राक्षस हैं निशेष क्या जो मनुष्य प्रातः-
 काल दुपहर और सायंकाल तीनोंकाल भोजन करनेवाले हैं वे मनुष्य निर्धन होते हैं रोगी थोड़ी
 आयुवाले और यमराजके मुखमें प्रवेश करनेवाले होते हैं ॥ ७३—७६ ॥ सज्जनपुरुषोंकी
 तो बात ही क्या है किन्तु जो पुरुष घोर पाप करनेवाले महापापी हैं उनकी भी निंदा
 नहीं करनी चाहिये । क्योंकि उससे अनेक पाप कर्मोंका बंध होता है और पर भवमें
 दुर्गतिके अन्दर जाना पड़ता है ॥ ७७ ॥ निंदा करनेवाले, व्रत ग्रहण कर उसे नष्ट करनेवाले,
 पराये दोषोंके प्रकाश करनेवाले, निद्रा छेदनेवाले और अंतराय (विघ्न) पहुँचाने वाले ये पांच
 प्रकारके चांडाल माने जाते हैं ॥ ७८ ॥ जो मनुष्य वा स्त्रियां प्रेमपूर्वक धर्मके स्थानोंमें अर्थात्
 धर्मायतनोकी निंदा करनेवाले हैं—निंदा करनेमें आनंद माननेवाले हैं वे संसारमें उस निंदाके
 करनेसे बगली उल्लू और विल्ली होते हैं एवं उनकी जीभके खंड २ हो जाते हैं ॥ ७८—७९ ॥
 यह संसार असार है इसमें किसका कौन प्यारा नहीं है अर्थात् जो एक पुरुष किसीका द्वेषी होता
 है वही दूसरेका प्यारा होता है वास्तवमें प्यारा स्वार्थ है जिसका जिससे स्वार्थ सटता है वही उस
 का प्यारा कहा जाता है स्त्री और कुटुम्ब आदि कोई किसीका प्यारा नहीं ॥ ८० ॥ इससंसारमें
 जो पुरुष पुण्य और पापका उपार्जन करने वाला है वही अकेला सुखी दुःखी और स्वर्गका सुख

दुःखी स्वर्गी भवति निश्चितं । पुण्ये पापे विभागो न रामादीनां कदाचन ॥ ८१ ॥ पंचधा नारकं दुःखं स्वयं तत्सहते स्फुटं । तत्रैव सुखिनं कर्तुं क्षणं शक्नोति कोऽपि न ॥ ८२ ॥ दर्शनज्ञानचारित्र्यभावना च विचोयते । विभावं जन्मपर्यंतं तपो भवति निष्फलं ॥ ८३ ॥ अत्युग्रं जन्मपर्यंतं तपोऽकारि च यत्कुधा । भस्मसात्तद्वेदराजन् वह्निना हि यथा घनं ॥ ८४ ॥ अनेन जंतुना राज्यं भुक्तं जन्मविवर्जितं । अनेकशस्तथाप्यस्य संतोषो नैव जायते ॥ ८५ ॥ भोगाश्च दारुणाः सर्पवेहा इव मता जिनैः । तिर्यचस्ते भवन्त्येव ये रामाधनमो-

भोगने वाला होता है । पुण्य और पापमें स्त्री पुत्र आदिका विभाग नहीं । अपने कियेका आप ही फल भोगना पड़ता है दूसरा स्त्रीपुत्र आदि उसमें हिस्सा नहीं बटा सकता ॥ ८१ ॥ यह जीव शरीर आदि संबंधी पांच प्रकारके दुःखको स्वयं अकेला ही सहता है नरकमें उसे क्षण भरके लिये भी सुखी करनेको कोई समर्थ नहीं ॥ ८२ ॥ जो पुरुष मिथ्यादृष्टि हैं उनके सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र्यकी भावना नहीं बन सकती तथा उनका जन्मपर्यंत भी तपा हुआ मिथ्यादृष्टि तप निष्फल होता है ॥ ८३ ॥ जो तप क्रोधपूर्वक किया जाता है वह तप कैसा भी उत्कट क्यों न हो तथा जन्मपर्यंत भी क्यों न तपा गया हो परंतु वह जिसप्रकार दावाग्निसे क्षणभरमें घन भस्म हो जाता है उसीप्रकार उस क्रोधके द्वारा भस्म हो जाता है उसका कोई भी फल नहीं होता ॥ ८४ ॥ इस जीवने अनेक बार निष्कण्टक राज्यका भोग किया है तब भी उस राज्यसे इसे संतोष नहीं हुआ है ॥ ८५ ॥ जिसप्रकार सर्प अत्यंत भयंकर होते हैं उसीप्रकार भगवान् जिनेंद्रने इन भोगोंको कहा है इनके जालमें फँसकर प्राणिगण अपने स्वस्वरूपसे च्युत हो जाते हैं और संसारमें भ्रमण करते फिरते हैं तथा जो पुरुष स्त्री और धनमें मोह रखते हैं उन्हें ही अपने जीवनका सर्वस्व समझते हैं वे तिर्यच गतिके अन्दर उत्पन्न हो अनक क्लेश भोगते हैं ॥ ८६ ॥ स्पर्शन आदि पांचों इन्द्रियोंको सुख प्रदान करनेवाले बहुत प्रकारके भोगोंको चिरकाल भोगकर भी जो महानुभाव अंत में धर्मका आचरण नहीं करते—उन भोगोंमें लिपटे रहते हैं वे संसारमें महामूर्ख माने जाते हैं

दिनः ॥ ८६ ॥ चिरं भुक्त्वा बहून् योगान् पंचेन्द्रियसुखप्रदान् । त्यक्त्वा प्राप्ते न ये धर्मं कुर्वन्ति ते महा जडाः ॥ ८७ ॥ चक्रिणोऽपि गताः
 काले चलन्ति स्वर्णिणोऽपि च । मरणं विद्यतेऽवश्यमतो धर्मो विधीयते ॥ ८८ ॥ एष्यज्जन्मद्वये राजन् ! भावी त्वं देव पूजितः । तीर्थं क-
 द्विमलो नाम्ना वैमलज्ञानलोचनः ॥ ८९ ॥ श्रुत्वा केवलिनो वाक्यं जहर्ष मानसे निजे । तीर्थं कृज्जात एवासौ पद्मसेनो नराधिपः ॥ ९० ॥
 बांधवान् बंधनैस्तुल्यान् रामाः श्वस्रप्रतोलिकाः । स्वार्थं मुख्यं विचिंत्याशु नृपो वैराग्यमाश्रितः ॥ ९१ ॥ सर्वं सामंतं सामर्थ्यं दत्त्वा
 राज्यं स्वसूतवे । पद्मनाभाय सप्तमं प्रवराजं धराधिपः ॥ ९२ ॥ पपाटैकादशांगानि तेषामर्धान्विशेषतः । नानातपः प्रसेदेन विजहार
 महीतलं ॥ ९३ ॥ षोडशानां निजे विसे भावनानां सुभावनं । चकार सिंहधन्निर्भोरसौ सारंग लोचनः ॥ ९४ ॥ सत्तालोचनमात्रं
 ॥ ८७ ॥ संसारमें सबसे बढ़कर विभूतिका धारक चक्रवर्ती होता है और सर्वोसे अधिक सुखी देव
 गिने जाते हैं परंतु आयुके अंतमें उन्हें भी मृत्युके अन्दर प्रवेश करना पड़ता है इसलिये धर्मा-
 त्माओंको अवश्य धर्मका आचरण करना चाहिये ॥ ८८ ॥ राजन् ! इससे आगेके दो भवोंमें
 तुम्हारे बड़े २ ऋद्धिधारी देव भी पूजा भक्ति करेंगे एवं तुम निर्मल ज्ञानरूपी लोचनके धारक तेरे
 तीर्थंकर विमलनाथ होनेवाले हो ॥ ८९ ॥ केवली सर्वगुप्तके इसप्रकार आनंद प्रदान करनेवाले वचन
 सुन राजा पद्मसेनको बड़ा आनंद हुआ एवं तीर्थंकर प्रकृतिसे जायमान सुखका उसीसमय अनु-
 भव होने लगा । उनके हृदयमें उससमय वैराग्य भावनाका उदय हो गया वह अपने समस्त
 बांधवोंको साक्षात् बंधनके समान समझने लगे । स्त्रियोंको महादुःख देनेवालीं नरककी गलियां
 समझने लगे एवं अपने आत्मकल्याणका विचार कर वह समस्त विभूतिसे एकदम विरक्त हो गये
 ॥ ९०—९१ ॥ राजा पद्मसेनके पुत्रका नाम पद्मनाभ था । समस्त सामंतोंके समक्षमें शीघ्र ही
 उनने अपने पुत्र पद्मनाभको सारा राज्य संभला दिया और दिगंबर दीक्षा धारणकर ली ॥ ९२ ॥
 आचारांग आदि ग्यारह अंगोंका उनने अच्छी तरह अध्ययन किया । भलेप्रकार उसके अर्थका
 विचार किया एवं अनेक प्रकार तपोंका आचरण करने वाला वह निर्द्वन्द्व होकर पृथ्वीपर विहार
 करने लगा ॥ ९३ ॥ वे कमलोंके समान फूले हुए नेत्रोंके धारक मुनिराज पद्मसेन दर्शन विशुद्धि

य दर्शनं तन्निगद्यते । जीवोऽयं निश्चक्रो मूर्तिश्चिद्रूपं वेत्ति दर्शनं ॥ ६५ ॥ तस्यैव निरतोच्चारो विशुद्धिः सा मता जिनैः । मुनीनां देव-
शास्त्राणां विनयश्च विधीयते ॥ ६६ ॥ अष्टादशसहस्रेषु शीलभेदेषु प्रत्यहं । अतीचारं त्यजेद्व्यानी चेतोभाव प्रकल्पितं ॥ ६७ ॥ आत्मनि
नित्यताज्ञानं श्रुतस्यैवावगाहनं । ज्ञानोपयोग इत्युक्तः पूर्वैश्च पूर्वसूरिभिः ॥ ६८ ॥ रामाकांचन पुत्रेषु यौवने विषयेषु च । अधिपत्येत्व

आदि सोलह भावनाओंको सिंहके समान निर्भीक हो अच्छी तरह मानने लगे । मुनिराज पद्म-
सेनने जिन सोलह भावनाओंको भाया था उनका संक्षेपमें स्वरूप इसप्रकार है :—

१ भगवान् जिनेन्द्र द्वारा उपदिष्ट मोक्ष मार्गमें जो निर्मल रुचिका होना है उसका नाम
दर्शन है निश्चल मूर्ति यह जीव उस चैतन्य स्वरूप दर्शनको जानने वाला है उसी दर्शनको जो
अतिचार रहित विशुद्धि है उसे भगवान् जिनेन्द्रने दर्शन विशुद्धि भावना मानी है । देव शास्त्र गुरु-
ओंमें विनय भावका रखता विनय सम्पन्नता नामकी भावना है । २ । शीलके अठारह हजार भेद
माने हैं उन शीलोंका जो चित्तकी भावनासे कल्पना किये अतीचारोंसे रहित होकर पालन करना
है वह शील व्रतेष्वनतिचार नामकी भावना है । ३ । आत्मा नित्य है इस प्रकारका सदा विशुद्ध
ज्ञान रखना श्रुतका अवगाहन करना वह पूर्व आचार्यों ने अभी एक ज्ञानोपयोग नामकी भावना
बतलाई है । ४ । स्त्री सुवर्ण पुत्र यौवन विषय और स्वामीपनाको सदा अनित्य समझना उनसे उदास
रहना भगवान् जिनेन्द्रने संवेग नामकी भावना कही है । ५ । जो धर्मात्मा पुरुष भावसे शक्ति पूर्वक
दान देनेवाले हैं उनके शक्तितस्त्याग नामकी भावना होती है तथा वह दिया हुआ दान निरर्थक
नहीं जाता किन्तु उससे उत्तम बुद्धिकी प्राप्ति होती है उस उत्तम बुद्धिसे पुण्य और पश्चात् भी
स्वस्व मिलता है । ६ । अपनी शक्तिके अनुसार मनुष्योंको सदा उत्तम तप आचरण करना चाहिये जो
महानुभाव ऐसा करते हैं उनके शक्तितस्तप नामकी भावना होती है किन्तु जो ऐसा नहीं करते
वे आर्त ध्यानसे व्यंतर जातिके नीच देव वा स्लेच्छ होते हैं और अनेक प्रकारके क्लेश भोगते हैं

नित्यत्वं संवेगो गच्छते जिनैः ॥ ६६ ॥ यथाशक्ति दक्ष्येव दानं धर्मचिदो नराः । भावतस्तेन सदयुद्धिस्तथा पुण्यं ततः ॥ १०० ॥
 स्वसामर्थ्यानुसारेण विधेयं सुतरेस्तपः । अन्यथा व्यंतरा मर्त्या भवंति चार्तध्यानतः ॥ १०१ ॥ येन केनाप्युपायेन स तपि लयं
 सतां । तदेव तप आचार्यैराख्यातं मुक्तिसाधनं ॥ १०२ ॥ अकृत्वा मनसो रोधं कुर्वत्युग्रं महत्तपः । देवावासाधिपत्यादि द्विस्तेषां
 हि नो शिवः ॥ १०३ ॥ साधूनां सुखं प्रश्नो यः स समाधिर्निरूप्यते । धर्मध्यानार्थसंस्थिता स समाधिरथोच्यते ॥ १०४ ॥ यावृत्त्यं
 जिस उपायसे मनुष्योंका मन पदार्थोंसे हटकर आत्म स्वरूपमें लीन हो आचार्योंने उसी तपको
 उत्तम तप कहा है और वही तप मोक्षके प्राप्त करानेवाला है किन्तु जो महानुभाव मनका तो
 निरोध करते नहीं और तप उग्र और महान तपते ही हैं उन्हें उस तपकी फल स्वरूप राज्य आदि
 विभूतियां तो प्राप्त हो जाती हैं परन्तु वे मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकते । ७ । मुनियोंका सुख
 प्रश्न अर्थात् किसी कारणसे विघ्नके उपस्थित हो जानेपर उस विघ्नको नाशकर उनके तपकी रक्षा
 करना साधु समाधि है । अथवा धर्म ध्यानकी प्राप्तिके लिये उत्तम चिन्ता आत्म स्वरूपका चिंत-
 वन करना, साधु समाधि है । ८ । मुनि आदि गुणियोंके किसी कारण दुःख उपस्थित हो जानेपर
 उत्तमउपायसे उसे दूर करना उनकी सेवा चाकरी करना वैयावृत्य कहा जाता है वह वैयावृत्य आचार्य
 उपाध्याय आदि दशप्रकारके साधुओंके भेदसे दश प्रकारका है । इस वैयावृत्यरूप भावनाके
 भानेसे जिसप्रकार स्वामीके न रहनेपर सैन्य तितर बितर कर नष्ट हो जाती है उसीप्रकार अधर्म
 भी नष्ट हो जाता है । ९ । छियालिस गुण युक्त और ज्ञानसे सर्वत्र विद्यमान अर्थात् ज्ञानसे लोक
 और अलोकको जाननेवाले भगवान् अर्हंतकी जो स्तोत्र आदिसे भक्ति करना है वह शास्त्रमें अर्ह-

१ तत्पार्थराजवार्तिकमें जिनोपदिष्टे निर्ग्रन्थे मोक्षवर्त्मनि रुचिः, निःशक्तितत्वाद्यष्टांगा दर्शनचिशुद्धिः अर्थात् अर्हन्त भगवान् जिनेन्द्र
 द्वारा कहे गये निर्ग्रन्थ स्वरूप मोक्षमार्गमें जो रुचि प्रीतिका होना है उसका नाम दर्शनचिशुद्धि है और उसके निःशक्तितांग निःशक्ति
 तांग आदि अष्टांग है । उस दर्शनकी जो चिशुद्धि है । वह दर्शन चिशुद्धि है यही अर्थ भाजा है । ग्रन्थकारने यहाँपर दर्शनसे
 सत्तालोचन रूप दर्शन ग्रहण किया है वह ठीक नहीं जान पड़ता । पृ० सं० २६२

बुधेः प्रोक्तं दशधा धर्मसाधनं । वैयाकृत्ये कृतेऽधर्मो भ्रश्यते नाथसैन्यवत् ॥ १०५ ॥ अर्हतो गुणसुकस्य ज्ञानसर्वगतस्य च । भक्तिः
स्तोत्रादिभिर्या तु सार्द्धद्विर्भूता ध्रुते ॥ १०६ ॥ अर्हत्तु गुणमुपयय ध्यानिप्रसक्तयोनिधेः । भावतो भक्तिराख्याता सूरिभक्तिर्जिना
गमे ॥ १०७ ॥ शास्त्राणां बहुसंख्यानां ज्ञातुः पूर्वांग धारिणः । भक्तिश्च नैगमे प्रोक्ता भूरिसारंग भक्तिका ॥ १०८ ॥ राज्ञांतस्य च
यद्वाक्यं सत्यं मत्वाध्वयेत्सुधीः । अकाले सन्न पठ्येत ह्यध्यातं प्रवचो मतं ॥ १०९ ॥ पडावश्यकस्त्राचारविधिर्नैवोपलब्धयेत् । आवश्यकं
हि तत्प्रोक्तं कालनयनियोजितं ॥ ११० ॥ जैनधर्मस्य माहात्म्यं प्रकाशयति कोटिधा । मार्गप्रभावना सैव प्रोक्ता चिद्रूपचिन्तिभिः ॥ १११
धर्मिणां वृत्तिनां नूनं शीलयुक्त तपोभृतां । दानिनां सुदुर्चिंतानां संशा वात्सल्य मुच्यते ॥ ११२ ॥ तपस्वी पद्मसेनाख्य यताः सद्भावनाः

भक्ति कही गई है ॥ १० ॥ छियालीस गुणोंके धारक तपके भंडार और ध्यान करनेवाले आचार्यकी
जो भावपूर्वक भक्ति करना है वह आगममें आचार्य भक्ति मानी गई है ॥ ११ ॥ बहुत शास्त्रोंके
जानकार, ग्यारह अंग चौदह पूर्वोंके धारक महात्माकी जो भक्ति करना है वह बहुश्रुत भक्ति
आगममें कही गई है ॥ १२ ॥ सिद्धांत वाक्योंको सर्वथा सत्यमान कर उनकी पूजा प्रतिष्ठा करना
और आगमके पढ़नेका जो समय बताया गया है उसी समय उसे पढ़ना असमयमें न पढ़ना एवं
किसी प्रकारका उसमें भ्रम न रखना प्रवचन भक्ति है ॥ १३ ॥ सामायिक चतुर्विंशतिस्तव बंदना
प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग ये छह प्रकारके आवश्यक माने हैं इन छह प्रकारके आच-
रणोंका उल्लंघन न करना एवं तीनों काल उनका यथायोग्य आचरण करना अवश्यकापरिहाणि
नामकी भावना है ॥ १४ ॥ करोड़ों उपायोंसे जैनधर्मके माहात्म्यका जो चिंतन करना है वह चैतन्य
स्वरूपकी चिन्ता करनेवाले आचार्योंने मार्गप्रभावना नामकी भावना मानी है ॥ १५ ॥ जो मनुष्य
धर्मात्मा हैं । ब्रती हैं । शील और तपके भण्डार हैं । दानी हैं और कोमल चित्तके धारक साधर्मी
हैं उनकी प्रशंसा करना प्रवचन वात्सल्य नामकी भावना है ॥ १६ ॥ ६५—११२ ॥ वे तपके भण्डार
मुनिराज पद्मसेन समस्त प्रकारकी परिग्रहसे रहित हो दर्शन विशुद्धि आदि सोलह भावनाओंको

पराः । भावयामास चित्ते स्वे विधिता ग्रंथ वर्जितः ॥ ११३ ॥ ततो बंध तीर्थेशगोत्रं संसारतारकं । मास द्वित्रिचतुःसंख्यप्रौढक्षीण-
सद्वपुः ॥ ११४ ॥ सरित्तटे स हैमंते भ्रश्यद्द्रुमकदम्बके । देहदुःखाकरीभूते कायोत्सर्गं चकार वै ॥ ११५ ॥ ग्रीष्मे शैलतटे भोगी सूर्यस्या-
भिमुखं स्थितः । मध्याह्नापसंदग्ध कृष्णकायः परं जपन् ॥ ११६ ॥ प्रावृषि चपलागर्जिच्छायां भूखस्तले । चल्लीपिहितगात्रः सन् विदधे
सत्तपश्चिरं ॥ ११७ ॥ रागद्वेषाच्च्युतो मौनी निद्रालस्यचिचर्जितः । चिद्रूपध्यान संसक्तो मेरुर्वा सूर्य्यमाश्रितः ॥ ११८ ॥ तस्य सौख्यं
समालोक्य समंतान्मृगराजयः । सेवतेस्म महाव्याघ्रं वृष्टिं पक्षि मत्तंगमाः ॥ ११९ ॥ कर्णयोर्नीडकारम्भः कृतो हारीत राशिभिः । जटानां
अपने चित्तमें सदा भाते रहते थे ॥ ११३ ॥ सोलह भवनाओंके भानेसे उन्होंने संसारसे पार करने
वाला तीर्थ कर गोत्रका बंध कर लिया । कभी एक मास तो कभी दो तीन चार मास पर्यंत उप-
वास धारण करनेके कारण उनका शरीर कृश होता गया ॥ ११४ ॥ जिसमें तीव्र हिमके कारण
वृक्षोंके समूहके समूह खाख हो जाते हैं और जो शरीरको तीव्रसे तीव्र वेदना करने वाला है ऐसे
शीत कालमें वे पूज्य मुनिराज नदीके तटपर बैठकर कायोत्सर्ग मुद्रा धारण करते थे ॥ ११५ ॥
ग्रीष्मकालमें वे योगिराज परमात्माके स्वरूपको ध्याते हुए सूर्यके सन्मुख मुखकर विराजमान होते
थे एवं मध्याह्नकालके तापसे दग्ध होनेके कारण उनका सारा शरीर काला पड़जाता था ॥ ११६ ॥
विजलीकी तड़कनसे जो महाभयंकर जान पड़ता है ऐसे वर्षाकालमें वे मुनिराज वृक्षके तलमें बैठ
कर उत्तम तपका आचरण करते थे एवं लताओंके समूहसे सारा शरीर उनका ढक जाता था ॥
११७ ॥ वे मुनिराज राग और द्वेष से सर्वथा परांगमुख थे । मौनी थे निद्रा और आलस्य उनके
पासतक नहीं फटकता था । सदा चैतन्य स्वरूपके ध्यानमें तत्पर रहते थे एवं जिसप्रकार मेरु पर्वत
स्थिर है उसीप्रकार वे भी ध्यानकालमें स्थिर रहते थे ॥ ११८ ॥ मुनिराज पद्मसेनकी अलौकिक
समता देखकर मगगण उनके आस पास किलोल करते थे एवं सिंह बाघ पक्षी और हाथी सदा
उनके पास निर्वैर रूपसे रहते थे ॥ ११९ ॥ मुनिराज पद्मसेनके कानोंको छोटे छोटे पक्षियोंने अपना

पंचकेनैव शरीरं नैव लक्ष्यते ॥ १२० ॥ धन्यास्ते स्त्रीकुटुम्बादि त्यक्त्वा संगपराङ्मुखाः । रागद्वेष विनिष्क्रान्ता वैराग्येण वनं गताः ॥ १२१ ॥ दुस्तरं सुतपस्तप्त्वा शेषपुण्येन धीधनः । उच्चैर्गोत्रशुभायुःसद्वेद्येना मुमुक्षुः सः ॥ १२२ ॥ सहस्रारं शुभे स्वर्गे गतो भावव-
शान्मुनिः । सहस्रारैर्द्रुणामा च विभूवामर सेवितः ॥ १२३ ॥ अन्तर्मुहूर्तमात्रेण संपुटस्थ शिलातलात् । उत्थितो यौवनाढ्यः स रूपद्योति
तदिहमुखः ॥ १२४ ॥ उत्थितं तंसमालोक्य कलानिधिमुखं परं । रूपसीमानमित्याहु स्थूलस्तन सुरांगनाः ॥ १२५ ॥ अयि नाथत्वया
घोंसला बना लिया था एवं जटा उनकी कभी कभी ऐसी बढ़ जाती थी कि उनका सारा शरीर ढक
जाता था—दीख नहीं पड़ता था ॥ १२० ॥ ग्रन्थकार विरक्त महात्माओंकी प्रशंसा करते हुए
कहते हैं कि—वे महानुभाव संसारके अंदर धन्य और भाग्यशाली हैं जो कि स्त्री और कुटुम्ब
आदिसे मोह तोड़ कर परिग्रहसे विरक्त हो गये हैं । राग और द्वेष जिनके पास तक नहीं फटकने
पाता एवं वैराग्य भावनाका सदा चिंतन करते हुए जो सदा वनके अंदर निवास करने वाले हैं ।
॥ १२१ ॥ दिव्यज्ञानी मुनिराज पद्मसेनने धोर तप तपा एवं पुण्यकी कृपासे उन्होंने उच्चगोत्र शुभ
आयु और साता वेदनीय कर्मके साथ साथ उन्होंने शरीरका परित्याग कर दिया ॥ १२२ ॥ वे
मुनिराज विशुद्ध भावोंकी कृपासे सहस्रार नामक बारहवे स्वर्गमें सहस्रारेंद्र हुए एवं अनेक देवगण
उनकी सेवा करने लगे ॥ १२३ ॥ वह मुनिराज पद्मसेनका जीव सहस्रारेंद्र अन्तर्मुहूर्तमात्रमें ही
संपुट नामकी शिलासे उठकर पूर्ण युवा हो गया एवं अपने देदीप्यमान रूपसे समस्त दिशाओंको
जगमगाने लगा ॥ १२४ ॥ चंद्रमाके समान मनोहर मुखसे शोभायमान और अत्यंत रूपवान
सहस्रारेंद्र देव ज्यों ही संपुट शिलासे उठकर खड़ा हुआ कि पीन स्तनोंकी धारक देवांगना उनके
पास आईं और इसप्रकार विनयपूर्वक निवेदन करने लगीं—

हे स्वामिन् ! आपने ऐसा कौनसा बहुतसा दिव्य पुण्य उपार्जन किया जिससे आपका जन्म
यहां आकर हुआ क्योंकि यह नियम है कि सारी सिद्धियां पुण्यबलसे प्राप्त होती हैं विना पुण्यके
एक भी विभूति प्राप्त नहीं हो सकती ॥ १२५ । १२६ ॥ क्या आपने पहिले श्रीमान जिनेंद्र भगवान

रम्यं किं कृतं सुकृतं बहु । यदत्र त्वं समायातः पुण्यलब्धा हि सिद्धयः ॥ १२६ ॥ श्रीमत्पुरुजिनेन्द्रस्यार्चितं चरणपंकजं । किंवा चिरं तपस्तप्तं षट्कायावन पूर्वकं ॥ १२७ ॥ दानं चतुर्विधं दत्तं पात्रेभ्यः परमादरात् । त्रयोदशविधं चारुचारित्रं पालितं तु ते ॥ १२८ ॥ स्तु- त्वेति मधुरालापैर्नम्रांग्यः संस्थिता यदा । तदा वितर्कयामास देवेन्द्रो मातसे निजे ॥ १२९ ॥ सुकाकदंबकलक्षमाला मणिनियंत्रिताः । विमानाः सूक्ष्मसंदर्भसंयुक्ताः किममी ननु ॥ १३० ॥ नानर्द्धि संभृत स्थानमेतत्कौतुहलं ध्रुवं । द्रुवंति मधुरालापाः का एता घनभी- रवः ॥ १३१ ॥ कोऽहं कस्मात्समायातः संशये चेति तस्य वै । तृतीयावगमः साक्षात्प्रादुरासीद्गतभ्रमः ॥ १३२ ॥ संबंधं स्वस्य के चरण कमलोंकी पूजाकी थी वा चिरकाल तक घोर तप तपा था अथवा छह कायके जीवोंकी प्रतिपालना की थी का उत्तम अन्नम जघन्य तीनों प्रकारके पात्रोंको अत्यंत आदरसे आहार औषधि शास्त्र अभय ऐसा चार प्रकारका दान दिया था अथवा तेरह प्रकारके परमोत्तम चारित्रिको धारण किया था ? बस इसप्रकार मधुर वचनोंमें स्तुति कर देवांगना नम्रीभूत हो जब यथास्थान बैठगई उससमय वह सहस्रारेंद्र देव भी सहस्रार स्वर्गकी दिव्य विभूति देख इसप्रकार अपने मनमें विचार करने लगा—

मोतियोंकी लाखों मालायें और भांति भांतिकी मणियोंसे रचे गये एवं जिनकी रचना अत्यंत कारीगरीके लिये हुए हैं ऐसे ये विमान मुझे क्या दीख पड़ते हैं । नाना प्रकारकी अनेक वृद्धियोंसे व्याप्त यह मनोज्ञ स्थान क्या है ? एवं विजलीके समान चमचमाती हुई प्रभाकी धारक एवं अत्यंत मधुर बोलने वाली ये देवांगनाएं कौन हैं । मैं कौन था और यहां कैसे आगया ? बस इस प्रकारका संशय हो ही रहा था कि उसीसमय उसे तीसरा ज्ञान—अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया जिससे उसका सारा भ्रम एक ओर किनारा कर गया ॥ १२७ । १३२ ॥ अवधिज्ञानकी ओर उप- योग लगा कर सहस्रारेंद्र देवने अपना सारा पूर्वभवका संबंध जान लिया एवं उसका हृदय आनंद से पुलकित हो गया । उसे उस प्रकार आनन्दायमान देखकर देवांगनाओंके हर्षका भी पारावार नहीं रहा । उनमें कोई देवांगना उसके मस्तक पर महामनोहर मुकुट लगाने लगी । कोई कोई

मानेन शात्वानंदमयोऽभवत् । तथाभूतं विलोकाशु त्वलं चक्रुः सुरांगनाः ॥ १३३ ॥ काचिन्मुकुटसंदर्भं चर्करीतिस्म सादरात् । श्रौमवासां
 सि काचिद्वा रोपयामास तत्तनौ ॥ १३४ ॥ आरुरोपांगदं काचित्काचिन्मुकागुणं गले । काचिद्विलेपनं चक्रुः चंदनद्रुम संभवं ॥ १३५ ॥
 माले विशेषकं काचित्पद्मराग सुदर्मिनीं । रत्नलोहितमध्यांकां चकार मेखलां कटौ ॥ १३६ ॥ काचित्सुराचलाः तस्य दर्पणं चित्ततर्पणं ।
 दर्शयामास कामाख्या सहासः रूपरजिता ॥ १३७ ॥ काचिद्देवपूजाह्वयः जंघांकां चक्रुः सन्निभं । चामरांदोलनैरुच्चैः सुखयामास सादरं ॥
 १३८ ॥ एवमादिकं शृंगारैर्भूषितो देवराजः बभौ । दृष्ट्वा नाकसमुद्भूता मिदिरामित्यचिंतयत् ॥ १३९ ॥ इदं धर्मफलं नूनं स्वर्गराज्यं
 महा मनोहर सुगंधित वस्त्र उसे पहिनाने लगीं । किसीने उसे अङ्गद (बाजू बंध) पहिनाया । कोई
 गलेमें हार पहिनाने लगी । किसी किसीने मलयागिरि चन्दनसे उस देवके शरीरका उवटन किया
 कोई कोई ललाटपर तिलक लगाने लगी । किसी किसीने पद्मराग मणिकी बनी हुई एवं मध्य-
 भागमें रत्नोंकी लालिमा से अङ्कित करधनी उस देवके कटिभागमें पहिनाई । कोई कोई कामसे
 आकुलित और हंसने वाली देवांगना उस देवके दिव्य रूपपर मुग्ध हो चित्तको आनन्द प्रदान
 करनेवाला दर्पण दिखाने लगी तथा कोई कोई देवांगना जिसप्रकार मंगलदासके बड़े भाई कृष्ण-
 दासको पूरमल्ला नामकी स्त्री चमर द्वार कर सुखी बनाती थी उसीप्रकार उस देवको भी चमर
 द्वार द्वार कर बड़े आदरसे सुखी बनाने लगी ॥ १३३—१३८ ॥ इसप्रकार अनेक शृंगार जनक
 वस्तुओंसे सजा गया वह देवराज अत्यंत शोभायमान जान पड़ने लगा तथा सहस्रार स्वर्गमें होने-
 वाली दिव्य लक्ष्मीको देखकर वह देव इसप्रकार विचारने लगा—

अनेक देवोंसे सेवित यह स्वर्गका राज्य धर्मका फल है । यह दिव्य राज्य मुझे उत्तम पुराणकी
 कृपासे मिला है क्योंकि धर्मसे संसारमें सब कुछ प्राप्त हो सकता है ऐसी कोई भी वस्तु नहीं जो
 धर्मकी कृपासे न मिलती हो । बस इस प्रकार अपने मनमें विचार कर वह सहस्रार स्वर्गका स्वामी
 देव अनेक देवीं और देवोंसे वेष्टित हो तीर्थ यात्राके लिये मेरु पर्वतपर गया नन्दीश्वर आदि द्वीपों
 में भी जिन चैत्यालयोंकी बंदनाके लिये भ्रमण करने लगा इस प्रकार असंख्याते द्वीप और समुद्रों

सुरार्चितं । प्राप्तं मया सुपुण्येन धर्मात्मिकं न भवेदिति ॥ १४० ॥ वितर्क्य मानसे स्वीये देवीदेवसमन्वितः । मेरौ जगाम यात्रार्थं तथा
 तं दीश्वरादिषु ॥ १४१ ॥ असंख्यद्वीप धाराशोन् गत्वा दृष्ट्वा समागतः । रेमे सुरांगनामिष्य कीडा शैलेषु प्रत्यहं ॥ १४२ ॥ दीर्घिका
 स्वच्छतोयेन पंकजावलिनालिना । सुबितेन सुखं स्नात्वा पूजयामास श्रीजितान् ॥ १४३ ॥ शब्दसंभोगं संजीनो देवी निकरमध्यगः ।
 हाहा हूह कृतं नाट्यं पश्यतिस्म निरकुशः ॥ १४४ ॥ अष्टादशसमुद्राधुरेक चापतनूच्छ्रुतिः । वर्तते देवनाथस्य वजांकितकरस्य च ॥
 १४५ ॥ द्रव्यभावप्रमेदेन शुक्लेश्या द्वयेन च । जघन्येन युनः पद्मलेश्योत्कृष्टनया पुनः ॥ १४६ ॥ तसो रूपप्रवीचारः प्रवालुर्ध्वं नरकावधिः
 में जाकर और उन्हें देखकर वह अपने स्थान लौट आया एवं प्रतिदिन अनेक देवांगनाओं के
 साथ साथ कीड़ा पर्वतोंमें अनेक प्रकारकी क्रीड़ायेँ करने लगा । वह पुण्यात्मा देवराज कमलोंकी
 बेलोंसे व्याप्त एवं जिसका आस्वाद सुगन्धिसे मतवाले भोंरे सदा लेते रहते थे ऐसे वावड़ियोंके
 स्वच्छ जलमें वह स्नान कर, भगवान् जिनेन्द्रोंकी पूजा करने लगा ॥ १४३—१४३ ॥ सहस्रार नामक
 धारहवें स्वर्गमें देवांगनाओंके भूषणोंके शब्द सुनने मात्रसे ही देवोंकी मैथुन अभिलाषा तृप्त हो
 जाती है इसलिये वह सहस्रारेंद्र सदा शब्द जनित भोगोंमें लीन रहता था । अनेक देवांगनाओंके
 मध्यमें बैठकर आनन्द किलोल करता था एवं हा हा हूँ हूँ आदि शब्दोंसे जायमान नृत्यको सदा
 निर्वृद्ध हो देखता रहता था ॥ १४४ ॥ उस पुण्यात्मा देवेंद्रकी अठारह सागर प्रमाण आयु थी ।
 एक धनुष प्रमाण शरीरकी ऊँचाई थी और उसके हाथ वज्रसे अंकित थे ॥ १४५ ॥ सह-
 स्रार स्वर्गमें पद्म और शुक्लके भेदसे दो लेश्यायेँ मानी हैं उनमें शुक्ल लेश्या जघन्य रूपसे और
 पद्म लेश्या उत्कृष्ट रूपसे मानी है । वह देवेन्द्र द्रव्य और भाव स्वरूप जघन्य शुक्ल लेश्या और
 उत्कृष्ट पद्म लेश्या इस प्रकार दो लेश्याओंसे मंडित था ॥ १४६ ॥ प्रवीचारका अर्थ मैथुनाभिलाष
 है । वह देवेंद्र शब्द प्रवीचारसे तृप्त था । अपने अवधि ज्ञानसे चौथे नरक तककी बातें जान सकता
 था । अवधि ज्ञानका विषयभूत जितना क्षेत्र बतलाया गया है वहाँ पर्यंत विक्रिया करनेकी वह साम-
 र्थ्य रखता था और अणिमा महिमा आदि आठ प्रकारके ऐश्वर्योंसे शोभायमान था ॥ १४७ ॥

आक्षेप विप्रिया तेजा अपिमायष्टको बभौ ॥ १४७ ॥ अष्टादश सहस्राब्दैर्मनसाहारमाहरन् । गतेषु मधमासेषु निःश्वसहोषनाबकः ॥
१४८ ॥ गीतैर्वादिर्निर्घोषैर्यत्र नाट्यरसमन्यतैः । रंभाकृपावलोकने युगांतः समयायते ॥ १४९ ॥ सप्त धातुकिरीटांशः काममूर्तिः सुरा-
धिपः । असंख्यातसमुद्रेषु द्वीपेषु कीदृक्स्थितः ॥ १५० ॥ धर्मात्स्वर्गोऽलक्ष्मीमनुभवति सुरैः सेव्यमानां नितान्तं । गंगाकल्लोल-
माला धवलकरिचरैर्भासमानां सुरैः । कीदृशीलैर्विमानैर्मरकतमणिभिर्गर्भितैरम्यरूपां । धर्मात्किं किं दुराप्यं भवति हि भुवने मूर्ध्नि
मनां नराणां ॥ १५१ ॥ २५२ ॥ भोक्तृसुता सुराज्यविभवं कीर्तिः कला कौशलं गंभीर्यं वनिता विलोचनमुखं रूपं च देवेंद्रता । धीधान्यं

अठारह हजार वर्षोंके बाद वह मनसे आहार ग्रहण करता था और नौ महीनोंके बाद उश्वास
लेता था ॥ १४८ ॥ सदा होने वाले गानोंसे बाजोंके शब्दोंसे नृत्यकलाके रसोंके अनुभवोंसे और
देवांगनाओंके महा मनोहर रूपोंके देखनेसे सदा उसके लिये सतयुग विद्यमान रहता था ॥ १४९ ॥
हड्डो मज्जा शक्क आदि सात धातुओंसे रहित उसका शरीर था । कामदेवके समान वह सुंदर
था । समस्त देवोंका स्वामी था एवं असंख्याते द्वीप और समुद्रोंमें सदा क्रीड़ा करने वाला था ॥ १५० ॥

वह सहस्रार स्वर्गका स्वामी देवेंद्र जिसकी बड़े बड़े देव सेवा करने वाले हैं, जो गङ्गा नदीकी
तरंगोंके समान सफेद हाथियोंसे शोभायमान हैं बड़े बड़े क्रीड़ा पर्वत, दिव्य विमान और मरकत
मणियां जिसकी दिव्य शोभा बढ़ा रहे हैं ऐसी इन्द्र सम्बंधी सम्पदा सानंद भोग करने लगा ।
ठीक ही है जो मनुष्य भाग्यवान् हैं उनके लिये ऐसी कोई भी चीजें नहीं जो धर्मसे प्राप्त न हो
जाती हों ॥ १५१ ॥ २५२ ॥ २५३ ॥ संसारमें ऐसा अद्वितीय चिन्तामणि रत्न है कि उससे महा मनोज्ञ विभू-
तियां मिलती हैं सुन्दर राज्य, ऐश्वर्य, कीर्ति, कला, कौशल, गम्भीरता स्त्रियां नेत्रोंको आनन्द प्रदान
करने वाला रूप, देवोंका स्वामीपना, उत्तम बुद्धि धान्य उत्कृष्ट और विवेक परिपूर्ण वचन, चक्रवर्ती
पना और तीर्थ करपना सब कुछ प्राप्त होते हैं । विशेष क्या संसारमें ऐसा कोई भी गुणोंका समूह
नहीं जो कि धर्मकी कृपासे प्राप्त न हो ॥ १५२ ॥

परमं विवेक वचनं चक्रेश्वरत्वं वृषात् । श्रोतोर्यं करता कमावृ गुणगणो न स्यादहो किं नृणां ॥ १५२ ॥ ॥

इति श्रीविमलनाथपुराणे भट्टारकश्रीरत्नभूषणाम्नायालंकार ब्रह्मकृष्णदासविरचिते ब्रह्ममंगलदाससाहाय्य

सापक्षे पद्मसेनचरसहस्रारेंद्रविभूतिवर्णनोनाम द्वितीयः सर्गः समाप्तः ॥ २ ॥

इस प्रकार अपने छोटे भाई ब्रह्म मंगलदासकी सहायता पूर्वक भट्टारक श्रीरत्नभूषणकी आम्नायके अलंकार स्वरूप ब्रह्म कृष्णदास द्वारा विरचित श्रीविमलनाथ पुराणमें पद्मसेन राजाके जीव सहस्रारेंद्रका विभूति वर्णन करनेवाला दूसरा सर्ग समाप्त हुआ ॥ २ ॥

तीसरा सर्ग ।

चायेऽहं चर्चितं स्वर्णैः काश्यपं गैरिकत्विषं । जटा स्वर्णं लताभामिस्तिरस्करविप्रभं ॥ १ ॥ अथ जम्बूमति द्वीपे विख्यातेऽ नेकवस्तु मिः । समास्ति भारतं वर्षं मेरोर्दक्षिणभागभाक् ॥ २ ॥ तत्रैव कंपिला नाम्ना विद्यते परमा पुरी । क्रोवेर्मुक्ता गुणैर्युक्ता धनाढ्या स्वर्णं

जो भगवान् देवोंके द्वारा भलेप्रकार पूजित हैं । काश्यप गोत्रके तिलक हैं । गरुआ रंगकी प्रभाके धारक हैं एवं जटास्वरूप सुवर्ण की लताओंकी प्रभासे जिन्होंने सूर्यकी प्रभाको भी नीचा कर दिया है उन विमलनाथ भगवानको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ इसी संसारमें एक जम्बूद्वीप है जो कि अनेक प्रसिद्ध २ चीजोंसे विख्यात है । जम्बूद्वीपके ठीक मध्यभागमें मेरु पर्वत है और उसकी दक्षिणदिशामें प्रसिद्ध भरतक्षेत्र है ॥ २ ॥ भरतक्षेत्रके अन्दर एक कंपिला नामकी नगरी है जो कि अपनी शोभासे महा मनोहर है । समस्त प्रकारके दोषोंसे रहित है । नाना प्रकारके गुणोंसे अलंकृत है । धनसे व्याप्त और सुवर्णमयी महलोंकी शोभासे जाज्वल्यमान है ॥ ३ ॥ किसी समय उसका रक्षण करने वाला राजा कृतवर्मा था जो कि पुरुदेव वंशसे उत्पन्न था । राजा

सगृहा ॥ ३ ॥ पुरुदेवान्वये राजा जातो राजपुत्रो बलो । कृतवर्माभिवस्तत्र प्रतापाकांतभूतलः ॥ ४ ॥ सर्वसामंत संसंव्यपादो रत्नैरि-
वार्षवः । क्रूरसौम्यैर्गुणैर्भाति प्रभामार रविः प्रभः ॥ ५ ॥ सुदानाणोधिनिर्घातां भुवं संश्रित्य रोहति । ब्रह्मलोकं समुल्लंघ्य स्वर्धुनीं च
शिवं नमः । ६ । निर्जरेणसरोमिश्र लोकिता सावरं सदा । यत्कीर्तिः कुंदशोभांशु विशुभ्राक्षरजिताः ॥ ७ ॥ (युग्मं) चंद्रस्याचंद्रभा चांद्रो
समस्त राजाओंने प्रधान था । बलवान था एवं अपने प्रचंड प्रतापसे समस्त पृथ्वीतलको वश करने
वाला था ॥ ४ ॥ जिसप्रकार नाना प्रकारके रत्नोंसे समुद्र सेवित—व्याप्त रहता है उसीप्रकार वह
समस्त सामंतोंसे सेवित था । समयानुसार क्रूरता और सौम्य गुणोंसे शोभायमान था एवं सूर्यके
समान चमचमाती हुई प्रभाका धारक था ॥ ५ ॥ जिसप्रकार ब्रह्मलोकको उल्लंघनकर गंगानदीका
प्रवाह बहता है एवं मोक्षको अतिक्रमण कर आकाश—अलोकाकाशकी विद्यमानता है उसीप्रकार
उत्तम दानरूपी समुद्रसे निकली हुई पृथ्वीको आश्चर्यकर वह उदयको प्राप्त थी अर्थात् इच्छानुसार
दान देनेके कारण वह संसारमें सर्वोंमें चढ़बढ़ कर था—राजा कृतवर्मासे बढ़कर उससमय कोई
श्री दानी नहीं था । वह राजा इतना सुंदर था कि देव और देवांगनायें उसे बड़ी आदरकी दृष्टि
से देखते थे । उसका यश कुन्द पुष्प और चंद्रमाके समान उज्ज्वल थी और अखिल शोभायमान
था ॥ ६—७ ॥

राजा कृतवर्माकी महाराणीका नाम जयश्यामा था जो कि चंद्रमाके समान मुखसे शोभाय-
मान थी । चंद्रमाके समान कान्तिकी धारक थी । साक्षात् चंद्रमाकी कला जान पड़ती थी । मिष्ट
और मधुर बोलने वाली थी । राजहंसके समान मनोहर चाल चलने वाली थी । श्यामा थी एवं
कानोंतक विशाल नेत्रोंकी धारक थी लोग जिस समय उसे देखते थे उस समय वे यही समझते
थे कि यह साक्षात् कामदेवकी स्त्री रति है कि लक्ष्मी है कि पद्मावती देवी है वा चन्द्रमाकी स्त्री
रोहिणी वा सूर्यकी स्त्री है ॥ ८ ॥ वह महाराणी जय श्यामा पीन स्थनोंसे शोभायमान थी उसका

कलेव कलभाषिणी । राजहंसगतिः श्यामास्वाकर्णायतलोचना ॥ ८ ॥ राजतेस्म महादेवी जयश्यामाऽभिधा रतिः । पद्मा पद्मवती
रम्भा रोहिणी वा रविप्रिया ॥ ९ ॥ पूरमल्लेख रूपेण पीनवक्षोजराजिता । करप्राक्षकरी स्थूलनितम्बपरिमंडला ॥ १० ॥ परस्परमहाप्रेम
बद्धचित्तौ सुखं भृशं । रतिक्रीडासमुद्भूतं भोजयामासतुस्तदां ॥ ११ ॥ एकदा धीदमाहूय शक्र इत्यगदीद्वचः । तयोदशमतीर्थेशः कां पि
ह्येऽवतरिष्यति ॥ १२ ॥ अतस्त्वया विध्यातव्या शोभा श्रीपत्तनस्य च । गृह्णागणे महावृष्टी रत्नानां जिनभक्तिः ॥ १३ ॥ जिनावतरणा-
दवाक् षण्मासावधि श्रीधनेद् । वसुधारां पातयामास रंगराजिविराजितः ॥ १४ ॥ एकदा मृदुसत्तले हंसतूलान्विते युते । पुष्पवातेः

कटिभाग अत्यन्त पतला मुष्टिग्राह्य था स्थूल नितम्बोंसे युक्त थी एवं अत्यन्त रूपवती थी ॥ १० ॥
उन दिनों दंपतियोंमें बड़ा भारी आपसमें प्रेम था इसलिये वे रतिक्रीडासे जायमान सुखका बड़े
आनन्दसे अनुभव करते थे ॥ ११ ॥

भगवान् विमलनाथकी उत्पत्तिका समय निकट जान एक दिन इन्द्रने कुवेरको अपने पास
बुलाया एवं यह कहा—तेरहवें तीर्थंकर भगवान् विमलनाथ कपिला नगरीमें माता जयश्या-
माके गर्भमें अवतरेंगे इसलिये तुम्हें कपिला नगरीको हर एक प्रकारसे शोभायमान कर देना
चाहिये एवं भगवान् जिनेन्द्रमें प्रचण्ड भक्ति रखकर उनके महलके आंगनमें रत्नोंकी वर्षा करनी
चाहिये ॥ १२ ॥ वस इन्द्रकी आज्ञासे भगवान् जिनेन्द्रकी उत्पत्तिके छह मास पहिले ही कुवेरने
नानाप्रकारके रत्नोंकी वर्षा करनी प्रारम्भ कर दी ॥ १३ ॥

एक दिन नितम्बरूपी तहोंसे शोभायमान, कठिन और पीन स्तनोंकी धारक वह माता जयश्यामा
गर्भ ग्रहके अन्दर नानाप्रकारके सुगन्धित पुष्पोंसे व्याप्त एवं हंसोंकी पंखोंकी उनके समान अत्यन्त
कोमल शय्यापर सो रही थी कि अचानक ही उसे रात्रिके पिछले पहरमें सोलह स्वप्ने दीख
पड़े जो कि भगवान् जिनेन्द्र स्वरूप कल्याणके सूचन करनेवाले थे और महामनोहर थे
सबसे पहले स्वप्नमें उसने हाथी देखा जो कि पूर्ण चन्द्रमाके समान शुभ्र था । कुम्भस्थलोंसे

पृथुरस्का सुप्ता गर्भगृहे मुदा ॥ १५ ॥ षोडशप्रमितान् स्वप्नान् ददर्शेति धनस्तनी । कल्याणसूचकान् सौम्यान् नितंघतटशोभिनी ॥ १६ ॥
 सिंधुरं पूर्णचंद्राभं लसत्कुंभतटं वृतं । मयच्युतं महाशीलकैलाशमिवोन्नतं ॥ १७ ॥ वृषभं प्रांशुलस्कंधं ह्रस्वग्रीवं मृगदृशं । चपलं तारकामं
 च स्वल्पोन्नतविषाणकं ॥ १८ ॥ कंठीरवं महाशुभ्रं बलिनं भीषिवर्जितं । लसंतं सुंदराकारमूर्ध्वशुंडं ततं ध्रुवं ॥ १९ ॥ पद्मासन-
 स्थितां पद्मां पद्महस्तां हस्तमुखीं । मुकाकलापसदुग्रीवां रूपलोचनसौख्यदां ॥ २० ॥ पुष्पदाग्नी सुविन्यासे कुंदमंदारगमित्री । पारि-
 जातकसंताननमेरुकुसुमान्विते ॥ २१ ॥ चंद्रं पूर्णकलं ध्रुवं क्षिप्तं किरणाकुलं । विकलंकं मुखायतं तापघ्नं लोचनप्रियं ॥ २२ ॥
 शोभायमान था । चौकोर सुन्दर था । भरता हुआ मद उसकी अपूर्ण शोभा प्रगट कर रहा
 था एवं महा पर्वत कैलाशके समान ऊंचा था ॥ १४—१६ ॥ दूसरे स्वप्नमें बैल देखा जो कि
 उन्नत स्कन्धोंका धारक था । छोटी ग्रीवासे शोभायमान था । हिरण्णके समान विशाल नेत्रोंका
 धारक था । चंचल था । तारागणोंकी प्रभाके समान शुभ्र था एवं उठते हुये छोटे छोटे सींगोंसे
 शोभायमान था तीसरे स्वप्नमें सिंह देखा जो कि अत्यन्त सफेद था वलिष्ठ निर्भय और
 महामनोहर था सुन्दर आकारका धारक था उसकी सटायें ऊपर थीं एवं वह विस्तृत रूपसे खड़ा
 हुआ और निश्चल था ॥ १७—१८ ॥ चौथे स्वप्नमें लक्ष्मी देखी जो कि पद्माशनरूपसे विद्य-
 मान थी । उसके हाथमें कमल शोभायमान था । प्रसन्न मुखकी वह धारक थी उसका वक्षस्थल
 मोतियोंके हारसे जगमगाता था एवं अपने मनोज्ञ रूपसे वह नेत्रोंको आनन्द प्रदान करने वाली
 थी ॥ १९ ॥ पांचवें स्वप्नमें दो मालायें देखीं जो बड़ी मनोहरतासे गुथी हुई थी । उनके
 बीचभागमें कुन्द और मन्दार जातिके पुष्प गुथे हुए थे एवं पारिजात संतान और नमेरु जातिके
 कल्पवृक्षोंके पुष्पोंसे वह बनी हुई थी ॥ २० ॥ छठें स्वप्नमें चंद्रमा देखा जो कि समस्त कलाओंका
 धारक था अंधकारका नाश करने वाला था । किरणोंके समूहसे व्याप्त था कलंक रहित था मुखके
 समान सुन्दर था संतापका नाशकर शीतल प्रदान करने वाला था और नेत्रोंको अत्यंत प्यारा
 था ॥ २१ ॥ सातवें स्वप्नमें चमचमता हुआ सूर्य देखा जो कि अंधकारकी जड़से दूर करनेवाला

मार्तण्डं तर्जितध्वातं लोहिताभं प्रतापिनं । मार्गामार्गं दिशतं वा सद्गुरुं शानलोचनं ॥ २३ ॥ रमहसन्मनोहारि तिमियुग्मं तथाहि च ।
 पंकजाच्छादितं पूर्णं पानोयैर्घटयुग्मकं ॥ २४ ॥ तद्वर्णं जलभाभीरं फुल्लतामरसांचितं । लोलकल्लोलमालाभिर्गर्जितं जलधिं परं ॥ २५ ॥
 रत्नस्वर्णात्मकं चित्रं बिम्बरं दैवतं पुनः । व्योमगानं कवणतं वै किंकिणीभिः समुद्रवत् ॥ २६ ॥ नागलोकं महादीप्तं भूतां नागकुमार-
 कैः । रत्नपुञ्जं ज्वलतं च निर्धूमं ज्वलनं ततः ॥ २७ ॥ ददर्शैतान् महास्वप्नान् प्राप्ते राक्षी मुखे गजं । दिशतं पर्वतोत्तुर्गं यामे पाश्चात्यके
 था । जलती हुई अग्निकी ज्वालाके समान ललोई का धारक था । एवं जिसप्रकार ज्ञानरूपी लोचन
 के धारक उत्तम गुरु यह उत्तम मार्ग है और यह कुमार्ग है इसप्रकारका उपदेश देनेवाले होते हैं
 उसीप्रकार वह सूर्य भी अच्छे और बुरे मार्गका बताने वाला था अर्थात् सूर्यके उदयकालमें ही
 यह ज्ञान होता है कि यह मार्ग जाने योग्य है और यह मार्ग नहीं जाने योग्य है । अंधकारमें
 अच्छे बुरे मार्गका ज्ञान नहीं होता । इसलिये अज्ञानतासे खड्डेमें भी गिर जाना पड़ता है
 ॥ २३ ॥ आठवें स्वप्नमें माताने मोनोंका युगल देखा जो कि जलमें किलोल करने वाला था सुंदर
 था और अपनी चाल ढालसे मनको हरण करता था नवमें स्वप्नमें सुवर्णमयी दो घड़े देखे जिनके
 मुख कमलोंसे ढके हुए थे और वे जलसे भरे हुए थे ॥ २४ ॥ दशवें स्वप्नमें एक महामनोहर तालाब
 देखा जो कि जलसे लवालब भरा था एवं फूले हुये कमलोंसे व्याप्त था । ग्यारहवें स्वप्नमें एक
 विस्तीर्ण समुद्र देखा जो कि चंचल तरंगोंकी मालाओंसे गर्जता था । बारहवें स्वप्नमें एक महा
 मनोज्ञ सिंहासन देखा जो कि रत्न और सुवर्णोंसे रचा हुआ था और देवमयी था । तेरहवें
 स्वप्नमें विमान देखा जो कि छोटी छोटी घंटारियोंसे शब्दायमान था एवं शब्द करने और विस्ती-
 र्णतामें समुद्रकी उपमा धारण करता था ॥ २५—२६ ॥ चौदहवें स्वप्नमें नाग कुमारोंका भवन देखा
 जो कि अत्यंत देदीप्यमान था एवं नाग कुमार जातिके देवोंसे व्याप्त था । पंद्रहवें स्वप्नमें
 रत्नोंकी राशि देखी जो कि अत्यंत देदीप्यमान थी । एवं सोलहवें स्वप्नमें जलती हुई निर्धूम
 अग्नि देखी ॥ २७ ॥ रात्रिके शुभ पश्चिम भागमें जिससमय माता जय श्यामा सोलह स्वप्न

शुभे ॥ २८ ॥ जगरामास सद्ग्यानलीना ललितलक्षणा । उत्थिता सत्पतो नूनं स्नात्वा सामायिकं व्यधात् ॥ २९ ॥ प्रातर्वादित्रिचोपे
र्वदिनां शुभसूचनैः । रंजिता गतवती भर्तुः समीपे प्रश्नहेतवे ॥ ३० ॥ शृंगारितलसहेहा स्थूलपीनयोधरा । नम्रांगी तत्स्वर्णाभ
पपातांद्रयोः पतेध्रुवं ॥ ३१ ॥ तां चकोरदृशं दृष्ट्वा जगादेति विशांपतिः । प्रेमाकृतो महादेवि ! यदत्र त्वं समागता ॥ ३२ ॥ इत्यु
कत्वावामके भागे स्थापयामास साक्षरात् । स्वकरेण समादाय जयश्यामां च कोविदां ॥ ३३ ॥ सापि भर्तुः परं मानं लब्ध्वा सुख
देख चुकी उस समय सबसे अंतमें अपने मुखमें प्रवेश करता हुआ हाथी देखा जो कि सफेद
रंगका था और पर्वतके समान उन्नत था ॥ २८ ॥ समीचीन ध्यानमें लीन एवं सुन्दर लक्षणोंकी
धारण करने वाली वह माता जग गई । शीघ्र ही उसने शैय्या छोड़ दी एवं स्नानकर सामायिक
करने बैठ गई । महाराज और महाराणीके जगानेके लिये प्रातःकालमें महा मनोहर वाजोंके शब्द
होते हैं एवं बंदीगण विरुद्ध बखानते हैं । महाराणीके जगते समय भी उत्तमोत्तम वाजोंके शब्द होने
लगे एवं बंदीगण विरुद्ध बखानने लगे इसलिये वह माता अत्यंत प्रसन्न थी । सामायिकके अंतमें
वह माता उठी और अपने स्वप्नोंका फल पूछनेके लिये प्रसन्नचित्त हो अपने स्वामीके पास चल दी
॥ २९—३० ॥ जिससमय माता जयश्यामा राजा कृतवर्माके पास चली उससमय उसका सारा
शरीर अनेक प्रकारके शृंगारोंसे देदीप्यमान था उसके कठिन और पीन दोनों स्तन विचित्र शोभा
बढ़ा रहे थे । उसके शरीरसे तपे हुये सुवर्णकी कांति फूट रही थी एवं उसका अंग नम्रीभूत था
बस सभामें पहुंचते ही वह अपने स्वामीके चरण कमलोंमें जाकर गिर गई । अपनी महाराणी
को इसप्रकार पूर्ण विनययुक्त देखकर राजा कृतवर्माको बड़ा आनंद हुआ एवं हर्षसे गद्गद हो
वह इसप्रकार अपना स्नेह व्यक्त करने लगा :—

हे महादेवि ! आप जो यहांपर पधारो हैं उससे मैं अत्यंत आभारी हूं बस ऐसा कहकर
आधा सिंहासन छोड़ दिया एवं अपने हाथसे माता जयश्यामाका हाथ पकड़कर उसे अपनी बाईं
और बड़े आदरसे बैठा लिया ॥ ३१—३३ ॥ माता जयश्यामा भी अपने स्वामी राजा कृतवर्मासे

मिता न्यनी । ह्योणां स्नेह विकासाय भर्तुर्मन्यं भवेदिति ॥ ३३ ॥ व्यक्तीकृत्य परं प्रेम जगाद् निजस्वामिनं । हे नाथ पश्चिमे यामे
स्वप्ना दृष्टास्तु षोडश ॥ ३५ ॥ गजादिज्वलनांतान् प्रोक्त्वा प्रोवाच सदिगरे । एतेषां किं फलं स्वामिन् ? वदत्वं करुणालय ॥ ३६ ॥
तां जगाद् नराध्याशः शृणु त्वं तत्फलं मुदा । अंभोजलोचनेबाळे नितंबभरमंधिरे ॥ ३७ ॥ दृष्टो गजो यतः शुभ्रस्तव पुत्रो भविष्यति ।
कुलानंदकरो गौश्च सर्वभारधुरंधरः ॥ ३८ ॥ सिंहदर्शनतो नूनं विक्रमी च त्रिलोकजित् । रमादर्शनतो देवि त्रैलोक्यरमयाश्रितः ॥ ३९ ॥

इस प्रकार सन्मान पाकर बड़ी खुश हुई और आनन्दका अनुभव करने लगी । बात भी ठीक है अपने स्वामी द्वारा किया गया सन्मान ही त्रियोंके लिये विशेष आनन्दका कारण होता है ॥ ३४ ॥ कुछ समय तक आनंदानुभवनके बाद महारानी जयश्यामाने उत्कट स्नेह व्यक्तकर इसप्रकार अपने स्वामीसे कहा :—

प्राणनाथ ! रात्रिके पश्चिम भागमें मैंने सोलह स्वप्न देखे हैं एवं पहिले स्वप्न हाथीसे लेकर अंतिम स्वप्न अग्निपर्यंत समस्त स्वप्न कह भी सुनाये एवं यह प्रार्थनाकी कि इन स्वप्नोंका फल क्या होना चाहिये ? हे कृपाके सागर स्वामी आप कृपाकर कहें ॥ ३५—३६ ॥ रानी जयश्यामाके सोलह स्वप्नोंको सुनकर महाराज कृतवर्मा बड़े प्रसन्न हुए और वे यह कहने लगे—हे कमल नयनी और नितंबोंके भारसे मंद चालसे चलनेवाली प्रिये ! मैं अनुक्रमसे स्वप्नोंका फल कहता हूँ तुम आनंदपूर्वक सुनो—तुमने जो स्वप्नमें हाथी देखा है उसका फल यह है कि समस्त कुटुंबको आनंद प्रदान करनेवाला तुम्हारे पुत्र होगा । बैल जो देखा है उसका फल यह है कि वह समस्त भारको धारण करनेवाला होगा । स्वप्नमें सिंहके देखनेका यह फल है कि वह सिंहके समान पराक्रमी और तीनों लोकोंका विजय करनेवाला होगा । लक्ष्मीके देखनेका यह फल है कि वह तीनों लोककी लक्ष्मीका स्वामी होगा । पुष्पमालार्ये जो दो देखी हैं उनका फल यह है कि वह पुत्र शुक्ल लेश्याका धारक अत्यंत कोमल चित्तवाला होगा । चंद्रमाके देखनेका फल

पुष्पशमविलोकाच्च शुक्लेश्यो मृदुत्वतः । चक्षान्वेषणतः कान्ते शांतः परमतत्त्ववित् ॥ ४० ॥ नमोमणिसमालोकात्प्रतापाकांत
विष्टपः । मीनदर्शनतः प्राज्यराज्यभागो सूरार्चितः ॥ ४१ ॥ द्विधटालोकतो मेरौ स्नानं लप्स्यति शकतः । तडागदर्शनाद्वामे सर्वल-
क्षणलक्षितः ॥ ४२ ॥ समुद्रालोकतो धीरध्वानो गंभीरशासनः । अगाधो भोगिदेवानामवाङ्मनसगोचरः ॥ ४३ ॥ सिंहासनसमा-
लोकाद्भूलोकेषु समर्हितः । विमानदर्शनात्स्वर्गादागामिष्यति हे प्रिये ॥ ४४ ॥ फणींद्रसदनालोकान्नामलोक समर्हितः । रत्नपुंजसम-

यह है कि वह चंद्रमाके समान लोगोंको आनंद प्रदान करनेवाली शान्तिका धारक होगा और परमतत्त्वका जानकार होगा । सूर्यके देखनेका फल यह है कि वह पुत्र अपने प्रतापसे समस्तलोक को बश करेगा । मछलियोंके देखनेसे वह उत्तम राज्यका भोगनेवाला होगा और देवगण उसकी पूजा करेंगे । दो घड़ोंको जो स्वप्नमें देखा है उसका फल यह है कि उसपुत्रका अभिषेक स्वयं इन्द्र मेरु पर्वतपर करेगा । तालाबके देखनेका यह फल है कि वह समस्त शुभलक्षणोंसे शोभायमान होगा समुद्रके देखनेसे वह पुत्र दिव्य ध्वनिका स्वामी होगा । उसकी आज्ञा गंभीर होगी योगी होगा और देवगण उसके गुणोका पता न पा सकेंगे एवं उसका चिदानंदस्वरूप वचन और मनके अगो-
चर होगा अर्थात् न वचनसे कहा जायगा और न मनसे विचारा जा सकेगा । स्वप्नमें जो सिंहासन देखा है उसका फल यह है भूलोकमें सब लोग उसकी पूजा करेंगे । विमान देखनेका यह फल है कि वह स्वर्गसे चयकर तुम्हारे गर्भमें आवेगा । नागकुमारोंका जो भवन देखा है उसका फल यह है कि समस्त नाग कुमारगण उसकी पूजा करेंगे । रत्नोंका पुंज देखनेसे वह करोड़ों सूर्योंकी प्रभासे भी अधिक प्रभाका धारक होगा एवं स्वप्नमें जो सूर्यदेखनेमें आया है उसका फल यह है कि वह तुम्हारा पुत्र समस्त कर्मोंका नाश करनेवाला होगा । चिदानंद चैतन्यस्वरूप होगा मोक्ष-
लक्ष्मीका स्वामी होगा एवं अत्यंत बुद्धिमान होगा अपने स्वामी राजा कृतवर्मासे इसप्रकार स्वप्नों का फल सुनकर माता जयश्यामाका हृदय आनंदसे उछलने लगा । एवं उस समय पुत्रकी उत्पत्ति

न्योपात्कोदिसूर्याधिकप्रभः ॥ ४५ ॥ विभावसुसमालोकात्कर्मध्वंसी च चिन्मयः । मुक्तिसामाज्यो राक्षि ! भविता ते सुतः सुधीः ॥
॥ ४६ ॥ एव श्रुत्वा महादेवो हृदयानन्द मायका । तुजं लब्ध्वा च सन्माना त्सानंदा संययी गृहं ॥ ४७ ॥ ज्येष्ठे कृष्णदशम्यां च ऋते
भाद्रपदे ध्रुवं । उत्तरादिभके रश्मिस्तद्वत्तरेन्द्र नाममाक ॥ ४८ ॥ व्युत्वावतरितो गर्भे राश्या देवो विशोधिते । देवाश्चतुर्णि कायाश्च
ज्ञात्वा स्यात्सनकंपनात् ॥ ४९ ॥ गर्भायातं सुतधीशं गर्भं कल्याण मा दिणं । चकुरानन्दतः सर्वे सोत्सहाः संययुः पदं ॥ ५० ॥ पट्ट-
पद्माशक्तुमार्यश्च सेवन्ते शक्र शासनात् । जिनांवां जगदानन्द शयिनीं वै यथा थयं ॥ ५१ ॥ काचित् शृंगारयामास पट्टकृत्तादि वस्तु-
के समाचार सुनते ही उसे यह जान पड़ने लगा मानो साक्षात् पुत्र ही प्राप्त होगया है । वह बड़े
आदरसे अपने मंदिरमें आ गई एवं अत्यंत आनन्दका अनुभव करने लगी ॥ ३७—४७ ॥

कदाचित् जेठ कृष्णा दशमीके दिन जब कि उत्तर भाद्रपद नामका शुभ नक्षत्र विद्यमान था
वह सहस्रारेंद्र नामका देव अपने निवासस्थान स्वर्गसे चला एवं देवांगनाओं द्वारा भलेप्रकार
संशोधित माता जयश्यामाके गर्भमें आकर अवतीर्ण हो गया । वह सहस्रारेंद्र भगवान विमलनाथ-
का जीव था इसलिये उसके गर्भमें आते ही चारों प्रकारके देवोंके आसन कंपायमान हो गये
जिससे उन्हें भालूम होगया कि भगवान विमलनाथ माता जयश्यामाके गर्भमें आकर अवतीर्ण
हो गये हैं इसलिये वे आनंद उनके गर्भकल्याणकका उत्सव मनानेके लिये चल दिये एवं आनंद
पूर्वक उत्सव मनाकर अपने अपने स्थान लौट गये ॥ ४८—५० ॥ सौधर्म इन्द्राक्षी आज्ञासे
छप्पन कुमारियां तीनों लोकके जीवोंको आनन्द प्रदान करनेवाली माता जयश्यामाकी यथावसर भक्ति-
पूर्वक सेवा करने लगीं ॥ ५१ ॥ उनमें कोई कोई कुमारी नाना प्रकारके बस्त्र आदि पदार्थोंसे माता
का शृंगार करने लगीं । कोई कोई कुमारी स्नान विलेपन आदिसे माताके शरीरको सुगंधित करने
लगीं । कोई कोई प्रतिसमय माताके पैर दवाने लगीं । कोई माताको हिड़ोलेमें बैठाकर झुलाने
लगीं । कोई नाना प्रकारके व्यंजनोंसे व्यास एवं रूप और लावण्यका बढ़ाने वाला महा स्वादिष्ट

भिः काचित् स्नानादिनाः गात्रे मातुः सौगंधिमातनोत् ॥ ५२ ॥ पादसंवादनं काचित्करोतिस्म निरंतरं । काचिद्वै दोलिकारुद्रां रमया-
मास मातरं ॥ ५३ ॥ काचित्सद्गोवर्नं कृत्वा व्यंजनोक्तं संयुतं । भोजयामास सभक्त्या रूपलावण्यवर्धकं ॥ ५४ ॥ काचिन्तानारसोपेतं
नर्तनं भार्भितं । करोतिस्म जिनांवाया सुखसंतान सिद्धये ॥ ५५ ॥ काचिद्वै दर्पणं शुभ्रं नरदहनं च निर्मलं । दर्शयामास चानुर्यात्प्रश्न
मालां पप्रच्छका ॥ ५६ ॥ हे मातः ! किमुतदेवं संसारे दुःखदे नृणां । गुरुणां वचनं रम्ये : उपादेयं सुभक्तिः ॥ ५७ ॥ के गुरवो व
भोजन तैयार कर माताको जिमाती थीं । कोई कोई माता जयश्यामाके सुखपूर्वक संतान हो इस
अभिलाषासे उसके आगे नाना प्रकारके रसोंसे व्याप्त मनोहर गानेके साथ आनन्द नाच नाचने
लगीं । किसी किसीने माताके सामने मनुष्यके शरीरके समान उंचा निर्मल और शुभदर्पण रक्खा
और उसे दिखाने लगीं एवं कोई कोई मातासे इसप्रकार प्रश्न करने लगीं—

अच्छा माता ! बतावो दुःखोंसे भरे हुए इस संसारमें मनुष्योंको ग्रहण करने योग्य पदार्थ
क्या है ? माता उत्तर देती निर्ग्रन्थ गुरुओंका वचन ही भक्तिपूर्वक संसारमें ग्रहण करने योग्य
है । प्रश्न—जिनका वचन ग्रहण करने योग्य होता है वे गुरु संसारमें कौन हैं ? उत्तर—जो तत्त्वों
का स्वरूप भलेप्रकार जाननेवाले हैं और समस्त प्राणियोंको हित सुझाने वाले हैं । प्रश्न—माता
सबसे जल्दी क्या काम संसारमें करना चाहिये । उत्तर—संसार बड़ा दुःख दायी है जहांतक बने
वहांतक सबसे पहिले इसका छेदन करना चाहिये । प्रश्न—संसारमें मोक्षका कारण क्या पदार्थ है ?
उत्तर—सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान अर्थात् विना सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र्य
के मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकती । प्रश्न—माता ! संसारमें विद्वानोंके लिये पथ्य—हितकारी, चीज
क्या है ? उत्तर—स्वर्ग और मोक्षको प्रदान करने वाला धर्म । प्रश्न—संसारमें पवित्रपुरुष कौन
हैं ? उत्तर—जिसका मन शुद्ध है । प्रश्न—पंडित कौन है ? उत्तर—जो हित और अहितका विवेक
रखता है । प्रश्न—विष किसको कहना चाहिये ? उत्तर—निर्ग्रन्थ गुरुओंका सत्कार न करना उन्हें
घृणाकी दृष्टिसे देखना ही हला हल विष है क्योंकि वैसा करनेसे आत्मस्वरूपका तीव्ररूपसे घात

तत्त्वज्ञाः सर्वजंतुहितामताः । किं कर्तव्यं जयान्मातः संसृतेऽदं ध्रुवं ॥ ५८ ॥ मोक्षभूषणबीजं किं सम्यग्ज्ञानं च दर्शनं । किं पथं विदुषा मत्र धर्मत्वं स्वर्गमोक्षदं ॥ ५९ ॥ कः शुचिर्मनसा शुद्धः पंडितः को विवेकयान् । किं विषं गुर्वसत्कारः किं सारं सुकुलं मतं ॥ ६० ॥ मदिरैष किमस्त्यत्र स्नेहः के शत्रवोऽशुभाः । विषया दुर्जया लोके प्राणिनां घातिनो भृशं ॥ ६१ ॥ किं निद्रं याचनं लोके का मता विषवल्लरी । तृष्णा कस्माद्भयं मातृमृत्युतः को विलोचनः ॥ ६२ ॥ रागी किं गहनं मातः ! स्त्रीचरित्रं सुदुस्तरं । कः शूरो ललना-

होता है । प्रश्न—संसारमें सार पदार्थ क्या है ? उत्तर—उत्तम कुलका पाना । प्रश्न—संसारमें मदिरा किसे कहनी चाहिये ? उत्तर—स्त्री पुत्र आदि कुटुम्बके साथ मोह रखना ही मदिरा है । प्रश्न—संसारमें बैरी कौन है ? उत्तर—अशुभ कर्म । प्रश्न—दुर्जय पदार्थ अर्थात् जिसका जोतना कठिन है ऐसा पदार्थ संसारमें कौन है ? उत्तर—इन्द्रियोंके विषय क्योंकि ये प्राणियोंके घात करनेवाले हैं इनके फंदमें पड़कर प्राणी अपना हित नहीं पहिचान सकता ॥ ५१--६० ॥

प्रश्न—संसारमें निंदित चीज क्या है ? उत्तर—किसी चीजका मांगना—मांगनेके बराबर कोई भी निंदनीय चीज नहीं । प्रश्न—संसारमें विषकी बेल क्या है ? उत्तर—तृष्णा । प्रश्न—संसारमें डर किसका है ? उत्तर—मृत्युका । सारा संसार मृत्युसे घबड़ाता है । प्रश्न—संसारमें विलोचन—नेत्र रहित कौन है ? उत्तर—जो पुरुष रागी है । प्रश्न—जिसका जल्दी पता नहीं पाया जा सकता ऐसा संसारमें गहन पदार्थ क्या है ? उत्तर—स्त्रियोंका चरित्र अत्यन्त गहन है—विद्वानसे विद्वान भी उसका जल्दी पता नहीं पा सकता । प्रश्न—संसारमें सबसे शूरवीर कौन है ? उत्तर—जो पुरुष स्त्रियोंका त्यागी है वही शूरवीर है तथा जो क्रोधका त्यागी है और दानियोंमें प्रधान है वह भी शूरवीर है । प्रश्न—संसारमें सबसे गौरवकी बात क्या है ? उत्तर—आनन्द प्रदान करनेवाला आयाश्वा अर्थात् किसीसे कुछ न मांगना यही अत्यन्त आनन्दकी बात है । प्रश्न—संसारमें दरिद्रता क्या कहलाती है । उत्तर—महा लोभपना जो पुरुष अत्यन्त लोभी है वही नितान्त दरिद्र

त्यागी क्रोधजिहाननायकः ॥६३॥ गुरुत्वं किं मते नृणां मयाञ्चा परमोत्सवा । किं दासिद्वयं महालोभो जीवितं किं यशस्विता ॥ ६४ ॥
 को जागति पुरुष्यानी का निद्रा जडता मता । नलिनीस्थजलैस्तुल्यं किं चलं यौवनं धनं ॥ ६५ ॥ शशलक्ष्मकराभाः के निदारिकास्तु स-
 ज्जनाः । किं शुभ्रं ध्वन्यते मातः पारवश्यं सुखातिगं ॥ ६६ ॥ किं सुखं विद्यते चात्र सर्वसंगविषर्जितं । कोऽलंकारः शुभं शीलं मंडनं

हैं । प्रश्न—संसारमें जीवन क्या है ? उत्तर—यशस्वीपना-मनुष्य अपने आयुके अन्तमें नियमसे मर जाता है परन्तु उसका यश सदा काल ज्योंका त्यों बना रहता है । प्रश्न—संसारमें जागनेवाला कौन कहा जाता है ? उत्तर जो महानुभाव परमध्यानी और संयमी हैं वही संसारमें जागनेवाला है । प्रश्न—संसारमें निद्रा क्या चीज है ? उत्तर—मूर्खता—मूर्ख सदा सोता ही रहता है । प्रश्न—कमल के पत्र पर रखी हुई जलकी बंदके समान चंचल पदार्थ संसारमें क्या है ? उत्तर—यौवन और धन प्रश्न—शशाके समान लक्षणोंके धारक और उसके समान छिपे हुए हाथोंसे युक्त संसारमें कौन है ? उत्तर—निन्दा रहित सज्जन अर्थात् सज्जन पुरुष किसीकी भी निन्दा नहीं करते और चुप रूपसे दूसरेका उपकार करते हैं—हल्लाकर किसीका उपकार नहीं करते । प्रश्न—माता ! संसारमें साक्षात् नरक क्या माना जाता है ? उत्तर—परतन्त्रता जो कि स्वतंत्रता रूप सुखसे सर्वथा रहित है । प्रश्न—संसारमें सुख क्या चीज है ? उत्तर—समस्त प्रकारके परिग्रहोंसे रहित रहना ही सुख है । प्रश्न—संसारमें भूषण क्या है ? उत्तर—शुभ शील और सत्यता ही निश्चल और अद्वितीय भूषण है । कड़ा कुण्डल आदि भूषण भूषण नहीं माना जा सकता । प्रश्न—संसारमें मित्र कौन है ? उत्तर—जो हितकारी शासन करनेवाला है । प्रश्न—कानोंसे रहितपना क्या है ? उत्तर—शास्त्र के सुननेका अभाव—अर्थात् जो पुरुष आत्म हितकारी शास्त्र नहीं सुनता वह कानोंके रहते भी बधिर है । प्रश्न—संसारमें मरण क्या है ? उत्तर—नाना प्रकारसे चित्तको संताप देनेवाली मूर्खता ही संसारमें मरण है । प्रश्न—संसारमें ध्यान करने योग्य पदार्थ क्या है ? उत्तर—समस्त जीवोंको आनन्द प्रदान करने वाले

सत्यता ध्रुवं ॥ ६७ ॥ को मित्रं यो हितं शास्ति कोऽकणो मरणं च किं । सारंगश्रवणाभावो मूर्खता जन्मतापिनी ॥ ६८ ॥ को ध्येयो जगदानंदी चिद्रूपो वृषभः प्रभुः । किं प्रधानं दयादानं यथाशक्तिपस्विता ॥ ६९ ॥ एवमादिमहाप्रश्नमालां श्रुत्वा पुनर्जगौ । निगूढार्थं यद्वत् त्वं सो जिज्ञासुः । जिज्ञासुर्वाचः ॥ ७० ॥ कायस्य त्वं फलं मातः किं कायस्याहतां खलु । मामकीनं लसद्भयानं केवलज्ञानसूद्गमं ॥ ७१ ॥ (क्रियागुप्तमदः प्रश्नोत्तरजातिश्च) सर्वारातिसदोद्वेगारस्तहनैकसमप्रभः । उग्रो भाति दुराचारा च तिमिरैकतमोरिभः ॥ ७२ ॥

एवं चैतन्य स्वरूप भगवान् ऋषभदेव । प्रश्न—संसारमें मुख्य चीज क्या है ? उत्तर— दया दान और यथा शक्ति तपस्विता ॥ ६९-६८ ॥ इत्यादि अनेक महागूढ़ प्रश्नोंत्तर हो चुकते थे तब कोई कोई देवांगना मातासे यह कहती थीं कि हे माता ! तुम भगवान् जिनेन्द्रकी माता हो और इस समय भगवान् जिनेन्द्र आपके गर्भमें विद्यमान हैं इसलिये आप हमारी पहेलीका अर्थ बतलाइये । एकने कहा :—

हे माता ! शरीरका फल क्या है ? और शरीरकी अज्ञानता बतलाने वाला कौन है ? आप कहें । उत्तर— केवल ज्ञानको उत्पन्न करानेवाला मेरा सुंदर ध्यान । अर्थात् उत्तम ध्यान करना ही शरीर धारण करने का फल है और उसीसे शरीरकी जड़ता जानी जाती है । (इस श्लोकमें 'कथम्' कहें यह क्रिया गुप्त है और यह प्रश्न और उत्तर गर्भित है) हे माता इस दुस्तर संसारसे रक्षा करने वाला कौन है ? उत्तर—समस्त वैरियोंका संनाके सहनेमें जो चक्रवर्तीके समान शोभायमान हैं । बलवान् हैं । निर्दित आचार रूपी अंधकारके नाश करनेके लिये जो सूर्यके समान हैं (यह चौकोण बंध श्लोक है) जो सम चक्रवर्ती और असम-दरिद्रो दोनोंमें समान भावके रखनेवाले हैं चन्द्रमाके समान मुख वाले हैं । जिनका ज्ञान चैतन्य रूपकी प्रशंसा करनेवाला है एवं न जो अनादरको मानने वाले हैं और न आदरकी पर्या करने वाले हैं वे ही इस संसारसे प्राणियोंका उद्धार कर सकते हैं अन्य नहीं । यह एक पाद कस यमकालङ्कार है । अर्थात् तीन पादोंमें यमक

(चतुरस्रबंधोऽयं श्लोकः) समासमसमः सौम्यसोमास्योऽसाम्यशंसिमः । अमानसः सुमानसः कोऽवति दुस्तराद्वात् ॥ ७३ ॥
 (एकपादोनयमकालकारः) जिगर्भप्रभावेन सर्वप्रश्नोत्तरं ददौ । सुज्ञानमुनियन्माता देवीभिर्वादिता सती ॥ ७४ ॥ अपत्नीरूपसर्वापि
 पवमाधिकवेगवत् । लयि शिवकरं किं भो अलपि शुभ्रं नृणां ॥ ७५ ॥ (अंतर्लपिका) गर्भभारवलीभङ्गो न जातो मातुरेव हि । गूढ
 गर्भस्थतो बाधा नाजायत कदाचन ॥ ७६ ॥ सुखशय्यासनं पानं रूपं गतिमती ततः । सुखनिद्राऽभवद्राप्रदः पुण्यगर्भप्रसादतः ॥

हैं रक्त पादमें यमक नहीं ॥ ६६-७२ ॥ माता जयश्यामाके गर्भमें भगवान् जिनेन्द्र थे इसलिये उनके प्रभावसे देवियोंने जो भी प्रश्न किये थे माताने उत्तम ज्ञानके धारक मुनिके समान समस्त प्रश्नोंका खुलासा रूपसे उत्तर दिया था ॥ ७३ ॥

गर्भ जैसा जैसा बढ़ता जाता है स्त्रियोंका उदर भी बढ़ता चला जाता है और उदर पर जो त्रिवली रहती है वह भी नष्ट हो जाती है परन्तु माता जयश्यामाका गर्भ यद्यपि दिनों दिन बढ़ता जाता था तथापि उनके उदरको त्रिवली नष्ट नहीं हुई थी । उदर वैसाका वैसा ही विद्यमान था तथा माता जयश्यामाका गर्भ गुप्त था किसीको जान नहीं पड़ता था इसलिये गर्भके समय जिस प्रकार अन्य स्त्रियोंको अनेक प्रकार की बाधाएँ होती हैं उस प्रकार माता जयश्यामाको किसी समय कैसी भी बाधा न थी ॥ ७४-७५ ॥ स्वयं भगवान् जिनेन्द्रके अवतरणके कारण माता जयश्यामा का गर्भ अत्यंत पवित्र था इसलिये उस पवित्र गर्भके प्रसादसे माता जयश्यामाको सोनेमें सुख मिलता था । रुचि पूर्वक वह भोजन और जल ग्रहण करती थीं उसकी मनोहर चाल थी । बुद्धि सदा निर्मल रहा करती थी एवं वह सुखनींद सोती थीं ॥ ७६ ॥ क्रमसे जब गर्भके मांस पूरे हो गये उस समय माता जयश्यामाने माघ सुदि चौथके दिन जब कि उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र था सुख पूर्वक भगवान् जिनेन्द्रको जना । बालक रूप भगवान् जिनेन्द्र तेजके पुंज स्वरूप एवं आकाशमें वे भगवान् सूर्य थे । मति ज्ञान श्रुत ज्ञान और अवधिज्ञान रूप तीन ज्ञानके धारक थे । तीनों

७७ ॥ क्रमेण पूर्णमासांतिऽजीजनन्नन्दनं सुखं । तेजः पुंजं नभोरत्नं कुलाकाश इवापरं ॥ ७८ ॥ माघमासे सिते पक्षे चतुर्थ्यां गर्भभे-
जिमं । त्रिबोधं त्रिजगन्तार्थं जयश्यामा सुलक्षणं ॥ ७९ ॥ (युग्मे) स्वर्गे घंटारवो जातः सिंहनादश्च ज्योतिषि । व्यन्तरेणारवो भेर्या
शंखशब्दो हि भावने ॥ ८० ॥ लक्षणेर्लक्षितं जन्म विमलस्य सुरेश्वरैः । यदा तदा सुराः सर्वेऽभिषेकार्थं समुत्सुकाः ॥ ८१ ॥ शक्रा
क्षया धनाधीशो गजे चैरावताभिश्च लक्षैकं योजनप्राग्यं शतास्यं निर्ममे मुदा ॥ ८२ ॥ प्रत्यास्यं रचना अष्टौ प्रतिदंतं सरोवरं । सरो-
वरं प्रति प्रोक्ता नलिन्यः पंचविंशतिः ॥ ८३ ॥ प्रत्येकनलिनोवाढं पंकजद्विशती मता । पंचविंशतिसंमिथ्या तत्प्रत्यष्टशतं दलं ॥ ८४ ॥

लोकके स्वामी थे और सुंदर लक्षणोंसे शोभायमान थे ॥ ७७॥७८ ॥ जिस समय भगवान् जिनेंद्र
उत्पन्न हुए उस समय स्वर्गमें घंटानाद होने लगा । ज्योतिषियोंके घरोंमें सिंहनाद होने लगा ।
व्यन्तरीयोंके घरोंमें भेरी बजने लगी और भवनवासियोंके घरोंमें शंखनाद होने लगा ॥ ७९ ॥ जिस
समय घंटानाद आदि चिह्नोंसे देवोंके दंडोंको भगवान् विमलनाथके जन्मका पता लगा उन्हें बड़ा
आनन्द हुआ एवं उनके सब उनके लक्षिकोंके लिये उत्सुक होगये ॥ ८० ॥ उस समय कुबेरने
अपने स्वामी इन्द्रकी आज्ञासे ऐरावत नामके हाथीका निर्माण किया जो हाथी एक लाख योजन
का चौड़ा और सौ मुखोंसे शोभायमान रहता है ॥ ८१ ॥ हाथीके प्रत्येक मुखसे आठ आठ दांत
रचे गये प्रत्येक दांत पर एक एक सरोवर रचा गया । हर एक सरोवरमें पच्चीस पच्चीस कमलिनी
(कमलोंकी बेलें) प्रत्येक कमलिनीमें दो सौ पच्चीस पच्चीस कमल और प्रत्येक कमलके सौ सौ
दल (पत्ते) रचे गये एवं प्रत्येक दलपर एक एक देवांगना सानंद नृत्य करती चली जाती थीं ऐसी
रचना की गई । तथा ऐरावत हाथीके कुक्षिभागमें तेतीस सभाओंकी रचना की गई । जो कि
महा मनोहर थी और हर एकमें तेतीस तेतीस करोड़ देव निवास करते थे । इस प्रकार अद्भुत
रचनाके धारक ऐरावत हाथीपर प्रथम स्वर्ग सौधर्म इन्द्र बड़े समारोहसे सवार हो लिया ॥ ८२॥८४॥
वह धर्मात्मा सौधर्म स्वर्गका इन्द्र अपनी प्यारी इंद्राणी और देवोंके साथ भक्ति भावसे स्वर्गसे कं-

दलं प्रत्येकरंभा च ननृत्यति लयैर्मुदा । गजकुक्षिं प्रातिप्रोकास्त्रयस्त्रिंशत्तमाः शुभाः ॥ ८५ ॥ सभां प्रति समाख्याता स्तावंतोऽमर-
कोट्यः । इत्यादिरचनोपेतमारुहो गजं सुरेन्द्र ॥ ८६ ॥ सौधमैन्द्रः शचीयुक्तो देव आतपुरस्कृतः । निर्ययौ स्वर्गतो भावाद्भावो हि सज्जन-
न प्रियः ॥ ८७ ॥ अंतरिक्षे व्यवस्थाप्य सिधुरं तारकप्रभं । अग्नवीरुभामिनीमिन्द्रश्चातय त्वं गृहाज्जिनं ॥ ८८ ॥ अरिष्टांतर मागत्य तदा
श्वेशसुन्दरी । शंखरीममुचद्राक्षाः, नीत्या कालं करेऽनमत् ॥ ८९ ॥ इन्द्रइस्ते शचीघालं पृत्वा दत्तवती यदा । सूर्यं नु तेजसां पुंजं
पिलाकी ओर चल दिया । ठीक ही हैं जो सज्जन हैं-आत्माका वास्तविक स्वरूप समझते हैं उन्हें
अपने उत्तम परिणाम ही प्यारे हैं वे धार्मिक कार्यको दिखावटी रूपसे नहीं करना चाहते ॥ ८५ ॥
जारा गणकी कांतिके समान सफेद उस घेरावत हाथीको कंपिला नगरीके ऊपरके आकाशमें ठहरा
दिया और भगवान् जिनेन्द्रको राजमहलसे लानेके लिये अपनी प्यारी इन्द्राणीको आज्ञा दी ॥ ८६ ॥
धर्मात्मा उस इन्द्राणीने बड़े आनंदसे भगवान् जिनेन्द्रके गर्भ गृहमें प्रवेश किया । माया मया
निद्रासे माता जयश्यामाको निद्रित कर दिया । बालक भगवान् जिनेन्द्रको उठाकर अपने हाथमें
ले लिया । भक्ति पूर्वक नमस्कार किया एवं अपने प्राणनाथ इन्द्रके हाथमें लाकर समर्पण कर दिया
जिस समय इन्द्राणीने भगवान् जिनेन्द्रको इन्द्रके हाथमें समर्पण किया उनकी सर्वोच्च और अद्वि-
तीय कांति निहार कर वह विचारने लगा कि :—

यह साक्षात् सूर्यही मेरे हाथपर आकर रख गया है किंवा अनेक तेजोंका यह एक अद्वितीय
पुंज है । बड़े आनंदसे उसने उसी समय भगवान् जिनेन्द्रको भक्ति पूर्वक नमस्कार किया एवं
जिनको असंख्याते देव बड़े प्रेमसे सेवा करने वाले थे ऐसे उन बालक भगवान् जिनेन्द्रको गोदी
में विराजमान कर वह बड़े समारोहके साथ मेरु पर्वतकी ओर चल दिया ।

मेरुपर्वत पर सौमनस आदि चार वनोंमेंसे एक पांडुक नामका वन है जो कि नाना प्रकारकी
चित्र विचित्र शोभाओंसे व्याप्त है । उसी पांडुक वनके अन्दर एक पाण्डुक नामकी शिला है जो

चित्तयित्वा ननाम सः ॥ ६० ॥ नीत्वा जिमं गतो मेरावसंख्यसुरसेवितं । पाण्डुकाख्यं वनं तत्र नानाशोभाभराचितं ॥ ६१ ॥ पाण्डुकाख्या
शिला तत्र भाति मुक्तिरिवापरा । अर्धचंद्राकृतीरम्या दीर्घा सा शतयोजनैः ॥ ६२ ॥ पंचाशद्योजनैर्द्वैर्विस्तराच्च तथाष्टभिः । स्यूलयो
जनकैस्तत्र सिंहासनत्रयं व्यभात ॥ ६३ ॥ संस्थाप्य प्राङ्मुखं देवं सौधमेन्द्रःस्थितस्ततः । क्षीरवार्धिजलं नेतुं देवान् प्रेषयतिस्म सः ॥
६४ ॥ अष्ट योजनं गंभीरान् सहस्रप्रमितान् घटान् । अष्टाधिकान् महारत्नविन्यासान् कनकात्मकान् ॥ ६५ ॥ संयोज्य गगने देवा मुहु

कि दूसरी मोक्ष सरीखी शोभायमान जान पड़ती हैं । आधे चन्द्रमाके आकारको धारण करनेवाली
है । अत्यंत मनोहर है । सौ योजन प्रमाण लंबी पचास योजन प्रमाण चौड़ी और आठ योजन
प्रमाण मोटी है और उसके ठीक मध्यभागमें महामनोहर तीन सिंहासन विराजमान हैं । सौधर्म
स्वर्गके इन्द्रने पूर्व दिशाकी ओर मुखकर भगवान् जिनेन्द्रको उस मनोहर सिंहासनपर विराजमान
कर दिया और क्षीर समुद्रसे जल लानेके लिये देवोंको आज्ञा दी ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ अपने स्वामीकी
आज्ञानुसार देवोंने कलश उठाये जो कि आठ योजन प्रमाण गहरे थे । संख्यामें एक हजार आठ
थे । नाना प्रकारके देदीप्पमान रत्नोंसे खचित थे और सुवर्णमयी थे ॥ ६३ ॥ हे भगवान् जिनेन्द्र !
आप चिरकाल जीओ इत्यादि जय जयकार करने वाले देव पंक्तिरूपसे आकाशमें खड़े हो
गये । एवं जिनेन्द्रकी भक्तिसे प्रेरित हो क्षीर समुद्रके जलसे भरे हुये घड़े आने लगे ॥ ६४ ॥ भग-
वान् जिनेन्द्रकी भक्तिसे हर्षायमान गुणरूप सौधर्मस्वर्गके इन्द्रने शीघ्र ही सायामयी हजार भुजाओं
की रचना कर ली और उन भुजाओंसे सुवर्णमयी कुम्भोंको ले लेकर बड़े आदरसे भगवान्
जिनेन्द्रका अभिषेक करने लगा ॥ ६५ ॥ जिससमय भगवान् जिनेन्द्रका अभिषेक होने लगा उस
समय तरंगोंसे शोभायमान जल मेरुके चारों ओर पड़ने लगा । जलकी वैसी दशा देख कर
देवोंको यह संदेह उत्पन्न होता था कि करोड़ों नदियां मेरु पर्वतसे निकल पड़ी हैं । नानाप्रकार
के देदीप्पमान रत्नोंसे व्याप्त मेरु पर्वतपर फैला हुआ वह हरा नीला आदि पांचों वर्णोंको धारण

जैयवाकुलाः । आजगमुः संघटास्तत्र जिनमक्तिप्रणोदिताः ॥ ६६ ॥ शक्रो वाहुसहस्रैकं चकार गुणगौरवः । धृत्वा कुम्भान् विभुं
 शक्रः स्नपयामास सार्वरं ॥ ६७ ॥ अभितो मेरुशैलेशं जलकल्लोलराजयः । अवातश्च देवानां सरितः कोटिवा किमु ॥ ६८ ॥ पंचवर्णं
 पर्यस्तत्र दृश्यते मेरुसत्तटे । कुशचित्पुटिता धारा लक्ष्मते रत्नदीप्तिभिः ॥ ६९ ॥ मथूरा युगपत्तत्र (चु) कूर्जुर्धनसमागमं । जलरावमिति
 ज्ञात्वा हंससारसमिश्रिताः ॥ ७० ॥ इतरेऽष्टधटेः कृत्वा भावयन्तिस्म भावनां । ततः शक्रधिया चक्रे प्रसाधनविधिं मुदा ॥ ७१ ॥
 लच्छिद्रौ श्रवणौ यस्य स्यातां वज्रशरीरतः । कर्णवेधोपचारं वेधकर्त्रेद्रस्तथापि च ॥ ७२ ॥ किरोट्कुण्डलैर्मैखला कटकांगदैः

करता था एवं कहीं कहींपर रत्नोंकी कांतिसे उसकी धारायें टूटी हुईं नजर पड़ती थीं ॥ ६७ ॥

भगवान् जिनेन्द्रके मस्तक पर कुम्भ ढारते समय जो जलका धधकार शब्द होता था उसे मोर
 हंस और स्याल नामके पक्षी मेघका शब्द मानकर एवं उस समयको वर्षा ऋतु समझकर अपने
 अपने मनोहर शब्दोंसे आकाशको व्याप्त करते थे ॥ ६८ ॥ एक हजार आठ कलसोंमें से हजार
 कलसोंसे तो स्वयं इन्द्र भगवान् जिनेन्द्रका अभिषेक करता था तथा शेष देवगण बाकी बचे आठ
 घड़ोंसे उस अभिषेक को करते और मनमें उनकी भावना भाते थे । जिस समय भगवान् जिने-
 न्द्रका अभिषेक समाप्त हो गया सौधर्म इन्द्रकी इन्द्राणीने उबटन आदि कर भगवान् जिनेन्द्रको
 सजाना प्रारम्भ कर दिया ॥ ६९ ॥ भगवान्के वज्रमयी शरीरमें पहिलेसे ही दोनों कान छिदे थे
 तथापि अन्य बालकों का कर्ण वेध [कानोंका छिदना] संस्कार होता है इस लिये इन्द्रने उपचारसे
 भगवान् जिनेन्द्र का बड़े ठाट चाटसे कर्णवेध उत्सव मनाया ॥ ७० ॥ महा मनोहर मुकुट कुण्डल
 ऊरधनी कड़े और बाजूबंध भगवान्को पहिनाये एवं स्वर्गीय होनेवाले नाना प्रकारके मनोज्ञ वस्त्र
 पहिनाकर भगवान् जिनेन्द्रको शोभायमान कर दिया ॥ ७१ ॥ इन्द्रने भगवान् जिनेन्द्र
 का विमलवाहन नाम रक्खा एवं उष्ट्रासन (ऊट जिस प्रकार बैठता है उस आसनसे बैठकर)
 भक्तिसे गद्गद हो भगवान् जिनेन्द्रकी इस प्रकार स्तुति करने लगा—

नानास्वर्गसमुद्भूतैः पट्टकूलेभ्यः ॥ १०३ ॥ नास्ना वज्री चकारैर्न जिने धिमलयाहनं । उष्ट्रासन समासीनः स्तुतिं कर्तुं समुत्सुकः ॥ १०४ ॥ त्वं देव जगतां नाथ स्त्वं ज्ञानी गुणसागरः । धर्ममूर्तिर्जितारिस्त्वं त्वं दाता शिवशर्मणः ॥ १०५ ॥ ज्योतीरूपः सदानंदी सनातन महानिधिः । अज्ञानध्वांतमिश्राभो मुक्तिस्त्रीवल्लभस्त्वकं ॥ १०६ ॥ योगिनामप्यचिंत्यस्त्व मव्ययो भय वर्जितः । एकानेकत्वमायन्नः स्याद्वादी सर्ववन्दितः ॥ १०७ ॥ त्रिशूनी गर्भमात्रस्थः सुरासुर नमस्कृतः । भव्यौषधिकलापस्त्व ध्यानी दानी दयामयः ॥ १०८ ॥ कियते

भगवन् ! आप तीनों लोकके स्वामी हैं । निर्मल ज्ञानके धारक हैं । उत्तमोत्तम गुणोंके समुद्र हैं । धर्मकी साक्षात् मूर्ति हैं । राग द्वेष आदि समस्त वैरियोंके जीतने वाले हैं मोक्ष रूपी सर्वोच्च कल्याणके दाता हैं परम कांतिके धारक हैं । सदाकाल आनन्दित रहने वाले हैं । सर्वदा रहनेवाली ज्ञान आदि महानिधिके स्वामी हैं । अज्ञान रूपी अंधकारके नाश करनेके लिये सूर्यके समान हैं । मोक्ष रूपी लोकोत्तर सुन्दरीके प्यारे हैं ॥ १०६ ॥ प्रभो ! आप इतने इतने अपरिमित और अगम्य गुणोंके भण्डार हैं कि निरन्तर आत्माके स्वरूपके चिंतन करने वाले योगी भी आपके स्वरूपका विचार नहीं कर सकते । आप विनाश रहित अविनाशी हैं । किसीका भी आपको भय नहीं इसलिये आप भय रहित हैं । आप एक स्वरूप भी हैं और अनेक स्वरूप भी हैं । अर्थात् आत्म स्वरूपकी अपेक्षा एक रहने पर भी अनेक गुणोंकी अपेक्षा आप अनेक स्वरूप हैं । स्याद्वाद विद्या (अनेकांतवाद) के आप पारगामी हैं । समस्त जगत आपको पूजता है । मतिज्ञान श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान तीनों ज्ञानोंके धारक हैं । जिस समय आप गर्भके अन्दर विराजते थे उस समय भी सुर असुर आपको नमस्कार करते थे । भव्योंके लिये आप संसाररूपी रोगके नाश करनेके लिये पवित्र औषध स्वरूप हैं । ध्यानी हैं । दानी हैं और दया स्वरूप हैं । प्रभो ! समस्त आकाश तो कागज बनाया जाय । जलसे व्याप्त जितने भर समुद्र हैं उन सबके जलको स्याही बनाया जाय । मेरु पर्वतको कलम बनाया जाय और उच्च विद्याके विधान देवोंके इंद्र

कागरं नाथ नमः सर्वेऽपि सागराः । मयीभूता जलाकीर्णा लेखिनी मेरुपर्वतः ॥ १०६ ॥ भारती कविदेवेन्द्रा लिखन्ति त्वद्गुणान् सदा ।
न पारयन्ति ते नूनं प्रांतपर्यंत तत्पराः ॥ ११० ॥ अभिष्टुत्यैव सानंदो देवेन्द्रो जयमुच्चरन् । गजारूढं जिनं कृत्वा पफाण पत्तनं प्रति ॥
१११ ॥ जयध्वानैः सुरैः सप्तप्रांगणं व्यापितं भृशं । गर्जद्गुं दुमिनाकाशे प्रोच्यते किं यशोऽर्हतः ॥ ११२ ॥ विष्टरेऽथ समारोप्य जिन-
तातं च मातरं । अभिषिष्य ददातिस्म चालं विमलयाहनं ॥ ११३ ॥ शकेण कुण्डलीभूताः कृता देवाप्सरोगणाः । सर्वतो ननृतन्त्येव लये

हर एक जगह बैठकर आपके गुणोंको लिखनेवाले बनाये जाय तो भी वे आपके गुणोंके लिखनेमें
समर्थ नहीं हो सकते वस इस प्रकार सौधर्म स्वर्गके इंद्रने भगवान् विमलनाथकी स्तुतिको एवं
जय जयकार शब्दके साथ उन्हे ऐरावत हाथीपर सवार का बड़े समारोहसे कंपिला नगरीको ओर
चल दिया ॥ १०७ - १११ ॥ कंपिला नगरीमें आकर राजा कृतवर्माका आंगन देवों के जय जयकार
शब्द और बजते हुए नगाड़ों के शब्दोंसे व्याप्त हो गया ठीक है त्रिलोकी भगवानकी प्रचण्ड कीर्तिके
विषयमें क्या कहा जा सकता है ॥ ११२ ॥ सौधर्म स्वर्गके इंद्रने आंगनके मध्य भागमें भगवानके
माता और पिताको एक मनोज्ञ सिंहासन पर विराजमान किया । सुगंधित जलसे उनका अभिषेक
किया और भगवान् विमलनाथको उन्हे सौंप दिया ॥ ११३ ॥ इंद्रने अनेक देवांगनाओंको कुण्ड-
लाकार खड़ा किया एवं वे विशेष भाव और लयोंके साथ अनेक प्रकारके नृत्य करने लगीं उस
समय भगवानके जन्मोत्सवके उपलक्षमें ताल और स्वरोंके साथ विशेष विशेष गाने होने लगे
आनन्द मयी बाजे बजने लगे । जिसमें अनेक प्रकारकी ढारें दीख पड़ती हैं । मिलना बिछुड़ना
रूप हाव भाव दीख पड़ते थे । अनेक प्रकारके नाटकोंके कार्य नजर पड़ते हैं । फिरना आदि दीख
नहीं पड़ता रत्न जड़ित बांसरियोंके रस भरे राग युक्त होते हैं एवं मनको प्यारे महा रागोंकी जहां
पर उत्पत्ति है ऐसे उस आनन्द नाटकको देवोंने किया ॥ ११४—११६ ॥ भगवान् विमलनाथके
माता पिताको देवोंने नाना प्रकारके भूषण और वस्त्रोंसे शोभायमान किया । आप पवित्र हैं बड़े

भावे विशेषतः ॥ ११४ ॥ जन्मोत्सव महागानैस्तालेरानकवादनैः । ढालैर्मिलनकैर्हावे नानानाटक जातिभिः ॥ ११५ ॥ अट्टपञ्चमणैर्भूयो-
रत्नचंशरसैः रसैः । अनुकूलैर्महारागैश्चकुरानन्दनाटकं ॥ ११६ ॥ ततौ भूषणसद्वर्णैर्भूषयित्वा प्रपूज्य च । धन्यौ पुण्याविति स्तुत्य
पितरौ देववर्चितौ ॥ ११७ ॥ वयो योऽयत्तु सुखंस्तत्र निषीदन्त्यमरसेविजः । गयार्थं युवाः स्थानं पुरुहूतोऽगमत्तदा ॥ ११८ ॥ अथ
राजा चकारोक्तवैजन्मजात महोत्सवं । पुरं शृंगारयामास पताका तोरणालिभिः ॥ ११९ ॥ ददौ राजा परं दानं हेमरत्न सुमिश्रितं ।
स्वीयं जन्म शुभं मन्ये मुत्प्रदो हि सुतोत्सवः ॥ १२० ॥ दुन्दुभीरारटीतिस्म धेनुः स्वानकराशयः । वंदिनोऽविरदायंत बभूवुः शंखसद्ववा
॥ १२१ ॥ भणउल्लरिकारावा रेजुः पटहराजयः । ननृतंतिस्म नर्तक्यो भूम्ना किं वर्ण्यते मया ॥ १२२ ॥ पथतेस्म सुखं चालो द्वितीया
बड़े देव आपकी पूजा करने वाले हैं इसलिये आप धन्य हैं इस प्रकार उनकी बड़े प्रेमसे स्तुतिकी
॥ ११७ ॥ इंद्रने भगवानकी ही उम्रके देवोंकी उनके साथ खेलनेके लिये योजना करदी । अनेक देवोंसे
वेष्टित वह अपने स्थान पर लौट गया एवं अन्य देव भी अपने अपने स्थानों पर चले गये ॥ ११८ ॥

इस प्रकार देवोंके द्वारा जिनेन्द्र भगवानके जन्मोत्सवके किये जानेके बाद राजा कृतवर्माने भी
उनका जन्ममहोत्सव मनाया । पताका और तोरणोंकी पक्तियोंसे उसने सारा नगर सजवा दिया
॥ ११९ ॥ बहुतसे स्वर्ण और रत्न दानमें दिये और भगवान जिनेन्द्रकी उत्पत्तिसे अपने
जन्मको धन्य समझा । ठीक ही है पुत्रकी उत्पत्ति विशेष हर्षको करने वाली होती है ॥ १२० ॥
उस समय भगवान जिनेन्द्रके जन्मोत्सवके उपलक्षमें दुन्दुभी बाजे बजने लगे । नगाड़ोंके शब्द
होने लगे । बंदीगण विरद बखानने लगे । शंखोंके मनोहर शब्द होने लगे । झालरी और पटह
जातिके वाजोंके मनोहर शब्द सुने जाने लगे एवं नाचनेवाली आनन्द नाच नाचने लगीं विशेष क्या
उस समयकी विभूतिका वर्णन करना शक्तिके बाहिर है ॥ १२१ । १२२ ॥

जिस प्रकार द्वितीया का चन्द्रमा दिनों दिन बढ़ता चला जाता है । उसी प्रकार बालक रूप
भगवान विमलनाथ दिनों दिन सुख पूर्वक बढ़ने लगे एवं महा मनोहर भांति भांतिके रूप धारण
कर देवगण उन्हें हंसाने खिलाने लगे ॥ १२३ ॥ भगवान वासुपूज्यका तीस सागर प्रमाण तीर्थकाल

सोमवत्तरां । समयतिस्म देवौघा नानावैर्मनोहरैः ॥ १२३ ॥ वासुपुत्रेशसंताने त्रिंशत्सागर संमिते । प्रांतपल्योपमे धर्मध्वंसे तद्गत
जीवितः ॥ १२४ ॥ तस्यायुः षष्टिलक्षणां वर्षाणां संवभूय च (६००००००) षष्टिचापतनूत्सेधस्तप्तजांबूनद प्रमः ॥ १२५ ॥ सर्पचक्रे
द्रियकाब्दकौमार विरतो महान् । शहराज्याभिषेकेऽभूत्प्रतापाकांतविष्टपः ॥ १२६ ॥ पद्मा सहचरी जाता सहोत्पन्ना सरस्वती ।
प्रतापधीरवीरत्वं तस्याभूत्पुण्यतोऽखिलं ॥ १२७ ॥ सत्यादयो गुणा यस्य चैधंतांभोधिरेगवत् । योगिनामपि संश्लक्ष्या कीर्तिकाष्टांत
गता ॥ १२८ ॥ ये नमंति सुखाः सर्वे नरेन्द्राः क्षेत्रास्तथा । धरेशा हरय स्तस्य ध्रुवं का वर्णना परा ॥ १२९ ॥ त्रिंशलक्षप्रमाणानां
समाना राज्यकालता । तस्याभूत् काश्यपीनाथैः पूज्यपादस्य सखियः ॥ १३० ॥ नानाभोगान् भुनक्तिस्म घट्कतुसंभवान् परान् ।

जब बीत चुका था एवं एक पल्योपम काल पर्यन्त धर्मका ध्वंस हो चुका था । उस समय भगवान्
विमलनाथका जन्म हुआ था । इन भगवान् विमलनाथकी आयु साठलाख वर्ष प्रमाण थी । साठ
धनुष प्रमाण शरीरकी उंचाई थी एवं उस शरीरकी प्रभा सोनेकी प्रभा जैसी थी ॥ १२४ । १२५ ॥
भगवान् विमलनाथके कुमार कालके १५००००० पन्द्रह लाख वर्ष जब बीत गये उस समय उनका
राज्याभिषेक हुआ एवं अपने अद्वितीय प्रतापसे उन्होंने समस्त जगतको वश कर डाला ॥ १२६ ॥
भगवान् विमलनाथकी पटरानीका नाम पद्मा था एवं वह साथ उत्पन्न होने वाली सरस्वती देवी
सरीखी जान पड़ती थी । भगवान् विमलनाथको तीव्र पुण्यके उदयसे प्रतापसे एवं धीरवीरता सभी
बातें प्राप्त थीं ॥ १२७ ॥ जिस प्रकार समुद्रकी तरंगें प्रति क्षण बढ़ती चलीं जाती हैं उसी प्रकार
भगवान् जिनेंद्रके अन्दर सप्त आदि गुण निरन्तर बढ़ते चले जाते थे । संसारकी समस्त वासनाओं
से सर्वथा बहिर्भूत बड़े बड़े योगी भी उनकी कीर्तिकी सराहना और प्रशंसा करते थे एवं समस्त
दिशाओंमें वह व्याप्त थी ॥ १२८ ॥ विशेष वर्यः जिस भगवान् विमलनाथको बड़े बड़े देव राजा
विद्याधर चक्रवर्ती और अर्ध चक्री भी मस्तक झुकाकर नमस्कार करते हैं उनके विषयमें जो भी वर्णन
किया जाय थोड़ा है ॥ १२९ । १३० ॥ अनेक बड़े बड़े राजा जिनके चरण कमलोंकी सानन्द पूजा

पाणां हावभावश्च सार्थकान् चम्बनादिभिः ॥१३१॥ भोगक्षीराब्धितिर्गन्तो गतं कालं न वेत्यमौ । भूजिन सौख्ये हि मर्त्यानां युगं
नेऽपि लवायनि ॥ १३२ ॥ हृदिकरि भरशालिप्राज्यराज्यं नृपेज्य - लयगन्धदरामाभोग मन्दोदयः । सकल सुख समुद्रं पश्यालिङ्गितं
न हृदयि सुलोकं लोकनाथो वुनोज ॥ १३३ ॥ कीर्तिरूपं कलामुनभामः—रनरवर्तिहिराप्रयत्नः । भोगभूतिरुदयैकपुत्रं यत्
सौलभं भवति किं वृषतो न ॥ १३४ ॥

इत्यार्षश्च विमलनाथ पुराणे भट्टारकश्रीरत्नभूषणाम्नायालंकारब्रह्मकृष्णदास विरचिते ब्रह्मभोगलदाससाहा-

य्यसापेक्षे श्रीविमलनाथोत्पत्तिशक्त विहिताभिषेकानन्दनाटकवर्णनोद्दिताम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

करते हैं और जो उत्तम ज्ञानके धारक हैं ऐसे भगवान् विमलनाथका राज्य काल तीस लाख वर्ष
प्रमाण था ॥ १३१ ॥ वे भगवान् विमलनाथ स्त्रियोंके हाव भाव और चम्बन आदिसे सार्थक छहो
ऋतुओंमें होनेवाले नाना प्रकारके भोगोंका आनन्द भोगते थे । भोग रूपी क्षीर समुद्रमें मग्न
वे भगवान् विमलनाथ अपनी आयुके गए हुए विशाल भी कालको नहीं जानते थे ठीक ही है जब
मनुष्य विशेष सुखमें मग्न होजाते हैं उस समय उन्हें विशाल भी युगांतकाल लव—छोटेसे काल
के टुकड़ेके समान जान पड़ता है ॥ १३२—१३३ ॥ जिस प्रकार सदा लक्ष्मीसे आलिङ्गित कृष्ण
स्वर्ग लोकका सुख भोगते रहते हैं उसी प्रकार जो अनेक हाथी और घोड़ोंसे शोभायमान हैं ।
राजाओंके अभीष्ट हैं । पुण्यसे प्राप्त उत्तमोत्तम स्त्रियोंके भोगोंको प्रदान करने वाला है एवं समस्त
सुखका समुद्र है । ऐसे उस उत्तम राज्यको भगवान् विमलनाथने आनन्द भोगा संसार
में धर्म एक उत्तम पदार्थ है क्योंकि उसीकी कृपासे यश विशेष लक्ष्मी पुत्र सुन्दर स्त्रियां चक्रवर्ती-
पना अर्ध चक्रीपना बलभद्र पदवी भोग भूमि का सुख और स्वर्गोंका सुख सुलभ रूपसे प्राप्त हो
पाता है । धर्मकी कृपासे कोई भी बात दुर्लभ नहीं ॥ १३४ ॥

इस प्रकार भट्टारक श्रीरत्नभूषणकी आम्नायमें ब्रह्म मंगलदासकी सहायता पूर्वक ब्रह्मकृष्णदास द्वारा विरचित विमलनाथ
पुराणमें भगवान् विमलनाथकी उत्पत्ति इंद्र द्वारा उनका जन्म कल्याण और आनन्द नाटकको वर्णन करने

वाला तीसरा सर्ग समाप्त ॥ ३ ॥

चौथा सर्ग ।

युगादिभवमादीश शर्मणे शिवदे शिवं । बंदेह कोटिराजामं सौम्यत्वाज्जगतां पतिं ॥ १ ॥ अथैकदा नरनाथीशो सैन्ययुक्तो वन गतः
हिमंते रममाणः सन् कौतुकं दृष्टवानिति ॥ २ ॥ हिमानीं च महाशुभ्रां चंद्रकुंदसमप्रभां । जलाशये दृष्टासौ चित्त सौख्याकर प्रदां ॥

जो भगवान् आदिनाथ युगको आदिमें होनेवाले हैं । मोक्ष कल्याणको प्रदान करनेवाले हैं । स्वयं कल्याण स्वरूप हैं । अत्यंत सौम्य होनेसे करोड़ों चंद्रमाको कांतिको धारण करने वाले हैं और समस्त जगतके स्वामी हैं उन भगवान् आदिनाथको मैं अपने कल्याणके निमित्त भक्ति-पूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ एक दिनकी बात है कि शरद ऋतुके अन्दर वे नरनाथ भगवान् विमलनाथ अपनी सेनासे वेष्टित हो एक विशाल वनमें प्रवेश कर गये और वहां अनेक प्रकारकी क्रीड़ाये करने लगे । सामने एक तालाबमें उन्हें हिमानी—बरफका समूह दोख पड़ा जो कि देखते ही अत्यंत कौतूहलका करने वाला था सफेद था चंद्रमा और कुन्दपुष्पकी प्रभाका धारक था और चित्तको अत्यंत आनंद प्रदान करने वाला था ॥ २ । ३ ॥ वे उसे बड़ी आनन्दमयी दृष्टिसे देख रहे थे कि वह देखते देखते पिघल गया बस उधर तो वह पिघला और इधर भगवान् विमलनाथ-के चित्तमें एकदम संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य हो गया वे अपने मनमें इसप्रकार वैराग्य भावना भाने लगे कि—

जिसप्रकार यह बरफका समूह देखते देखते पिघल कर नष्ट हो गया है उसी प्रकार संसारकी जितनी भी चीजें हैं अपना अपना काल पाकर सभी नष्ट होने वाली हैं यह जो मेरे साथ विशाल सेना है इससे मेरा कोई प्रयोजन नहीं । अनेक शुभलक्षणोंका धारक यह शरीर भी मेरा हितकारी

१ ॥ तदैव तां गतां भगं दृष्ट्वा राजा स्थमानसे । चिंतयामास वैराग्यं सर्वं कालेन नश्यति ॥ ४ ॥ किं चलेनामुता भूम्ना किं लक्ष्म्या
वपुषा पे च । किं कुटुम्ब सुतस्त्रीभिः कृत्यं मम हि संप्रति ॥ ५ ॥ विद्युदुन्मेषसंकाशं यौवनं च धनं वपुः । विद्यते क्षणिकं सर्वं हिमा-
नीयं न संशयः ॥ ६ ॥ पितृपापं भुनक्त्येव सुपुत्रोऽपि न जातु चित् । पुत्रकृतैस्तो भागी सवित्री जनकश्च न ॥ ७ ॥ स्वयं स्वं कर्म कृतं
राणी भुनक्ति श्वभूसागरे । संसारे दुःखं सौख्यस्य विभागी को न विद्यते ॥ ८ ॥ भागवत्यात्मकं चायुर्गतं मम निरर्थकं । चतुःपादिव
सद्धर्माद्विनाहो जीवितेन किं ॥ ९ ॥ धर्मार्थकाममोक्षाश्च नासाधिषत यैरलं । ख्यातिरव्याप्तिप्रशंगश्च नाध्वंसि ते ब्रूयाज्जनाः ॥ १० ॥

नहीं कुटुम्ब पुत्र स्त्री पदार्थ भी जो कि अत्यंत प्यारे माने जाते हैं उनसे भी मेरा कोई प्रयोजन
नहीं सर सकता क्योंकि काल पाकर ये सब नष्ट होने वाले हैं सदा काल मेरे साथ रहने वाला
कोई नहीं ॥ ४ । ५ ॥ ये यौवन धन और शरीर विजलीकी चमकके समान चञ्चल हैं एवं जिस
प्रकार यह कठिन भी बरफका समूह देखते देखते पिघलकर नष्ट हो गया है उसीप्रकार ये भी
जगन्भरमें विनश जाने वाले हैं, यह बिलकुल निश्चित बात है ॥ ६ ॥ पिता संसारके अन्दर जो पाप
करता है पुत्र उसका फल नहीं भोगता तथा पुत्र जो पाप उपाजन करता है माता और पिता भी
उसके फलका भोग नहीं करते किन्तु दुःखके सागर रूप इस संसारमें अपने द्वारा किये गये कर्मका
फल आप ही भोगना पड़ता है । शुभ अशुभ कर्मसे जायमान दुःख और सुखका बदलनेवाला कोई
भी नहीं है ॥ ७ । ८ ॥ पशुकी आयु जिस प्रकार निरर्थक बीतती है उस प्रकार मेरी आयुके चार
भागोंमें तीन भाग तो निरर्थक चले गये रंचमात्र भी मैं धर्मका आराधन नहीं कर सका क्योंकि
धर्मके बिना जीना विफल है ॥ ९ ॥ संसारमें जिन महानुभावोंने धर्म अर्थ काम और मोक्षका
साधन नहीं किया और नाम एवं प्रसिद्धिकी अभिलाषा नहीं रोकी वे पुरुष अधम हैं उन्होंने अपने
जीवनका कुछ भी मूल्य नहीं समझा ॥ १० ॥ जिस मनुष्यका यह विचार है कि बृद्धावस्था आने
पर हम विषयोंको जीत लेंगे और उत्तम तपको तप लेंगे वह मनुष्य भले ही चाहे समर्थ हो

वृद्धत्वे विषयान् जेतुं विधातुं सत्तपो नरः । मेरोरारोहणे पंगुराद्यून इव यो विभुः ॥ ११ ॥ नरकस्य मर्तं द्वारं कामः क्रोधश्च लोभता ।
 इति त्रयं परित्यज्य शमिनो यांति चिन्मयं ॥ १२ ॥ गार्हस्थ्ये धर्ममिच्छन्ति रामामा ममता हताः । खपुष्पैस्ते दुराचारा वा बन्ध्यासुत
 रोष्णरः ॥ १३ ॥ अणोयस्यैव संगीऽपि रागे विह्वल मानसे । संभावनं शिवस्यैव प्राहुः खर विषाण वत् ॥ १४ ॥ तदा प्रादुर्बभूवास्य
 त्रेशिष्टं ज्ञानमंजसा । सारस्वतादयो देवा आगमन् प्रतियोधने ॥ १५ ॥ विंशत्यष्टशतान्येव सहस्राणां च सप्तकं । चतुर्लक्षप्रमा नूनं
 तथापि जिस प्रकार तुन्दित—बड़े पेटवाला मेरु पर्वत पर नहीं चढ़ सकता उसी प्रकार वह पुरुष
 भी वृद्धावस्थामें विषयोंपर विजय और उत्तम तपका आचरण नहीं कर सकता ॥ ११ ॥ काम क्रोध
 और लोभ ये तीनों नरकके द्वार माने जाते हैं—इन्हींको अपनानेसे नरकमें जाना पड़ता है इसलिये
 मुनिगण इन तीनोंका सर्वथा त्यागकर चिन्मय-मोक्षरूपी परम सुखका रसास्वादन करते
 हैं ॥ १२ ॥ जो महानुभाव स्त्री और लक्ष्मीकी ममतामें फँसकर गृहस्थ अवस्थामें भी धर्मकी
 अभिलाषा रखते हैं वे महानुभाव बन्ध्या स्त्रीके पुत्रके शिरपर आकाशके फूलोंसे बने मुकुटको देखना
 चाहते हैं इसलिये वे दुराचारी हैं—सम्यक् चारित्रके पालन करने वाले नहीं हो सकते सार यह है कि
 आकाशके पुष्पोंसे गुथे हुए मुकुटसे युक्त बाँभके पुत्रका होना जिस प्रकार असंभव है उसी प्रकार
 स्त्री धन आदिके मोहमें मूढ़ होकर धर्मका पालन करना भी असंभव है । स्त्री आदिके मोहमें ग्रस्त
 पुरुष कभी वास्तविक धर्म पालन नहीं कर सकता ॥ १३ ॥ यदि चित्तमें कणमात्र भी परिग्रहके
 प्रन्दर राग बना रहे तो जिस प्रकार गंधके सीगोंका होना संसारमें असम्भव है उसी प्रकार मोक्ष
 की प्राप्ति असंभव है—रागकी विद्यमानतामें कभी मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकती ॥ १४ ॥ इस प्रकार
 विचार करते करते भगवान् विमलनाथके संसार, शरीर आदिसे उदासीनता रूप विशिष्ट ज्ञान हो
 गया एवं उसी समय सारस्वत आदि लोकांतिक देव भगवान्के प्रतिबोधनेके लिये यहां आकर उप-
 स्थित होगये ॥ १५ ॥ ये देव चार लाख सात हजार आठसौ बीस ४०७८२० थे और ये सब एक भवा-
 उत्तारी बाल ब्रह्मचारी होते हैं ॥ १६ ॥ वे भगवान् विमलनाथके सामने खड़े होकर इस प्रकार कहने लगे—

तेऽमरा ब्रह्मचारिणः ॥ १६ ॥ (४०७८२०) एवमाहुर्जितं देवा दोषैर्मुक्तं गुणान्वितं । वैराग्यरससम्पूर्णं क्षतमायावियर्जितं ॥ १७ ॥
 सद्भिर्जुहोतं यच्च पालनोयं प्रयत्नतः । अन्यथैव मनुष्याणां हास्यता भवति ध्रुवं ॥ १८ ॥ शूरा विवेकिनः शक्ताः दातारो गुणिनो
 विदः । प्रारब्धं ये प्रकुर्वन्ति त एव भुवनोत्तमाः ॥ १९ ॥ जोधेनानेकशो भुक्तं रामाराज्यधनोद्धवं । सुखं तृप्यति नो जीवो भोगा-
 दीनां तथापि च ॥ २० ॥ भवद्दशोऽभवन् भूरिचक्रमाविक्रमाः क्रमात् । त एव निधनं याता निश्चलं किं हि गण्यते ॥ २१ ॥ इन्द्रिया-
 णि प्रणश्यन्ति पापमायाति पृष्ठतः । तत्कृतं तेन बन्धः स्यात् श्वभ्रभाजी ततो भवेत् ॥ २२ ॥ सांनिध्याज्जायते सिद्धिश्चन्दनानां भवा

भगवन् ! जो मार्ग दोषोंसे रहित है । अनेक गुणोंका भंडार है । वैराग्य रससे परिपूर्ण है ।
 छल छिद्र कपटसे रहित है और सर्वोत्तम कल्याणके अभिलाषी सज्जन जिसे अपनाते हैं उसी मार्गको
 इस समय आपने स्वीकार किया है इसलिये आपको वह अवश्य प्रयत्न पूर्वक पालन करना
 चाहिये । यदि आप उसे धारण कर छोड़ देंगे तो आप निश्चय समझिये सारा संसार आपकी
 हंसी करेगा ॥ १७ ॥ १८ ॥ जो महानुभाव किसी भी कार्यका आरम्भ कर उसे पूरा करते हैं वे ही
 मनुष्य संसारमें शूरवीर समझे जाते हैं तथा वे ही विवेकी, समर्थ, दाता, गुणवान और विद्वान माने
 जाते हैं एवं वे ही संसारके भूषण गिने जाते हैं ॥ १९ ॥ इस जीवने संसारमें रहकर स्त्री राज्य और
 धनसे जायमान सुख अनेक बार भोगा है तथापि भोग आदिसे इसकी तृप्ति नहीं होती ॥ २० ॥
 भगवन् ! आपके इस पवित्र वंशमें अतुल संपत्तिके स्वामी बड़े बड़े चक्रवर्त्ती और प्रतापी राजा
 होगये हैं और क्रम क्रमसे काल उन्हें अपना कवल बनाता चला गया है इसलिये संसारमें अवि-
 नाशी पदार्थ कोई जान नहीं पड़ता ॥ २१ ॥ इन विषय भोगोंमें लीन रहने पर इंद्रियां नष्ट होती
 हैं । पापका आस्त्रव होता है । पापके आस्त्रवसे बन्ध होता है एवं उस बन्धकी कृपासे नियमसे इस
 जीवको नरकमें जाना पड़ता है ॥ २२ ॥ प्रभो ! जिस प्रकार चंदन वृक्षके सम्बन्धसे आक धतूरे
 आदिके वृक्ष भी चन्दन स्वरूप होजाते हैं उसी प्रकार जब आप सरीखे महानुभावके संबन्धसे

हृशां परीणां भूहृदां चैतत्स्वस्मात्स्वस्थ कथं न सा ॥ २३ ॥ पद्मादि षणो देवं निशम्य नितरां हृदि । जपस्तृणमिव त्यक्तमात्रि
पत्यं तदाऽमुता ॥ २४ ॥ अभिषिच्य ततो लेखाः पुरस्तात्संस्थिता यदा । देवदत्तां समादह्य शिविकाममरावृतः ॥ २५ ॥ राजन्यैरुद्धृतः
सप्त पदानि परमादरात् । घण्टावतिप्रमैः शकैरुद्धृतो नृपसंयुतः ॥ २६ ॥ सहेतुकमलोद्यानैः स्थित्वा मणिशिलातले । तत्प्राज द्विविधं
लभं सहस्रनृपसेवितः ॥ २७ ॥ पर्यकासनमारुढो ध्यानस्तिमितलोचनः । नमः सिद्धमिति प्रोक्त्वा प्रवध्राज जगत्पशाः । शुक्ले माघे
चतुर्थ्यां च दिनति जन्मभे जिनः ॥ २८ ॥ दीक्षाभ्युद्यमानकुर्मस्त्रनाथाः सुरान्विताः । स्तुत्वा नत्वा जिनं भक्त्या जामुरानन्दतो
अन्य मनुष्योंको मोक्ष प्राप्त हो जाती हैं तब स्वयं आप तो उसे प्राप्त करेंगे ही मोक्ष लक्ष्मीको
हस्तगत करनेका पूरा अधिकार आपको है इसलिये अब आप शीघ्र दिगम्बर दीक्षा धारण कर
संसारका उद्धार कीजिये ॥ २३ ॥ बस लौकांतिक देवोंके इसप्रकार सार गर्भित वचन सुन
भगवान् विमलनाथने जीर्ण तृणके समान समस्त राज्यका परित्याग कर दिया ॥ २४ ॥ दीक्षा
कल्याणके उपलक्षमें देवोंने उनका अभिषेक किया । समस्त देव पालकी तयारकर भगवान्के
सामने खड़े होगये अनेक देवोंसे व्यास वे भगवान् शीघ्र ही पालकीमें सवार होगये । सात पैड़-
तक राजा लोग बड़े आदरसे उनकी पालकी ले चले । उसके बाद इंद्रोंने उनका पालकी लेली ।
छियानवे पैड़ प्रमाण इंद्रगण उसे जमीन पर ले चले, पीछे आकाश मार्गसे ले जाकर सहे-
तुक नामके विशाल उद्यानमें इंद्रोंने उस पालकीको ले जाकर रख दिया । उद्यानकी मणिमयी
शिलापर वे भगवान् जिनेंद्र विराजमान होगये । बाह्य अभ्यन्तर दोनों प्रकारके परिग्रहका उन्होंने
परित्याग कर दिया । हजार राजाओंके साथ दिगंबर दीक्षा धारण करली । पर्यंक आसन मांड
लिया । ध्यान मुद्रासे नेत्रोंको निश्चल कर लिया तथा समस्त जगतमें जिनकी कीर्ति व्याप्त है ऐसे
उन भगवान् विमलनाथने माघ सुदी चौथके दिन जब कि जन्म नक्षत्र विद्यमान था 'सिद्धोंको
नमस्कार हो' ऐसा कह कर दिगंबरी दीक्षा धारण कर ली ॥ —२८ ॥ अनेक देवोंसे व्यास इंद्रों

ॐ ॥ २६ ॥ षष्ठोपवासमादाव स्वात्मव्यागपरायणः । चतुर्थज्ञानसंयुक्तो वभूवापु हि तत्क्षणे ॥ २७ ॥ चर्वते नन्दनाभिष्यं पुरं
परमपावनं । तत्राश्व नृपतिर्धोमान् विजयाख्यो महर्षिकः ॥ २८ ॥ पारणार्थं द्वितीयेऽकिं समाट लङ्घहे जिनः । स्वर्णामस्तैजसां संघः
कल्पद्रुम इवापरः ॥ २९ ॥ दृष्ट्वा जिनं समुत्तस्थे परीत्य प्रणनाम सः । इति स्तौतिस्म सद्भावात्प्राञ्जलिः कर्मदानये ॥ ३० ॥
अद्याहं सुकृतीभूतो जातस्तत्र समागमात् । मादृशीं श्रुद्रलोकानां कुतो लोकेश्वरागमः ॥ ३१ ॥ जन्ममृत्युजराबहितापातुरितचक्षुषः ।

ने बड़े ठाट वाटसे भगवान् विमलनाथके दीक्षा कल्याणका उत्सव मनाया । भक्ति पूर्वक उनके
स्तुति की । नमस्कार किया एवं सबके सब बड़े आनन्दसे अपने अपने स्थान चले गये ॥ २६ ॥
दीक्षा ग्रहण करते समय भगवान् ने षष्ठोपवास-वेला धारण किया और वे अपनी आत्माके स्वरूपके
चिन्तनमें लीन होगये जिससे उनके उसी क्षणमें मनःपर्यय नामका चौथा ज्ञान प्रगट होगया ॥ ३० ॥

इसी पृथ्वीपर एक नन्दन नामका महा मनोज्ञ पुर विद्यमान है उस समय उसका पालन करने
वाला राजा विजय था जो कि अत्यन्त बुद्धिमान था और विपुल सम्पत्तिका स्वामी था ॥ ३१ ॥ वेला
उपवासके समाप्त हो जाने पर दूसरे दिन वे भगवान् विमलनाथ राजा विजयके घर पारणाके निमित्त
आये । भगवान् विमलनाथका शरीर सुवर्णमयी था और देहकी अद्वितीय प्रभासे व्याप्त था इस
लिये वे चलते फिरते अनुपम कल्पवृक्ष सरीखे जान पड़ते थे ॥ ३२ ॥ भगवान् जिनेंद्रको आहारके
लिये अपने घर आता देख राजा विजयको परमानन्द हुआ । भगवान् को देखते ही वह शीघ्र
खड़ा हो गया । तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार किया एवं हाथ जोड़कर भावोंकी पवित्रतासे अपने
कर्मोंके नाश करनेके लिए वह इस प्रकार स्तुति करने लगा—

भगवन् ! आपके शुभ आगमनसे आज मैं पवित्र होगया क्योंकि आप तीन लोकके नाथ हैं
इस प्रकारके महान् पुरुषका मुझ सरीखे क्षुद्र पुरुषके घरमें आना बड़ी कठिनताका कार्य है ॥ ३३-
३४ ॥ जन्म मरण और जरा रूपी तीनों प्रकारकी अग्नियोंके संतापसे संतप्त मेरे लिये हे भगवन् !

आगमअन्वर्तन मे ते सुधा वा च रसायन ॥ ३५ ॥ अद्य कामबुधायाता कल्याणः परमं पदं । वा काले वृष्टिराकाशस्य व्यपेताभ्राम्भम गृहे ॥ ३६ ॥ हृदोदलासि मे देव ! हृष्ट्वा त्वा वारिराशिना । एवं ग्लार्थं महाभव्यचकोराह्लाददायिनं ॥ ३७ ॥ स्तुत्यैति चरणौ क्षाल्य नवधा पुण्यमर्जयत् । सप्त सद्गुणितं दानमयच्छत्क्षैरमस्मकै ॥ ३८ ॥ नृपागारे तदा पंचाध्यायं जातमिति स्फुटं । बुन्दुमिरत्नसौगन्धिका ताम्भोवृष्टिसौत्सवाः ॥ ३९ ॥ पात्रदानात्परं पुण्यं नाभून्नास्ति भविष्यति । यतो देवागमस्तस्मात्किं दुराप्यं जगत्त्रये ॥ ४० ॥ अपि आपका आना शीतल चन्दन अमृत वा रसायन सरीखा हुआ है क्योंकि चंदन आदिके संसर्गसे जिस प्रकार ताप मिट जाता है उसी प्रकार आपके समागमसे मेरा भी जन्म आदिका ताप मिट जायगा ॥ ३५ ॥ प्रभो ! आपके आनेसे आज मैं यह समझता हूं कि मेरे घरमें कामधेनु आ गई वा कल्प वृक्ष आगया किंवा आज मुझे परम पदकी प्राप्ति होगई अथवा वर्षाका समय न रहने पर भी मेरे घरमें आकाशसे वर्षा हो निकली ॥ ३६ ॥ जिस प्रकार चन्द्रमाको देखकर समुद्र लह लहा उठता है उसी प्रकार हे देव ! आपको देखकर मेरा हृदयरूपी विशाल समुद्र मेरे आनन्दके उमड़ रहा है तथा चन्द्रमाको देखकर जिस प्रकार चकोर पक्षीको परम आनन्द होता है उसी प्रकार भगवन् ! आप भी महाभव्य रूपी चकोर पक्षियोंको आनन्द प्रदान करने वाले हैं ॥ ३७ ॥ बस इस प्रकार भगवान् विमलनाथकी स्तुतिकर राजा विजयने उनके चरणोंका प्रक्षाल किया । नवधा + भक्तिसे जायमान पुण्यका उपार्जन किया एवं दाताके सात * गुणोंसे शोभायमान क्षीरका आहार उन्हें दिया ॥ ३८ ॥ राजा विजयके घरमें भगवान्के आहारसे जायमान पुण्यसे

† प्रतिग्रह-तिष्ठ तिष्ठ तिष्ठ, ऐसे तीन बार कह कर खड़ा राजे । २ मुनिको उच्चस्थान देवे । ३ मुनिके चरणोंको प्रमाणीक प्रासुक जलसे धोवे । ४ मुनिकी पूजा करे । ५ मुनिको नमस्कार करे । ६ दाता अपना मन शुद्ध रखे । ७ दाता अपना ध्यान शुद्ध रखे । ८ दाता अपना शरीर शुद्ध रखे । ९ दाता मुनिराजको शुद्ध भोजन दे । यह नौ प्रकारकी नवधा भक्ति कही जाती है । * दाताके दान देनेमें धर्मका अद्धान हो । २ साधुके रत्नत्रय आदि गुणोंमें अनुराग और भक्ति हो । ३ दाता दयावान हो । ४ दाताको दानकी शुद्धता अशुद्धताका ज्ञान हो । ५ दाता इसलोक परलोक संबन्धी भोगोंकी अभिलाषासे रहित हो । ६ दाता क्षमावान हो । ७ दाता दानदेनेकी सामर्थ्य रखता हो ।

स्तोकं सुपात्रेभ्यो दत्तं मेघसमं भवेत् । म्यग्रोधतल्वीजं हि विस्तारं कुरुते लघु ॥ ४१ ॥ सुपात्रं प्राप्य वेगेन रसो याततत्र सांगतां
वर्जिताभ्यपदः प्रायः सुतेजाः स्वपदाधितः ॥ ४२ ॥ एवं चेद्धर्मनाशः स्यात् यथा कामीननाशतः । कीतस्कुतं सदा तज्जाप्यतो
दानं न वायते ॥ ४३ ॥ दयाहेतोः प्रशतव्यमंगितां वर्जितदिवषा । सुपात्रं प्राप्य भावेन विशेषात्सन्मतेरपि ॥ ४४ ॥
तमो लक्ष्मणो रस्या दत्तः पात्राय निश्चितः । व्यापोहति परं पापं भोगभूषां ददात्यलं ॥ ४५ ॥ नोत्था हारं समैक्ये
पदे श्रीं जिननायकः । गीर्वाणावलिसंसेव्य इव मेढरकम्पयोः ॥ ४६ ॥ सामायिकं समादाय संयमं शुद्धचेतसा । वर्षद्वयं चकारो-
दुन्दुभिका वजना रत्नोंका पङ्कना सुगंधित पवनका वहना सुगंधित जलका वरसना और पुष्पोंका
वरसना ये पांच प्रकारके आश्चर्य हुये ॥ ३६ ॥ पात्रदानके विषयमें ग्रन्थकार अपनी
सम्मति देते हैं कि—पात्रदानसे बढ़कर पुण्यका कार्य संसारमें न तो है और न होगा क्योंकि
पात्रदानकी कृपासे देव सरीखे भी खिंचे चले आते हैं फिर तीनों लोकमें दुर्लभ चीज रह ही क्या
जाती है ? ॥ ४० ॥ जिसप्रकार वटवृक्षके बहुत छोटे भी बीजसे विशाल वृक्ष उत्पन्न हो जाता है
उसीप्रकार सुपात्रकेलिये सरसोंके बराबर थोड़ा दिया हुआ भी दान मेरुके समान फलता है ॥
४१ ॥ उत्तम पात्रके मिलने पर जो उसे भक्तिपूर्वक आहार दिया जाता है वह सफल होता है तथा
दान देनेवाला अन्य मामूली स्थानोंको न प्राप्त होकर मोक्षपदको प्राप्त करता है और परमतेजस्वी
माना जाता है ॥ ४२ ॥ यदि दान देना ही बन्द कर दिया जाय तो गृहस्थ वा मुनि धर्मका ही
नाश हो जाय तथा धर्मके नष्ट हो जाने पर मोक्षपद भी नहीं प्राप्त हो सकता क्योंकि मोक्षपदकी
प्राप्तिमें धर्म ही कारण है इसलिये दानका कभी भी निषेध नहीं किया जा सकता ॥ ४३ ॥ जो पात्र
लूले लंगड़े अपाज हैं कांति रहित हैं उन्हें करुणा बुद्धिसे दान देना चाहिये और उत्तम आदि पात्र
मिल जाय तो उन्हें उत्तम बुद्धिसे भाव पूर्वक विशिष्ट दान देना चाहिये ॥ ४४ ॥ यह सर्वथा
सुनिश्चित बात है कि पात्रकेलिये भक्तिपूर्वक दिया हुआ एक रोटीका टुकड़ा भी लाख टुकड़ारूप
फलता है तथा वह दिया हुआ टुकड़ा बलवान भी पापको नष्ट करता है और अनेक प्रकारके उत्त

स्वर्गोऽरण्यातरेषु च ॥ ४७ ॥ निजदीक्षावने तस्य यातिकर्मक्षयात्परं । पद्मोपधासिनो माघे वृष्ट्यां पक्षे शिते भृशं ॥ ४८ ॥ भपराह
स्वर्दीक्षाया नक्षत्रे च शुभोदयात् । मूले जम्बुद्रुमस्यैव प्रादुरासीच्च केवलं ॥ ४९ ॥ (युग्मं) ज्ञानकल्याणकं चक्रं सुतासीरादयो
ऽमराः । समवसृतिसच्छायां पुनर्वाचामगोचरां ॥ ५१ ॥ बोधयामास भव्यौघाम्भोजमाङ्गां तमोरिवत् । नानाजनपदै देवो लेखे-
शार्चितपस्कजः ॥ ५२ ॥ पुरस्ताद्धर्मचक्रं वै दध्वात जयघोषणं । यक्षमूर्धस्थितं सानावर्कविधौ वभौ यथा ॥ ५३ ॥ गणानां मुनि-
मोत्तम भोगोंका प्रदान करने वाला माना जाता है ॥ ४५ ॥ जिनोंमें श्रेष्ठ वे भगवान विमलनाथ
राजा विजयके घरमें आहार लेकर वनको लौट गये । उनके शरीरकी कांति सुवर्णमयी थी और
अनेक देव उनकी सेवा करते थे इसलिये वे अनेक देवोंसे वेष्टित सुवर्णमयी मेरुपर्वत सरीखे जान
पड़ते थे ॥ ४६ ॥ भगवान विमलनाथने अपने निर्मल चित्तसे सामायिक रूप संयमको धारण कर
वनके मध्यमें तीन वर्ष तक घोर तप तपा वाद उन्होंने उसी सहेतुक नामक अपने दीक्षावनमें
वैलाकी प्रतिज्ञा कर तीव्र तपसे ज्ञानावरण आदि घातिया कर्मोंको नष्ट किया जिससे माघ सुदी
छठके दिन जब कि दुपहरका समय था और दीक्षा नक्षत्र वा जन्म नक्षत्र विद्यमान था जंबू
वृक्षके नीचे शुभके उदयसे उनके केवल ज्ञान प्रगट हो गया ॥ ४७—४८ ॥ भगवान विमलनाथको
केवल ज्ञान होते ही उनके ज्ञान कल्याणका उत्सव मनानेके लिये शीघ्र ही इंद्र आदि देवगण उस
सहेतुक वनमें आ गये । एवं जिसकी महिमा वर्णन नहीं की जा सकती ऐसा अत्यंत देदीप्यमान
समवसरण रच दिया गया ॥ ५० ॥ जिनके चरण कमलोंको बड़े बड़े इन्द्र आदि देव सेवा करते
हैं ऐसे वे भगवान विमलनाथ अनेक देशोंमें विहार करने लगे एवं जिस प्रकार सूर्य कमलोंको
खिलाता है उसीप्रकार सूर्यस्वरूप वे भगवान भव्यरूपी कमलोंको बोधने लगे—वास्तविक उपदेश
देने लगे ॥ ५१ ॥ जिस प्रकार पहाड़की शिखरपर विद्यमान सूर्य शोभित होता है उसीप्रकार यक्षों
के मस्तकोंपर विराजमान और “हे भगवान विमलनाथ आपकी जय हो” इत्यादि रूपसे जय २
घोषणा करता हुआ धर्मचक्र उसके आगे आगे चलने लगा ॥ ५२ ॥ जिसप्रकार सप्तर्षि आदि

मुख्यानां नमोराजेव वैमलः । चित्रान्वीतोऽतरीक्षस्थस्तारकाणां समांतरे ॥ ५३ ॥ अथ जम्बूमति द्वीपे भारतं भवत्संभूतं । पटुर्बडि
विद्यते तत्र सौराष्ट्रो विषयः स्मृतः ॥ ५४ ॥ पुरी द्वारवती तत्र शोभाढ्या परमोत्सवा । स्वर्णरत्नमहाविंशयुतप्रासादमंडिता ।
॥ ५५ ॥ कामरूपनराकीर्णदुर्गवैषम्यदुर्जया । उन्नितवकलापास्त्यपीनवक्षोजभामिनी ॥ ५६ ॥ सत्यधर्मदयादानसरोवापीगृहा-
निष्ठा । वर्ततेऽमरपूर्वा सा दीर्घा हि नवयोजनौ ॥ ५७ ॥ त्रयोदशमिरेवेयं विस्तरा योजनेध्रुवं । द्विसहस्रलघुद्वारमंडिता मगधा
धिप ! ॥ ५८ ॥ (चतुर्भिः कलापकं) धर्माख्यवलिसंयुक्तः स्वयंभूर्भरतार्धवाक् । भूस्वैचरनराधीशसेव्यस्तां पाति शकवत् ॥ ५९ ॥
तारा गणोंके मध्यमें आकाशके अंदर रहने वाला चंद्रमा चित्रा नक्षत्रके साथ शोभा धारण करता
है उसीप्रकार मुनि आदि गणोंके मध्यभागमें विराजमान आकाशमें अधर रहनेवाले वे भगवान
विमलनाथ अत्यंत शोभित होते थे ॥ ५३ ॥

इसी जंबूद्वीपके अंदर अनेक भव्योंसे व्याप्त और छह खण्डोंका धारक एक भरतक्षेत्र नामका
प्रसिद्ध क्षेत्र है । उस भरत क्षेत्र के अंदर एक सौराष्ट्र (सोरठ) नामका देश विद्यमान है ॥ ५४ ॥
सौराष्ट्र देशके अंदर द्वारिका नामकी नगरी है जो कि नाना प्रकारकी शोभाओंसे शोभायमान है
भांति भांतिके सदा उसमें अनेक उत्सव हुआ करते हैं एवं सुवर्ण और रत्नमयी अनेक उत्तमो-
त्तम प्रतिमाओंसे मंडित जिन मंदिरोंसे व्याप्त है ॥ ५५ ॥ वह द्वारिकापुरी उससमय विशाल नितम्ब
लंबी चोटी मुख और स्थूल स्तनोंसे शोभायमान स्त्री सरीखी जान पड़ती थी क्योंकि जिसप्रकार सुंदर
स्त्री अनेक सुंदर पुरुषोंसे व्याप्त रहती है उसीप्रकार वह नगरी भी महामनोहर पुरुषोंसे भरी हुई
थी तथा सुंदर भी स्त्री जिसप्रकार विषम-कुटिलाईको लिये होती है उसीप्रकार वह पुरी भी अनेक
विशाल विशाल किलोंसे विषम थी—शत्रुओंके अगम्य थी ॥ ५६ ॥ वह द्वारिकापुरी सत्य अहिंसा
धर्म दया दान सरोवर बाबड़ियों और घरोंसे व्याप्त थी इसलिये वह स्वर्गपुरी सरीखी जान पड़ती
थी और नौ योजन प्रमाण लम्बी थी । तेरह योजन प्रमाण चौड़ी एवं दो हजार छोटे २ दरवाजों
से शोभायमान थी ॥ ५७ । ५८ ॥ उस पुरीका रक्षक स्वयंभू नामका नारायण था जिसका बड़ा भाई

त्रिंशत्पदेऽनिलः सोमो गूढसत्त्वाद्कोपतः । प्रतापाकतिभूर्मानुः संतत्यंभोजिनीषु यः ॥ ६० ॥ (गुग्मं) स्वत्रयत्वेकसाहस्रसंख्या मुकुटवद्धकाः । सेवन्ते पत्यहं तस्य पादाब्जं चञ्चरीकषत् ॥ ६१ ॥ तावत्संख्या मृगाक्ष्योऽस्य सुखयन्त्रीव रंभिकाः । नव-
कोटितुरङ्गाणां माला भाति मनोहरा ॥ ६२ ॥ अपञ्चद्विचतुःसंख्याः सिन्धुरा दानवर्षिणः । मद्भोद्धराः सिता भाति नभोलिह इवो-
न्नताः ॥ ६३ ॥ शंखर्षदगदाचापसङ्कचकसुशक्तिकाः । इत्येवं सात रत्नानि तस्य सन्ति च गताश्च ! ॥ ६४ ॥ प्रामास्तस्याष्टवत्वा-
रिंशत्कोटि प्रमिता मताः । गोकुलं सार्धकोट्येकं वर्तते भूतयोऽपराः ॥ ६५ ॥ भुञ्जन् राज्यं स्थितो धर्मबलिना मृगलं गदां । मालां
धर्मं नामका बलभद्र था । स्वयं वो तीन खण्डका स्वामी—अर्धचक्री था । भूमिगोचरी विद्याधर
राजाओंसे सेवित था एवं इन्द्र जिसप्रकार स्वर्गपुरीकी रक्षा करता है उसप्रकार वह द्वारवतीपुरी की
रक्षा करता था ॥५६॥ तथा वह नारायण स्वयंभू शत्रुरूपी वनकेलिये दावानल था । छिपे हुए पराक्रम
का धारक और क्रोध रहित शांत होनेके कारण चंद्रमा सरीखा था । अपने पराक्रमसे समस्त पृथ्वी
तलको वश करने वाला था और प्रजारूपी कमलिनियोंको प्रसन्न करनेवाला सूर्य था—उसके
राज्यमें सारी प्रजा प्रसन्न और सुखी थी ॥ ६० ॥ जिसप्रकार भ्रमर कमलकी सेवा करते हैं उसी
प्रकार सोलह हजार मुकुट वद्ध राजा उस नारायण स्वयंभूके चरण कमलोंके सेवक थे ॥ ६१ ॥
जिसप्रकार देवांगना देवोंको सुखी बनाती हैं उसीप्रकार सोलह हजार मृगलोचनी रानियां नारा-
यण स्वयंभूकी सेवा करतीं और उसे सुखी बनातीं थीं । उसके दौ करोड़ घोड़े थे जो कि तेज
पानीके महामनोहर थे । ब्यालीस लाख हाथी थे जिनके कि गंडस्थलोंसे मद चूता था । मदसे
उत्कट थे और इतने ऊंचे थे मानो आकाशको स्पर्श करते थे ॥ ६२ । ६३ ॥

उस राजा स्वयंभूके शंख, दण्ड, गदा, धनुष, खड्ग, चक्र और शक्ति ये सात रत्न थे । अड़ता-
लीस करोड़ संख्याप्रमाण उसके ग्राम थे । डेढ़ करोड़ गायें थीं और अनेक प्रकारकी विपुल विभूति
थी ॥६४-६५॥ मूसल, गदा, माला और शीर नामक शस्त्रोंके धारक, अत्यंत सामर्थ्यवान अपने बड़े
भाई बलभद्रके साथ वह स्वयंभू नामका नारायण अपने राज्यका सुखपूर्वक भोग करता था ॥६६॥

शीरं विधात्वा च आत्रा बलविशालिना ॥६६॥ मदोद्भूतान्नुपान् जित्वा प्रजाः पालयति नृपे । तावन्नामहादेशान् विहृत्यागतवान् जिनः ॥ ६७ ॥ निर्लोभो निर्मलः शान्तो रागद्वेषच्युतोऽच्युतः । तर्हि गत्यागतो तस्य प्रकाशयेते कथं परैः ॥६८॥ उदयाद्रावुदेत्येव प्रत्यहं मास्त मोहितः । नियोगोऽयं तथा तस्य यथातथ्यप्रबोधकः ॥ ६९ ॥ तत्पुरोमदनोद्याने शकाज्ञाधारिणा मुदा । धनदेन विचित्राभं विष्टं निर्ममे महत् ॥ ७० ॥ दुर्गोभित्तमहापीठसपानानां विचित्रता । मानस्तंभतडागानां सुवर्णा मस्य सत्कवेः ॥ ७१ ॥ प्रादुर्भवति लंके शमयया समवसृतिः । स्थानांगीकारकाक्षेस्य क्षणेन केवलक्षणे ॥ ७२ ॥ तन्मध्यस्थो जिनो—रेजे हानदृष्टजगत्त्रयः । सुरेशः स्वर्गवा

अनेक मदोन्मत्त राजाओंको जीतकर वह नारायण स्वयंभू सानन्द प्रजाका पालन करता था कि उसी समय अनेक देशोंमें विहार कर भगवान् विमलनाथ वहां पर आये । वे भगवान् परम निर्लोभ थे । समस्त दोषोंसे रहित निमल थे । शान्त थे । राग और द्वेषसे रहित एवं अविनाशी थे इस लिये यह बात हरेक मनुष्य जान ही नहीं सकता था कि कहां उनका जाना होता था और कहां आना होता था । जिस तरह चंद्रमा प्रतिदिन उदयाचलपर उदित होकर अस्ता चल पर अस्त होता है यह उसका नियोग ही है उसीप्रकार गमन आगमन भी भगवान् का नियोग स्वरूप ही था क्योंकि वह गमन आगमन यथार्थ रूपसे पदार्थोंका प्रबोध करनेवाला था । जो पुरी नारायण स्वयंभू की राजधानी था उसी पुरीके मदन नामक उद्यानमें भगवान् विमलनाथके आजाने पर आनंदित हो कुबरेन्द्रकी आज्ञासे शीघ्र ही समवसरण रचना प्रारम्भ कर दिया जो कि विचित्र शोभाका धारक था, विशाल था । समवसरणके अंदर चित्र विचित्र प्राकार उनकी भीतियां, विशाल सिंहासन, स्त्रीड़ियां, मानस्तंभ और तालावोंकी जो रचना की गई थी उसका वर्णन धुरन्धर कवि भी नहीं कर सकते थे । वस केवल ज्ञानसे विराजमान भगवान् विमलनाथके ठहरते ही इंद्रकी मायासे शीघ्र ही समवसरण तैयार हो गया और वे भगवान् विमलनाथ जो कि अपने दिव्य ज्ञानसे तीनों लोकोंके जाननेवाले थे एवं जिनके चरण कमलोंको जय जय शब्दोंके करनेवाले व्यंतर आदि देवेंद्र

सेश्व पूजितांघ्रिर्जयारवैः ॥ ७३ ॥ तत्प्रभावाद्भवं रम्यं बाटिकां कुसुमान्वितां । दुन्दुभिध्वानमाशम्य मालाकारोऽगमत्पुरं ॥ ७४ ॥
नानापुष्पफलाकोणैर्करुण्डं संविधाय च । नृपाक्षया पुरो गत्वा तत्करुण्डं मुमाञ्च सः ॥ ७५ ॥ अकालजनितं दृष्ट्वा स्वयंभूरितिमा-
गवः । चिरं स्यान्ति महाचिन्ताप्रस्तवेता व्यचिन्तयत् ॥ ७६ ॥ अकालीनं यदा पुष्पमृतोः सद्भावभावकं । दृषद्विबमहायुद्धं

दृश्यते श्रूयते च वा ॥ ७७ ॥ तदा राजाशुभं ज्ञेयं दुर्मिष्टं वा प्रजापतेः । देशभङ्गः समादिष्टः प्रथमैः पूर्वसूरिभिः ॥ ७८ ॥

और स्वर्गोंके देव भक्ति पूर्वक पूजते थे, उस समयशरणके मध्य भागमें विराज गये ॥ ६७-७३ ॥

जिस वनमें भगवान विमलनाथ विराजे थे वह वन महा मनोहर दीख पड़ता था उसमें रहनेवाले वृक्ष, फल फूलोंसे व्याप्त थे और नौवत घुरती रहती थी । उस वनके रक्षक मालीने जब वनकी यह विचित्र शोभा देखी और नौवतका शब्द सुना तो उसे बड़ा आनन्द हुआ । अनेक प्रकारके पुष्प और फूलोंसे उसने अपनी टोकनी भर ली । वह द्वाराधतीकी ओर चल दिया, एवं राजाकी आज्ञासे राज-सभामें प्रवेश कर उसने उस डालीको महाराज स्वयंभूकी भेंट कर दी ॥ ७४-७५ ॥ राजा स्वयं-भूने ज्योंही असमयमें होनेवाले फल पुष्प देखे त्योंही मालीसे तो उसने कुछ पूछा नहीं किंतु अपने आप मारे चिन्ताके उसका मुख म्लान हो गया और मन ही मन वह इस प्रकार चिन्ता करने लगा—

असमयमें उत्पन्न होनेवाले ये फल फूल ऋतु कालके बाधक हैं, जो वस्तु जिस समयमें होने-वाली है उस समयमें न होकर यदि अन्य समयमें होगी तो उससे कभी भी ऋतुका निश्चय नहीं किया जा सकता । असमयमें होनेवाले जो ये फल फूल दीख पड़ते हैं उनका फल यही जान पड़ता है कि या तो किसीके साथ महा भयंकर युद्ध करना होगा या कहींसे विशाल युद्धके समाचार सुननेमें आवेंगे । प्राचीन आचार्योंने असमयमें जायमान पदार्थोंको देखनेका यह फल बतलाया है कि या तो राजाका अशुभ होगा या अकाल पड़ेगा अथवा देशका भङ्ग होगा ॥ ७६-७८ ॥ अपने भाई नारायण स्वयंभू को इस प्रकार चिन्ता और क्लेशसे क्लेशित देख उसके बड़े भाई बलभद्र धर्मने कहा—

इति चिन्ताध्ययापन्नं दृष्ट्वा श्रीनिजवांधवं । अत्रवीक्षोल्लासस्कः किं त्वं चिंतयसि प्रभो ! ॥ ७६ ॥ इति पृष्ठो जुहावेति स्वयंभूरक्त-
लोचनः । श्रूयतां वचनं आतर्क्यथा दृष्टं प्रचक्ष्यते ॥ ८० ॥ किष्किंधापत्तने राजा महार्धः सुन्दरामित्रः । स्वप्रतापजिताशेषशत्रवोऽभू-
द्गुणाकरः ॥ ८१ ॥ कमला सुंदरी तस्य सुता परमसुंदरी । नाम्ना विज्ञानलावण्यरूपाभरणभूषिता ॥ ८२ ॥ ईदृशा विद्यते नैव
मामिनी काश्यपीतरे । पृथुस्थूलनितंबाद्या स्तम्भहंसखराभृशं ॥ ८३ ॥ तथेति विहिता आतः । प्रतिज्ञा दुष्करा नृणाम् । मंदाराणां
महामाला यस्य कंठे प्रवर्तते ॥ ८४ ॥ वृणेऽहं परममग्ना सादरं नापरं वरम् । इति श्रुत्वा पिता तस्याश्चिंतयामास मानसे ॥ ८५ ॥

भाई तुम इस डालीको देखकर क्या विचारने लग गये ? उस समय स्वयंभू चिन्तासे अत्यन्त व्यथित थे । मारे क्लेशसे उनके नेत्र म्लान हो रहे थे इसलिये दुःखित हो उन्होंने उत्तरमें अपने भाईसे यह कहा—असमयमें होनेवाले इन फल फूलोंको देखकर मैंने जो कल्पना की है मैं आपसे कहता हूँ आप ध्यान पूर्वक सुनें ।

किष्किंधा नगरमें एक सुन्दर नामका राजा था जो कि विशाल सम्पत्तिका स्वामी था । अपने प्रचण्ड प्रतापसे समस्त शत्रुओंका जीतनेवाला था एवं अनेक उत्तमोत्तम गुणोंका स्थान था ॥ ७६-८१ ॥ राजा सुन्दरकी स्त्रीका नाम कमला था जो कि एक अलौकिक सुन्दरी थी और उससे उत्पन्न परमसुन्दरी नामकी कन्या थी जो कि विज्ञान कला कौशल, लावण्य मनोज्ञ रूप रूपी भूषणोंसे भूषित थी ॥ ८२ ॥ विशेष क्या विशाल और स्थूल नितम्बोंसे शोभायमान हंसके समान मोठे वचन बोलनेवाली रमणी परम सुन्दरीके समान कोई कन्या न था ॥ ८३ ॥ अत्यन्त मानिनी उस कन्या-ने यह प्रतिज्ञा कर रखी थी कि जिस मनुष्यके गलेमें मन्दार जातिके कल्पवृक्षके पुष्पोंकी माला होगी उसी मनुष्यको प्रेमपूर्वक बड़े आदरसे मैं वरुंगी । दूसरे कामदेवके समान भी वरको मैं न वरुंगी । परम सुन्दरीके पिताने जब परम सुन्दरीकी यह प्रतिज्ञा सुनी तो उसे बड़ी धवड़ाहट हुई एवं वह उसकी कठिन प्रतिज्ञासे मन ही मन विचारने लगा—

अहो ! अत्यंत मूढत्वं सुताया दुर्वचः किल । स्वर्णयोग्या कुतो लभ्या शुभ्रा मंदारमालिका ॥ ८६ ॥ आ एवं मन्यते चेत्ते स्वयंवर-
विधिं विना । मनोगतो यरो नैव सौलभो भुवनत्रये ॥ ८७ ॥ वितयित्वेति राजा स चकाराशु स्वयंवरम् । रत्नविन्यासप्राकार-
हेनस्तम्भं सुतोरणम् ॥ ८८ ॥ ततो दलं दलद्वर्णं प्राहिणोद्विषयेष्वसौ । राजागत्यर्थमेवाशु मंजुलं प्राजहं परम् ॥ ८९ ॥ तद्धि श्रुत्वाथ
राजानस्तलाजग्मुः शुभेच्छया । यथायथं स्थिताः सर्वे कन्यारीपितमानसाः ॥ ९० ॥ तमिच्छां लघयन् भानुकदियायोदयाचले ।
राजन्यान् बोधितुं किंवा रक्तमूर्तिर्हस्तनिधय ॥ ९१ ॥ कन्याप्रचारणार्थं वा मंदारकुसमाकृतिं । वृत्तरक्तत्वतो नूनं दर्शयन् ध्वंसय-

कन्या परमसुन्दरीने जो वैसी प्रतिज्ञा की है वह उसकी बड़ी भारी मूढ़ता है । मंदार वृक्षके सफेद पुष्पोंकी माला तो देव पहिनते हैं मनुष्योंको वह कैसे प्राप्त हो सकती है ? खैर, यदि इस कन्याका ऐसा हो बलवान् आग्रह है तो बिना स्वयंवरके किये तीनों लोकमें इसके लिये वैसा वर नहीं मिल सकता । स्वयंवर करनेसे ही कदाचित् प्राप्त हो सकता है इसलिये इसके वरके लिये स्वयं वरकी ही रचना करनी होगी, वस ऐसा विचार कर राजा सुन्दरने शीघ्र ही स्वयंवर मंडपके तैयार होनेकी आज्ञा देदी तथा वह मंडप भी रत्नोंके बने परकोटोंसे व्याप्त सुवर्णभंगी स्तम्भोंसे शोभायमान एवं लटकते हुए तोरणोंसे देदोप्यमान शीघ्र ही तैयार हो गया ॥ ८४-८८ ॥ स्वयंवर मंडपके तैयार हो जाने पर राजा सुन्दरने समस्त देशोंके राजाओंके बुलानेके लिये पत्र भेजा जिसमें कि स्पष्ट रूपसे स्वयंवरके समाचारको सूचित करनेवाले अक्षर अङ्कित थे एवं वह शुभ मनोहर और प्रशस्त था ॥ ८९ ॥ पत्रके पाते ही शुभ कन्याको प्राप्तिकी अभिलाषासे समस्त राजा किष्किंधापुरमें आये, एवं कन्याकी प्राप्तिमें जिनका चित्त लीन है सबके सब यथायोग्य स्थानोंपर ठहर गये ॥ ९० ॥ रात्रिके बीत जानेपर पूर्व दिशामें उदयाचल पर सूर्यका उदय हुआ । वह सूर्य उदय-कालमें रक्त वर्णका था इसलिये ऐसा जान पड़ता था मानो प्रसन्न हो वह राजाओंके देखनेके लिये आया है किंवा राजाओंकी विषय जनित लालसा पर हंसी प्रगट कर रहा है । अथवा अपने गोल

स्तमः ॥ ६२ ॥ (युग्म) उदिते श्रोदिवाताथो नानाशृंगारकारिणः । आजग्मुर्मण्डपं सर्वे राजपुत्राः इवामराः ॥ ६३ ॥ केचिद्वसकराः केचि-
न्नुकहस्ता मदोदुराः । अमर्यतः कञ्चं केचित्केचिच्च स्मितकारिणः । ॥ ६४ ॥ धात्रीस्कंधकरा नानाकौतुका राजपुत्रिका । द्रष्टुं
समादिता तत्र राजन्यान् मंडपे त्वरा ॥ ६५ ॥ कंचुकी तां जगादेति पुल्लि । शृणु वचो मम । एतेषां शुभतमं भूषं वृणीष्व त्वं समादरात्
॥ ६६ ॥ विलोच्य भूषणीन् सर्वान् सुंदरानप्यभाचत । मंदारमालिकाभावाद्वाधूणीतानमत्पुरं ॥ ६७ ॥ आषण्मासावधेरित्थं स्थिता

आकार और ललाईसे कन्या परम सुन्दरीके ठगनेके लिये मन्दार वृक्षके पुष्पोंकी आकृति बतलाता हुआ अन्धकारको जड़से भगा रहा है ॥ ६१-६२ ॥ इस प्रकार सूर्यदेवके उदय हो जाने पर समस्त राजकुमार अपनी अपनी शय्याओंसे उठ गये । प्रातः कालीन नित्य क्रियायें की । नाना प्रकारके शृंगार कर अपना शरीर सजाया एवं जिसप्रकार देव आते हैं उसप्रकार वे स्वयम्बर मंडपमें आकर अपने अपने स्थानोंपर बैठ गये ॥ ६३ ॥ उन राजकुमारोंमें कई एक राजकुमार हंसके समान हाथोंके धारक थे । कई एक शुक-तोतोंके समान लालिमाको लिये हुए हाथोंसे शोभायमान थे । अनेक मदोन्मत्त फूल हाथोंमें लेकर उसे घुमा रहे थे और बहुतसे मन्द मन्द मुसका रहे थे ॥ ६४ ॥ जिसका एक हाथ धायके कंधेपर रखवा हुआ है और जो नानाप्रकारके कौतूहलोंसे शोभायमान है ऐसी वह कन्या समस्त राजाओंके देखनेके लिये शीघ्र ही उस स्वयम्बर मंडपमें आई एवं जिस समय वह वहां पर आकर खड़ी हुई तो कंचुकी उससे इस प्रकार कहने लगा—

प्रिय पुत्री ! मेरी बात सुनो । इस समय समस्त देशोंके राजा इस स्वयम्बर मंडपके अंदर विराजमान हैं इनमेंसे जो तुम्हें पसंद हो-अच्छा लगता हो उसे ही आदर पूर्वक बर लो ॥ ६५-६६ ॥ कन्या परम सुन्दरीने समस्त राजाओंकी ओर दृष्टि डाली परन्तु मन्दार पुष्पोंकी माला एक केभी गलेमें उसने नहीं देखी इसलिए अत्यन्त सुन्दर भी उन राजकुमारोंमेंसे एकको भी उसने नहीं बरा और वह सीधी अपने राजमहल लौट गई ॥ ६७ ॥ अनेक मानसिक कौतूहलोंसे परिपूर्ण वे समस्त

भूपाः सकौतुकाः । तन्मोहेनैव संत्यक्त्वाद्याश्चित्रार्पिता इव ॥ ६८ ॥ अन्यदा सर्वमूपासमे कन्याविराजिते । समागमन्महारौद्रः
 कापाली भस्मभूषितः ॥ ६९ ॥ पाप्मोकृतकपालः सभग्नरूपी जटाधरः । अस्थिसंघातमालालंकृतप्रोष्ठ कृपातिगः ॥ १०० ॥ नाना-
 कौटिल्यविद्याभिर्हस्तैर्यन् कोपतो नरान् । शंखचक्रग्रहः कालः स्थितः पद्मासनेऽतरे ॥ १०१ ॥ अत्रांतरे नभोमार्गे गच्छन् देवः स्वकां-
 तया । नंदीश्वरमहाद्वीपवातां कृत्वा समोपारं ॥ १०२ ॥ आगतस्तर्हि रेभा तं मणिचूलसुराधिपं । रराण मधुरालापैरदः किं वर्तते
 विभा ! ॥ १०३ ॥ चकाणेत्यि चकोराक्षि ! प्रारुधेऽस्मिन् स्वयंचरे । मंदारमालिकाभावाद्भरं किंचिन्त मन्यते ॥ १०४ ॥ श्रुत्वेतत्की-
 राजकुमार कन्या परम सुन्दरीके मोहसे लालायित हो बराबर छह मासतक वहीं पड़े रहे । वे कन्या
 परम सुन्दरी पर इतने व्यामुग्ध थे कि अपने खाने पीनेकी भी उन्होंने पर्वाह न की थी इसलिये वे
 ऐसे जान पड़ते थे मानों किसी चतुर चित्रकारने उन्हें चित्रपटमें अंकित कर दिया है ॥ ६८ ॥

एक दिनकी बात है कि समस्त राजा और कन्यासे मंडित सभा मंडपमें एक कापाली आया
 जो कि महा भयङ्कर था । अंगमें भवति रमाये था । हाथमें कपाल था । नग्न दिगम्बर था । जटा
 धारी था । गलेमें हड्डियोंकी माला पहिने था । दया रहित था । अपनी कुटिल विद्याओंसे समस्त
 सभाके मनुष्योंको डरानेवाला था । शङ्ख और चक्रोंको धारण किये था इसलिये साक्षात् काल-
 सरीखा जान पड़ता था तथा सभामण्डपमें आकर वह पालती मार कर बठ गया ॥ ६९—१०१ ॥
 उसी समय मणिचूल नामका देवोंका स्वामी नन्दीश्वर महा द्वीपकी यात्रा कर आकाशमें अपनी
 स्त्रीके साथ जा रहा था जिस समय वह स्वयम्बर मंडपकी भूमिपर आया उसकी स्त्रीने मधुर
 वचनोंमें यह पूछा, प्राणनाथ ! नोचे यह क्या दृश्य दीख रहा है ? उत्तरमें मणिचूलने कहा—

प्रिये ! कन्या परम सुन्दरीके निमित्त यह स्वयम्बर रचा गया है उसकी यह प्रतिज्ञा है कि
 जिस महानुभावके गलेमें मंदार पुष्पोंकी माला होगी उसे ही मैं बहूंगी अन्यको नहीं परन्तु पुष्पों
 की माला किसीके गलेमें है नहीं इसलिये वह कन्या किसीको वर स्वीकार करना नहीं चाहती ।

तुक्तं रम्या हास्यहेतोः पतेर्गलात् । नीत्वा मंदारसन्मालामक्षिपद्योगिनः पुरः ॥ १०५ ॥ यदा योगी गृहीत्वाथ मालां मीनाश्रितोऽभवत्
तदा कन्या धरं मत्वा गूढवेषं समादिता ॥ १०६ ॥ पिता धात्र्या नृपैर्वाला निषेध्य स्थापिता यदा । कपाली क्रोध-
संपूर्णः प्रेतारण्यं ययौ ध्रुवं ॥ १०७ ॥ वित्तोऽसौ चिंतयामास चिरं चेति विचक्षणा । मामागतवती कन्या वारितै
नृपैर्हठात् ॥ १०८ ॥ किं करोमि महापापचारिणां दुस्सहं त्वरा । एतेर्भा दुर्धियां राज्ञां ध्यात्वेति निशि तस्थिवान् ॥ १०९ ॥
श्मशाने सर्पदुर्यक्षयूथखलनभीकरे । रुधिरौदुगारसंसिक्तभूतले कातराशिनि ॥ ११० ॥ (युग्मं) तत्र संसाधयामास विद्यां
अपने पति मणिचूलकी यह बात सुन रम्याको बड़ी हसी आई एवं हंसी करनेके लिये पतिके गले-
से उसने मंदार पुष्पोंकी माला निकाल कर कपाली योगीके सामने पटक दी ॥ १०२-१०५ ॥
योगीने शीघ्र ही माला उठाकर अपने गलेमें डाल ली और वह मौन धारण कर चुपचाप बैठ गया ।
कन्याको भी वह पता लग गया कि गूढ़ वेषका धारक वर प्राप्त हो चुका है इसलिये वह शीघ्र ही
योगीके पास आने लगी ॥ १०६ ॥ कन्या परमसुन्दरीकी यह दशा देख उनके पिता धाय और
राजाओंने उसे रोक दिया, कपालीके पास नहीं आने दिया यह देख कपाली एकदम क्रुद्ध हो गया
और वह शीघ्र ही प्रेतारण्य वनकी श्मशान भूमिके अन्दर चला गया ॥ १०७ ॥ वहाँ पहुँचकर
वह योगी अपने मनमें यह विचार करने लगा कि—

देखो वह दिव्य मूर्ति चतुर कन्या अपनी प्रतिज्ञानुसार मुझ पर आसक्त हो मेरी ओर आती
थी सो इन राजाओंने जबरन उसे आनेसे रोक दिया । ये राजा लोग महा पापी और दुर्बुद्धि हैं ।
मुझे इनके लिये कोई ऐसा दुःखजनक कार्य करना चाहिये जिससे ये कष्ट भोगें, वस ऐसा दृढ़
विचार कर वह योगी श्मशानभूमिके ऐसे प्रदेशमें बैठ गया जो कि भयङ्कर सर्प और राज्ञसोंके
फत्कार और धत्कारोंसे भयङ्कर था । जिसका पृथ्वीतल रुधिरके फव्वारोंसे सदा तल बतल रहता
था और कातर डरपोकोंको निगलनेवाला था ॥ १०८-११० ॥ वह योगी उस भयङ्कर श्मशानभूमिमें
किसी मृत मनुष्यके मस्तक पर आसन जमाकर बैठ गया और वज्रशृङ्खलिका नामकी भयङ्कर

योगी महामनाः । वज्रशृङ्खलिकां नाम्ना स्थित्वा मांनुपमस्तके ॥ १११ ॥ निशीथे दारयन्तीः सा षट्त्रिंशद्वाहुसन्नता ।
शैल न किलकिलारावत्संपूर्णितमस्तका ॥ ११२ ॥ वक्त्रविंशतिसंयुक्ता तत्रागत्याग्रवीदिति । कोऽसि त्वं च कथंकारं
स्थितोऽस्यत्र महावने ॥ ११३ ॥ इत्युक्त्वा भर्तृभ्यन्ती तं चालयन्ती तदापि सः । न चचालासनाद्योगी प्रत्यक्षीभूयमागता
॥ ११४ ॥ वरं वृणीष्व हे वत्स ! बांछितं ते दुरासदं . तदा श्रुत्वा महादेव्या वचनं कौलिको जगौ ॥ ११५ ॥ दद्या-
श्चेत्वं वरं मह्यं तर्हि भाग्योदयो मम । सर्वा विद्या प्रसन्नाश्च दुर्जयश्च परैरपि ॥ ११६ ॥ वरं प्रामाण्यतो मातर्यक्षयोयो
विद्या सिद्ध करने लगा ॥ १११ ॥ वह वज्रशृङ्खलिका नामकी विद्या छत्तीस भुजाओंकी धारक थी
अपने किल किल शब्दसे समस्त आकाश मण्डलको गुजानेवाली थी एवं चौबीस उसके मुख थे
वस अपनी प्रचंडतासे अनेक दुधर पर्वतोंको डहाती हुई वह विद्या शीघ्र ही कापालीके पास आई
और रुक्म शब्दोंमें इस प्रकार उसे धमकाने लगी—

अरे तू कौन है और किस आशासे इस भयङ्कर महा वनके अंदर आकर बैठा है। इतना ही
नहीं अनेक उपायोंसे उस योगीको ताड़ने लगी और आसनसे डिगाने लगी । वह योगी
अपने अटल सिद्धांत पर दृढ़ था इसलिये उस विद्या द्वारा अनेक प्रकारसे उसे भी वह रंच-
पात्र भी अपने ध्यानसे न डिगा अचलरूपसे अपने आसन पर स्थिर रह . अंतमें वह विद्या
प्रत्यक्ष होकर सामने आकर खड़ी हो गई एवं उस कपालीसे प्रसन्न हो इसप्रकार कहने लगी—

वत्स ! मैं तुमसे राजी हुई, कठिनसे कठिन अपनी इच्छानुसार वर मागो मैं देनेको तयार हूं ।
वस महा देवीके ऐसे प्रसन्न वचन सुन कापालीने कहा—मां ! यदि तुम मुझे वर देना चाहती
हो तो मैं अपना परम सौभाग्य समर्पण करता हूं आपके वर प्रदानसे मैं यह समझता हूं कि समस्त
विद्यायें मुझसे प्रसन्न हो चुकी और मैं अत्यन्त बलवान भी शत्रुओंके लिये दुर्जय हो गया । माते-
रवरी ! मैं आपसे यह वर चाहता हूं कि आप रणके मैदानमें युद्ध करनेके लिये दो यक्षोंको दें

घयेति भो ! । रणे कालाग्रयोः सर्वराजहन्तोर्द्वन्द्वतोः ॥ ११७ ॥ देवी तथास्त्विति प्रोक्त्वा जगाम स्वीयमंदिरम् । प्रातर्जात
महोरणे राजपुत्राः समार्दिताः ॥ ११८ ॥ नानावादिनिर्घोषं तंत्रीकंठसमुद्भवं । रागं गीतं तदा श्रुत्वा कन्या धात्रिकयागता
॥ ११९ ॥ यावत्पश्यति भूपालान् किरीटस्तवकावलान् । कंतुबेष्टासष्टंगारान् तावद्योगी समाययौ ॥ १२० ॥ अंगमस्म-
जटाजूटकुर्निरीक्ष्योऽस्थिमालधृत् । करकंबुर्दसन्तीषद्रक्तनेत्रोऽथ वंतुरः ॥ १२१ ॥ आगत्य परिषन्मध्ये स्थितो वज्रासनालये ।
सुवद्राक्षमहामालः स्थिरः कीनाशसंभवः ॥ १२२ ॥ अथो दृष्ट्वा तं कन्या हसंत्यायाति योगिनं । स्वीकर्तुं राजभिः

जो यक्ष कालके समान हो । समस्त राजाओंको नष्ट करनेवाले हो और पाषाण सरीखे दृढ़ हो ।
॥ ११२-११७ ॥ देवीने 'तथास्तु, कहकर अपने निवासस्थानकी ओर प्रयाण किया । योगीको भी
बड़ी प्रसन्नता हुई । प्रातः काल होते ही समस्त राजकुमार स्वयंवर मंडपमें आकर अपने अपने
स्थानोंपर बैठ गये । अनेक प्रकारके बाजे बजने लगे । तंत्रियोंके कंठोंसे जायमान भांति भांतिके
राग और गीत छिड़ने लगे । कन्या परम सुन्दरीने भी बाजोंकी आवाज और गाने सुने और वह
धायकी लेकर स्वयंवर मण्डपमें आगई ॥ ११८—११९ ॥ जिनके मस्तकोंपर भांति भांतिके मुकुट
शोभायमान हैं । जिनकी चेष्टा कामदेव सरीखी है और जो नाना प्रकारके शृंगारोंको किये
हैं ऐसे उन राज कुमारोंको वह कन्या देख ही रही थी कि उसी समय वह योगी आया ॥ १२० ॥
वह साधु अङ्गमें भवति रमाये था । उसके जटाके बाल बिखरे थे इसलिये वह बड़ा भयंकर जान
पड़ता था । तथा हाडोंकी माला लिये था उसके हाथमें शंख था । हंस रहा था । उसके नेत्र कुछ
रक्त थे और बड़े २ दांत बाहर निकले हुए थे । स्वयंवर मण्डपके मध्यभागमें आकर वह बज्रके
समान दृढ़ आसनसे बैठ गया । हाथमें रुद्राक्षकी माला धारण करली एवं साक्षात् यमराज
सरीखा जान पड़ता था ॥ १२०—१२२ ॥ मन्दार पुष्पोंकी मालासे विराजमान योगीको देखकर
कन्या परम सुन्दरी बड़ी खुशी हुई और उस योगीको वर बनानेके लिये उसकी ओर बढ़ने लगे

त्वेव निविद्धोत्थाय कोपतः ॥ १२३ ॥ हन्यतां हन्यतां दुष्टः कापाली करुणातिगः । अहंतेवेवं नृपाः केचित्तद्वयंति बचः
 शरैः ॥ १२४ ॥ सुकोपैभ्योऽगमस्माः स मत्वा प्रत्युद्भायतं । राजभ्यो राजबलैभ्योऽखिलयत्प्रलयो नु वा ॥ १२५ ॥ यदो-
 त्थाय महाशङ्खं धमतिस्माशु कोपतः । तदा देवोरिति यक्षो समागम्य विवलातुः ॥ १२६ ॥ के हुंकारं प्रचक्राणौ स्फोटि-
 यंतौ नु पर्वतान् । उन्नतावज्जनागौ नु दीर्घदंतौ महाभुजौ ॥ १२७ ॥ ताभ्यां च नग्नरूपाभ्यां हनाः पादप्रहारतः । सर्वे
 भूपालसामंताः पीरा किंकिंधपादयः ॥ १२८ ॥ अलांतरे नभोगामी गच्छन् कश्चिन्नृपात्मजौ । जहारुमनसा दुष्टा किन्न कुर्वति
 विग्रहं ॥ १२९ ॥ द्विजिह्वाः खरतराः सेध्याः अविमृश्यकरा नराः । कारंकारमनर्थतेनिशं जीवति गृध्नवः ॥ १३० ॥ असंभाव्यमतो

परन्तु राजा लोगोंको यह बात पसन्द न आई उन्होंने शीघ्र ही उसे रोक दिया । राजाओंके द्वारा
 कन्या परम सुन्दरीको इसप्रकार रुकता देख योगीको बड़ा क्रोध आया वह क्रुद्ध हो एकदम अपने
 आसनसे उठ खड़ा हुआ । योगीकी यह चेष्टा देख स्वयंवर मण्डपमें विद्यमान समस्त राजाओंमें
 खल बली मच गई सर्वोंके मुखसे ये ही शब्द निकले कि यह योगी बड़ा दुष्ट और निर्दयी है
 इसे मारो मारो तथा बहुतसे राजा लोग उस योगीको कुवाक्यरूप वाणोंके प्रहारोंसे वेधने लगे
 ॥ १२३—१२४ ॥ वह सन्यासी समस्त राजाओं पर एकदम गुस्सा हो गया । राजा और राजा
 लोगोंकी मुखोंकी चेष्टाओंसे उसे यह जान पड़ने लगा कि साक्षात् प्रलय काल उपस्थित हो गया
 है इसलिये अपने ऊपर एक बलवान् विघ्न उपस्थित होता देख जिस समय खड़े होकर उसने महा-
 शङ्ख धजाया उसीसमय देवीके द्वारा भेजे हुए दो यक्ष सामने आकर गर्जने लगे वे दोनों यक्ष केंकार
 हुंकार शब्दोंके करने वाले थे । पर्वतोंके फोड़ने वाले थे । अञ्जन पर्वतके समान उंचे थे । विशाल
 दन्त और विशाल भुजाओंके धारक थे । नग्नरूपके धारक उन दोनों यक्षोंने अपने पादोंके प्रहारोंसे
 समस्त राजा और किंकिंधा पुरीके राजा आदि समस्त पुर वासियोंको तितर बितर कर डाला
 ॥ १२५—१२६ ॥ उसी समय एक विद्याधर आकाश मार्गसे जा रहा था । कन्या परम सुन्दरीको

भ्रातृदृश्यते यदि धोधन । अशुभं वा शुभं वेगात् ज्ञायते सुधिया तदा ॥ १३१ ॥ अतोऽहं चिंतया ग्रस्तो भवामीति करंडकं ।
बह्वृत्तकैः पुष्पैर्भूतं दृष्ट्वा विचारतः ॥ १३२ ॥ पुष्पमाली तथा मूतं क्रूरं वक्रबिलोचनं । चक्रिणं भयतो दृष्ट्वा रराणेति
विचक्षणः ॥ १३३ ॥ हे नाथ ! मदनोद्याने तव पुण्यप्रभावतः । समायातः सुराधीशैः स्तुतो विमलबाहनः ॥ १३४ ॥ तन्माहत्म्याद्भनं
देखते हो वह उसपर आसक्त हो गया और उसे तत्काल हर कर ले गया ठीक ही है जो मनुष्य
हृदयके दुष्ट होते हैं वे क्या क्या उपद्रव नहीं कर छोड़ते हैं जो द्विजिह्व—बुगुलखोर होते हैं
खर—कठोर होते हैं । ईर्ष्या सहित होते हैं । विचार न कर कार्य करने वाले होते हैं वे लोलुपी
अनेक प्रकारके अनर्थोंको करते हुए भी सदा काल जीवित रहते हैं । नारायण स्वयंभू इसप्रकार
कह कर अन्तमें अपने भाई बलभद्रसे कहा—

भाई ! तुम अत्यंत बुद्धिमान हो जो बात असंभव दीख पड़े बुद्धिमानोंको चाहिये कि उसके
विषयमें शुभ अशुभका ज्ञान अच्छी तरह करलें सार यह है कि असंभव मंदारपुष्पोंकी मालाका
हठ कर कन्या परम सुन्दरीने जिसप्रकार अपना सर्व नाश कर डाला था उसीप्रकार सामने रखी
डालीके अन्दर भी जो फल फूल दीख पड़ते हैं वे इस ऋतुके असंभव हैं इनके देखनेसे भी मुझे
यही प्रतीत होता है कि कहीं बलवान अनर्थका सामना न करना पड़े । इसलिये हे भाई ! समस्त
ऋतुओंके फल फूलोंसे भरी हुई इस डालीको देख कर मुझे बड़ी भारी चिंता हो गई है एवं
आगे कोई बलवान अनर्थ न आकर उपस्थित हो जाय इस विचारसे मेरा चित्त बड़ा उथल पथल
हो रहा है । बस ऐसा कहते कहते नारायण स्वयंभू का मुख क्रूर हो गया नेत्र वक्र सूक्ष्म पड़ने लगे
राजाकी यह दशा देख माली मारे भयके कप गया एवं अपनी चतुरतासे उनके हृदयका भाव
समझ वह इसप्रकार विनय पूर्वक कहने लगा—

कृपानाथ ! आपके अलौकिक पुण्यके प्रभावसे मदन नामके वनमें भगवान विमलनाथका समव-
सरण आया है उन भगवानकी बड़े बड़े इन्द्र पूजा और स्तुति करते हैं । उन्हीं भगवानके पुण्यके

सर्वं भ्रमद्र मरमन्वितं । पुष्पितं फलितं चेति विना कालं नराधिप ! ॥ १३५ ॥ श्रुत्वा चैत्युत्थितश्चकी परोक्षविनयान्वितः । ददौ-
तस्मै महादामं संतुष्टो रत्नहाटकं ॥ १३६ ॥ दापयित्वा महानंददुर्दुमिं पत्तने निजे । जनान् द्वापयतिस्माशु स्वयंभू-
र्वितोतरे ॥ १३७ ॥ सप्तातुकः सपर्यायश्चचाळ नागरेऽसमं । वंदितुं जगतां नाथं नागमाख्या मागधः ॥ १३८ ॥ घटहोटक
संधाताः प्रचेलुर्विविधतिथयः । सूर्यसत्तिसमाकाराः सुरैर्भिन्नाभिभूरुहाः ॥ १३९ ॥ नागा नेदुः समुत्सुंगः पर्वता जंगमा तु घा । यार्दा-

प्रभावसे असमयमें भी वनके समस्त वृक्ष फल फलोंसे लदवदा गये हैं और जहां तर्हा घूमते हुए
भ्रमर गण उनपर गुंजार शब्द कर रहे हैं । १३०—१३५ । मालीके मुखसे ये आनन्द प्रदान
करनेवाले बचन सुन नारायण स्वयंभू एकदम सिंहासनसे उठकर खड़े हो गये । परोक्ष विनय की ।
एवं शुभ समाचार सुननेके कारण संतुष्ट हो तसे रत्न सुवर्णका बहुतसा दान दिया ॥ १३६ ॥
चित्तमें अत्यंत हर्षायमान राजा स्वयंभूने शीघ्र ही समस्त नगरमें आनंद भेरी बजवा दी और
भगवान् विमलनाथके समवसरणका आना समस्त पुर वासियोंको जना दिया । वह पुरायवान् स्व-
यंभू तीन लोकके नाथ भगवान् विमलनाथकी वंदना करनेके लिये शीघ्र ही हाथीपर सवार हो गया
तथा भाई परिवार और पुरवासियोंके साथ शीघ्र ही वनकी ओर चल दिया ॥ १३७—१३८ ॥ रंग
विरंगी कांतिसे शोभायमान हींस लगाते हुए अनेक घोड़े चलने लगे जो कि सूर्यके घोड़ोंके समान
जान पड़ते थे और अपने खुरोंसे वृक्ष और पर्वतोंको ढाह देनेवाले थे । बड़े बड़े ऊंचे हाथी
चलने लगे जो कि जंगम चलते फिरते पर्वत सरीखे जान पड़ते थे । तथा उनके गंडस्थलोंपर
सिंदूर लगा हुआ था और मद भी भरता था इसलिये वे हाथी ऐसे जान पड़ते थे मानो चमकती
हुई बिजलीसे शोभायमान ये मेघ ही हैं ॥ १३९—१४० ॥ उस समय हक्का, छक्का, हांको, हटाओ
इत्यादि शब्दोंसे समस्त आकाश मंडल व्याप्त था । अनेक प्रकारके वाजोंके शब्द हास्योंके शब्द
और आनंद पूर्वक बजाये गये तालोंके शब्द हो रहे थे इसलिये आपसमें एकको दूसरेका शब्द नहीं

अपलया युक्ता दानवर्षिरसान्विताः॥१४०॥ इका छक्का खैर्नूनं कर्णाभ्यां ध्रुयते नहि । नाना तूर्यारवै भूयो हास्येरानन्दतालकः॥१४१॥
 गजाश्चखरस्तभूतजोभिश्छादितो रविः । लक्ष्यतेस्म यतो मैव वक्ष्ये एकीयते भृशं ॥ १४२ ॥ एवं महा विभूत्या स गतवा-
 अकभृत्परः । दृष्टव्ये दूरतो वेगान्मानस्तंभं हिरण्यमयं ॥ १४३ ॥ उत्तारु गजान्द्रव्यो विद्युतो हर्षरोमधुः । पश्यन् पश्यन् महाशोभां
 मध्ये मत्वा जिनाधिपं ॥ १४४ ॥ त्रिः परीत्य त्रिधा भक्त्या स्तुत्वा गद्यादिभिः परैः । ननाम शौरिणा युक्तो मर्हयामास केशवः ॥
 सुनाई पड़ता था ॥ १४१ ॥ हाथी और घोड़ोंकी टापोंसे उठी हुई धूलिसे सूर्य एक दम ढक गया
 था दीख नहीं पड़ता था इसलिये दिनके अंदर भी रात जान पड़ती थी ॥ १४२ ॥ इसप्रकार
 विशाल विभूतिसे मंडित वह अर्धचक्री स्वयंभू भगवान् विमलनाथकी वंदनाके लिये चल दिया
 वनमें पहुंचते ही दूरसे ही उसे सुवर्णमयी मानस्तंभ दीख पड़ा भव्य जीव वह स्वयंभू शीघ्र ही
 हाथीसे उतर पड़ा । छत्र चमर आदि विभूतिसे वहींपर छोड़ दी । मारे आनंदके उसका शरीर
 पुलकित हो गया । समवशरणकी जहां तहांकी शोभा निरखता हुआ उसने भीतर प्रवेश किया ।
 भगवान् जिनेन्द्रकी तीन प्रदक्षिणा कीं महामनोहर गद्योंमें स्तुति की एवं अपने भाई धर्मनाथ
 वल्लभद्रके साथ भक्तिपर्वक जल आदि अष्ट द्रव्योंसे भगवान् जिनेन्द्रकी पूजा की ॥ १४२—१४३॥
 सबसे पहिले चक्रवर्ती स्वयंभू ने भोरोंके समूहसे व्यास जो कमल उनकी प्रभासे जाज्वल्यमान
 सुवर्णमयी भांडियोंमें रखे हुये जलकी धारासे भगवान् जिनेन्द्रकी पूजा की । अन्य सिद्धांतकारों
 की शंका—

जब जलकी एक बूंदके अन्दर भी असंख्याते जीव हैं ऐसा भगवान् अर्हतके मुखसे निकले
 शास्त्रोंमें कथन है तब धर्मके लिये जलकी स्थूल धारासे भगवान् जिनेन्द्रकी पूजा पुण्य कार्य कैसे
 समझा जा सकता है ? उत्तर, जिसप्रकार अग्निकी छोटीसी कणीसे भी बड़े २ काष्ठ भस्म हो
 जाते हैं उसीप्रकार भगवान् अर्हतकी पूजासे जायमान पुण्यसे बलवान् भी पापोंकी लड़ियां देखते

॥ १४५ ॥ भृंगराजिसमाश्वासपीताम्भोजोद्धरप्रभा-पूरितस्वर्णभृंगारप्रणालजलधारया ॥ १४६ ॥ (युग्म) अहो एकस्मिन् पयोवि-
वाचसंख्याता जंतवः प्रण्यगद्विस्तागमैरहं द्वक्त्रसंभूतैश्चैत तर्हि धर्माधि स्थूलजलधारया समर्हणं कथं संजाघटीत्याशंक्याहुर्निगमाः
॥ १४७ ॥ गणास्तानित्याहुः—अहं योज्जुतपुण्येन क्षीयन्ति पापराशयः । अंशेनेकेन घट्टश्च काष्ठनीव महागमाः ॥ १४८ ॥ अहो प्राचीनाहस्ति
भूयस्यपि सति पुनरसंख्यजंतुमयपयोधारोद्धृताहोराशिनिरयाद्विनास्पृशं न विदध्यादित्याहुराशंक्य निगमाः ॥ १४९ ॥ गणास्तानित्याहुः—

देखते नष्ट हो जाती हैं ऐसा शास्त्रका वचन है इसलिये जलकी धारासे भगवान् जिनेंद्रकी पूजा करना अनुचित नहीं । शंका—

आत्माके साथ प्रथमसे ही अगणित पापोंका संबन्ध विद्यमान है यदि असंख्यात जीव स्वरूप जलकी धारासे भगवान् जिनेंद्रकी पूजा की जायगी तो उससे जायमान पापोंका समूह नियमसे नरक ले जायगा इसलिये जलकी धारासे पूजा करना ठीक नहीं है ? उत्तर, जिसप्रकार संपूर्ण चन्द्रमामें थोड़ीसी कलंककी रेखा कुछ भी हानि नहीं करती—चंद्रमा स्वरूप ही मानी जाती है उसीप्रकार जलकी धारासे भगवान् जिनेंद्रकी पूजा करनेपर अनंत पुण्य परमाणुओंका बन्ध होता है उनके सामने जलकी धारासे पूजन करनेपर जो पाप होता है वह नहीं सरीखा होता है । विशेष पुण्य परमाणुओंके सामने थोड़ीसी पाप परमाणु अपना बल नहीं दिखा सकती अर्थात् वे पुण्य स्वरूप ही परिणत हो जाती हैं ऐसा शास्त्रका उपदेश है इसलिये जलकी धारासे भगवान् जिनेंद्रकी पूजा करना किसी प्रकारका अनर्थ नहीं कर सकता । फिर भी शंका—

अग्निकी छोटी चिनगारी भी जिनकी डालियोंपर भांति २ के पुष्प खिल रहे हैं ऐसे महामनोहर हरे दृत्तोंसे मंडित वनको देखते देखते खाख कर डालती है उसीप्रकार जलकी धारासे पूजन करनेपर उससे जायमान थोड़ासा पाप भयंकर अनर्थ कर सकता है इसलिये पापको उत्पन्न

अर्हणात्पुण्यराशीनामान्त्यात्पलेशतः । कियति ग्लावि संपूर्णे लक्ष्मलेश इवागमाः ॥ १५० ॥ अहो चित्रमानुलेशाऽपि किरलया-
द्युत्तरीर्णाधिकस्वरकुलुमचयहरिततमस्रंमंडितं चनं किं न प्रशोषत इत्याशंबयाहुर्निगमाः ॥ १५१ ॥ गणास्तानित्वाहुः—
वड्वावह्निना नूनं प्रौढजालेन धारिधिः । लोलत्कल्लोलगंभीरोऽपायोति न कदा अतं ॥ १५२ ॥ तथा स्वल्पांहुसा
पुण्यवारिधिर्नैव लंघ्यते । अंतरंगविधिः प्रायो बहिरंगाद्वली मतः ॥ १५३ ॥ कष्टो गार्हस्थ्यविशेषनाहः प्रणः ॥
भगवत्पदाभ्योजाधयतः स्यात् । धर्मास्पदे यदकार्यंस्तत्सलु वज्रवज्रायते तदुच्यपोहनं दुष्करमित्याशंबयाहुर्निगमाः

करनेवाली जलकी धारासे भगवान् जिनेंद्रकी पूजा करना अनुचित है ? उत्तर, बड़वानल जातिकी
अग्नि बड़ी प्रौढ़ और तीव्र होती है और वह समुद्रमें उत्पन्न होती है ऐसी कवि समय प्रख्याति
है वह तीव्र अग्नि भी समुद्रकी रंचमात्र भी हानि नहीं करती उसके विद्यमान रहते भी भूक भूका-
ती हुई तरंगोंसे सदा गम्भीर बना रहता है उसीप्रकार जलकी धारासे भगवान् जिनेंद्रकी पूजा
किये जाने पर पुण्यका तो अधिक संचय होता है और पापका उपार्जन बहुत थोड़ा होता है इसलिये
वह थोड़ासा पाप विशाल पुण्यरूपी समुद्रको लांघ नहीं सकता यह न्याय भी है कि अन्तरङ्गविधिसे
बहिरङ्ग विधि बलवान् होती है । पुण्य अन्तरङ्ग विधि है और पाप बहिरंग विधि है बहिरंग विधि
स्वरूप पाप अन्तरङ्ग विधि स्वरूप पुण्यको बाधा नहीं पहुँचा सकता इसलिये जलकी धारासे भग-
वान् जिनेंद्रकी पूजाका निषेध नहीं किया जा सकता । फिर भी शंका—

गृहस्थाश्रमके कार्योंके करनेसे जो पाप उत्पन्न होगा उसका विनाश भगवान् जिनेंद्रके चरण
कमलोंकी सेवासे हो सकता है परन्तु धर्मके स्थानमें जो पातक किया जायगा वह वज्रसे भी
अधिक कठिन होगा उसका नाश न हो सकेगा इसलिये जल धारासे पूजन करनेपर जो भी पाप
उत्पन्न होगा वह भी मिट नहीं सकता इसलिये जलकी धारासे पूजा नहीं करनी चाहिये ? उत्तर,

॥१५४॥ तानित्याहर्गणाः—ऋषीणां च मुनीनां च यतीनां च समर्हणं । स्मृतिध्यानमयो भावेनैतिर्भगवतो मतं ॥ १५५ ॥
गार्हस्थ्योत्पन्नपापस्य प्रणाशः पूजादिभिः । अन्यथा वज्रलेपः स्यादतो मार्गो न लुप्यते ॥ १५६ ॥ भवो सांप्रतमगर्वाखिलं
भवद्भिर्भगवदनुचरैर्यच्च तदच्छमनुस्मृत्यः । वयं भगवत्पुत्राः सानन्दाः स्मोऽतोऽनुवादेन । दसा तमिति शृङ्गिणामर्हण
भगवान् जिनेन्द्रका सिद्धांत है कि ऋषी मुनि और यतियोंकी भलेप्रकार पूजन उनके गुणोंका स्म-
रण ध्यान आर उत्तम परिणामोंसे उन्हें नमस्कार करना चाहिये । इसी कारण जल धारासे भग-
वान् जिनेन्द्रकी पूजा करना अनुचित नहीं ॥ १४४—१५६ ॥ पुनः शंका—

बड़े ऋषि जो कि रात दिन घोर तपोंको तप पुण्य संचय किया करते हैं यदि वे जलसे भग-
वान् जिनेन्द्रकी पूजा करें तब तो यह मान लिया जा सकता है कि जलसे पूजन करने पर जो पाप
होगा उसे मुनिगण नष्ट कर सकते हैं परन्तु गृहस्थ जो कि रात दिन पापोंका संचय करते रहते
हैं यदि वे जलसे भगवान् जिनेन्द्रकी पूजा करेंगे तो और भी पापका बोझा उनपर लदेगा उनका
पापोंका भार हलका नहीं हो सकता इसलिये हिंसा जन्म पातकके भयसे जब मुनिगण जलसे
पूजा नहीं करते तब गृहस्थोंको तो जलसे पूजा करनी ही नहीं चाहिये इसलिये जलसे पूजाकी जो
पुष्टि की गई है वह मिथ्या है ? उत्तर, मुनिगण समस्त प्रकारके आरम्भके त्यागी हैं इसलिये
शास्त्रमें भगवान्की पूजा लिये उन्हें आज्ञा नहीं किन्तु गृहस्थ घरमें फसा रहनेके कारण अनेक
प्रकारके आरंभोंको करता रहता है और उन आरंभोंसे अनन्त पापोंकी उत्पत्ति होती रहती है ।
उन पापोंका नाश भगवान् जिनेन्द्रकी पूजा आदिसे ही होता है इसलिये गृहस्थ अवस्थामें उत्पन्न
होने वाले पापोंकी शांतिके लिये भगवान् जिनेन्द्रकी पूजा करना आवश्यक है । यदि पूजन आदिसे
उन पापोंकी शांति न की जायगी तो वह पाप बड़ा पाप हो जायगा उसका नाश जल्दी नहीं हो

नोपपनोपयते ॥ १५७ ॥ इति दुष्यं ॥ १५८ ॥ स्वच्छा धारया राउरे कल्प शान्तिः प्रजायते । इदं वाङ्मिताथसिस्तः स्वीक्रियतेऽर्थतः ॥ १५९ ॥ (संबंधगुप्तमहः) अमृतेह शसिद्वयं चपुषः केशवः शिवः । चंदनेश्चंदनैर्हर्महयामास स्वा पतिः ॥ १६० ॥ (समास-गुप्तमहः) अष्टमी चन्द्रसंकाशस्तंदुलैः सुदुर्ध्वलम् । अपोमर्हद्विजितं चको भूरिभूते च भक्तिः ॥ १६१ ॥ मन्दारकुसुमव्रातेरिया न सकेगा इसलिये पूजा आदिका मार्ग जो शास्त्रके अंदर पुष्ट किया गया है उसको न लोपना चाहिये इसलिये जल आदिसे जो भगवान् जिनेन्द्रको पूजा की जाती है वह पापोंको उत्पन्न नहीं करता किन्तु पुण्योत्पादक होती है । पुनः शंका—

भगवान् जिनेन्द्रके भक्तोंका यह कहना है कि हमें भगवान् जिनेन्द्रका स्वरूप वा उनके गुणोंका स्मरण करनेसे ही आनन्द प्राप्त हो जाता है इसलिये इस विषयमें हमारा (शंकाकारका) यही आस लक्ष्य है कि जब गुणोंके स्मरण करनेसे ही आनन्द प्राप्त हो सकता है तब जल आदिसे पूजाका करना व्यर्थ है इसलिये भगवान् जिनेन्द्रकी जो जलको धारासे पूजा की जाती है वह हिंसा-को कारण होनेसे उपयुक्त सिद्ध नहीं हो सकती ? उत्तर—जलको स्वच्छ धारासे भगवान् जिनेन्द्रका पूजन करने पर राज्यमें विघ्नोंकी शान्ति होती है तथा इसी लोकमें अभीष्ट अर्थको प्राप्ति होती है इसलिये जलको धारासे भगवान् जिनेन्द्रकी पूजा की जाती है । इसप्रकार अर्धचक्रो स्वयंभूने जल-को धारासे भगवान् जिनेन्द्रको पूजा की ॥ १५६—१५६ ॥ कल्याण स्वरूप अर्धचक्रो उस स्वयंभूने इस लोक और परलोकमें शरीरके कल्याणकी सिद्धिके लिये शीतलता प्रदान करनेवाले चन्दन द्रव्य-से भगवान् जिनेन्द्रकी पूजा की ॥ १६० ॥ जो तंदुल अखण्ड थे और उज्ज्वलतामें अष्टमीके चंद्रमा-की तुलना करते थे उन तंदुलोंसे स्वयंभू नारायणने विशाल विभूतिको प्राप्ति की अभिलाषासे भक्ति पूर्वक भगवान् जिनेन्द्रकी पूजा की ॥ १६१ ॥ समस्त प्रजाकी रक्षा करनेवाले उस चक्रवर्तीने जिनका रस भन्कार करते हुए भोरोंसे पीया गया है और जो अत्यन्त मनोहर हैं ऐसे मन्दार जातिके

जोनप जिने । गुज्जल्याल्लसपीतमकरंदमनोरमैः ॥ १६२ ॥ चर्दामश्वाकधीधोरं घृतपूरादिजातिभिः । अपीपूजदसौ सर्वसाम्रा
ज्यस्य विभूतये ॥ १६३ ॥ इवलंतं मेरुप्रस्थं वा पतंगं वा पुरोर्हतः । चर्करोतिस्म लोकावः केवलावगमास्ये ॥ १६४ ॥ चन्दनागुष्कपूर
पूरधूपमचोक्षिपत् । कर्मणां हानये राजा गन्धपूरितादक्षय्यं ॥ १६५ ॥ त्वाःकृतशोऽसौ समुत्तार्य लोकेशस्य पुरः पतिः । फलानि श्रीफ-
लादीन्यमृमुचत्सत्फलास्ये ॥ १६६ ॥ जन्ममृत्युजरादानां दुःखानां हानिहेतवे । स भावो भवनाशाय महावं प्रांजलिर्ददौ ॥ १६७ ॥
संपूज्य नरसुखकोष्ठे भ्रातरी तस्यतुः शुभौ । भूत्वा तत्त्वामृतं सीरी पप्रच्छेति जिने नमन् ॥ १६८ ॥ हे नाथ ! जगतां बन्धो ! कमांदि

कल्प वृक्षोंके पुष्पोंसे भगवान् जिनेन्द्रकी पूजा की ॥ १६२ ॥ उत्तम बुद्धिका धारक वह नारायण स्वयंभू समस्त
साम्राज्य विभूतिकी प्राप्तिकी अभिलाषासे उत्तमोत्तम नैवेद्यांसे पूजा करने लगा जो नैवेद्य चौर
और घृत आदि अतिशय उत्तम पदार्थोंसे तैयार किये गये थे ॥ १६३ ॥ अर्धचक्रकी स्वयंभूने केवल
ज्ञानकी प्राप्तिकी अभिलाषासे दीपकसे भगवान् जिनेन्द्रकी पूजा की, जो दीपक ऐसा जान पड़ता
था मानो सुवर्णमयी मेरु पर्वतका यह पत्थरका खण्ड है अथवा यह देदीप्यमान सूरज है ॥ १६४ ॥
जो धूप चन्दन अगुरु और कपूरसे तैयार की गई थी ऐसी धूपसे समस्त कर्मोंके नाशकी अभि-
लाषासे राजा स्वयंभूने भगवान् जिनेन्द्रकी पूजा की उस धूपकी इतनी उत्कट सुगन्धि थी कि उससे
समस्त दिशाओंका मंडल महक उठा था ॥ १६५ ॥ अर्धचक्रकी स्वयंभूने उत्तम फल मोक्ष फलकी
प्राप्तिकी अभिलाषासे श्रीफल आदि फलोंसे भरी रकेवीको तीन बार भगवान् जिनेन्द्रके सम्मुख
उतारी और उन उत्तम फलोंसे भगवान् जिनेन्द्रकी पूजा की ॥ १६६ ॥ अन्तमें जन्म मरण आदि
और वृद्धावस्था आदि दुःखोंकी शांतिकी अभिलाषासे संसारके विनाशार्थ चक्रवर्ती स्वयंभूने हाथ जोड़
भगवान् जिनेन्द्रको महार्घ दिया अर्थात् महार्घसे भगवान् जिनेन्द्रकी पूजा की ॥ १६७ ॥ वस इस
प्रकार आठो द्रव्योंसे भक्तिपूर्वक भगवान् जिनेन्द्रकी पूजा कर वे दोनों भाई धर्म और स्वयंभू
समवसरणके नरकोठेके अन्दर बैठ गये । भगवान् जिनेन्द्र जिस धर्माश्रितका उपदेश दे रहे थे उसे

वज्र ! कामसुट् । रुड्विनाशिन् कथं जीवो याति स्वर्गं सुखप्रदे ॥ १६६ ॥ छेदनादिमहादुःखसंकुले श्वभ्रसागरे । पतत्येव कथंका-
वद त्वं शिवनायक ! ॥ १७० ॥ कुतस्तिर्यग्भवे जीवो मानुषत्वं श्रयेत्कथं । पुरुषत्वं च नारीत्वं जायते केन कर्मणा ? ॥ १७१ ॥ अल्पायु
र्नाथ ! ब्रह्मायुः कथं जीवः प्रजायते । भोगहोनः कथं देव ! तत्संयुक्तः कथं वद ॥ १७२ ॥ सौभाग्यं चाथ दीर्भाग्यं कथं संपद्यते नृणां
बुद्धिमान् विबुद्धिः केन कर्मणा जायते नरः ॥ १७३ ॥ पण्डितश्च महामूर्खो धीरश्रीः कातरस्तथा । लक्ष्मीयुक्तो विलक्ष्मीकः कथं

भक्ति पूर्वक सुना एवं अन्तमें भगवान् जिनेन्द्रको भक्तिपूर्वक नमस्कार कर बलभद्र धर्मने इसप्रकार
भगवान् जिनेन्द्रसे पूछा—

भगवन् ! आप तीनों लोकके बंधु हैं । कर्मरूपी पर्वतको छिन्न भिन्न करनेवाले वज्र हैं ।
कामदेवको नष्ट करनेवाले हैं । समस्त प्रकारके रोगोंके विनाशक हैं कृपाकर बताइये यह जीव
कैसे तो अनेक सुखोंको प्रदान करनेवाले स्वर्गके अन्दर जन्म लेता है और कैसे छेदन भेदन
आदि अनेक प्रकारके दुःखोंसे व्याप्त नरक रूपी समुद्रमें गिरता है ? प्रभो ! आप मोक्ष लक्ष्मीके
स्वामी हैं इसलिये कृपाकर कहें ॥ १६८—१७० ॥ कृपानाथ ! कैसे तो यह जीव त्रियञ्च योनिके
अन्दर जन्म लेता है ? कैसे यह मनुष्य योनिके अन्दर जन्म लेता है ? मनुष्य योनिके अन्दर
भी किन्तु कर्मके उदयसे इसे मनुष्य होना पड़ता है और कैसे स्त्री हो जाता है । बहुत जीव थोड़ी
आयुके धारक दीख पड़ते हैं और बहुतसे अधिक आयुवाले दीख पड़ते हैं इसलिये कृपया कहिये
कि— कैसे तो थोड़ी आयुवाले जीव होते हैं और कैसे बहुत आयुवाले जीव होते हैं । संसारमें
बहुतसे जीव ऐसे हैं जिन्हें कुछ भी भोग सामग्री प्राप्त नहीं और बहुतसे ऐसे हैं जिन्हें नानाप्रकार
के भोग प्राप्त हैं कृपाकर बताइये कि कैसे तो मनुष्य भोग रहित उत्पन्न होते हैं और कैसे भोग
सहित उत्पन्न होते हैं ? संसारमें किस कारणसे मनुष्योंका सौभाग्य होता है और किस कारणसे
दुर्भाग होता है ? कैसे मनुष्य बुद्धिमान होते हैं और कैसे निर्वुद्धि होते हैं ? कैसे पण्डित और

जायेत मानुषः ॥ १७४ ॥ ज्ञान्यते शुभाः पुत्रा मेक्ष्यते कथं विप्रो ! नेजोत्पन्ने गणाधीश ! कर्मणा केन सत्सुताः ॥ १७५ ॥
 राश्यां धा वधिराः केन कर्मणा काय सर्ववित् । सुकरोरदिभोरोगै पीडिताश्च कुतो वद ॥ १७६ ॥ परकृत्यकरा जीवा दरिद्राः केन
 कर्मणा । नारोगा अतिरोगाश्च मूकास्तु पंगवाः कथं ॥ १७७ ॥ भूरिपुत्रा विरूपाश्च वेदनासहिताः कथं । निर्वेदाश्चापि भो
 ईश ! जायते मानुषा वद ॥ १७८ ॥ संवोभयति पञ्चाक्ष एकाक्षः केन कर्मणा । कोष्ठयुक्ता नरा नाथ ! संपद्यते कथं भवे ॥ १७९ ॥
 अल्पसंसारका जीवा भूरिसंसारकास्तथा । शिवभाजो भवत्येव वद त्वं केन हेतुना ॥ १८० ॥ बलशून्योलूकमार्जारा श्वानो धवा
 क्षाश्च गर्दभाः । चाण्डालाः केन जायते कर्मणा वद संप्रति ॥ १८१ ॥ अज्ञानतमसो भानो ! ज्ञानमूर्ते ! शिवप्रद ! भव्यौघकुमुदज्जित-
 चन्द्रमः ! कमलापते ॥ १८२ ॥ कथय त्वं मयांक्तं यद्विलंबं दयानिधे ! भव्याः शुश्रूषवः संति विपाकं कर्मणां घनं ॥ १८३ ॥ व्याजहार

मूर्ख, कैसे धीर वीर और डरपोंक एवं कैसे धनी और निर्धनी होते हैं ? प्रभो ! किस कारणसे
 तो संसारमें शुभ पुत्रोंकी प्राप्ति होती है किस कारणसे वे मर जाते हैं तथा जो श्रेष्ठ पुत्र जीते हैं
 वे किस कारणसे जीते हैं ? भगवन ! आप यह भी कहें कि किस किस कर्मके उदयसे मनुष्य
 रतोंदवाले वधिर कंठ और उदर आदिके अनेक रोगोंसे पीड़ित परोपकारी और दरिद्रो, अत्यन्त
 रोगवाले और निरोग मूक (गूंगे) लंगड़े, अत्यन्त रूपवान और कुरूप, वेदनाओंके भोगनेवाले
 और वेदना रहित पंचेन्द्रिय और एकेंद्री कोढ़ी थोड़े दिन संसारमें रहनेवाले और बहुत दिन पर्यन्त
 संसारमें रहनेवाले एवं मोक्ष प्राप्त करनेवाले होते हैं ? तथा बगुली, उल्लू, बिल्ली, कुत्ता, काक, गधे
 चाण्डाल आदि जीव किस कर्मके उदयसे होते हैं ? हे नाथ ! आप अज्ञानरूप अन्धकारके नाश
 करनेके लिये साक्षात् सूर्य समान हैं । ज्ञानकी मूर्ति स्वरूप हैं । मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं । भव्य
 रूपी रात्रिविकासी कमलोंके प्रकाश करनेके लिये चन्द्रमा स्वरूप हैं । लक्ष्मीके स्वामी हैं । हे दया
 निधि ! मैंने जो कुछ पूछा है कृपाकर शीघ्र उसका उत्तर दीजिये उपस्थित ये समस्त भव्य जीव
 कर्मोंके विचित्र विपाक फलके जाननेके लिये लालायित हो रहे हैं ॥ १७१-१८३ ॥ बलभद्र धर्मका

तदा देवो वाण्या गंभीरया बलं । गर्जद्गुधनखाशंकां दधत्या केकिमुदया ॥ १८४ ॥ साधु पृष्टं त्वया वत्स ! भव्यानां सुहितं मतं ।
 शृणु दत्तावधानः । स्वप्नं निगदाभिः समासतः ॥ १८५ ॥ हिंसाकरा असत्या ये परस्त्रीधनतस्कराः । मायाहङ्कारसंयुक्ता सदा छिद्र
 प्रकाशकाः ॥ १८६ ॥ कृतघ्नाः पापिनः श्वभ्रं यांति दुःखार्णवं प्रति । दानिनो देवपूजार्हास्तापसाश्च जितेंद्रियाः ॥ १८७ ॥
 निर्मला मनसा । वत्स ! मृदवो माधुरीरसाः । गुरुभक्ता नरा ये वै स्वर्गे यांति शिवारुणदे ॥ १८८ ॥ स्वकृत्यार्थं च
 कुर्वन्ति स्नेहं ये क्रूरदर्शनाः । अंतर्दुष्टाशयाः सेव्या बहुमायाविडम्बिताः ॥ १८९ ॥ बह्मासिनो हि मूढाश्च बहुस्वप्ना-

ऐसा प्रश्न होनेपर भगवान् जिनेन्द्र गंभीर वाणीसे उसका उत्तर देने लगे । भगवान् जिनेन्द्रकी वाणी उस समय इतनी गंभीर थी कि वह गर्जते हुए मेघकी ध्वनिकी शंका उत्पन्न करती थी और उसके सुनने मात्रसे मयूर गण अतिशय आनंदका अनुभव करते थे । भगवान् जिनेन्द्र कहने लगे प्रिय वत्स ! तुमने बहुत ठीक पूछा । इसप्रकारके उपदेशको सुनकर भव्य लोग अपना वास्तविक हित संपादन कर सकते हैं, ध्यान लगाकर सुनो किस कर्मका क्या फल है मैं संक्षेपसे कहता हूँ—

जो मनुष्य हिंसा करने वाले हैं । असत्य बोलने वाले हैं । पराई स्त्री और पराये धनके चुराने वाले हैं । छल छिद्र कपट और अहंकारके पुञ्ज हैं । सदा पराये छिद्र प्रकाशने वाले हैं, कृतघ्न और पापी हैं वे दुःखोंके समुद्र स्वरूप नरकमें जाते हैं किन्तु जो मनुष्य दानी हैं । सदा भगवान् जिनेन्द्रकी पूजा करनेवाले हैं । तपस्वी हैं इन्द्रियोंके जीतनेवाले हैं । निर्मल चित्तके धारक हैं । कोमल परिणामो और मधुर बोलने वाले हैं और निर्ग्रन्थ गुरुओंके भक्त हैं वे मनुष्य अनेक कल्याणोंके स्थान स्वर्गमें जाकर जन्म धारण करते हैं ॥ १८४—१८८ ॥ जो मिथ्यादृष्टि जीव अपने प्रयोजन के लिये दूसरेके साथ स्नेह जनाते हैं । अन्तरंगका अभिप्राय जिनका दुष्ट रहता है । सदा ईर्ष्या करते रहते हैं । छल छिद्र कपटमें सदा रंगे रहते हैं । बहुत खानेवाले होते हैं तथा बहुत सोनेवाले और आलसी होते हैं वे मूढ़ पुरुष तिर्यंच गतिमें जाकर जन्म धारण करते हैं जहाँपर कि उन्हें

लब्धा मृशं । तिर्य्यक्स्ते भवन्त्येव नानादुःखसमन्विताः ॥ १६० ॥ नातिलोभा विवेकाढ्या दयादानरता ध्रुवं । अन्यनिन्दां न कुर्वन्ति
 मानवास्ते भवन्त्यहो ॥ १६१ ॥ सत्यशौचवती नारी कामसंतोषिणी शुभा । स्थिरांतःकरणा धर्मबुद्धिः सा नरतां व्रजेत् ॥ १६२ ॥
 प्रायो रामासु संसक्तश्चपलः कामचेष्टया । धूर्तश्च लोसमन्वेपी स्त्रीत्वं स पुरुषो व्रजेत् ॥ १६३ ॥ पशूनां नासिकाकर्णच्छेदको दुष्ट
 मानसः । संस्कारी याति षण्दत्त्वं विभोगत्वं नराधमः ॥ १६४ ॥ जीवन् वै आस्यत्येव मीढान् बभ्रज्यते च यः । विषघाती महासेनाः
 स नरोऽल्पायुषी भवेत् ॥ १६५ ॥ जन्तुरक्षणसंलीनः सर्वोपकृतिकारकः । यः परेषां शुभाकांक्षी बह्वायुर्वो भवीति सः ॥ १६६ ॥
 अनेक प्रकारके दुःखोंका सामना करना पड़ता है ॥ १६६—१६० ॥ जो महानुभाव विशेष लोभी
 नहीं होते विवेकी दयावान और दानी होते हैं तथा किसीकी भी निन्दा नहीं करते वे महानुभाव
 मनुष्य योनिके अन्दर जन्म धारण करते हैं ॥ १६१ ॥ जो स्त्री सत्य बोलने वाली और शौच धर्म-
 का पालन करने वाली होती है । विशेष कामिनी न होकर संतोष रखनेवाली होती है । शुभ होती है
 जिसका अन्तःकरण चल विचल न होकर स्थिर रहता है तथा सदा जिसकी बुद्धि धर्ममें दृढ़ रहती
 है वह स्त्री अपने स्त्रीलिंगको छेदकर पुरुषलिंग धारण करती है ॥ १६२ ॥ जो पुरुष स्त्रियोंमें
 विशेष आसक्ति रखता है । चंचल होता है सदा कामचेष्टाओंके करनेमें ही परम आनन्द मानता
 है । धूर्त होता है और स्त्रियोंकी सुध लगानेमें रहता है वह पुरुष नियमसे दूसरे भवमें स्त्री होता
 है ॥ १६३ ॥ जो नीच पुरुष पशुओंके नाक कान आदि अङ्गोंको छेदता है । सदा मनमें दुष्टभाव
 रखता है और निरन्तर अपने शरीरका संस्कार करता रहता है वह नीच पुरुष संसारमें नपुंसक
 होता है एवं नपुंसक होनेसे वह किसी भी प्रकारके भोगोंको नहीं भोग पाता ॥ १६४ ॥ जो मनु-
 ष्य जीवोंको अनेक प्रकारके आस देता है । पक्षियोंके रहनेके घोंसलोंको तोड़ता फोड़ता है एवं
 विष खाकर प्राण तजता है वह अत्यंत पापी मनुष्य थोड़ी आयुका धारक होता है ॥ १६५ ॥ जो
 महापुरुष सदा जीवोंकी रक्षामें तत्पर रहता है । दूसरोंका सदा उपकार करता रहता है और दूसरे
 जीवोंका शुभ ही विचारता रहता है वह मनुष्य विशेष आयुका धारक होता है ॥ १६६ ॥ धनके

सति द्रव्ये ददाति नो चेद्ददाति विचिंतयेत् । किं कृतं हि मया चेत्यं जानता बालबुद्धिना ॥ १६७ ॥ ददतो धारयत्येव परेषां रतिनाश-
कम् । निर्मोहः स दरिद्री च हर्षारोगेण पीडितः ॥ १६८ ॥ विनयाढ्यः सदा शांतो जिनाष्टाप्रतिपालकः । कस्याप्यदुःखदो यस्तु
स यशस्वी भवेद्विद्व ॥ १६९ ॥ पाठयति पठति ये वाङ्मयं द्वेषवर्जिताः । उत्कोचादि न गृह्णाति तेषां स्याद् विमला मतिः ॥ २०० ॥
गुणिनं च तपोयुक्तं विद्याधरं यशस्विनं । क्रुधावगणयत्येव स निर्बुद्धिः प्रजायते ॥ २०१ ॥ भाक्तिको देवगुर्वोश्च पापपुण्यविदः
स्फुटं । जिनव्यानाशयो यस्तु भवेत्सोऽपि विदांवरः ॥ २०२ ॥ यस्य चित्तेऽस्ति नास्तिक्यं जीवधर्मादिभावतां । मन्यते नैव मोघः स
विद्यमान रहते भी जो पुरुष कोड़ी बराबर भी किसीको नहीं देता यदि किसीको कुछ देता भी
है तो "हाथ सब कुछ जानकर भूढ़ धन मैंने क्या कर डाला जो अपना धन देदिया" ऐसा पश्चा-
ताप करता है । जो महानुभाव धन देना चाहते हैं उन्हें भी दान देनेसे रोकता है वह मनुष्य संसार-
में भोगरहित दरिद्री एवं हर्षा नामके विशेष रोग (मृगी) से पीड़ित होता है ॥ १६७—१६८ ॥
जो महानुभाव विनय शील होता है । सदा शांत रहता है । भगवान् जिनेन्द्रकी आज्ञाका पालन
करने वाला होता है और किसीको भी दुःख देना नहीं चाहता वह संसारमें यशस्वी पुरुष माना
जाता है । सारा संसार उसके यशका गान करता है ॥ १६९ ॥ जो महानुभाव द्वेष रहित होकर
जैन शास्त्रोंको पढ़ाते हैं और स्वयं भी पढ़ते हैं तथा पढ़ने पढ़ानेमें किसी प्रकारकी द्रव्यकी अभि-
लाषा नहीं रखते वे मनुष्य निर्मल बुद्धिके धारक माने जाते हैं ॥ २०० ॥ जो पुरुष क्रोध कषायके
आवेशमें आकर गुणी तपस्वी विद्यावान् और यशस्वी मनुष्योंका अनादर करते हैं वे मनुष्य नि-
र्बुद्धि पागल होते हैं ॥ २०१ ॥ जो महापुरुष देव और गुरुओंके भक्त रहते हैं । पाप और पुण्यका
स्वरूप जानते हैं एवं भगवान् जिनेन्द्रके गुणोंके चिंतनमें ही चित लगाते हैं वे मनुष्य संसारके
अंदर विद्वान् होते हैं ॥ २०२ ॥ जो मनुष्य नास्तिक होता है जीव धर्म अधर्म आदि किसीको
भी नहीं मानता वह पुरुष निन्दित हृदयका धारक मूर्ख माना जाता है ॥ २०३ ॥ जो निर्दयी

स्यामूढः कुत्सिताशयः ॥ २०३ ॥ मृगहंसशुकादीनां ग्रहणं कृत्वा सुपंजरे । रक्षति यस्तु पापीयान् कातरः स्याद्भवे भवे ॥ २०४ ॥
जीवानां पालने शक्तः परपीडाविनाशकः । वृमुक्षितशुभाध्वंसी भवेद्धीरः स पुण्यभाक् ॥ २०५ ॥ असहृदये मनो भावो दाने संवो
भवीति वै । ईषदानप्रभावेण लक्ष्मीधांश्च स जायते ॥ २०६ ॥ पूर्वं कृत्वा मनस्तापं वितनोति यतस्ततः । लब्धपद्मा च वृद्धत्वे
निर्धनोऽभिभवेन्नरः ॥ २०७ ॥ पशूनां पक्षिणां चैव शावकांश्चासयति ये । गृह्णन्ति परधितं वा स्युः सुतास्तस्यैव च ॥ २०८ ॥
भवत्यथ विनश्यति ऋणशत्रुप्रभावतः । तदभावाद्भवत्येव पुत्राः परमसुन्दराः ॥ २०९ ॥ अभ्रुतं कथयत्येव वधिरः स प्रजायते ।
मनुष्य मृग हंस तोता आदि दीन पक्षियोंको पकड़कर पींजरेमें बंद रखते हैं उनको पालते पोषते
हैं वे पापी भव भवमें डरपोंक होते हैं ॥ २०४ ॥ जो पुण्यात्मा जीवोंकी रक्षा करनेमें दत्त चित्त
रहता है । दूसरेका दुःख दूर करना अपना कर्तव्य समझता है । जो प्राणी चुधासे व्याकुल
होते हैं उनकी चुधाको दूर करता है वह पुण्यवान् पुरुष संसारमें वीर होता है ॥ २०५ ॥
धनको अपवित्र पदार्थ मानकर जिस महानुभावका हृदय उसके दान करनेकेलिये लालायित रहता
है वह महापुरुष थोड़े दानके प्रभावसे ही पूर्ण लक्ष्मीका पात्र बन जाता है ॥ २०६ ॥ जो मनुष्य
पहिले तो किसी कारणसे दान दे देता है किन्तु पीछेसे बड़ा दुःखी होता है पछितावा करता है ।
उस मनुष्यकी वृद्धावस्थामें पासमें रहनेवाली लक्ष्मी चली जाती है । वह निर्धन हो जाता है ।
और अनेक प्रकारके उसे तिरस्कार सहने पड़ते हैं ॥ २०७ ॥ जो दुष्ट पुरुष पशु और पक्षियोंके
वच्चोंको त्रास देते हैं और दूसरेके धनको हरण करते हैं उनके पुत्रोंकी प्राप्ति नहीं होती ॥ २०८ ॥
अथवा दूसरेका धन अपहरण कर जिन्होंने नहीं दिया वे मनुष्य ऋणी कहे जाते हैं उस ऋणरूपी
शत्रुके प्रभावसे कदाचित् पुत्र हों भी तो वे मर जाते हैं किन्तु जो मनुष्य दूसरोंके ऋणी नहीं होते
और न पशु पक्षियोंके वच्चोंका त्रास देते हैं उन मनुष्योंके अत्यन्त रूपवान् पुत्र होते हैं ॥ २०९ ॥
जो मनुष्य बिना ही सुने कुछका कुछ दूसरेका दोष बोल देता है वह वधिर—वहिरा होता है तथा
जो बिना ही देखे यह कहता है कि मैंने अमुकका अमुक दोष देखा है तथा रोकनेपर भी वह उस

अदृष्टं हि मया दृष्टं परछिद्रं सुभाषते ॥ २१० ॥ वार्यमाणोऽपि मूढः स जात्यंधो नियतं भवेत् । उत्तमोऽपि सुरामांसभक्षणं कुरुते यकः ॥ २११ ॥ अजीर्णोऽरोगो स नीचानां का गतिः परा । मुनिं दृष्ट्वा मदेनांधो निष्ठोऽयं कुरुते यकः ॥ २१२ ॥ रक्तपित्ती च कुण्ठो स जायते कर्मपाकतः । जात्यहंकारसंशक्ताः कृतघ्नाः स्वामिद्रोहिणः ॥ २१३ ॥ परकार्यकरा निःस्वास्ते भवन्ति भवे भवे । विश्वासघातिनो जीवा रोगाकांक्षाश्च कुत्सिताः ॥ २१४ ॥ कृपाहीना मनःशुद्धाः परदाराधनादिषु । भैषज्यदायिनो जीवा नीरोगा धोभवन्ति ते ॥ २१५ ॥ सूक्ष्मभेदादिसिद्धांतं श्रुत्वा निन्दति मूढधीः । स स्यान्मूकोऽत्र संसारे विचित्रा कर्मणां गतिः । व्रतशूलं यमं नोत्वा मुच्यन्ति विषयादिताः । तेषां कंषादयो देहे सम्पद्यन्ते न संशयः ॥ २१६ ॥ पक्षिपक्षं हि यो दोषको प्रगट करता है वह मूढ मनुष्य नियमसे जन्मसे ही अन्धा होता है । जो मनुष्य उत्तम कुल में उत्पन्न होकर भी शराव मांस आदिका भक्षण करते हैं वे अजीर्ण रोगसे ग्रस्त उत्पन्न होते हैं फिर जो नीच कुलमें उत्पन्न होनेवाले हैं और शराव मांस आदिका भक्षण करते हैं उनको तो बात ही क्या है उन्हें तो और भी अनेक रोग सताते हैं । जो पुरुष मुनिराजको देखकर मदोन्मत्त हो उन पर थूकते हैं वे उस निन्द्य कर्मकी कृपासे खून फिसाद पीलिया और कोढ़से ग्रस्त होते हैं । जो मनुष्य वृथा अपनी जातिका अहङ्कार करनेवाले हैं कृतघ्नी और स्वामीद्रोही हैं वे दास होते हैं और भवर में उन्हें दरिद्रताका दुःख भोगना पड़ता है । जो मनुष्य विश्वास घाती हैं वे मनुष्य अनेक रोगोंसे व्याप्त और निन्दित होते हैं ॥ २१०—२१४ ॥ किन्तु जो मनुष्य दयालु होते हैं परस्त्री और पर धनके अन्दर चित्त शुद्ध रखते हैं एवं दूसरे रोगी जीवोंको औषध प्रदान करते हैं वे जीव संसारमें नीरोग होते हैं कोई भी रोग उन्हें नहीं सताता ॥ २१५ ॥ जो दुष्ट पुरुष अत्यंत गहन जैन सिद्धांतको श्रवण कर उसकी निन्दा करता है वह मूक-गूगा होता है क्योंकि कर्मोंकी गति बड़ी विचित्र है हर एक मनुष्य कर्मोंकी गतिका ज्ञान नहीं कर सकता ॥ २१६ ॥ (क) जो पुरुष व्रत शील यम आदिका नियम आदि लेकर विषयोंके लोलुपी हो उन्हें छोड़ देते हैं यह निश्चय है उनके शरीरमें कम्प आदि रोग उत्पन्न होते हैं ॥ २१६ ॥ (ख) जो दुष्ट पुरुष पक्षियोंके पंखोंको काटते हैं वे अज्ञानी

मूढः छिनत्त्यज्ञानलोचनः । पंगुः स्याद्दुष्टचेतस्कः पशुपादविनाशकः ॥ २१७ ॥ तपांसि दुष्कराणि ये वितन्वन्ति सदा मुदा । तपः
 कृतां च शंसन्ते सुरूपाः कामवस्तके ॥ २१८ ॥ तपः कस्तु^न शक्ता ये तत्कृतां निन्दयन्ति वा । कुरुपा विकलांगाश्च कृशा-
 गास्ते भवन्ति च ॥ २१९ ॥ अकामनिर्जरां कृत्वा त्रियन्ते ये च क्रोधतः । वेदमासहिता जीवास्ते भवन्ति भवे भवे ॥ २२० ॥
 मुनीनां धर्मलीनानां शुश्रूषां कुरुते हि यः । निर्वेदो बलवान् प्राशुर्भवेद्वाहुवलिप्रभः ॥ २२१ ॥ कन्दमूलाशिनो जीवा कर्षिणः
 शून्यवादिनः । एकाक्षाः स्थावरा मृत्वा भवन्ति पङ्कपाकतः ॥ २२२ ॥ पञ्चाक्षे बहवो भेदाः संति दुःखसुखत्वतः । अर्हन्नामलया
 पुण्यपापलक्षणलक्षिणः ॥ २२३ ॥ धर्मभक्ताः सदाचाराः गुरो विनयिनश्च ये । भल्पसंसारिणः स्युस्ते तद्वियुक्ता विलक्षणाः ॥
 दुष्ट चित्तके धारक एवं पशुओंके पैरोंको नष्ट करनेवाले संसारमें पंगु होते हैं ॥ २१७ ॥ जो महा-
 नुभाव आनन्दित हो घोर तपोंके तपनेवाले हैं और जो तप करनेवाले हैं उनकी प्रशंसा करते हैं वे
 कामदेवके समान रूपवान् उत्पन्न होते हैं ॥ २१८ ॥ जो दुष्ट पुरुष तपोंके आचारण करनेमें अस-
 मर्थ हैं और जो तपोंको आचरण करनेवाले हैं उनकी निन्दा करते हैं वे मनुष्य संसारमें महाकुरूप
 एवं विकल और कृश अङ्गके धारक उत्पन्न होते हैं ॥ २१९ ॥ जो जीव अकाम निर्जरापूर्वक क्रोधसे
 प्राणोंको छोड़ते हैं वे भव भवमें अनेक प्रकारकी वेदनाओंके धारक उत्पन्न होते हैं ॥ २२० ॥ जो
 महानुभाव सदा धर्ममें लीन मुनिराजोंकी सेवा शुश्रूषा करते हैं वे संसारमें किसी भी वेदनाका सा-
 मना नहीं करते तथा वे भगवान् बाहुवलीके समान महा बलवान् और उच्च अवगाहनाके धारक
 होते हैं ॥ २२१ ॥ जो जीव कन्द मूलके भक्षण करनेवाले हैं । जमीन आदिको बृथा कुचेरनेवाले
 हैं । शून्यवादी हैं वे अपने कर्मके अनुसार मरकर एकेंद्री स्थावर होते हैं ॥ २२२ ॥ पंचेन्द्री जीवोंके
 बहुतसे भेद हैं बहुतसे उनमें दुःखी और सुखी हैं । भगवान् अर्हंतके गुणोंमें मग्न हैं एवं पुण्य और
 पापोंसे युक्त हैं ॥ २२३ ॥ जो महानुभाव समीचीन धर्मके भक्त हैं । उत्तम आचारोंके आचरनेवाले
 हैं एवं सदा निग्रंथ गुरुओंमें विनय भाव रखनेवाले हैं वे महानुभाव अल्प संसारी होते हैं थोड़े ही

२२४ ॥ दर्शनज्ञानचारित्र्यमृतस्ते शिवमाजिनः । भवन्ति भावनान्विताः शुक्लध्यानपरायणाः ॥ २२५ ॥ लज्जिकाकर्मकाः स्त्रियश्चैत्य-
निन्दकरा ध्रुवं । परोषां गुणलोपिन्य उपवादिषु तत्पराः ॥ २२६ ॥ भुञ्जन्तं दृष्टिदायिण्यो मार्जार्यो वक्त्रविष्टिकाः । शाकिन्यः
स्युध्रुवं रामा मध्यभावो हि सौख्यशः ॥ २२७ ॥ अन्तःकापट्यसंपन्ना दृष्टवान्येषां शुभं धनं । क्रुध्यन्ति दण्डयन्ति वा तेलूक
दीनोंमें उन्हें मोक्ष सुखकी प्राप्ति हो जाती है किन्तु जो इन क्रियायोंसे रहित हैं अर्थात् न तो धर्म
के भक्त हैं । न उत्तम आचरणोंके आचरने वाले हैं और न गुरुओंमें दिनगही रखते हैं वे दीर्घ
संसारी होते हैं बहुत काल तक उन्हें संसारमें रखना पड़ता है ॥ २२४ ॥ जो महानुभाव सम्यग्द-
र्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चरित्रके धारण करनेवाले हैं । निरन्तर अनित्य आदि भावनाओंको
भाते हैं । और शुक्ल ध्यानमें तत्पर होते हैं वे महानुभाव अनुपम सुख मोक्ष सुखके भागी होते हैं
॥ २२५ ॥ जो स्त्रियां लज्जाके कारण निन्दित कार्य करनेवाली हैं । भगवान् जिनेन्द्रकी प्रतिमाओंकी
निन्दा करनेवाली हैं । दूसरोंके गुणोंका लोप करनेवाली हैं । रात दिन उत्पात लड़ना झगड़ना ही
जिनका काम है तथा जो मनुष्य भोजन कर रहा हो उसकी ओर विल्लीके समान टकटकी लगाकर
देखनेवाली हैं एवं जिनकी दृष्टि वक्त्र है वे स्त्रियें मर कर नियमसे शाकिनी भूतिनी होती है किन्तु
जिनका मध्यम भाव रहता है, लज्जाके कारण निन्द्य कार्य आदि नहीं करतीं उन्हें कोई दुःख नहीं
उठाना पड़ता क्योंकि मध्यम भाव सदा सुख देनेवाला होता है ॥ २२६—२२७ ॥ जिन मनुष्योंके हृदयों
में छल छिद्र कपट भरा रहता है । दूसरोंका धन देख कर जो रोष करते हैं और अपनेको दुःखित
बनाते हैं वे पुरुष मर कर उखलू गधा और कुत्तेका जन्म धारण करते हैं । जो दुष्ट पुरुष गुरुओंकी
निन्दा करनेवाले हैं । व्यर्थ ही धर्मकी निन्दा करते हैं । हरएक की निन्दा करना ही जिनका मुख्य
कर्तव्य रहता है और जो देव द्रव्यसे जीनेवाले हैं अर्थात् निर्मल धन हजम कर लेते हैं वे पुरुष

गर्वभाः शुनाः ॥ २२८ ॥ (क) गुरुनिन्दया वृथा धर्मनिन्दकाः सर्वनिन्दकाः । देवद्रव्योपजीवा ये ध्वांक्षनीचा भवन्ति ते ॥ २२८ ॥
 (ख) स्वजातिगुणवर्त्तव्यं दधाति यः क्रुधान्वितः । विभेति मृत्युतो लज्जाधर्मकारी स्वशंसकः ॥ २२९ ॥ चक्षुर्मिष्टोऽतरे दुष्टः
 कष्टतो प्रियते नरः । अन्यथा मध्यभावा ये सुखतस्त्वयया नराः ॥ २३० ॥ ये तु दुष्टकुले जाता मृदवः सद्भियो नराः । वृथ—
 हास्ते भवन्त्यत्र भव्याः कुटिलतातिगाः ॥ ५२१ ॥ नरा ये सुकुलोत्पन्नाः कुटिला भ्रांतिरूतिताः । सूचकास्ते भवन्त्यत्राभव्या वृषविपर्यया
 ॥ २३२ ॥ स्मृतिध्यानात्समुत्थाय दुष्टं ये यांति कौतुकं । ते वृद्धत्वे भवत्यर्था विपुत्रा विस्त्रियो नराः ॥ २३३ ॥ कलौ ये *तापसा
 भ्रांतिधर्मदानकरा नराः । कुलाचारद्विषो लौक्यान्मुदुगलास्ते भवन्त्यहो ॥ २३४ ॥ इत्यादिप्रश्नसंग्रहात् सात्तरां संवभाय सः ।
 मर कर महा नीच काक होते हैं ॥ २२८ ॥ जो मूढ़ पुरुष अपनी जाति और अपने गुणका सदा
 घमण्ड करता है । सदा क्रोधसे जलता रहता है । मृत्युसे भयभीत रहता है जो कार्य लज्जाजनक
 हैं उन्हें करता है । अपनी प्रशंसा करता रहता है । मीठे वचन बोलनेवाला होकर भी अन्तरङ्गमें
 दुष्ट रहता है वह मनुष्य बहुत दिनोंमें अनेक प्रकारके रोगोंके दुःख भोगकर मरता है किन्तु जो
 मनुष्य मध्यम भाव रखते हैं उपर्युक्त कोई भी दुर्गुण जिनमें नहीं रहता उनकी मृत्यु बड़े सुखसे
 बहुत जल्दी हो जाती ॥ २२९-२३० ॥ जो मनुष्य दुष्ट कुलमें तो उत्पन्न हुए हैं परन्तु कोमल
 परिणामोंके धारक हैं । उत्तम बुद्धिके स्थान हैं और धर्मके- उत्तम धर्मके जानकार हैं वे भव्य म-
 नुष्य कुटिलतासे रहित सीधे साधे होते हैं ॥ २३१ ॥ जो मनुष्य उत्तम कुलमें तो उत्पन्न हुए हैं
 परन्तु परिणामोंमें किसी प्रकारकी सरलता न कर कुटिलता रखनेवाले हैं भ्रांतिसे परिपूरित हैं—
 जिनेन्द्र भगवानके वचनोंके अन्दर सदा भ्रम करनेवाले हैं और चुगुल खोर हैं वे धर्मसे विपरीत
 श्रद्धान करनेवाले अभव्य होते हैं ॥ २३२ ॥ इस कलिकालमें तपस्वी वन जो मनुष्य धर्म और दान-
 को विपरीत रूपसे करनेवाले हैं और कुलाचारके विरोधी हैं वे मनुष्य मरकर चुगुल होते हैं ॥ २३३ ॥
 धर्म नामके बलभद्र द्वारा जितने भी प्रश्न किये थे उनका इस प्रकार उत्तर देकर भव्यरूपी कमलों

जिनेन्द्रः संस्थितो भव्यकंकजालिहिवाकरः ॥ २३५ ॥ भव्याः श्रुत्वा जिनेन्द्रोक्तं केचित्सम्यक्त्वधारिणः । केचित्संसारनिर्वेदां प्रतिभो
जश्चिरे नराः ॥ २३६ ॥ भ्रातरी तौ जिनं गत्वा जगत्तुर्निजपत्तनं । भोजयामासतुः सौख्यं कविवाचामगोचरं ॥ २३७ ॥ अथासौ
श्रेणिको धीमान्गव्युक्त गणाधिपं । चक्रत्वं केशवत्वं च ताभ्यां प्राप्तं कुतो यतः ॥ २३८ ॥ सन्मतिः प्राह भो भूप ! भव्यं पृष्टं त्वया
धुना । तीर्थं कृच्छकरामादिकथा पुण्यप्रदा भवेत् ॥ २३९ ॥ अत्र जम्बूमति द्वीपे विदेहे पश्चिमे पुरं । नाम्ना गन्धसमृद्धाद्यं समस्ति
संपदा भुतं ॥ २४० ॥ तत्रैवाभून्महाराजो मित्रनन्दीति मित्रमः । प्रतापाकांतद्विदुषुंगः सर्वसामंतसेवितः ॥ २४१ ॥ कृतकांक्षा द्विपो
को सूर्यके समान ये भगवान् जिनेन्द्र शांत हो गये ॥ २३४ ॥ धर्म और स्वयंभू दोनों भाइयों ने
भक्तिपूर्वक भगवान् जिनेन्द्रको नमस्कार किया । अपनी राजधानी लोट गये और कवि भी जिस
सुखका अपनी वाणीसे वर्णन नहीं कर सकते ऐसी अनुपम सुख भोगने लगे । २३४—२३७ ।

राजा श्रेणिकने भगवान् गौतम गणधरसे प्रश्न किया कि भगवन् ! धर्म और स्वयंभू ने जो
नारायण पदको प्राप्त किया वह किस कर्मके उदयसे कृपया कहिये ? उत्तरमें गणधर गौतमने
कहा कि राजन् ! इससमय तुमने बहुत ही उचित प्रश्न किया है क्योंकि तीर्थंकर चक्रवर्ती बल-
भद्र आदिकी कथायें पुण्य प्रदान करनेवाली हैं मैं संक्षेपमें कहता हूँ तुम ध्यान पूर्वक सुनो—

इसी जम्बूद्वीपके पश्चिम विदेहक्षेत्रमें एक गन्धसमृद्ध नामका नगर है जो कि संपदासे परिपूर्ण
है ॥ २३८—२४० ॥ उसका पालन करने वाला एक मित्रनन्दी नामका राजा था जो कि सूर्यके समान
देदीर्घ्यमान था । अपने प्रतापसे समस्त शत्रुओंका वश करनेवाला था । समस्त सामंतोंसे सेवित
था । तथा वह राजा दुरक्षरसदादस्य दुरक्ष-अतीन्द्रिय सिद्धोंके रसमें मग्न जो कोई भी भव्यजीव थे
उनका ग्रहण करनेवाला था अर्थात् जो भव्य जीव मोक्षमार्गपर स्थित थे वह राजा मित्रनन्दी उनका
पूर्ण आदर करनेवाला था । सदादस्य—समीचीन मार्गका ग्रहण करने वाला था और दुरक्षर—दुष्ट
लोग रंचमात्र भी उसका विगाड़ नहीं कर सकते थे इसलिये “कृतकांक्षाः तीक्ष्ण शस्त्रांके धारक

वश्य पतंति भूतले म्रिया । दुरक्षरसदादस्य सदादस्य दुरक्षरः ॥ २४२ ॥ युष्म (अध्वप्रतिलोमानुलोमः) स्वचक्रमिव तस्यासीत्पर
 चक्रं च धोषतः । इत्थं चक्रं मदीयं हि परकोयमदः स्फुटं ॥ २४३ ॥ इति बुद्धिचिन्ताशेन गतं चक्रं स्वकीयकं ॥ भिन्नभाषाद्विभिन्नत्वं
 जायते भरतेशवत् ॥ २४४ ॥ भोगवस्त्रांगराज्यादिसुखानां नृपतिस्तदा । अतृप्यद्वीरधीः सर्वशास्त्रवाग्जिह्वपत्कजः ॥ २४५ ॥ एक
 दा विष्टरासीनः पुष्पलाबिमुखाज्जितं । सुप्रताप्यं समायातं श्रुत्वासी वन्दितुं यद्यौ ॥ २४६ ॥ द्विःपरीत्याच्यं सद्गुणतया नत्वा स्तुत्वा
 भी उसके शत्रु पृथ्वीतलपर मारे भयके लड़ते पुड़ते थे—रंचमात्र भी अपना बल नहीं दिखा सकते
 थे ॥ २४१—२४२ ॥ महानुभाव उस राजा मित्रनन्दीका पर चक्र भी स्वचक्रके समान था अर्थात्
 शत्रु और मित्र दोनों ही उससे प्रसन्न थे क्योंकि यह चक्र—राज्य मेरा है और यह चक्र दूसरोंका
 है जहांपर यह विभाग रहता है वहांपर तो स्वपरका भेद रहता है परन्तु उस राजाकी वैसी भेद
 बुद्धि थी नहीं इसलिये अपना और पराया दोनों प्रकारका राज्य उसका स्वराज्य ही था किन्तु
 जिससमय भरतचक्रवर्तीके समान अपने भी राज्यमें भेदबुद्धि हो जाती है—वह भी अपने निज-
 स्वरूपसे भिन्न मान लिया जाता है, उसमय वह भी भिन्न ही रहता है और उसे छोड़ देना
 पड़ता है । भरत चक्रवर्तीको जिससमय वह खण्डकी विभूतिसे वैराग्य हो गया था उस समय
 समस्त राज्यका उन्होंने त्याग कर दिया था ॥ २४३—२४४ ॥ वह धीर वीर राजा भोग वस्त्र शरीर
 और राज्य आदिसे जायमान सुखसे सदा तृप्त रहता था और समस्त शत्रु उसके चरणोंको
 नमस्कार करते थे ॥ २४५ ॥

एक दिनकी बात है कि वह राजा मित्रनन्दी सानन्द राज सिंहासनपर विराजमान था उसी
 समय एक माली राज सभामें आया नमस्कार कर 'भगवान् मुनिसुव्रतनाथका समवसरण आया
 है' यह उसने समाचार कहा । मालीके मुखसे वह उत्तम समाचार सुन राजा मित्रनन्दीको बड़ा
 आनन्द हुआ और वह भगवान् मुनिसुव्रतनाथकी बंदना करने चल दिया ॥ २४६ ॥ समवसरणमें

हेतवे ॥ २५६ ॥ श्रुत्वेति सुव्रतादर्मे विरागं प्राप भूपतिः । संसारदुःस्थितिं मत्वा प्रवप्राज स मागध ! ॥ २५७ ॥ तपस्यन् बहुधानंदी
 नन्दी नाम्ना मुनीश्वरः । द्विलिमासोपवासः सन् विविक्कांगनिवासकृत् ॥ २५८ ॥ तपःप्रतापसत्तेजाः स्वरूपाक्रांतभूधरः । रेजे सह-
 स्रधात्मेव स ऋषिकृतसंस्तुतिः ॥ २५९ ॥ (अर्थद्वयवाचो) राजेव राजते राजा राजराजेतराजवत् । राजेव राजते राजाराज
 चित्तमें शांति रखकर ही शास्त्रानुसार बाह्य क्रियाओंका आचरण करना चाहिये ॥ २५६ ॥ इस-
 प्रकार भगवान् मुनिसुब्रतके मुखसे धर्मका उपदेश सुन राजा मित्रनन्दीको संसार शरीर भोगोंसे
 वैराग्य हो गया एवं संसारको अत्यन्त दुःखदायी जानकर वह उन्हीं भगवान् मुनिसुब्रतके चरण
 कमलोंमें दिगम्बर दीक्षासे दीक्षित हो गया ॥ २५७ ॥

वे आनन्द स्वरूप मित्रनन्दी नामके मुनीश्वर बहुत प्रकार तप करने लगे । दो दो मास और
 तीन तीन मासोंके उपवासोंका नियम ग्रहण करने लगे एवं पर्वतकी गुफा आदि एकांत स्थान पर
 उन्होंने अपना निवास स्थान बनाया ॥ २५८ ॥ जिसप्रकार सहस्रधात्मा—सूर्य, तपःप्रतापसत्तेजाः-
 संताप प्रताप और उत्तम तेजका धारक होता है उसी प्रकार वे मुनिराज मित्रनन्दी भी तपके प्रताप
 से प्राप्त जो उत्तम कांति थी उससे शोभायमान थे । जिसप्रकार सूर्य “स्वरूपाक्रांतभूधरः” अपने
 तेजसे पर्वतोंकी शिखर जगमगा देता है उसी प्रकार वे मुनिराज भी अपनी कीर्तिसे समस्त पृथ्वी
 तलको व्याप्त करनेवाले थे । जिसप्रकार सूर्य ‘ ऋषिकृतसंस्तुतिः ’ ऋषि नामके नक्षत्रोंसे स्तुति
 किया गया माना जाता है उसीप्रकार वे मुनिराज मित्रनन्दी भी अनेक ऋषियोंसे स्तुत थे—
 वड़े २ ऋषिगण उनकी स्तुति करते थे ॥ २५९ ॥ राजा वे मुनिराज मित्रनन्दी “राजेवराजते” राजा
 लक्ष्मीवान, इव कामदेव और राजत चांदी सोने आदि पदार्थोंके अन्दर राजराजेतराजवत् राज-
 राज कुवेर और उससे भिन्न अज-स्वरूपभूके समान थे अर्थात् जो मनुष्य उनके भक्त थे और जो

राजनराजवत् ॥ २६० ॥ क्षामकायो वितंद्रात्मा ध्यातो मौनी समाधिना । प्रांतिऽगमत्सुसंन्यस्य शुभ्रवर्णमनुत्तरं ॥ २६१ ॥ त्रयस्त्रिंशत्सहस्रैश्च वर्षैराहरतिस्म सः । तावत्पक्षैः समुच्छ्वासं कुर्वन् कर्पूरसन्निभं ॥ २६२ ॥ ईषद्वनं सुखं तस्य मुक्तोऽभून्मदोऽजितं ततो हि योजनान्येव द्वादशैव शायस्यत्यं ॥ २६३ ॥ अथ द्वारवतीपुर्यां शोभितायां घनादिभिः । भद्रनामा महीपालो बभूवारीभयप्रदः । उनके भक्त नहीं थे उनमें वे समान बुद्धिके धारक थे-कुवेरके समान सबको अच्छा समझते थे अथवा स्वयंभू भगवानके समान किसीमें भी राग और द्वेष नहीं रखते थे तथा 'राजाराजनराजवत्' जो मनुष्य राजा थे और जो अराज अर्थात् जिनके राजाकी विभूति न थी ऐसे राजासे भिन्न थे उनके आज समूहमें वे मुनिराज अपनी दृष्टि नराजतिरस्कार रूप रखते थे अर्थात् राजा और रंक दोनों हीको वे समान मानते थे—कर्मजनित होनेसे दोनोंको ही कल्याण कारी नहीं समझते थे ॥ १६० ॥ वे मुनिराज कृश शरीरके धारक थे । आलस्यसे रहित थे । ध्यानी थे और मौनी थे, अन्त समय उन्होंने समाधि पूर्वक सन्यासके द्वारा अपने प्राणोंका त्याग किया और वे सर्वार्थसिद्धि नामके उत्तम विमानमें जाकर उत्पन्न हो गये । १६१ । वह मित्रनन्दी मुनिराजका जीव अहमिन्द्र तैत्तीस हजार वर्षोंके बीतजानेपर अत्यन्त सुगंधित बहुत थोड़ा आहार करता था एवं तैत्तीस हजार वर्षोंके बीत जानेपर उसास लेता था जो उसास कर्पूरके समान सुगन्धित होता था । १६१ । उस सर्वार्थसिद्धि विमानके अन्दर उस अहमिन्द्रको मोक्षके निराकुलता और निरहंकाररूप सुखसे कुछ ही कम सुख था क्योंकि सर्वार्थसिद्धि विमानसे मोक्षस्थान केवल बारह योजनोंको ही दूरी पर था ॥

इसी पृथ्वीपर एक द्वारवती नामकी प्रसिद्ध नगरी है जो कि धन आदिसे अत्यन्त शोभायमान है । उसका पालन करनेवाला भद्रनामका राजा था जो कि शत्रुओंको भय प्रदान करनेवाला था उसकी स्त्रीका नाम सुभद्रा था जो कि उसे प्राणोंसे भी अधिक प्यारी थी । उसे देखकर लोगोंको

॥ २६४ ॥ सुभद्रा वल्लभा तस्य ब्राह्मी वा सुरसुन्दरी । कनकनकवर्णाभा बहुरूपा रतिप्रभा ॥ २६५ ॥ एकदा सा सुखं सुप्ता रम्य-
गर्भगृहे सती । आलुलोक शुभान् स्वप्नानिति कल्याणसूचकान् ॥ २६६ ॥ उच्चकैः सिंधुरं दानवर्पिणं चन्द्रिकाप्रभं । रत्नाकरं समुद्वेलं
व्यक्तस्नचयं कलं ॥ २६७ ॥ पूर्णैर्णाकं गतांकं च सिंहं वक्त्रप्रवेशिनं । दृष्ट्वा तुर्यमहाध्वनैर्जगार तदा सती ॥ २६८ ॥ प्रातरु-
त्थाय भर्तारं तत्फलं पृच्छतिस्वप्ना । निमित्तज्ञानतो ज्ञात्वा तं प्राप्तेति नराधिपः ॥ २६९ ॥ जाग्रून् दशमे ! कांते विक्रवाग्भोजलोचने !

वर्णकी धारक थी अत्यन्त रूपवती थी एवं शोभामें कामदेवकी स्त्री रतिकी उपमा धारण करती थी । २६४—२६५ । एक दिन वह अपने मनोहर महलमें सानन्द सो रही थी कि रात्रिके पश्चिम प्रहरमें उसे कल्याणकी सूचना देनेवाले कुछ शुभ स्वप्न दीख पड़े । २६६ । सबसे पहिला स्वप्न उसने हाथीका देखा जो कि अत्यन्त उन्नत था । उसके गडस्थलोंसे मद भरता था और चांदनीकी प्रभाके समान शुभ्र था । दूसरे स्वप्नमें उसने समुद्र देखा जिसकी चंचल तरंगे उपरको उठ रही थी । जिसके अंदर रहनेवाले रत्न स्पष्ट रूपसे दीख पड़ते थे एवं जो मनोहर था । तीसरे स्वप्नमें अपने चिह्नसे शोभित पूर्ण चंद्रमा देखा एवं चौथे स्वप्नमें मुखमें प्रवेश करता सिंह देखा । जिस समय रानी शुभद्रा इन चारो स्वप्नोंको देख चुकी प्रातः कालमें वजनेवाले बाजोंके मनोहर शब्दोंसे उसकी नींद खुल गई । प्रातः कालकी नित्य क्रियाओंके समाप्त हो जानेके बाद अपने पति राजा भद्रके पास आई और अपने स्वप्न कहकर उनका फल जाननेके लिये अपनी इच्छा प्रगट करने लगी । राजा भद्र निमित्त ज्ञानी थे इसलिये निमित्त ज्ञानके बलसे वह इसप्रकार उन प्रश्नोंका उत्तर देने लगे—

तपे सुवर्णके समान कांतिके धारक प्रफुल्लित नेत्रवाली हे प्रिये ! तुम्हें जो स्वप्न दीख पड़े हैं उन स्वप्नोंका फल यह है कि तुम्हारे शत्रुओंके मानका मर्दन करनेवाला और अत्यन्त बुद्धिमना

तब भावी सुत भोमानी द्विदकदम्बनिकंदकः ॥ २७० ॥ गजाद्वंशसमुद्रता सागरोद्गुणसागरः । चंद्राक्ष केवलज्ञानो सिंहाद्वंश
विक्रमो ॥ २७१ ॥ युगं भूत्वा राक्षी फलं देवां जद्वो ज्यैर्मुहुर्मुहुः । गता क्षम सुते तावान्नित्यं चिंतामणिं यथा ॥ २७२ ॥
मथानुसरताथोऽसौ ततश्च्युता सुपुण्यतः । गर्भे सुभद्रिकाद्याश्च प्रचितोर्णः शशिप्रमे ॥ २७३ ॥ पुण्यभूणेन पोडां भो जानाति नृपव-
हभा । कलाकांतियशोयुकाभिर्बिंबादर्शवद्वसी ॥ २७४ ॥ पूर्णमासावधौ राक्षी बाल सासूत सुन्दर । धर्माक्ष बलिनं तं वै विद्धि त्वं

पुत्र होगा ॥ २६७-२७० ॥ तुमने जो स्वप्नमें हाथों देखा है उसका फल यह है कि तुम्हारा पुत्र
वंश का उद्धार करनेवाला होगा । सागरके देखनेसे वह गुणोंका सागर होगा । चन्द्रमाके देखनेसे
केवल ज्ञानका धारक और सिंहके देखनेसे वह सिंहके समान अत्यन्त पराक्रमी होगा ॥ २७१ ॥
राजा भद्रके मुखसे इस प्रकार स्वप्नोंका फल सुन रानी सुभद्राको अपार आनन्द हुआ । वह अपने
राज महल लोट आई एवं जिस प्रकार निर्धनको चिंतामणि रत्नकी प्राप्तिसे परमानन्द प्राप्त होता
है उसी प्रकार भावी पुत्रकी प्राप्तिसे रानी सुभद्रा भी परम आनन्दका अनुभव करने लगी ॥ २७२ ॥

मुनिराज मित्र नन्दीका जीव जो कि सर्वार्थसिद्धि विमानके अन्दर जाकर अहमिन्द्र हुआ था
अपनी आयुके अन्तमें वह वहांसे चया एवं तीव्र पुण्यके उदयसे वह चन्द्रमाके समान उज्ज्वल रानी
सुभद्राके गर्भमें आकर अवतीर्ण हो गया ॥ २७३ ॥ क्योंकि रानी सुभद्राका गर्भ एक पुण्य गर्भ
था इसलिये उस पवित्र गर्भके द्वारा उसे रंच मात्र भी पीड़ा न थी किन्तु कला कांति और यश-
से व्याप्त वह प्रतिबिम्ब युक्त दर्पणके समान शोभायमान थी । अर्थात् वह सुभद्रा दर्पणके समान
उज्ज्वल थी और उसका गर्भ दर्पणमें पड़नेवाले प्रतिबिम्बके समान निर्मल था इसलिये उस गर्भ
से उसे कुछ भी कष्ट न था ॥ २७४ ॥ जब नौ मास पूरे होगये उस समय रानी सुभद्राने अत्यंत
सुन्दर बालकको जना और उसका नाम धर्म रक्खा गया जो कि बलभद्र पदका धारक था ॥ २७५ ॥

मगधप्रभो ! ॥ २७५ ॥ जम्बूद्वीपेऽत्र विख्याते भारते वास्ति सत्पुरी । श्रावस्ती सुखमान्विता पौरद्वीप द्विप्रया ॥ २७६ ॥
 सुवेषवज्रिताग्रतमुज्ज्वलं शुभं जिताः । सुवेषा कामवेषातिशायिनीरभरभृता ॥ २७७ ॥ तलाभूद्भूषिताम्रा सुकेतुर्भोगतत्परः ।
 दाता पाता प्रजानां च हता हर्तारिदुःस्थितिः ॥ २७८ ॥ द्यूतसंशक्तचेताः स रेमे द्यूतं निरंतरं । गुणाः सर्वेऽनुकूला हि नो भवन्ति
 शरीरिणां ॥ २७९ ॥ अमात्यैः स्वहितैः प्राज्ञैर्निषिद्धो बहुशोऽपि सः । विरराम न तस्माच्च ज्ञातस्वादो हि दुस्त्यजः ॥ २८० ॥
 एकदा शत्रुभूषेनादीदव्यत्कर्मनोदितः । निषिद्धोपि हितैर्मूर्खो विनाशो विपरीतता ॥ २८१ ॥ वित्तं देशं बलं सर्वं पट्टराज्ञीं क्रमा

जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रमें एक श्रावस्ती नामकी उत्तम नगरी है जो कि अनेक सुखोंकी स्थान है । स्वर्गपुरीके समान नेत्रोंको आनन्द प्रदान करनेवाली है । उत्तमोत्तम वेषोंको धारक स्त्रियोंके मुखरूपी चन्द्रमाकी किरणोंसे शोभायमान है । उत्तमोत्तम महलोंसे देदीप्यमान है एवं काम-देवके समान उज्ज्वल जलोंसे परिपूर्ण तालाबोंसे व्याप्त है ॥ २७६-२७७ ॥ श्रावस्ती नगरीका स्वामी राजा सुकेतु था जो कि इच्छानुसार परिपूर्ण भोग भोगनेवाला था । दानी था । पूर्णरूपसे प्रजाकी रक्षा करनेवाला था । वैरियोंका नाश करनेवाला और प्रजाके कष्टोंका हरनेवाला था ॥ २७८ ॥ अनेक गुणोंका भण्डार भी वह राजा जूआ खेलनेका अत्यन्त शौकीन था । जूआमें दत्तचित्त हो कर वह सदा जूआ खेलता रहता था ठीक ही है किसी भी संसारी जीवमें सब गुण अनुकूल नहीं रहते । गुणोंके साथमें कोई न कोई बलवान् दोष भी अवश्य रहता है ॥ २७९ ॥ राजा सुकेतुको उसके हितैषी और विद्वान् मंत्रियोंने कई बार जूआ खेलनेसे रोका था परन्तु उसने जूआ खेलना बन्द नहीं किया था ठीक ही है जिस मनुष्यको जिस बातका स्वाद पड़ जाता है वह जल्दी छूट नहीं सकता ॥ २८० ॥ राजा सुकेतुका एक बलवान् शत्रु अन्य राजा था अशुभ कर्मके उदयसे राजा सुकेतुने उसके साथ जूआ खेलना प्रारंभ कर दिया । यद्यपि उसके हितैषी मंत्रियोंने वह बहुत रोका

दिति । हारितं तेन सर्वस्वं वस्त्राद्यपि च पापतः ॥ २८२ ॥ वपुःशेषस्थितो भूत्वा म्लानास्यो गतविक्रमः । तदोवाचारिभूपालः
सुकेतुमिति सद्गलः ॥ २८३ ॥ भो भो ये मानिनो गोधा सुणिनो वंशधारिणः । अन्यभूमौ न तिष्ठन्ति श्रुतशास्त्रविचक्षणाः ॥ २८४ ॥
त्वं तु मानी धनी छत्री दानी क्षत्रविभूषणः । मैथुन्यां हारितायां च वधं तिष्ठसि मूकवत् ॥ २८५ ॥ शत्रुदायघशरव्रातभिन्नांगो निर्ययी
वन् । सर्वहान्या महाशोकविह्वलीभूतमानसः ॥ २८६ ॥ प्राप्य तत्रैव पुण्येन नाम्ना सूरिं सुदर्शनं । वन्दित्वा श्रुततत्त्वः स प्रा-
परन्तु वह मूर्ख न माना ठीक ही है जब विनाश काल आकर उपस्थित हो जाता है तब बुद्धि भी
उसके अनुकूल विपरीत हो जाती है पाप कर्मके प्रबल उदयसे राजा सुकेतुने क्रम क्रम कर धन देश
सेना पटरानी सब हार दिया विशेष क्या जो उसके तन पर वस्त्र था जूआमें वह उसे भी हार चुका
वस उसके पास केवल उसका शरीर रह गया उससे राजा सुकेतुका मुख फीका पड़ गया और वह
सर्वथा पराक्रम रहित हो गया । जिस समय राजा सुकेतुकी यह हीन दशा हो गई उस समय
उसके बैरी राजाने सुकेतुसे इसप्रकार कहा—

जो पुरुष अपने मानकी रक्षा करनेवाले होते हैं । गुणी और उत्तम वंशके होते हैं तथा आगम
और शास्त्रोंके ज्ञाता होते हैं वे अपनी ही भूमिमें निवास करते हैं अन्यकी भूमिमें निवास नहीं
करते । राजा सुकेतु ! तुम मानी धनी छत्रशाली और छात्रियोंके भूषण पुरुष रत्न माने जाते हो
जब जूआमें तुम पृथ्वीको हार चुके और वह दूसरेकी हो चुकी तब गूंगेके समान तुम इस पृथ्वी
पर क्यों रह रहे हो ? तुम्हें अब इस पृथ्वी पर कदापि नहीं रहना चाहिये ॥ २८१-२८५ ॥ अपने
शत्रु राजाके ऐसे वचन राजा सुकेतुको वाणके समान चुभ गये । हाथसे सब चीजोंके चले जा-
नेसे वह विक्षिप्त चित्त हो गया और शीघ्र ही वनकी ओर चल दिया ॥ २८६ ॥ वनके अन्दर उस
समय सुदर्शन नामके मुनिराज विराजमान थे । पुण्यके उदयसे राजा सुकेतुको उनका दर्शन हो

पद्मे राग्य मंजसा ॥२८७॥ प्रव्रज्य दुष्करैर्भूषितपोभिः कृशतां गतः । देशद्रव्य महाशोकान्तात्यंतमशुभाशयः ॥२८८॥ दीर्घकालमलं तपत्वा
निदानमकरोदिति । आयुःक्षये महामूढो विद्वानपि महाभ्रतः ॥२८९॥ ममैव तपसैतेन कलागुणविदग्धता । भूयाद्भूरिवलं चैव शत्रुपक्षा
सहाजयं ॥ २९० ॥ प्रांतिः सन्यस्य योगी स लांतव कथमास्थितः । चतुर्दशाधिमानायुस्तलाललत सत्सुखं ॥२९१॥ तत्रैव चास्य भद्र
स्य भूपस्य पृथिवीमती । आल्लोकैकदा स्वप्नान् सुप्ता गर्भगृहे सती ॥ २९२ ॥ सूर्यं चंद्रमसं पद्मां विमानाद्विसुरध्वजं । सिंहं चैतान्
गया । उनके मुखसे उसने शास्त्रका रहस्य समझा । उसके चित्तमें एकदम संसार शरीर भोगोंसे
वेराग्य हो गया । शीघ्र ही उसने दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली । अनेक प्रकारके घोर तपोंके तप-
नेके कारण उसका सारा शरीर कृश हो गया । देश और द्रव्य आदिके चले जानेसे उस समय
एवम्पि उसका चित्त सर्वथा मलिन न था बहुतसी मलिनता मिट चुकी थी तथापि विद्वान भी वह
शापके तीव्र उदयसे आयुके अंत समयमें नितांत भूख हो गया और बहुत काल पर्यंत तपके तपे
जाने पर भी उसने यह निन्दित निदान बाधा—

मैं जो यह तप कर रहा हूँ उसका फल मुझे यह मिलना चाहिये कि मैं पर जन्ममें अनेक
कला और गुणोंका भण्डार हों । मेरे बहुतसे सैन्यकी प्राप्ति हो और शत्रुओंका समुदाय मुझे जीत
न सके । बस अन्त समयमें उस सुकेतु नामके मुनिने सन्यास पूर्वक अपने शरीरका त्याग किया
लांतव नामके स्वर्गमें जाकर देव हो गया । चौदह सागर प्रमाण उसने आयु पाई और नानाप्रकार
के सुख वहां पर भोगने लगा । द्वारावतीके स्वामी राजा भद्रकी एक दूसरी रानी पृथिवीमती थी वह
अपने गर्भ गृहमें सो रही थी कि एक दिन रात्रिके पिछले प्रहरमें उसे स्वप्न दीख पड़े । पहिले स्व-
प्नमें उसे सूर्य दीख पड़ा । दूसरेमें चन्द्रमा तीसरेमें लक्ष्मी चौथेमें विमान पांचवेमें समुद्र छठेमें
इन्द्रधनु और सातवेमें सिंह दीख पड़ा । सातों स्वप्नोंके देखनेके बाद उसकी नींद खुल गई । प्रातः

समायातान् बिबोधय नृपसन्निधौ । २६२ ॥ तवैव भविता पुत्रो भो कांतेऽभोजलोचने । इत्युवाच नृपो भार्यो श्रुत्वा तुष्टा गतालयं २६३ ॥ (युग्मं) प्रताप्याह्वाकस्त्रिखण्डविभूतिधरः परः । स्वर्गायातो गभीरो द्विदंष्ट्रको भूरिविक्रमो ॥ २६४ ॥ ततः सोऽप्यवतोर्यास्या गर्भेऽभूच्चंद्रमःप्रभे । स्वयंभूरिति विख्यातो नाम्नैव सुनुषु प्रियः ॥ २६५ ॥ रूपवान् कामवत्प्राज्ञो जीववद्बालचंद्रवत् । पथतेऽस्य गुणा- गारं लक्षणा न्यतविग्रहः ॥ २६६ ॥ घर्मो बलः स्वयंभूश्च केशवस्तौ परस्परं । अभूतां प्रेमसंपन्नौ धात्रा प्रेम्णा कृताविव ॥ २६७ ॥

कालकी नित्य क्रियाओंको समाप्त कर वह अपने स्वामी राजा भद्रके पास आई और सारे स्वप्नोंको निवेदन कर उनके फल जाननेकी अभिलाषा प्रगट करने लगी ॥ २६७—२६२ ॥ उत्तरमें राजा भद्रने कहा—

हे कमलोंके समान नेत्रोंसे शोभायमान प्रिये ! तुमने जो स्वप्नमें सूर्य आदि देखे हैं उनका फल यह है कि तुम्हारे एक अद्वितीय पुत्र होगा जो कि संसारमें अत्यन्त प्रतापी होगा । समस्त लोगोंके चित्तोंको आनन्दित करेगा । तीन खण्डकी विभूतिका धारक अर्धचक्री होगा । खर्गसे च- यकर वह तुम्हारे गर्भमें अवतरेगा । अत्यन्त धीर गम्भीर होगा एवं अत्यन्त पराक्रमी होगा । वस राजा भद्रके मुखसे ये आनन्द प्रदान करनेवाले वचन सुन रानी पृथिवीमतीको बड़ा आनंद हुआ और संतुष्ट हो वह अपने महलको लोट गई ॥ २६३-२६४ ॥ कुछ दिन बाद राजा सुकेतुका जीव वह देव भी रानी पृथिवीमतीके चन्द्रमाके समान निर्मल गर्भमें अवतीर्ण हो गया । संसारमें स्वयंभू नामसे उसकी प्रसिद्धि हुई और अनेक पुत्रोंके रहते भी वही सबोंको प्रिय लगने लगा ॥ २६५ ॥ वह कुमार स्वयंभू कामदेवके समान रूपवान् था । जीव नामक विद्वानके समान बुद्धिमान् था । दिनों दिन वाल चन्द्रमाके समान बढ़ता था । अनेक गुणोंका भण्डार था एवं उत्तमोत्तम लक्षणों से विभूषित शरीरका धारक था ॥ २६६ ॥ वह धर्म नामका बलभद्र और स्वयंभू नामका नारायण

भोजनमासतुराजं लीलालंकनविग्रही । सूर्याचंद्रमसी तौ वा सम्यगाराधितौ ॥२६८॥ सुकेतुजाती धूतेन निर्जित्य बलिमा दत्तात् ।
स्वीकृतं पेन तद्वाक्यं सोऽभूद्रत्नपुरे मधुः ॥ २६९ ॥ खण्डवसनुभूतां प्राप्य पद्मां युष्मत्स्थितां । मञ्जुकं शत्रुमिश्रकीं प्रतिशब्द-
समन्वितः ॥ ३०० ॥ हेलया संरन्नाथन् विद्विषो रणपर्यतान् । स्फोटको विश्वभूपालां हृदयेऽग्निरिधोत्थितः ॥ ३०१ ॥ (युगम्)

दोनों ही आपसमें अत्यन्त प्रेम रखनेवाले थे इसलिये ऐसा जान पड़ता था मानों विधाताने इनकी
रचना प्रेम स्वरूप ही की है ॥ २६७ ॥ अनेक प्रकारको लीलाओंसे शोभायमान शरीरोंके धारक
वे बलभद्र और नारायण सानंद राज्यका भोग भोगने लगे । वे अनेक सभ्य पुरुषोंसे सदा वेष्टित
रहते थे इसलिये ऐसे जान पड़ते थे मानों अनेक ताराओंसे व्याप्त ये साक्षात् सूर्य और चन्द्रमा
ही हैं ॥ २६८ ॥ सुकेतुकी पर्यायमें जिस बली शत्रु राजाने जूझा, मैं राजा सुकेतुका जबरन राज्य
झीन लिया था वह रत्नपुरमें मधु नामका राजा हुआ था ॥२६९॥ वह राजा मधु प्रतिनारायण था
इसलिये तीन खण्डको संपदा पाकर वह सुख पूर्वक रहता था और शत्रुओंका अगम्य था कोई भी
शत्रु उसे जीत नहीं सकता था । वह राजा मधु रणमें पर्वत सरीखे उन्नत शत्रु राजाओंको ली-
लामात्रमें नष्ट भ्रष्ट करनेवाला था एवं अग्नि जिस प्रकार बड़े बड़े पर्वतोंको ढाह देती है उसी
प्रकार वह राजा मधु भी समस्त संसारके राजाओंके हृदयोंमें जाज्वल्यमान अग्निके समान विद्य-
मान था अर्थात् समस्त राजा सदा उससे भयभीत रहते थे ॥ ३००—३०१ ॥

एक दिनकी बात है कि किसी मधुके आज्ञाकारी राजाने मधुके लिये घोड़ा रत्न आदि अनेक
पदार्थोंकी भेंट भेजी थी । जो लोग भेंट लेजाने वाले थे दैवयोगसे नारायण स्वयंभूको उनसे भेंट
ही गई । तेजस्वी और अभिमानी राजा स्वयंभू ने शीघ्र ही उन भेंट लेजाने वालोंसे प्ररन किया

अन्तरा केर चिद्राज्ञो प्रदिशं पाभूतं मयोः । ससिंहनादिसंमिधं बहुलं भूरिसंचयं ॥ ३०२ ॥ तदा दृष्ट्वा ध्वनिं गच्छन्तान् प्राहेति
प्रातिः । स्वयंभूभूमिं पानी कस्येह वदत स्वरा ॥ ३०३ ॥ तद्रक्षकास्तदा भेषुः श्रूयतां परमादरात् । देवसेन नृपेणैव प्राप्नुन
हितं बहु ॥ ३०४ ॥ मधोर्महानर्द्धस्य शत्रुराजिषिदारिणः । अस्माभिर्नादते प्राज्यं द्रव्यं तं मधुभूपतिं ॥ ३०५ ॥ श्रुत्वा तन्नाम-
न शीघ्रः पूर्ववैरानुबन्धनः । तद्धनं हर्तुमाशक्तो बभूवस्मिन्मयः ॥ ३०६ ॥ क्रुधा स्वयंभूवा मुक्तो गतधर्मा तु सायकः । महामृगं विदा-
र्येण सप्ततालानवीभिदत् ॥ ३०७ ॥ इष्ट्वा ससाय कोद्गूतरेण राविता जनाः । कोलाहलो महान् जहो प्रलयाब्धिनिवागतः ॥ ३०८ ॥
कहो भाई ! तुम जो भेंट लेजा रहे हो वह किसकी है ! एवं किसके लिये और कहां लेजा रहे
हो ? उत्तरमें उन भेंटकी रक्षा करनेवालोंने कहा—

क्रुधा नाथ ! सुनिये हम बतलाते हैं । हमारे स्वामी राजा देवसेन हैं । शत्रुओंको विदारण
करनेवाले महाराजा मधुके वे सेवक हैं उन्होंने राजा मधुके लिये यह उत्तम भेंट भेजी है । इसे
इन राजा मधुकी सेवामें ले जा रहे हैं । वस, राजा मधुका नाम सुनते ही पूर्व वैरके संबन्धसे राजा
स्वयंभूकी आत्मा क्रोधसे व्याकुल हो गई । वैरिओंके मानको मर्दन करनेवाले नारायण स्वयंभू-
ने उस धनके हरण करनेके लिये पक्का विचार कर लिया । शीघ्र ही उसने बाण तूणीरसे बाहिर
निकाल लिया और इस रूपसे चलाया कि हाथीको छेदकर सात ताल उसने भेद डाले । जिस
समय धनुषसे बाण जुटा हुआ था उस समय उसका इतना घोर शब्द हुआ था कि समस्त लोग
हंपित हो गये थे एवं ऐसा भयंकर कोलाहल हुआ था कि मनुष्योंको यह जान पड़ने लगा था कि
प्रलय कालका समुद्र आकर प्राप्त हो गया है उसीका यह कोलाहल है ॥ ३०२—३०८ ॥ नारायण
स्वयंभूकी यह क्रोध परिपूर्ण चेष्टा देख यद्यपि बलभद्र धमने वैसा न करनेके लिये बहुत प्रकारसे
होका था परंतु जिस प्रकार सर्पको छेड़नेसे वह और भी भयंकर हो जाता है उसी प्रकार महा

नदा धर्मेण हलैना विविद्धो बहुशोऽपि सः । निविद्धो कपालं पवापीत् पञ्चगात्र्यन्तभीषणः ॥ ३०६ ॥ अवीक्षणस्तदा शरीरात्तारं सारं
 भयः । लोलाक्ष्यं चंचलं चेत्यं शृणु त्वं मन्मथावृत्ते ॥ ३१० ॥ मो दुष्टो दुर्धरोऽक्षानो हीनजातिर्नराधमः । भवेत्संऽपि कदाचिन्न
 वरं हत्वा हरेन्न मां ॥ ३११ ॥ चपयिगताः संनः पापकर्म न कुर्वते । हंसः कुक्कुटवत्कटानसि विश्रुधितोऽप्यलं ॥ ३१२ ॥ तगजं
 कमला प्रीत्या सेवते चकमर्तुका । नात्यत्र पद्माधसे त्वद्गुणेश्वनुरागिणो ॥ ३१३ ॥ शूरास्ते विचारद्वा दानिनो धनिनश्च ते । मानिन
 रूपिणो धारा उल्लंघनं न ये कर ॥ ३१४ ॥ अज्ञानाभगजश्रेणकुम्भस्थलपलप्रियः । गामं युष्मि मत्तं किं रत्नं संरेद्धरिः ॥ ३१५ ॥
 भयंकर सर्पके समान नारायण स्वयंभूका क्रोध और भी उबल गया और उस भैंटकी रक्षा करने
 वाले मनुष्योंको मारनेके लिये वह उद्यत हो गया अपने छोटे भाई स्वयंभूको इस प्रकार चंचल
 और निर्दित कार्य करते देख बलभद्र धर्मने कहा—

कामदेवके समान रूपवान् भाई ! तुम मेरी बात सुनो—संसारमें यह बात सर्व जन प्रसिद्ध है
 कि जो पुरुष दुष्ट होता है क्रूर अज्ञानी हीनजाति और नीच होता है वह भी दूतको मारकर
 लक्ष्मीका हरण नहीं करता । तुम निश्चय समझो कि जिसप्रकार भूखसे अत्यंत व्याकुल भो
 हंस कुक्कुट-मुर्गेके समान कीड़ाको नहीं खाता किंतु मोतियोंको ही खाता है उसीप्रकार जो
 पुरुष सज्जन हैं उनपर कितनी भो विपत्ति क्यों न आकर पड़ जाय वे कभी भी पापजनक कार्य
 नहीं कर सकते ॥ ३०६—३१२ ॥ लक्ष्मीकी तुम्हारे ऊपर इतनी भारी कृपा है कि वह अकेले
 तुम्हींको अपना स्वामी मानकर प्रेमपूर्वक तुम्हारी सेवा करती है तथा तुम्हारे गुणोंमें वह इतनी
 अतुरक्त है कि तुम्हें छोड़कर वह दूसरी जगह नहीं जाना चाहती । भाई ! संसारमें वे ही तो शूर
 और और वे ही विचार शाल दानो धनो मानी रूपवान और धीर वीर हैं जो कि किसी भो मर्यादा
 का उल्लंघन नहीं करते ॥ ३१३—३१४ ॥ जो सिंह अंजन पर्वतके समान हाथियोंके मांसको प्रेन
 पूर्वक खानेवाला है अर्थात् मत्त हाथियोंका विदारण करनेवाला है क्या वह मत्त भो शृगालको

महावीरविणामाधोमाधामादीरघच्छिदैः । महावीरविणामाधोमाधामादीरघच्छिदैः ! ॥ ३१६ ॥ अयमृति हे आनन्दैर्मानमहोदयैः
हमो न श्रूयते दूतः कथं त्वं हंतुमिच्छसि ॥ ३१७ ॥ जन्तुधनोऽपि मांमाही चरं हंत्येव जातु न । श्रूयतां तत्कथा आनस्तत्र विल
पसाधिनो ॥ ३१८ ॥ (क) अत्र मयूरानि द्वीप रोजते रत्नखानभिः । भारते चास्ति चंपाख्या पुरी शारदसेविता ॥ ३१९ ॥ तत्र राजा
महासेनः कामाक्षः कमलेश्वरः । वनी तानं महादेव्या नाम्ना मदनवेगया ॥ ३२० ॥ विशालायां नटय्यतो नामनाभूच्चित्रकर्माः । दाता-
रं तं नृपं मत्वा समादिकवितेऽथ सः ॥ ३२० ॥ नानानाट्यरसैर्भावैर्लयेनानैर्मनारमैः । रञ्जयामास तं भूषं चित्रकर्मा स सूत्रधृत् ॥ ३२१ ॥
मारनेका प्रयत्न करता है ? कभी नहीं ॥ ३१५ ॥ भाई जो राजा उत्कट मानी है-उत्तम मर्यादाके
पक्षपाती है उनके द्वारा आजतक कभी भी दूतको मारा हुआ नहीं सुना । तुम भी उत्तम मर्यादाके
पक्षपाती पुरुष हो तुम इस भैंसके रक्षक दूतके मारनेके इच्छुक क्यों हो ! तुम्हें भी कभी भी इस
दूतको नहीं मारना चाहिये । विशेष क्या जातुधान—राक्षस जो कि सदा मांसको खानेवाला है
वह भी कभी दूतको नहीं मारता । मैं इसी संबंधकी तुम्हें एक कथा सुनाता हूं तुम ध्यान पूर्वक
सुनो—

भांति भांतिके रत्नोंकी खानियोंसे शोभायमान इसी जंबू द्वीपके भरत क्षेत्रमें एक चंपा नामकी
विख्यात पुरी है जो कि दानियोंसे शोभायमान है । किसी समय उसका रक्षण करनेवाला राजा
महासेन था जो कि सुंदरतामें कामदेवकी तुलना करता था । कमलके समान विशाल नेत्रोंका
धारक था उसकी पटरानीका नाम मदनवेगा था जो कि एक अद्वितीय सुंदरी थी और उसके संबंध-
से राजा महासेनकी भी अत्यंत शोभा थी ॥ ३१६--३१८ ॥ उसी समय विशाला पुरीमें एक
चित्रकर्मा नामका नट रहता था उसने सुन रक्खा था कि राजा महासेन बड़ा दानी है इसलिये एक
दिन चंपापुरीमें वह राजा महासेनके पास आया और नाट्य कलाके अत्यंत विद्वान उस चित्रकर्मा
नामके नटने भांति भांतिके नाट्य रसोंसे उत्तमोत्तम भाव लय और तानोंसे राजा महासेनको

आवणमासात्त्रिजं द्रुपं मुक्तं तस्मै तदपि न । दृष्टौ रात्रा धनं किञ्चित्कार्पण्यत्वात्प्रयतिनः ॥ ३२२ ॥ निःस्वीभूयं धनं प्राप्ते नटोभाभी
तदा नृपं । शिष्टां च यावद्यामासं च तोरस्मै तदा नृपः ॥ ३२३ ॥ एतरीयं हि यत्किञ्चिन् ह्यीयतां ह्यीयतां हठात् । हन्यतां हन्यतां वेगा
दुवाचेति जनानृपः ॥ ३२४ ॥ नागोयगा स वेगव निषकारि पुण्ड्रिव । मुनिना मानवं दुःखं जनैरुत्तरयागया ॥ ३२५ ॥ पद्मा
लया कलत्रं वा स्वं स्त्री तनुवरा अपि । सत्तिवत्यमानोमास्त्रादलं मानिता नरः ॥ ३२६ ॥ ना नालसति मानेन न्यूनो नैषधमा-
प्रसन्न कर दिया ॥ ३२०—३२१ ॥ राजा महासेन अत्यंत कृपण और निर्दयी था । वह चित्रकर्मा
नामका नट वरावर छह मासतक चंपापुरीमें ठहरा रहा और अपनी ही ओरसे भोजन आदिका
खर्च उठाता रहा । राजाने कंजूसीके कारण एक पाई भर भी धन नहीं दिया ॥ ३२२ ॥ जब उस
चित्रकर्मा नटके पास खाने पानेको कुछ भी न बचा तब उसने राजा महासेनको दानकी शिक्षा
देनी प्रारंभ कर दी और कुछ धन प्राप्त करनेके लिये प्रार्थना भी की । नटकी बात राजाको अच्छी
नहीं लगी इसलिये वह एकदम उसपर क्रुपित हो गया । बस रोषमें आकर शीघ्र ही उसने अपने
सेवकोंको यह आज्ञा दे दी इस नटके पास जो इसीका कुछ माल मसाला हो, सब जवरन छीन लो
और दुष्टको मार भगाओ ॥ ३२३—३२४ ॥ राजाकी यह कठोर आज्ञा सुन यद्यपि सारी प्रजाको
बहुत मानसिक दुःख हुआ था तथापि उस शांत परिणामी नटको शीघ्र ही नगरसे बाहर
निकाल दिया ॥ ३२५ ॥ संसारमें यह बात प्रसिद्ध है कि जो पुरुष मानी हैं उनको लक्ष्मी कुटुंब
धन स्त्री शरीर और पृथ्वी सब कुछ चला जाय-उनके चले जानेसे मानियोंको विशेष कष्ट नहीं
होता परंतु उनका अपमान नहीं होना चाहिये । जिस प्रकार प्राणोंके बिना शरीर किसी
कामका नहीं और भूषणोंके बिना बहुमूल्य वस्त्रोंकी शोभा नहीं उसी प्रकार चाहे पुरुष कितना भी
भूषण वस्त्रोंका धारक हो एक मान बिना उसकी शोभा नहीं-मानी पुरुषका मान ही भूषण है

गवि । देहोऽमुना विना वासो भूषादिभिरिवान्वितः ॥ ३२३ ॥ मानभंगममुद्धू महुःखण्डकुलचेतसा । चकार रेवते संपा श्रुमंजो
मुनेनटः ॥ ३२४ ॥ अत्र पुर्या धनेशाख्यो व्यवहारी तस्य वः प्रतिः । भामा भूरिस्वमातांगो कमला पंकज क्षणा ॥ ३२५ ॥ तयोः पुत्रोऽजनि मृत्वा
नटोऽसौ मृगकेतुवः । रम्यांगो गर्वितोरूपो शास्त्रज्ञः प्राकृतायतम् ॥ ३२६ ॥ अथान्योऽत्रास्ति मेधाढ्यः श्रीगुडी रायालयः प्रिया । कायां
को भावतस्वस्य किन्नरी वदिर द्रुप्रिया ॥ ३२७ ॥ विशालहृदयः फल्गुपेशलो रोजमडली । ललद्वर्ति चकोराक्षी विकरिकां त्वभूषणो
॥ ३२८ ॥ एकदा तां सपालोक्य स्मरेत्वाहतमानसः । दध्यौ चित्तं निजं चेति दुष्टभाकोचिधीर्यतः ॥ ३२९ ॥ संयोगमनया सः कं
॥ ३२६-३२७ ॥ वस मानभंगसे जायमान दुखसे व्याकुल चित्तका धारक वह नट चंपापुरोस निकलकर
रैवतिक पर्वतपर पहुँच गया । किसी मुनिराजसे भेट हो गई । नटने उपदेश प्राप्त किया और वहीं
अपने प्राणोंका विसर्जन कर दिया ॥ ३२८ ॥

चम्पापुरीमें ही एक धनेश नामका व्यापारी रहता था उसकी स्त्रीका नाम कमला था जो कि
रतिके समान परम सुन्दरी थी । सुगठित शरीरके अवयवोंकी धारक थी और कमलके समान वि-
शाल नेत्रोंसे शोभायमान थी । वह नट भरकर इन्हींके मृगकेतु नामका पुत्र हुआ जो कि पूर्वपुण्य
के उदयसे मनोहर अङ्गका धारक था । बड़ा अभिमानो अत्यन्त रूपवान और परम विद्वान था ।
॥ ३२६-३२७ ॥ उसी नगरीमें एक भेष नामका भी अत्यन्त धनवान पुत्र रहता था उसकी स्त्रीका
नाम कायांकी था जो कि अपनी अनुपम सुन्दरतासे ऐसी जान पड़ती थी मानो यह किन्नरी है
वा नागकुमारी है । वह सेठानी कायांकी विशाल वक्षस्थलसे शोभायमान थी । महा मनोज्ञ स्तनोंकी
धारक थी । सुन्दरता पूर्वक गमन करनेवाली थी । चकोरके समान नेत्रोंकी धारक थी और परम
युवावस्थासे शोभायमान थी ॥ ३२९-३३० ॥ व्यापारीपुत्र मृगकेतुकी एक दिन कायांकी पर दृष्टि
पड़ गई उसे देखतेही मृगकेतुका चित्त कामसे पीड़ित होगया । निर्बुद्धि के चित्तमें सदा दुष्ट ही
विचार हुआ करते हैं इसलिये वह अपने मनमें यह विचार करने लगा कि-यदि इस सुन्दरीके साथ

सोन्न वै जोचितं धनं । वेयथ्यं सग्नं सौख्यं किं दुश्चित्तं हि शम्यते ॥३३४॥ इत्युक्त्वा सैकदा तेन भोः भोः पितृभ्योऽधरे ! । एहि
भारान्निदधे मां भुक्त्योरंतरे कुरु ॥ ३३५ ॥ तद्वक्तुः कटुकं श्रुत्वा गता सद्यः प्रतीच्छया । उपाया विदित्वास्तेन भूयोऽकृतानि ताः ।
३३६ । प्रामनुबन्ध दृते येऽपि समीहन्तेऽनुबन्धकं । तेषां हि फलमेवाहुर्निबन्धं वै विचक्षणः ॥ ३३७ ॥ असीं राजानमासाद्य रणणेनि
वचः प्रियं । हे देव ! सिंहलद्वीपे गंधिलो विद्यते वयः ॥३३८॥ श्रुत्वा परिवृद्धः प्राह किमर्थं तत्प्रयोजनं । अत्रोत्तं मदांधश्च शृणु तं
संयोगं तर्ही हुआ तो मेरा जीवन धन महल मकान और सुख सारे व्यर्थ हैं ठीक ही दुष्ट चित्तमें
प्रशंसाजनक विचार हो ही क्या सकते हैं । वस एक दिन वह सेठानी कायांकीके पास पहुँचा और
उससे इसप्रकार कहने लगा—

सुन्दरी ! तुम विशाल स्तनोंसे शोभायमान परम सुन्दरी हो मेरा हृदय कामाग्निसे प्रज्वलित
हो रहा है तुम्हें मेरे ऊपर प्रसन्न होना चाहिये ॥ ३३३—३३५ ॥ सेठानी कायांकीकी मृगकेतुके
साथ तिलकुल रमण करनेकी इच्छा न थी इसलिये मृगकेतुके वचन उसे कड़वे जान पड़े वह चुप
चाप अपने घरमें घुस गई-मृगवेतुकी बातका उसने कुछ भी उत्तर नहीं दिया । यद्यपि मृगवेतुने
उसके राजी करनेके लिये बहुतसे उपाय किये परन्तु वे सब निष्फल ही हुए ॥ ३३६ ॥ ठीक ही है
जो मूर्ख मनुष्य पूर्वभवके सम्बन्धके बिना ही जवरन किसीसे प्रेम करते हैं उन्हें उस प्रेमका फल
मृत्यु ही मिलता है ऐसा बड़े २ विद्वानोंका मत है ॥ ३३७ ॥ जब मृगकेतुकी कुछ भी तीन पाँच
न चली तो वह सीधा राजाके पास गया और उससे इसप्रकार प्रिय वचनोंमें कहने लगा—

महाराज ! सिंहल द्वीपमें एक महा मनोज्ञ गंधिल नामका पक्षी रहता है वह यदि इस देशमें
आ जाय तो बहुत ही अच्छा हो । उत्तरमें राजाने कहा वह पक्षी यदि यहां आ जाय तो उससे क्या
प्रयोजन सटेगा ? इसके उत्तरमें मदांध मृगवेतुने कहा— प्रभो ! जिस राष्ट्र घर और राज्यमें वह

साधर' प्रभा ! ॥ ३३६ ॥ यत्र राष्ट्रे गृहे राज्ये चेद्भवेत् खेचरश्च सः । तदा सुमिक्षिता राज्येऽहितमङ्गो भवेदिति ॥ ३४० ॥ मृगकेतुः !
 वर्यकारं प्राप्यते विरच्योदितः । मत्वा तदंगितं प्राह तं स कामी मदातुरः ॥ ३४१ ॥ हे विभो ! विद्यतेऽत्रापि मेघाण्यः स कलान्वितः
 स गंतुं तव शक्नोति नापरे भूतलेऽङ्कले ॥ ३४२ ॥ तमाकार्यं जवाद्राजा प्राङ्निषावाग्रहाद्भृशं । तस्मिन् गते मृगो गेहं गनहस्य स्मर
 तुरा ॥ ३४३ ॥ अ. याते तमिति ज्ञाय स्वागतं प्रायशः कृतं । तथा स्वा. मन् ! कृपाकारि यदत्र त्वं समाहितः ॥ ३४४ ॥ इति कृत्वा तथा स. ध्व्य
 उत्तम पत्नी रहता है वहां कभी भी दुर्भिक्ष न होकर सदा सुभिन्न रहता है और अहितका नाश होता
 है । मृगवेतुकी यह कौतुक भरी बात सुन राजाने कहा—भाई मृगवेतु ! उस पत्नीकी प्राप्ति होगी
 कैसे ? वस कामी और काम पीड़ित मृगवेतुने जब राजाकी यह लालसा देखी तो उसे बड़ा आनंद
 हुआ और वह इसप्रकार कहने लगा—

राजन् ! आपकी राजधानीमें एक मेघ नामका सेठ रहता है जो कि एक उत्तम वंशका है ।
 समस्त पृथ्वीके मनुष्योंमें वही सिंहल द्वीप जानेकी सामर्थ्य रखता है अन्य कोई नहीं आप उसे
 अवश्य भेज दीजिये ॥ ३३८—३४२ ॥ राजाको आज्ञा अनिवार्य होती है । मृगवेतुकी बातपर वि
 श्वास कर राजाने शीघ्रही मेघको राजसभामें बुलाया और आग्रह कर सिंहल द्वीप भेज दिया ।
 जब श्रेष्ठी मेघ नगरसे प्रयाण कर गया तब काम पीड़ित मृगवेतु शीघ्र ही उसके घरकी ओर चल
 दिया और निर्भय हो दरमें प्रवेश कर गया ॥ ३४३ ॥ सेठानी कायांकी पूर्ण पतिव्रता था इसलिये
 मृग वेतुको देखकर अन्तःकृत तो उसका क्रोधसे भव्यतया परन्तु उस समय क्रोध करनेमें चतुरता
 न समझ ढंग बदल कर मृगवेतुका उसने स्वागत किया और ठंडे वचनोंसे इसप्रकार कहा—

स्वामिन् ! आइये आपने बड़ी कृपाकी जो मुझ अभागिनीके घर आप पधारे तथा ऐसा कह कर
 उसने शीघ्रही एक गढ़ा विष्टासे भरवा दिया । रस्सीसे बिना बुना एक पलङ्ग उस पर बिछवा दिया

कृतोऽयं विधिरद्भुतः । गतोऽपरि पुरोषस्य विरज्जुं संचकं ततः ॥ ३४५ ॥ कृत्वा रम्येण वस्त्रेण पिधाय स्थापितो यदा । तदाऽपन-
 तपुरीषाद्वये गर्तके श्वभ्रमन्निभे ॥ ३४६ ॥ विधिज्ञा यं प्रकुर्वति स विधिर्नो प्रतीयते । गुरुणा रविणा जम्भारातिनापि महोयसा ॥
 ३४७ ॥ अंर्गनगभीराणामीहितं चावगम्यते । इति चक्रुः न शक्येत सिनेर्धं पादमर्पयति ॥ ३४८ ॥ रघुदन्तोऽप्युल्लसन्वोऽपि चपला
 रचंचलः तिमिक्ताः । चर्कति किमनर्थं नाचलनृणां पि सुन्दराः ॥ ३४९ ॥ अभिरूपाः सुराः सर्वे ऋषयोऽपि वनाश्रिताः । योषितां नैव
 जानन्ति चरित्तं स्वमनागतं ॥ ३५० ॥ आतद्वासस्तो दुःखं तत्राचतिष्ठते लकः । दीयमानं तथा धान्यं मुञ्जानो धवाक्षवच्छठः ॥ ३५१ ॥
 मनोहर वल्लसे उसे ढकवा दिया और वढ़े आदरसे सेठानी कायांकीने उस पर बैठनेके लिये भृग-
 केतुसे कहा । कामान्ध भृगकेतुको इस रहस्यके समझनेकी बुद्धि कहां थी वह शीघ्रही उस पलंग पर
 जा बैठा और नरकके समान दुःखदायी उस विष्टासे परिपूर्ण गढेमें जाकर पड़ गया ॥ ३४४-३४६ ॥
 ठीक ही है चतुर लोग जिस चतुरताको करते हैं उस चतुरताका हर एकको जल्दी पता नहीं लग
 सकता विशेष क्या जिनके अन्तरङ्ग गम्भीर हैं वे जिस बातको करना चाहते हैं उसे और की तो
 क्या बात, महान भी विद्वान् बृहस्पति सूर्यदेव और इन्द्र भी नहीं जान सकते । ठीक ही है जलमें
 रहनेवाली मछली कब और कैसे जल पीती है यह हर एक नहीं जान सकता । चञ्चल चमकीली
 और देखनेमें सुन्दर भी दिजली जिस प्रकार घोर अनर्थ कर डालती है उसी प्रकार ये स्त्रियां भी
 भड़कीली हंसी हंसनेवाली चञ्चल और परम सुन्दरी दीख पड़ती हैं परन्तु चञ्चल चित्त पुरुषोंका ये घोर
 अनर्थ कर डालती हैं । इन स्त्रियोंके चित्तोंमें क्या क्या चरित्र विद्यमान रहते हैं उन्हें औरकी तो
 क्या बात विद्वान् देव और वनमें रहनेवाले ऋषि मुनि भी नहीं जान सकते । कामी भृगकेतु जिस
 दिनसे उस गढेमें पड़ा अनेक प्रकारके दुःखोंको भोगता हुआ वह वहीं पर पड़ा रहा एवं जिस
 प्रकार काकको टुकड़ा डाल देते हैं उसी प्रकार कायांकी जो उस मूर्खको खानेको देती थी उसे ही
 वह खाता रहा और अपनी मृत्युके दिन व्यतीत करने लगा ॥ ३४७—३५१ ॥

अथैकदा समायातो मेघाख्यः सिंहलाद्वद्रुतः । अलब्ध्वा पक्षिणं मासे षण्ठे मानधनो धनी ॥ ३५२ ॥ तद्वत्तमुदितं तस्य पुरस्ताद्भाय या
खिलं । श्रुत्वोत्थाय व्यधान्वित्तमिति श्रेष्ठी विचारयित् ॥ ३५३ ॥ निष्कास्य सैनसं बाह्ये कृषीभूयास्तितं खलं । नानाहारीतपक्षैश्च
लितुं रचितैः ॥ ३५४ ॥ जगतां च विधायाः सुप्रोचेशानसन्निधौ । जगाविति ततो राजन्मानोतोऽयं विचित्रविः ॥ ३५५ ॥ तं
दृष्ट्वा नागराः सभ्या धीषितश्च विनोदतः । अहासुस्तोलयन्ति स्म राजामात्यादयोऽपि च ॥ ३५६ ॥ धनेशस्य कुपुत्रं तं भत्वा राजा
निभात्सतः । निःसारितः पुगाद्देशाच्चादेवे कुतपोधिधिः ॥ ३५७ ॥ पूर्ववैराजुषंगत्वाग्निदाननिधनं गतः । यातुधानो महादंष्ट्रो

राजाकी आज्ञासे श्रेष्ठी मेघको सिंहलद्वीप तो जाना पड़ा था परन्तु जब उसे वहाँ पर वह
गंधिल पक्षी नहीं मिला तो वह छठे महिने शीघ्र ही वहाँसे वापिस आ गया। जिस समय वह अपने
घर आया तो सेठानी कायांकीने मृगकेतुका सारा वृत्तान्त अपने पति मेघसे कह सुनाया। वह सेठ
एक विदुवान और विचार शील व्यक्ति था इसलिये उसने मृगकेतुको अपने कियेका फल चखाने
कालिये यह आश्चर्यकारी उपाय रचा— गढ़े में पड़ा पड़ा पापी मृगकेतु चिंता और दुःखसे एकदम
कृश और काला पड़ गया था। मेघने उसे बाहिर निकाला। हरे वर्णके पंखोंसे और सिन्दूरसे उसके
शरीरको सजाकर उसे चितकवरा बना दिया। नगरके ईशान कौनमें उसे छोड़ दिया एवं राजाके
समीप जाकर यह कहा—हे राजन् ! मुझे जो गन्धिल पक्षीके लानेके लिये आज्ञा दी गई थी वह
गंधिल नामका विचित्र पक्षी मैंने ला दिया है और वह यह है ॥ ३५२—३५५ ॥ श्रेष्ठी मेघको
बात सुनकर और मृगकेतुको देखकर नगरवासी समस्त सभ्य लोग स्त्रियां राजा और मंत्री आदि
समस्त जन ताली पीट पीट कर हंसने लगे और खिल्ली उडाने लगे। व्यापारी धनेशके पुत्र मृगकेतु
को कुपुत्र समझ कर राजाने उसे बहुत दण्डित किया और राजधानी एवं देशसे बाहिर निकाल
दिया। ठीक ही है जिसका भाग्य अच्छा नहीं होता वह निन्दित कार्यका ही आचरण करता है।
पूर्व वैरके सम्बन्धसे मृगकेतुने नगरके विनाशका निदान बांध लिया जिससे मरकर वह राजस हो

जहोऽस्युत्करहारभृत् ॥ ३५८ ॥ क्रोधारुणमुखो भीकृज्जंतूनां कुपथोक्तिगः । दुर्गवाहवने स्थित्वा भक्षयामास मानवान् ॥ ३५९ ॥ तद्भिधा व्याकुला लोका नादन्ति शेरतो न च । नो निःस्तरंति कुत्रापि मृत्युभीः केन सद्यते ॥ ३६० ॥ यदा सर्वजनांतोऽभूत्तदा राक्षसि तर्कितं । प्रत्यहं दीयते चैको मानवोऽस्मै फलादिने ॥ ३६१ ॥ यदा नो भक्षयेल्लोकान् तिष्ठेदुभूतवने तदा । एवं संचित्य दूतं स प्रजिघायाशु तं प्रति ॥ ३६२ ॥ दृष्ट्वा दूतं समुत्तस्थौ चण्डोऽरुणनिरीक्षणः । वचोमिस्ताडयन्नत्तु तदाहेति चरोभिया

गया जो कि तीव्र डाढ़ोंका धारक था । हड्डियोंका हार धारण करता था । सदा उसका मुख क्रोध से लाल रहता था । जोड़ोंको भयभील करनेवाला था और निर्दयी था । वह दुष्ट राक्षस चम्पापुरी-के बाह्य वनमें रहने लगा और नगरके समस्त लोगोंको खाने लगा । राक्षसकी यह निर्दयता परिपूर्ण चेष्टा देखकर नगर निवासी लोगोंका बड़ी आकुलता हो गई । राक्षसके भयसे न वे खाही सके न पीही सके और न कहीं बाहिर जाही सके । ठीक ही मृत्युका भय सहा नहीं जाता । मृत्यु का नाम सुनते ही हृदय थर थरा निकलता है ॥ ३५६—३६० ॥ राक्षसके द्वारा जब नगर निवासियोंका क्षय होने लगा तब राजाको बड़ी चिन्ता हुई और अनेक तर्कवितर्कोंके साथ उसने यह निश्चित कर दिया कि यदि वह राक्षस यह बात स्वीकार कर ले कि अपनी इच्छानुसार वह किसी भी मनुष्यको न मारे और नगरमें आकर श्मशान भूमिमें ही पड़ा रहे तो हम उसको प्रति दिन एकर मनुष्य भेज सकते हैं । वस ऐसा विचार कर राजाने शीघ्रही दूत बुलाया और उसे राक्षसके पास भेज दिया ॥ ३६१-३६२ ॥ दूतको अपने पास आता देख राक्षस मारे क्रोधके भवत गया उसके दोनों नेत्र लाल हो गये । अनेक प्रकारके दुर्वाक्य कहने लगा और उठकर दूतको खानेके लिये तयार हो गया । राक्षसकी यह क्रूर चेष्टा देखकर दूतने कहा—

॥ ३६३ ॥ श्रूयतां भो महादैत्य ! मां मा भक्षय दुःखिनं । राज्ञो दूतोऽस्म्यहं ते ते विज्ञप्त्यै चागतो भ्रुवं ॥ ३६४ ॥ कव्यादोऽसौ
तदास्वानि तर्कयामास सम्यवत् । हन्यते चेच्चरो नूनं गुरुहत्या भवेदिति ॥ ३६५ ॥ निश्चित्येत्यं जगौ दूतं याहिं याहि ममाग्रतः
वैरादन्यथा तेन तत्पुं निर्जानकृतं ॥ ३६६ ॥ अतो दूतो न हंतव्यस्त्वादृक्षेण यशस्वता । मानिना विक्रमाद्येन गुणगोभीर्यशालि
ना ॥ ३६७ ॥ निसर्गाध्वप्रयाता किं हरिणा ध्वस्तदन्तिना । कोष्ठा ग्रहियते क्वापि श्रुतं दृष्टं त्वया श्रुते ॥ ३६८ ॥ भ्रातृवाक्यं

दैत्यराज ! मैं महा दुःखी हूँ मुझे मत खाइये मेरी बात सुन लीजिये । मैं चम्पापुरीके राजा-
का दूत हूँ । राजाकी बात-निवेदन करनेके लिये आपके पास आया हूँ । दूतकी यह बात सुन
जिस प्रकार सभ्य किसी बातका सरलतासे विचार करता है उसी प्रकार वह राजस अपने मनमें
यह विचार करने लगा । दूतको मारना न्याय विरुद्ध है यदि मैं इस दूतको मार डालूंगा तो मुझे
गुरु हत्याका दोष लगेगा ॥ ३६३—३६५ ॥ वस ऐसा पूर्ण विचार कर राजसने दूतसे कहा—भाई
दूत ! तुम मेरे सामनेसे जा सकते हो मैं तुम्हें नहीं मार सकता । इस प्रकार बलभद्र धर्मने दृष्टान्त
देकर स्वयंभूको समझाया और यह कहा भाई ! पूर्व वैरके संबन्धसे राजसने उस पुरको जन
शून्य बना दिया था इसलिये तुम्हारे प्रति मेरा यही कहना है कि तुम संसारमें एक यशस्वी मानी
पराक्रमी गुणी और गंभीर माने जाते हो तुम सरीखे महा पुरुषको राजा मधुके दूतोंको न मारना
चाहिये । भाई ! विचाग दीन शृगाल जो कि अपने मार्ग पर चल रहा है उसे बड़े २ हाथियोंके
मदको चूर करनेवाले केहरीने मारा हो यह बात आजतक कहीं भी देखी सुनी नहीं गई है । तुम
बड़े राजाओंके मानको मर्दन करनेवाले हो तुम्हें इन दीन दूतोंको कभी नहीं मारना चाहिये । क्रोधी
स्वयंभू कब किसीकी बात सुननेवाला था । अपने बड़े भाई धर्मको बातका स्वयंभूने कुछ भी आदर
नहीं किया । देखते देखते दोनों दूतोंको मार डाला और दोनोंसे जो कुछ भी उनके पास मधुके

तिरस्कृत्य हतौ दूतौ स्वयंभुवा । उभयोः प्रभृतं नोत्वा किं न कुर्वति दुर्धराः ॥ ३६६ ॥ श्रुत्वा ये नरा लोके सत्त्वाख्याः सज्जना
अपि । विमृश्यकारिणोधीरा चन्दनीया ततस्तके ॥ ३७० ॥ ततो गत्वा निजामारं तस्थुरामकेशवौ । भुञ्जानौ प्रीतिः सौख्यं
निमग्नौ रतिवारिधौ ॥ ३७१ ॥ अथैकदा महाराजा मधुः परिवदावृतः । नृपोदारसमे भानू राजते वा नु रात्रिपः ॥ ३७२ ॥ अत्रांतरं
ऽधरे व्योमपानं विद्युत्प्रभं मधुः । ददर्श सुन्दराकारं नानारत्नचयाचितं ॥ ३७३ ॥ ऊहामास स्वचिस्तेऽसौ चपलामण्डलो नुःवा ।
कलायो मिहरो मेरोः प्रस्थं वैडूर्यरजितं ॥ ३७४ ॥ तन्मध्यस्थं महाकायं लेखर्वि श्यामसुन्दरं । स्वर्णशरीजटामालं दृष्ट्वात्तस्थौ सुचं-

लिये भेंट थी सब छीन ली । ठीक ही है मदोन्मत्त क्या क्या अन्तर्ध नहीं कर डालते ॥ ३६६-३६६ ॥
संसारमें जो मनुष्य शास्त्रज्ञ हैं । बलशाली हैं । सज्जन हैं । विचार पूर्वक कार्य करनेवाले हैं और
धीर वीर हैं वे समस्त लोकके आदरके पात्र होते हैं ॥ ३७० ॥ दूतोंके मारे जानेके बाद नारायण
स्वयंभूका क्रोध शांत हो गया । वे दोनों भाई बलभद्र और नारायण सांनन्द अपने राज महलोंमें
रहने लगे । प्रीति पूर्वक राज्य सुख भोगने लगे एवं भोग विलास रूपी समुद्रमें एकदम मग्न हो
गये ॥ ३७१ ॥

एक दिनकी बात है कि अर्धचक्री राजा मधु अनेक राजाओंसे परिपूर्ण राजसभामें बैठे थे
उस समयकी उनकी लोकोत्तर शोभा थी । उन्हें देख लोगोंको यह जान पड़ता था कि यह साक्षात्
सूर्य हैं वा चन्द्रमा हैं ॥ ३७२ ॥ राजा मधुको उस समय एक विमान दीख पड़ा जो कि विजलीके
समान सुन्दर प्रभाका धारक था । मनोज्ञ आकारसे शोभायमान और नाना प्रकारके रत्नोंकी कि-
रणोंसे व्याप्त था । इसप्रकार अद्वितीय शोभासे शोभित विमानको देखकर राजा मधुके चित्तमें
सहसा यह विचार उदित हो गया कि यह विजलीका प्रतिबिम्ब है वा चन्द्रमा वा सूर्य है अथवा
वैडूर्य मणिसे शोभायमान यह मेरु पर्वतका पाषाण है । उस विमानके मध्य भागमें नारद ऋषि-

दितुं ॥ ३७५ ॥ प्रायशः स्वागतं साध्यं संविवाय प्रमोदनः । विष्टरे स्थापयामास सतां हीति कुलक्रमः ॥ ३७६ ॥ अन्वयुक्तं मुनि
स्तस्य राज्ये च क्षमतां तनौ । मुहुर्मुहुः क्षणं स्थित्वा व्याजहारेति कौतुकात् ॥ ३७७ ॥ भो मधो ! यः कृतस्तेन तव दुःखसमु
त्करः । स्वयंभुवातिदुष्टेन प्रसन्न सादरं शृणु ॥ ३७८ ॥ वायं पाणोऽपि धर्मेण भ्रात्रा दूतद्वयं तव । हत्वा द्रव्यं जघानाशु स्वयंभू
भोषणोऽहिवत् ॥ ३७९ ॥ लोलावा निद्रव द्विद्वान् गुरुधन्मेरुभोऽचलः । प्रतापाक्रांतभूकः सन् तृणवत्त्वां न मन्यते ॥ ३८० ॥ न मन्यते
दीर्घ पड़े जो कि विशाल शरीरके धारक थे । देवताओंके ऋषि थे श्याम सुन्दर थे और सुवर्णमयी
जटाओंसे शोभायमान थे नारद मुनिको देखकर राजा मधु शीघ्रही सिंहासनसे उठ खड़ा हुआ ।
भक्तिपूर्वक नमस्कार किया । बड़े आनन्दसे उनका स्वागत किया और भक्तिपूर्वक सिंहासन पर
विठाया ठीक ही है जो सज्जन पुरुष हैं उनके कुलक्रमकी यही रीति है ॥ ३७३—३७६ ॥ उचित
शुश्रूषा जब समाप्त हो गई उस समय ऋषि नारदने राजा मधुके राज्यकी और शरीरकी कुशल
पूछी । कुछ देर तक शांत होकर वे बैठे रहे पीछे कौतूहलसे इस प्रकार कहने लगे—

प्रिय मधु ! अति दुष्ट स्वयंभूने सुनते ही दुःख उत्पन्न करनेवाला जो तुम्हारे साथ घमण्ड-
पूर्वक कौतिक किया है उसे मैं सुनाता हूँ तुम ध्यान पूर्वक सुनो । तुम्हारे लिये भेंट लेकर दो
दूत आ रहे थे । दैवयोगसे स्वयंभूसे उनकी भेंट हो गई । उन्हें तुम्हारे दूत जान स्वयंभूके क्रोध
का ठिकाना नहीं रहा । बलभद्र धर्मने उसे बहुत रोका परन्तु उसने एक न सुनी तुम्हारे दोनों
दूतोंको मार डाला एवं सर्पके समान महा भयङ्कर स्वयंभूने उनका सारा धन छीन लिया । वह
राजा स्वयंभू इन्द्रके समान क्रीडा प्रेमी है । बृहस्पतिके समान विद्वान् है । मेरु पर्वतके समान अचल
है । समस्त पृथिवीको अपने प्रतापसे उसने वश कर रक्खा है तुम्हें तो वह तृणकी बराबर भी नहीं
मानता ॥ ३७७—३८० ॥ क्रियाहीन भी नहीं मानता है अक्रियाहीन भी नहीं मानता है । अप्रा-

यित्वा स दुन्दुभिं सुत्युमीप्रदं ॥ ३८६ ॥ तदा मात्याः समेत्यशु रेणुराजानमंजसा । कपाटोरसमुद्बाहुं प्रक्षुब्धाभोधिभोषणं ॥ ३८७ ॥ संजाघटीति तो क्षिप्रं दुर्जयं जयकांक्षिणं । उपक्रमो धराधीश ! निर्वाच्यतास्पदं यतः ॥ ३८८ ॥ अर्णो राशिगभीरा ये नीतिविक्रमभूयिताः । विमृश्यकारिणः क्षुद्रान् वा फणति न दुर्जयान् ॥ ३८९ ॥ रटमानेऽपि गोमायी प्रमत्ते वेगवत्यहो ! न प्रहारं समाधत्ते पञ्चा-

सुन पहिले तो राजा मधुका शरीर कम्पायमान हो निकला पोछे हृदयको दृढ़कर वह मन ही मन यह कहने लगा कि वह स्वयंभू दुष्ट है मैं उसे अवश्य मारूंगा इसलिये शीघ्र ही उसके मारनेके लिये सिंहासनसे उठ बैठा । राजा स्वयंभूको दुःखित बनानेके लिये उसने विशाल सेना तयार करा ली एवं नगरमें भेरी दिवाकर राजा स्वयंभूके ऊपर चढ़ाई कर दी ॥ ३८३—३८६ ॥ राजा मधुकी यह चेष्टा देख अनेक मंत्री उसके सामने आये और कपाटके समान विशाल वक्षस्थलके धारक विशाल भुजाओंसे शोभायमान एवं खलबलाते हुए समुद्र समान भयङ्कर राजा मधुसे विनय पूर्वक यह कहने लगे—

महाराज ! जो महानुभाव दुर्जय मनुष्योंके जयकी आकांक्षा रखनेवाले हैं उनका कोई भी जल्दी किया हुआ कार्य अच्छा नहीं होता क्योंकि जल्दी किये हुए कार्यसे संसारमें निन्दा ही होती है । प्रभो ! जो महानुभाव समुद्रके समान गंभीर हैं । नीति और पराक्रमसे शोभायमान हैं एवं हर एक कार्यको विचार पूर्वक करनेवाले हैं वे क्षुद्र पुरुषों पर इसप्रकार कमर नहीं कसते और दुर्जनोंको क्षमा भी नहीं करते ॥ ३८७—३८९ ॥ स्वामिन् ! शृगाल चाहें कितना भी मदोन्मत्त चंचल और बड़बड़ करनेवाला हो परन्तु जो केहरी मदोन्मत्त हाथियोंका घमण्ड चूरनेवाला है वह दोन शृगाल पर प्रहार नहीं करता । जिस प्रकार शरद ऋतुमें होनेवाली फल प्राप्ति शरद ऋतुके शुभ कालकी आकांक्षा रखनेवालोंके ही होती है यदि बीचमें ही जल्दी कर दी जाय तो वह फल प्राप्ति

क्रियाहीनोऽक्रियाहीनो न मन्यते । अप्राग्धनो न मन्येत प्राग्धनो न मन्यते ॥ ३८१ ॥ पुरा नो जीयते ते स यदा विक्रमस्तपदं । ने
 ध्यति त्वां तदावस्थां दुःखमोचरतामितां ॥ ३८२ ॥ ब्रह्मात्मभूवचः श्रुत्वा जगर्जं गर्जनान्वितः । खेजगर्जं समाकर्ण्य कंठोरव इवा
 परः ॥ ३८३ ॥ इयाय गभनं सोऽपि ब्रह्मचारी कठिप्रियः । अन्योन्यं द्वेषमुत्पाद्य नारदो नारदोरवः ॥ ३८४ ॥ दूतनाशं समाकर्ण्य
 सकृत्कंपितविग्रहः । हन्यहं साहसं तूर्णं व्याहृत्येति समुत्थितः ॥ ३८५ ॥ वलेन महता साकं साकं तं कर्तुमुद्यतः । चचाल दाप-
 ग्धन भी नहीं मानता है प्राग्धन भी नहीं मानता है ऐसा कहनेसे विरोध सरीखा जान पड़ता है
 इसलिये इसका तात्पर्य यह है कि जो पुरुष क्रिया हीन है अर्थात् निष्क्रिय है—कृत कृत्य है उसे
 किसीके माननेकी आवश्यकता न होनेसे वह भी किसीको नहीं मानता तथा जो अक्रियाहीन है
 अर्थात् निन्दित क्रियाओंको प्राप्त है वह उद्विग्न है वह भी किसीको नहीं मानता है । जो महानु-
 भाव अप्राग्धन है अपूर्व संपत्तिका स्वामी है वह भी किसीको नहीं मानता क्योंकि कृतकृत्य होनेसे
 उसे किसीके आदरकी आवश्यकता नहीं रहती तथा जो प्राग्धन है जिसको कुछ धन प्राप्त हो
 चुका है वह भी घमण्डमें आकर किसीको कुछ नहीं पूछता इसलिये वह भी किसीको मानना नहीं
 चाहता । यह तुम निश्चय समझो वह तुम्हारे सामने टिक नहीं सकता क्योंकि तुम संसारमें एक
 प्रबल पराक्रमी हो जिस समय वह तुम्हारा सामना करेगा उस समय वह दुःखदायी अवस्थाको
 ही प्राप्त होगा ॥ ३८१—३८२ ॥ नारद मुनिसे ये अपने अपमान सूचक वचन सुनकर राजा मधु
 का हृदय क्रोधसे पजल गया एवं जिसप्रकार आकाशकी गर्जना सुन केहरी गर्ज निकलता है उसी
 प्रकार राजा मधु भी वेहद गर्जने लगा । इस प्रकार जिसको कलह ही प्यारी है और आपसमें
 द्वेष कराकर जो मनुष्योंका संहार करानेवाले हैं ऐसे नारदमुनि स्वयंभू और मधु दोनोंमें द्वेषका
 अंकुर बोकर आकाशमार्गसे प्रयाण कर गये । अपने दूतोंका इसप्रकार आश्चर्य कारी मरण

नन इमेशमित् ॥ ३६० ॥ शनकैः शनकैः कार्यसिद्धिः पुंसां प्रजायते । शारदी च फलप्राप्तिः शुभकालानुरागिणो ॥ ३६१ ॥ निश-
 ग्येति मदीत्तुङ्गधराधरतटस्थितः । उवाच पर्वतस्फोटकठिनं कठिनं मधुः ॥ ३६२ ॥ दुर्जया व्याधयो दुष्टा हंतव्या अविलम्बतः
 अन्यथायतिविध्वंसासुप्रणाशकरा बलात् ॥ ३६३ ॥ स्फुटंशी तमोभानो चक्रं संयोजयत्यपि । कौशिकाश्च प्रणश्यन्ति रणो रणविदि
 मयि ॥ ३६४ ॥ सामोदितयमुल्लंघ्य विद्वत्सु बलिभिर्नरैः । योज्यते निग्रहोपायो नान्या शत्रुप्रतिक्रिया ॥ ३६५ ॥ निमित्तैर्वार्यमाणो
 नहीं हो सकती उसी प्रकार समय देखकर धीरे धीरे ही पुरुषोंको कार्य सिद्धि होती है जल्दी कर-
 नेसे कोई भी कार्य सिद्धि नहीं हो सकती । राजन् ! आप जो शत्रुके साथ युद्ध करनेका प्रयत्न कर
 रहे हैं वह विचार कर ही आपको करना चाहिये ॥ ३६०—३६१ ॥ राजा मधु तो उस समय अहं-
 कार रूपी उत्तुङ्ग पर्वतको चोटी पर चढ़ा हुआ था वह मन्त्रियोंकी उचित भी बात कब माननेवाला
 था उसके चित्त पर मन्त्रियोंके वचनोंका रंचमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ा प्रत्युत पर्वतको टुक २ करने
 वाले वज्रके समान इस प्रकार वह वचन कहने लगा—

जो व्याधियां दुष्ट और दुर्जय हैं जल्दी जीतीं नहीं जा सकतीं उन्हें जहां तक बने बहुत शीघ्र
 नष्ट कर देना चाहिये यदि इनके नाशका शीघ्र उपाय नहीं किया जायगा तो आगामी कालमें ये
 अनेक प्रकारकी हानियां करनेवाली होंगी और प्राणोंकी नाशक बनेंगी । जिसका प्रकाश चारो ओर
 फैल रहा है ऐसा सूर्य जिस समय उदित हो जाता है उस समय जिस प्रकार उलूक पक्षी छिप
 जाते हैं—सूर्यका सामना नहीं करते उसी प्रकार संग्रामके अन्दर रणकला बेत्ता जिस समय में
 चक्र लेकर खड़ा हो जाता हूं उस समय शत्रुओंका पता तक नहीं चलता । जो पुरुष बलवान हैं वे
 शत्रुओंके लिये साम दण्ड और भेद इन तीन प्रकारकी नीतियोंका उल्लंघन कर केवल दाम नीति
 का आश्रय करते हैं— शत्रुओंके निग्रहका ही उपाय सोचते हैं क्योंकि बिना निग्रहके उपायके

ऽपि एकान् कणिराडिव । त्यक्त्वा भुवं नमः श्रित्य भानुमास्तं मधुर्द्विषं ॥ ३६६ ॥ केणुः पीलुकदवानि दानव्याणि सर्वतः
 गर्जन्ति चवला मेघाः सिन्दूराभरणानि वा ॥ ३६७ ॥ हे वानीता विचित्रांगा आश्वीयाः क्षुण्णभूधराः । प्रचेलुश्चरणन्यासविधरी
 कृतसिंघवः ॥ ३६८ ॥ आयुधीया भटा भूमविक्रमा विक्रमक्रमाः । स्थपुटोन्नतभुवं चेलुः कृतांतद्वरयो नु वा ॥ ३६९ ॥ स राजाजिर
 मध्यस्थो मधुर्मधुरिवापरः । किन्नरोदगीतकीर्तिश्च प्रलयाभोधिमोषणः ॥ ४०० ॥ अभिवेष्ट्य पुरं तस्य स्थितः शृङ्खलसङ्कुतः ।
 और शत्रुओंके लिये कोई प्रतीकार नहीं ॥ ३६२—३६५ ॥ जिस समय राजा मधु स्वयंभू से युद्ध
 करनेके लिये गया था उस समय उसे बहुतसे अपशकुन हुए थे उन अपशकुनोंसे उसे रुक जाना
 था परन्तु वह बिलकुल नहीं रुका किन्तु सर्पके समान उसका और भी रोष बढ़ता ही चला गया
 एवं जिस प्रकार सूर्य आकाशमें चलता है उसी प्रकार राजा मधु भी वैरी स्वयंभू की ओर पृथ्वीको
 छोड़कर आकाश मार्गसे चल दिया ॥ ३६६ ॥ उस समय जिनके गण्डस्थलोंसे मद चूता था ऐसे
 हाथियोंके समूहके समूह चीत्कार करते थे और सिन्दूरके आभरणोंसे शोभायमान थे सो ऐसे जान
 पड़ते थे मानों विजली युक्त मेघ ही गरज रहे हैं ॥ ३६७ ॥ घोड़ोंका समूह चलने लगा जो कि पद
 पद पर हींसता जाता था । चित्र विचित्र अङ्गका धारक था । अपनी टापोंसे पर्वतोंको चूरनेवाला था
 और अपने खुरोंके न्याससे समुद्र सरीखे गढ़े करनेवाला था । बहुतसे पैदल योधा चलने लगे जो
 कि अनेक प्रकारके आयुधोंके धारक थे । अत्यन्त पराक्रमी थे । विक्रमक्रमा-पक्षियोंके गमनके समान
 शीघ्र गमन करनेवाले थे । चलते समय वे नीची ऊँची जमीनका कुछ भी विचार नहीं करते थे इस
 लिये वे साक्षात् यमराजके घोड़ोंके सरीखे जान पड़ते थे । जिसकी कीर्तिका गान बड़े २ किन्नर
 करते थे एवं जो प्रलय कालके समुद्रके समान अत्यन्त भयङ्कर था ऐसा वह राजा मधु, राक्षस मधु
 के समान सेनाके मध्यभागमें स्थित हो गया तथा सांकलोंसे जिसकी भुजायें शोभायमान हैं एवं

खेचरैर्भूचरैर्भूरिदानवैर्नतत्पटकजः ॥ ४०२ ॥ अटितं तं समाकर्ण्य स्वयंभूर्निर्ययौ पुरः । अभिमुख्यमितस्तस्य बलिनामा महामता ॥ ४०२ ॥ ध्वनयन् अन्यवादिनं तालयन् विद्विषां व्रजं । तर्कयन्नथ गन्धर्वान् तं प्राहेति बलानुजः ॥ ४०३ ॥ युद्धार्थमागता ये तु ते किं तिष्ठन्ति भूतले । अयुष्य स्थीयते स्वैरं कथंकारं त्वयाधम ! ॥ ४०४ ॥ निशम्य वचनं तस्य मधुराज्ञोत्थितोऽग्निवत् । तमावदुवा नश क्षिप्रं घाणपूरं क्षिपन्नलं ॥ ४०५ ॥ चापादिनीलमुद्गतध्वानेन ध्वनिता नगाः । कृजुश्च केकिनो घ्रात्या जोमूतस्थ प्रवर्षिणः ॥ विद्याधर भूमिगोचरी और राक्षस सभी जिसके चरण कमलोंको नमस्कार करते हैं ऐसे राजा मधुने नारायण स्वयंभू का सारा नगर घेर लिया ॥ ३६८—४०१ ॥ जिस समय राजा स्वयंभू ने अपने ऊपर चढ़कर मधुको आता सुना वह शीघ्रही नगरसे बाहिर निकल पड़ा एवं अपने भाई बलभद्रके साथ शीघ्रही मधुका सामना कर डाला । ॥ ४०२ ॥ संग्रामके वाजोंको वजाता हुआ शत्रुओंको भयभीत करता हुआ और गन्धर्वोंको अनेक प्रकारके तर्क वितर्कोंमें उलझाता हुआ नारायण स्वयंभू जिससमय प्रति नारायण मधुके सामने आकर खड़ा हुआ उस समय उसने मधुसे इस प्रकार कठिन वचन कहे—

जो पुरुष यहां पर युद्धके लिये आये हैं वे पृथ्वीतल पर विद्यमान है वा नहीं हैं ? रे अधम मधु ! यदि तू यहां युद्ध करनेके लिये आया है तो तू युद्ध कर । विना युद्धके बृथा तू क्यों यहां पर पड़ा हुआ है ! । राजा मधु तो पहिलेसे ही आग बबूला था जिस समय उसने स्वयंभूके इस प्रकार कठिन वचन सुने वह और भी क्रोधसे पजल गया वह अग्निके समान जाज्वल्यमान होकर शीघ्र ही उठ खड़ा हुआ एवं वाणोंसे अच्छादित कर समस्त जगतको अन्धकार मय बना दिया ॥ ४०४ ॥ ४०५ ॥ उस समय तोपोंके शब्दोंसे समस्त पर्वत शब्दायमान हो गये थे एवं उस शब्दको वर्षाने वाले मेघोंके शब्द समझकर मयूरगण शोर मचाते थे ॥ ४०६ ॥ उस समय संग्राम भूमिमें हाथी

४०६ ॥ सिंधुरैः सिंधुरा लम्बाः स्थन्दनैः स्थन्दना सम । सतिभिः सप्तयो गाढं सादिनः सादिभिः सह ॥ ४०७ ॥ कुन्ताकुम्भित महाजन्यं
 कङ्काकङ्किग गदागदि । कशाकशि तदा जज्ञे वाणावाणि कराकरि ॥ ४०८ ॥ शांडाशांडि तयोर्वाढं खीरासीरि पद्मोपदि । उपलोपडिः
 भीरुणां प्राणहृत् सुभटोत्सव ॥ ४०९ ॥ (युग्मं) स्वायंभुवं तदा सैन्यं मेजे काष्ठास्त्वर मिषा । माघवीयास्त्रभिन्नं सत् का भोर्मर
 णतो भुवि ॥ ४१० ॥ निजं बलं गतच्छायं दृष्ट्वा नारायणोऽमितः । प्रलम्बघ्नेन सार्धं वा समुत्तस्यौ हरिर्गैरेः ॥ ४११ ॥ करेणून
 पातयामास भूधरानिव गोत्रमित् । इषूत्करैर्दिवानाथः कञ्जलाभोस्तमांसि वा ॥ ४१२ ॥ उकारच्युतकोपमा । मुख्यानि भग्नतां याते
 हाथियोंसे भिड़ गये थे, रथ रथोंसे घोड़े घोड़ोंसे घुडसवार घुडसवारोंसे भालेवाले भालेवालोंसे खड्ग
 वाले खड्गवालोंसे गदावाले गदावालोंसे कोडावाले कोडावालोंसे बाणवाले बाणवालोंसे लड़ने लगे ।
 बहुतसे सुभट हाथों हाथ युद्ध करने लगे तथा सड़ासीवाले सड़ासीवालोंसे और हलमूसल वाले
 हलमूसलवालोंसे युद्ध करने लगे । बहुतसे सुभट आपसमें पैरोंसे युद्ध करने लगे एवं बहुतसे आपस
 में पत्थर लेकर युद्ध करने लगे इस प्रकार डरपोकोंको प्राणोंका नाश करनेवाला घोर संग्राम होने
 लगा ॥ ४०७—४०९ ॥ राजा मधुके तीक्ष्ण अस्त्रोंसे छिन्न भिन्न हो नारायण स्वयम्भूकी सेना
 मारे भयके जहां तहां दिशाओंमें भाग गई ठीक ही है मरणसे अधिक संसारमें कोई भय नहीं ।
 ॥ ४१० ॥ जिस समय नारायण स्वयम्भू ने अपनी सेनाको हतप्रभ और जहां तहां भागता देखा
 उस समय उसको आत्मा क्रोधसे भवत गई एवं जिस प्रकार पर्वतसे केहरी उठता है उसी प्रकार
 वह भी बलभद्रके साथ शीघ्र ही युद्धके लिये उठकर तयार हो गया ॥ ४११ ॥ जिस प्रकार इन्द्र बड़े
 बड़े पर्वतोंको ढाह देता है और सूर्य कज्जलके समान काले अन्धकारको तितर वितर कर देता है
 उसीप्रकार नारायण स्वयंभू ने बाणोंके समूहसे मदोन्मत्त हाथियोंको धराशायी बना दिया ॥ ४१२ ॥
 सेनाके मुख्य अङ्ग हाथियोंको इस प्रकार भग्न होता देख राजा मधुका चित्त हिलने लगा एवं वह
 मन ही मन इस प्रकार विचार करने लगा कि यह स्वयंभू बड़ा दुर्धर शत्रु है सामान्य नहीं । किस

चक्रं पति स जगत्पुत्रः ॥ दुराज्योऽयं न मन्मान्यो जीयते केन हेतुना ॥ ४१३ ॥ विचिंत्य बहुशः स्वांते शल्यवाणं मुमोच तं ॥ सैनिका
 येन शलांश्च कीलिता अभवन्निष ॥ ४१४ ॥ संमोहनं द्वितीयं च तामसास्त्रं तृतीयकं । युगपद्व्यानशे मुक्तं स्वयंभूसंगराजिरं ॥
 ४१५ ॥ मूर्च्छिता अपतन्वोरा रावीरा रुधिराक्षणाः । गजोपांतस्थिताः सायंरणा इव तमोन्विताः ॥ ४१६ ॥ तमोभिरखिलं सैन्यं
 व्याप्तं गतमिवाभवत् । प्रलम्बघ्नं तदा प्राह स्वयंभूर्भूरिचिक्रमः ॥ ४१७ ॥ आवाभ्यां किं विधातव्यं भ्रातरघ वद त्वरा । दुर्जयो
 कारणसे इसे जीतना चाहिये ? इस प्रकार बहुत समय तक मन ही मन विचार कर राजा
 मधुने नारायण स्वयंभू की सेनामें शल्यवाण छोड़ा जिससे उसकी सेनाके समस्त सुभट कीलित
 हो ज्योंके त्यों रह गये ॥ ४१३—४१४ ॥ मधुने दूसरा संमोहन नामका वाण छोड़ा जिससे समस्त
 सुभट मूर्च्छित हो गये । तीसरा तामसास्त्र छोड़ा जिससे सर्वत्र अन्धकार हो गया इस प्रकार राजा
 मधुके द्वारा एक साथ छोड़े हुए इन तीन वाणोंसे नारायण स्वयंभू की सेना क्षेत्र एक साथ व्याप्त
 हो गया । उस समय नारायण स्वयंभू के सुभट हा २ शब्द करते हुए पृथ्वीपर गिरगये उनका समस्त
 अङ्ग लोह लुहान था और काले हाथियोंके समीप वे पड़े थे इसलिये वे अन्धकारसे परिपूर्ण सायं
 कालकी लालामीके समान जान पड़ते थे ॥ ४१५—४१६ ॥ अन्धकारसे व्याप्त समस्त सैन्य ऐसा
 जान पड़ता था मानों यह नष्ट ही हो गया है अपने सैन्य मंडलकी यह शोचनीय दशा देख कर
 पराक्रमशाली स्वयंभू ने अपने भाई बलभद्रसे कहा—

प्रिय भाई ! शीघ्र कहो अब हम दोनोंको क्या कार्य करना चाहिये क्योंकि यह राजा मधु
 दुर्जय और बलवान शत्रु है एवं मेरु पर्वतके समान निश्चल है यह नियमसे हमें जीत लेगा । देखो
 तो इस दुष्ट शत्रुने हमारा समस्त सैन्य व्यामुग्ध कर दिया है और जवरन अपने तीक्ष्ण वाणोंसे
 नष्ट भ्रष्ट कर डाला है । नीति यह सूचित करती है कि जिसप्रकार विष वृक्षकी लता प्राणोंको

ज्यं महाशूलं मेरुसंस्थोऽनुजेयति ॥ ४१८ ॥ आत्मीयं संगरं सर्वं पीतं पातलप्रेरितं । ध्वंसितं वानु वाणेन प्रसह्यानेन विद्विषा ॥ ४१९ ॥
 व्याधिः शत्रुश्च दंतव्यो विषवल्लीव वेगतः । अतो ब्रूहि महोपायं येनारिर्नायते शर्म ॥ ४२० ॥ लांगलीत्यवददंत श्रूयतां रणराजि
 हत् । विद्याधराचलादूर्ध्वं वर्ततेऽलकपत्तनं ॥ ४२१ ॥ तदधीशो महाचूलो मिदमस्त्यावयोः परः । तमानयाधिलंबो शत्रुविद्या
 निराकृतौ ॥ ४२२ ॥ अवीषदग्निशम्पादो बभौ धात्रा समोरित । गतव्यं ते त्वरा देव नास्त्यत्रैव विचारणा ॥ ४२३ ॥ सौरी विद्या-
 धरेणामा व्योमयानमधिष्ठितः । यात्यं वरे यदा सायो विद्विषा किंकृतं तदा ॥ ४२४ ॥ नारदोक्त्या क्रुधा रक्ष्यंस्त्ववरादिकशंदया !
 हरण करनेवाली होती है इसलिये लोग उसे शीघ्र ही छेद डालते हैं उसी प्रकार व्याधि वा शत्रु
 भी प्राणोंका नाशक होता है इसलिये जहाँ तक बने उसे बहुत जल्दी नष्ट कर डालना चाहिये ।
 भाई ! तुम अब शीघ्र इस शत्रुके नाशका कोई पुष्ट उपाय बताओ जिससे यह शत्रु शीघ्र शांत
 हो जाय ॥ ४१७—४२० ॥ नारायण स्वयम्भूकी यह बीड़ा-बल्लक बात सुन कर उत्तरमें बलभद्रने
 कहा—रण विजयी भाई स्वयम्भू ! मैं तुम्हें एक उपाय बतलाता हूँ तुम ध्यानपूर्वक सुनो—

विद्याधर पर्वत विजयार्धकी उत्तर श्रेणीमें एक अलक पत्तन नामका नगर है उसका स्वामी
 विद्याधर राजा महाचूल है जो कि हम दोनोंका परम मित्र है । वह मधुकी समस्त विद्याओंके नाश
 करनेमें समर्थ है इसलिये उसे किसी उपायसे यहां बुलाना चाहिये । बलभद्र धर्मके इस प्रकारके
 वचन सुनकर नारायण स्वयम्भूको कुछ सन्तोष हुआ और यह कहा भाई ! आप शीघ्र वहां
 पर चले जाइये अब इस विषयमें विशेष विचार करनेके लिये समय नहीं है । वस बलभद्र धर्म
 किसी विद्याधरके साथ शीघ्र ही विमान पर सवार हो लिये । इस प्रकार बलभद्र धर्म तो
 आकाशमार्गसे विद्याधर लोककी ओर जा रहे थे इधर राजा मधुने क्या काम किया कि
 नारदसे यह सुनकर कि बलभद्र, विद्याधर लोकको जा रहा है शीघ्र ही विद्यावलसे समस्त
 आकाश सुरक्षित कर दिया एवं विशाल शत्रु रूपी नागके लिये गरुड़ स्वरूप उस मधुने

मधुनारिवितानाहिधितानगच्छेन हि ॥ ४२५ ॥ पृष्ठतो भ्रामरी विद्या मुक्ता तन्नाशहेतवे । तथागत्य समादाय क्षितोऽवधौ लङ्गलो
 महान् ॥ ४२६ ॥ पतन्मपांशुलोजापमक्षरद्वितयात्मकं । सस्मार वेगतो गाढमन्त्रराजमनादिकं ॥ ४२७ ॥ तोयराशिस्थदेवस्य
 मणिचूलस्य कण्ठतात् । विष्टस्य समेत्याशु तदेव्यं वा दधार तं ॥ ४२८ ॥ अर्चयित्वा मणिं दत्त्वा तटे मुक्तो गुणात्मकः । तथा पुण्य
 वशाशत्र यावदास्ते खगं स्मरन् ॥ ४२९ ॥ तावत्पश्यन् समायातः खेवरः खेचरन् द्रुतं । विमाने स्थापयित्वा तं जगामाशु यथाह्वि
 बलभद्रके नाशके लिये पोछेसे भ्रामरी नामकी विद्या छुटकादी । उसने बलभद्रको जिकड़कर
 पकड़ लिया और विशाल समुद्रके अंदर धर फेंका ॥ ४२१—४२६ ॥ बलभद्र धर्म जिस समय
 समुद्रमें पड़ गये वहांपर वे निस्सहाय हो गये एवं अनादि सिद्ध और दो अक्षरस्वरूप 'अहं'
 इस मंत्र राजको वे जपने लगे । उस समुद्रका स्वामी एक मणिचूल नामका देव था । मंत्रके प्रभा-
 वसे उसका आसन कपा और उसकी अंवा नामकी देवीने ऊपर निकाल लिया । महापुरुष जान
 प्रेमपूर्वक बलभद्रकी पूजा को । भैटमें मणि प्रदान की । एवं अनेक गुणोंके भंडार स्वरूप उसे
 तटपर आकर छोड़ दिया ॥ ४२७—४२९ ॥ बलभद्र धर्म तटपर आकर देखते क्या है कि जिसके
 विमानमें चढ़कर आये थे वह विद्याधर जहां तहां आकाशमें घूमता हुआ वहां पर आगया है उसे
 देख बलभद्रको बड़ा हर्ष हुआ विद्याधरने उन्हे विमानमें चढ़ा लिया और जहां उन्हें पहुँचना था
 वहां वे दोनोंके दोनों चल दिये ॥ ४३० ॥ मधुद्वारा छुटकाई हुई भ्रामरी विद्याने फिर भी बलभद्र
 का पीछा न छोड़ा । उसने भेरुण्ड पक्षीका रूप धारण कर लिया और बलभद्रको निगल गई । बल-
 शाली बलभद्रने नख और दातोंसे उसे विदार डाला । मुष्टियोंके तीव्र घातोंसे उसका पेट फाड़-
 कर बाहर निकल गये और पर्वतके ऊपर गिरने लगे, इतनेही में लाघवी नामकी महा विद्यासे उस
 विद्याधरने बलभद्रको डाट लिया । विमानमें सवार कर लिया और दोनोंके दोनों गङ्गा सरोवर पर

॥ ४३० ॥ त्रैलोक्यरूपमादाय भूयो धृत्वमजयत ॥ विजयं तामारीं दुष्टां नखरैश्च रघुः खरैः ॥ ४३१ ॥ बलभद्री बलोद्वाहुर्मुष्ट्या घातैर्धनैर्धृशं । स्फोटयित्वा दूरं तस्या निःसृत्यासौ पतन् गिरौ ॥ ४३२ ॥ लाघव्या विधाय तेन दध्रे गगनगामिना । व्योभयानमधि ष्ठाप्य तं गङ्गाहृदमाप सः ॥ ४३३ ॥ पायं पायं जलं तत्र कारं कारं प्रवृत्तिकां । स्थायं स्थायं स्थिरो गन्तुमिच्छतः स्म तदा तयो ॥ ४३४ ॥ तदा गत्य बलं नोत्वा गत्वा श्रीसुखराचले । सिंहीभूत्वा रणाक्षी सा ज्वादितुं तं समागता ॥ ४३५ ॥ तदा शीरी महामन्त्रं स्मृत्वा तां दृढमुष्टिभिः । जघान चरणन्यासकं पितांगोऽशनिद्विजः ॥ ४३६ ॥ दुर्जयं तं समावेद्य व्यालवदुर्धरं तु सा । गृहीत्वा द्वयशौ जाकर पटुं च गये ॥ ४३१—४३३ ॥ गङ्गा सरोवर पर पहुचकर उसका जलपान किया । अनेक प्रकारकी चेष्टा कीं एवं कुछ देर विश्राम कर जिस समय आगेको चलनेके लिये उद्यत हुए कि इतनेही में वह भ्रामरी विद्या बलभद्रको विजयार्घ पर्वत पर उठाकर ले गई एवं सिंहका रूपरखकर उसे मारनेके लिये तयार हो गई । बलभद्रसे उस समय और कोई उपाय नहीं बना । णमोकार मंत्र का स्मरण कर वे वज्रके समान कठोर होकर कठोर मुष्टियोंसे उसे मारने लगे ! बलभद्र जिस समय उसे मार रहे थे पैरोंके जहां तहां पड़नेसे उसका शरीर चल विचल होता था । जब भ्रामरी विद्याने यह सोचा कि यह जल्दी जीता नहीं जाता और सपके समान महा भयङ्कर है तो प्रबल पराक्रमी उस बलभद्रको मजबूतीसे पकड़ लिया और एक विशाल शिलाके नीचे जाकर दबा दिया वस देवी तो बलभद्रको दबाकर किनारे हो गई इतनेही में अपनी स्त्रीके साथ उस पर्वत पर क्रीड़ा करनेके लिये विद्याधर महाचूल भी आ गया । जिस शिलाके नीचे बलभद्र धर्म दबे पड़े थे उस शिला पर महा चूलकी दृष्टि पड़ गई । बलभद्रके हलन चलनसे वह शिला हलती चलती थी शिलाको देखते ही विद्याधर महा चूलने समझ लिया कि इसके नीचे कोई व्यक्ति है और यह मंत्र से कीली हुई है वस चकोर पक्षीके समान चञ्चल नेत्रोंसे शोभायमान और विशाल भुजाओं के धारक विद्याधर महाचूलने शीघ्र ही शिलाको उखाड़ डाला । शिलाके नीचेसे बलभद्र धर्म बाहिर

मध्ये चिक्षेपायामशालिनः ॥ ४३७ ॥ क्षिप्त्वाटिता यदा देवो तदैवागन्वान् खगः । मशूकामिवः प्राज्ञः क्रोडितुं रामया सह ॥ ४३८ ॥
 उच्छृंसतीं शिलां दृष्ट्वा विद्यया कीलितां च सः । उत्तराट्ट महाबाहुश्चारुचञ्चकोरदृक् ॥ ४३९ ॥ ततो निःसृत्य वेगेन मुसली
 खगमोक्ष्य तं । आलिलिंग गुणाभ्योर्धि कृतवान् भाषणं मुहुः ॥ ४४० ॥ संगरोद्धूतवृत्तांतमुक्त्वा नीत्वा खगं बलो । सौहृदाहोलाया
 याति तावदन्यकथाऽभवत् ॥ ४४१ ॥ मधुमुका भ्रामरी सापि दृष्ट्वा तं खगपुंगवं । तन्मूर्ध्नि क्षेपयामास शैलं गोवर्धनाभिध्वं ॥ ४४२ ॥
 खगेनावगता विद्या भ्रामरी भोप्रदा नृणां । यमशृङ्खलाया धादं तां बधेय तदा खगः ॥ ४४३ ॥ अन्वयुकोति कासि त्वं रण्डे ! दुष्कर्म-

निकल आये । अनेक गुणोंके भण्डार विद्याधर महाचूलको देखकर उन्हें बड़ा हर्ष हुआ । एकदम मिलनेके लिये उससे लिपट गये और बार बार बात चीत करने लगे ॥ ४३४—४४० ॥ संग्राममें जो कुछ भी बात हुई थी सारी बलभद्रने कह सुनाई । विद्याधर महाचूलको अपने साथ ले लिया एवं वे दोनों आपसमें मैत्रीभाव रख लीलापूर्वक द्वारावतीकी ओर चले ही आ रहे थे कि यह घटना उपस्थित हो गई—

राजा मधु द्वारा भेजी हुई भ्रामरी विद्याने जिस समय विद्याधरोंमें श्रेष्ठ राजा महाचूलको देखा शीघ्र ही उसने मारनेके लिये उस पर गोवधन नामका पर्वत गिरा दिया ॥ ४४१—४४२ ॥ भ्रामरी विद्याकी यह क्रूर चेष्टा देखकर विद्याधर महाचूलने समझ लिया कि मनुष्योंको भय उत्पन्न करनेवाली यह भ्रामरी नामकी विद्याकी करतूत है । मारे क्रोधसे उसका हृदय प्रज्वलित हो गया । हाथमें वज्र शृङ्खला लेली और उसे जिकड़ कर बांध कर इस प्रकार कहने लगी—अरी दुष्ट कार्यको करनेवाली राड़ तू कौन है ? जल्दी बता नहीं तो अभी मैं तेरा नाश किये देता हूँ । विद्याधर महाचूलकी यह बात सुनकर विद्या भ्रामरी एकदम कप गई एवं भयभीत हो वह इसप्रकार कहने लगी—

कारिणि ! । वदान्यथा करिष्यामि विप्रहं निप्रहं तव ॥४४४॥ तदोवाचेत्यहं राज्ञा मधुना प्रेषिता सती । इंतुमिच्छामि शोभास्त्रं किला-
स्मिन् विक्रमो न मे ॥४४५॥ मुग्धं मुञ्च महाबाहो ! बन्धनान्मां प्रयाम्यहं । रवीन्दुपातनै शक्तिः सापकर्तुं न मे तव ॥४४६॥ तां मुक्त्वाऽऽ-
काशगामी स शीरिणा सहितोऽगमत् । यत्नास्ते माघभो धीरः संगरोरंगसंगरे ॥ ४४७ ॥ नत्वा कुशलमापृच्छ्य बलदेवानुजं विभुं
जगाद् जनितानन्दो रीतियुक्तमिति स्फुटं ॥ ४४८ ॥ शत्रुमुक्तं महाविद्यालयं केनापि लब्धते । नेवातो यामि येमेन विद्यासाधनहेतवे
॥ ४४९ ॥ हे मित्रागम्यतां तूर्णं स्वयंभूराक्षीदिति । वरं चेति गतः शैले होमन्ते खेचरो महान् ॥ ४५० ॥ नगनीभूत्वा गलेधृत्वा कणि

राजा मधुने बलभद्र धर्मके मारनेके लिये मुझे यहां भेजा था परन्तु इसकी अलौकिक शक्ति देख
कर मुझे यह विश्वास हो गया है कि मुझमें इसके मारनेकी सामर्थ्य नहीं । प्रिय विद्याधरोंके इंद्र !
कृपाकर तुम मुझे छोड़ दो मैं चली जाती हूं । यद्यपि मैं सूर्य चन्द्रमाके गिरानेकी सामर्थ्य रखती
हूं परन्तु मैं तुम्हारा किसी प्रकारका अपकार नहीं कर सकती ॥ ४४३—४४८ ॥ भ्रामरी विद्याकी
यह प्रार्थना सुनकर विद्याधर महाचूलने उसे छोड़ दिया एवं जहां पर संग्राम भूमिके अन्दर राजा
मधुकी सेना पड़ी थी वहां शीघ्र ही बलभद्र धर्मके साथ जाकर पहुंच गया ॥ ४४९ ॥ विद्याधर महा
चूलने बलभद्रके छोटे भाई नारायण स्वयम्भू को प्रणाम किया । नारायणसे मिलकर उसे बड़ा
आनन्द हुआ एवं नीति परिपूर्ण स्पष्टरूपसे उसने यह कहा—

राजा मधुने जो शल्यबाण आदि तीनों महा विद्याओंका प्रयोग किया है । उन तीनोंका हटाना
महा कठिन है इसलिये मैं इन तीनों विद्याओंको नाश करनेवाली विद्या सिद्ध करने जा रहा हूं ।
आप लोग धैर्य रखें । विद्याधर महाचूलकी यह बात सुन नारायण स्वयम्भू ने कहा—

मित्र ! तुम्हें बहुत जल्दी लौट आना चाहिये ऐसा न हो कि तुम वहां किसी प्रकारसे विलंब
कर लो । उत्तरमें विद्याधर महाचूल यह कह कर कि मैं शीघ्र आऊंगा तत्काल हीमन्त पर्वत पर
चला गया । वहां पर उसने समस्त बस्त्र छोड़कर नग्न अवस्था धारण कर ली । गलेमें लाल २ नेत्रों

न रक्तलोचनं । मस्तकेऽस्थिकिरीटं च भूतारण्ये स्थितो निशि ॥ ४५१ ॥ रुण्डमालां समादाय पटिं वशद्वाहुवेचरीं । मानसीमाशु ध्या-
नेन ससाधासौ खगाधिपः ॥ ४५२ ॥ साधयित्वा महाविद्यां शैलोनतपयोधरां । दुःसाध्यामागतस्तत्र किं न स्यात्सुकृतोदयात् ॥ ४५३ ॥
तत्प्रयो ध्वंसिता तेन विद्यया रविणा यथा । प्रभया तामसं नैश्वर्यं हरिणा सिंधुरोत्करः ॥ ४५४ ॥ स्पष्टं सैन्यं तदा दृष्ट्वा स्वयंभूः शेष-
धिक्रमः । अघान घनघातैश्च माधवीयं बलं बलात् ॥ ४५५ ॥ दुर्जयं तं समालोक्य मधुः क्रोधाग्निदीपितः । तस्याभिमुखमासाद्य
का धारक सर्पं डाल लिया । मस्तक पर हड्डियोंका मुकुट बांध लिया और रात्रिके समय उस पर्व-
तके भूतारण्य नामक वनमें स्थिर होकर बैठ गया । विद्याधरोंके स्वामी राजा महाचूलने हाथमें
रुण्डोंकी माला लेकर छत्तीस भुजाओंकी धारक मानसी नामकी विद्याको साधा ॥ ४५०—४५३ ॥
जिसके स्तन पर्वतके समान विशाल हैं और जिसका साधना हर एकके लिये दुःसाध्य है ऐसी उस
महा विद्याको विद्याधर महा चूलने शीघ्र ही साध लिया । ठीक ही है पुराणके बलसे क्या बात दुर्लभ
रह जाती है ॥ ४५४ ॥ उस महा विद्याको सिद्धकर विद्याधर महाचूल शीघ्र ही लौट आया जिस
प्रकार सूर्यकी प्रभासे रात्रिका अन्धकार नष्ट हो जाता है । केहरी हाथियोंके भुण्डके भुण्डको
अस्त व्यस्त कर डालता है उसी प्रकार उस विद्याके द्वारा विद्याधर महाचूलने शीघ्र ही राजा
मधुकी तीनों विद्याओंको नष्ट कर डाला । शेष नागके समान पराक्रमी नारायण स्वयम्भूने जिस
समय अपनी सेनाको मूर्छा रहित देखा तो उसे बड़ा आनन्द हुआ एवं अनेक प्रकारके तीव्र घातों
से उसने राजा मधुके सारे सैन्यको अस्त व्यस्त कर डाला ॥ ४५४—४५५ ॥ स्वयम्भू की यह लोको-
त्तर वीरता जिस समय राजा मधुने देखी तो मारे क्रोधसे उसका हृदय प्रज्वलित हो गया
एवं अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे सुसज्जित हो वह शीघ्र ही नारायण स्वयम्भूके सामने आकर डट
गया । नारायण स्वयम्भूके ऊपर उसने अग्नि बाण जलबाण पर्वत बाण और नाग बाण आदि

नानाशास्त्रविशारदः ॥४५६॥ बहिनोयागनागादिबाणान् चिक्षेप तं प्रति । हरिस्तोयेन बातेन वज्रवीड्भ्यामशीशमत् ॥ ४५७ ॥ (क)
 विलक्षोऽभून्मधुराजा दृष्ट्वा बाणप्रखण्डनां । विषट्कांशु तदा चक्रं मुमोच मगधाधिप ! ॥ ४५७ ॥ (ख) गत्वाकाशे समेत्याशु परी
 त्य दक्षिणे भुजे । स्थितं स्वयंभुवो नूनं पुण्यादिकं न समाप्यते ॥ ४५८ ॥ चक्रं गते जगर्जाथ मधुः परुषया गिरा । मेरोः कोः खल्य
 चास्फोटो जगद्गन्धनस्य वा ॥ ४५९ ॥ स्वयंभूः क्षत्रकारं रे चेदास्ते शक्तिरद्भुता । मुञ्च शारं परिभ्रम्य त्वत्प्रणाशकरं च मां ।
 बहुतसे बाण छोड़े परन्तु नारायण स्वयम्भू भी कम न था । उसने अग्निबाणको जल बाणसे नष्ट
 किया । जल बाणको पवन बाणसे हटाया । पर्वत बाणको वज्रबाणसे छेदा एवं नाग बाणका नाश
 गरुड बाणसे किया । नारायण स्वयंभूका यह विचित्र रण कौशल देख एवं अपने बाणोंको छिन्न
 भिन्न देख महा अभिमानी राजा मधु लज्जित हो गया और तो उससे कुछ न बन सका क्रोधसे
 अन्धा हो शीघ्र ही उसने नारायण स्वयंभू के ऊपर चक्र चला दिया । राजा मधु द्वारा छोड़ा हुआ
 वह चक्र पहिले तो आकाशमें गया पीछे नारायण स्वयंभू के पास आकर उसकी तीन प्रदक्षिणा
 दो और दाहिने हाथ पर आकर विराज गया ठीक हो है पुण्यके बलसे ऐसी कौनसी दुर्लभ चीजें
 हैं जिनकी प्राप्ति जीवोंको नहीं हो जाती ॥ ४५६—४५८ ॥ चक्र जाकर जब स्वयंभूके दाहिने हाथ
 पर जा धरा तो प्रतिनारायण राजा मधुको नितान्त दुःख हुआ एवं वह इस प्रकार अत्यन्त कठिन
 बाणी बोलने लगा । राजा मधुकी उस समयकी ध्वनि इतने जोरसे थी कि लोगोंको यह मालूम
 पड़ा था कि यह मेरु पर्वतके गिरानेका वा पृथ्वीके फटनेका वा आकाशकी गर्जनाका शब्द है अथवा
 प्रलयकालमें समस्त जगतको भङ्ग करनेवाले मेघकी गर्जना है ॥ ४५९ ॥

रे अधम क्षत्री स्वयम्भू ! चक्रको पाकर शांत क्यों खड़ा हैं ? यदि तेरे अन्दर अद्भुत शक्ति
 है तो तू चक्रको भ्रमाकर मेरी ओर छोड़ । तू निश्चय समझ यह चक्र नियमसे तेरे प्राणोंका ना-
 शक होगा । उत्तरमें स्वयम्भू ने कहा—

४६० ॥ स्वयंभूवाच—महीयासं प्रवृद्धं च पृथुकं कातरं स्त्रियं । निरागसं च शूराणामस्तिर्न प्रसरेत्कदा ॥ ४६१ ॥ मधुवाच—
विमलोऽसिं समुद्रतुं येऽरितामसमित्रभाः । भूभरं मलति शेषः कूपशायी च दुर्दुरः ॥ ४६२ ॥ स्वयंभूवाच—जगदोपि तमःसंघं
नयंतं समतां जगत् । चक्रंऽभियोगमुष्णां शुः छेत्तुं नो विवर्तस्थितं ॥ ४६३ ॥ मधुवाच—पंगोजिनिमिषोमेरुं गतिर्न स्यात्प्रसारिणी ।

जो बड़े हैं। वृद्ध हैं। बालक और भयभीत हैं। स्त्रियां हैं और निरपराध हैं उनपर वीर लोग
अपनी तलवार नहीं छोड़ते। मधु ने उत्तर दिया—

जो महानुभाव शत्रुरूपी अन्धकारके लिये सूर्य समान हैं वे ही खड्गको धारण कर सकते हैं
डरपोंक नहीं। लोकमें यह किंवदन्ती है कि पृथ्वीके भारको शेष नाग ही धारण कर सकता है
कूपमें रहकर टर टर करनेवाला मैढक नहीं। उत्तरमें नारायण स्वयम्भू ने कहा—

जो सूर्य समस्त जगतके अन्धकारका नाश करनेवाला है वह विलमें रहनेवाले अन्धकारके नाश
करनेके लिये किसी प्रकारका उद्योग नहीं करता क्योंकि उस अन्धकारके नाश न करनेसे उसको
महत्तामें किसी प्रकारकी कमी नहीं मानी जाती। नारायण स्वयम्भू की यह बात सुनकर मधु ने कहा—

पंगु पुरुष यदि यह चाहें कि मैं मेरु पर्वत पर चढ़ जाऊं तो वह चढ़ नहीं सकता तथा क्षुद्र
पुरुष यदि यह चाहें कि मैं छोटीसी नावसे विशाल समुद्रको तर जाऊं तो वह तर नहीं सकता। रे
स्वयंभू ! तुझ सरीखा क्षुद्र पुरुष मेरा क्या कर सकता है। उत्तरमें स्वयंभू ने कहा—

केहरी अञ्जन पर्वतके समान विशाल हाथियोंका ही मांस खाता है यदि वह उसे न मिले
और उसके प्राण भी चले जाय तो वह शृगालका मांस नहीं खा सकता और न तृण ही भक्षण
कर सकता है। मधु ने उत्तर दिया—

उडुपेन मशाम्भोधिं तर्तुं क्षुद्रो न शक्नुयात् ॥ ४६४ ॥ स्वयंभूवाच—अंजनोशुंगनागतां प्लमसि मृगाहितः । गोमायवं न प्राणांते
 रुणं वा रक्तकोसरः ॥ ४६५ ॥ मधुहवाच—जन्तवोऽपि बलाक्रांतभूयला भूतलातलाः । क्षिपन्ति ना तथा नूनं कीनाशस्य मुखे करं
 ॥ ४६६ ॥ लज्जिकापुत्र ! रे नीचोत्सहसे किमु सांप्रतं । लब्ध्वा चक्रं न शक्तिश्चेदन्यथा क्षिपताज्जवात् ॥ ४६७ ॥ स्वयंभुवा तदा
 मुक्तं चक्रं मधुनराधिपं । द्विधा चक्रेऽथ कालस्य नियोगः केन लंघ्यते ॥ ४६८ ॥ रुद्धध्यानत्वतो मृत्वा गतः श्वध्वं तमस्तमः । मधु-
 र्मानी कृतं पापं भोक्तुं वा नैरुन्नातः ॥ ४६९ ॥ अथास्त्रा व्यानशो नस्य केशवस्य गुणाम्बुदेः । वर्षार्धं साधयित्वा स बलेनामा

जो पुरुष अपने दिव्य बलसे समस्त पृथ्वीतलको व्याप्त करने वाले हैं और भूतलातलाः—
 समस्त पृथ्वीतलको पीड़ित करनेकी सामर्थ्य रखते हैं वे भी यमराजके मुखमें हाथ नहीं डालना
 चाहते—यमराजसे वे भी डरते हैं । रे दासी पुत्र ! यदि तेरे अन्दर किसी प्रकारका सामर्थ्य नहीं
 है तो तू चक्रको पाकर अब क्या विचार कर रहा है । यदि कुछ भी सामर्थ्य रखता है तो शीघ्र उसे
 मेरे ऊपर चला ॥ ४६०—४६७ ॥ प्रति नारायण मधुकी इतनी कड़ी बात नारायण स्वयंभूको कब
 सहन होने वाली थी बस उसने शीघ्र ही राजा मधुके ऊपर चक्र चला दिया जिससे तत्काल उसके
 शरीरके दो खंड हो गये, ठीक ही है जिस मनुष्यका जिसरूपसे मरण होना होता है नियमसे उसका
 उसी रूपसे होता है—कोई भी उसका उल्लंघन नहीं कर सकता । महा अभिमानी राजा मधुके परि-
 णाम मरते समय रौद्र ध्यान रूप थे इसलिये वह मरकर सातवे नरक गया वैसे जो पाप किया
 जाता है वह नियमसे भोगना होता है ॥ ४६८—४६९ ॥ प्रति नारायण मधुके मरजाने पर अनेक
 गुणोंके समुद्र नारायण स्वयंभूकी आज्ञा सर्वत्र फैल गई । भरत क्षेत्रके तीन खण्डोंको उसने सिद्ध
 कर लिया और बलभद्र धर्मके साथ सुखपूर्वक रहने लगा । वह पुण्यात्मा स्वयंभू इन्द्रके समान
 निर्विघ्न रूपसे नाना प्रकारके भोग भोगने लगा अपने तीव्र प्रतापसे उसने समस्त शत्रुओंको
 जीतकर उनकी स्त्रियोंको दुःखी बना डाला । वह राजा स्वयंभू शिष्ट पुरुषोंका अच्छी तरह पालन

सुखे स्थितः ॥ ४७० ॥ भुजानो चिविधान् भोगान् निर्विघ्नं देवनाथवत् । प्रतापेन जितारीणां नारीणां लोचनांबुक्त ॥ ४७१ ॥
 सुशिष्टान् पालयामास दुष्टनाशं चकार सः । अप्सरोरूपरामाणां वक्षोजाम्भोजपटपदः ॥ ४७२ ॥ राजामार्गोद्भवानां स सहस्राष्टकसे
 वितः । मंडलीकेतराणां च तावन्महेच्छार्चितः पुनः ॥ ४७३ ॥ कियत्यथ गते काले स्वयम्भूरापे नैधनं । वैरवम्भोत्थरापेन पातालं
 सप्तमं गतः ॥ ४७४ ॥ श्वभ्रोद्भूतं तयोर्दुःखं कविद्याचामगोचरं । तीर्थकृद्भिर्धिना तद्धि वर्ण्यते नापरैर्जडैः ॥ ४७५ ॥ स्वयम्भूशोकस
 ततो हलो गर्गत्यमाहवान् । आषण्मासाधवेः काललब्ध्या वैराग्यमाय सः ॥ ४७६ ॥ गत्वा नत्वा तथा स्तुत्वा जिनं विमलवाहनं । दीक्षां
 जग्राह भावेन भावो हि सर्वतोऽधिकः ॥ ४७७ ॥ दुष्करं तपसां सद्यं विधाय ध्यानतत्परः । केवलतोत्पादनं कृत्वा जगाम शिवमन्दिरं ॥
 करता था और दुष्टोंका निग्रह करता था एवं देवांगनाओंके समान महा मनोहरांगी स्त्रियोंके साथ
 भोग विलास करनेवाला था ॥ ४७०--४७२ ॥ राजा स्वयम्भू के आठ हजार तो आर्य्य राजा सेवक
 थे और आठ ही हजार श्लेच्छ राजा उसकी सेवा करते थे । इस प्रकार बहुत काल राज्य सुख
 भोगते २ राजा स्वयम्भू का अन्तकाल हो गया एवं तीव्र वैरके कारण वे भी सातवे नरकमें जाकर
 उत्पन्न हो गये । नरककी वेदना इतनी भयङ्कर है कि विद्वान् भी कवि उसका वर्णन नहीं कर सकते ।
 नारायण स्वयम्भू के मर जाने पर बलभद्र धर्मको सीमान्त दुःख हुआ था । शोक संतप्त बलभद्र
 छह महीना तक स्वयम्भू का शरीर धारण करते फिरे अन्तमें काल लब्धिकी कृपासे उन्हें यथार्थ
 मार्गका ज्ञान हुआ इसलिये तत्काल उन्हें संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य हो गया । वे बलभद्र धर्म
 शीघ्र ही भगवान् विमलनाथके समवसरणमें गये । नमस्कार कर भगवान् विमलनाथकी स्तुति की
 एवं भावपूर्वक दिगंबर दीक्षा धारण कर ली । ठीक ही है सब कार्योंमें भावोंकी ही प्रधानता मानी
 जाती है ॥ ४७३--४७७ ॥ बलभद्र धर्मने तीव्र तप तपा । शुभ ध्यानका आचरण किया जिससे
 उन्हें केवल ज्ञानकी प्राप्ति हो गई और वे मोक्ष मन्दिरमें जाकर विराज गये । ग्रन्थकार तपकी
 महिमा वर्णन करते हुए कहते हैं कि घरके आंगनमें ही स्वर्ग, राज्य धन सुन्दर रूप यशस्वीपना

४७८। नाकः सवांगणे राज्यं धनं रूपं यशस्विता । चक्रित्वं वासवत्वं च तपसा किं न साध्यते ॥४७९॥ कर्मणां निर्जरा यस्मान्निरो-
गित्वं भवे भवे । लेखाः किंकरतां यांति तत्तपः शस्यते न किं ॥ ४८० ॥ सौभाग्यादिगुणा ये तु तेन कामसुतोत्कराः । भवन्ति रतिभा-
रामाः किं न स्यात्सगरादिवत् ॥ ४८१ ॥ अतो यूतादिकं कर्म कुत्सितं निन्दितं सतां । परित्यज्य विधातव्यं धर्मपुण्यादिसाधनं ॥

धर्मात्पुत्राः पवित्राः परमनिधिपतिः किन्तु रूपं दुराप्यं सौभाग्यं तीर्थकृत्वं गजहयगणतान्वीतधात्रीश्वरत्वं ।

चक्रवर्ती और इन्द्रपना ये सारी बातें तपके द्वारा प्राप्त हो जाती हैं ऐसी तीन लोककी कोई चीज नहीं जो तपसे न प्राप्त हो जाती हो । जिसकी कृपासे कर्मों की निर्जरा होती है । भव भवमें निरो-
गताका लाभ होता है और देवगण आज्ञाकारी सेवक बन जाते हैं वही तप संसारमें प्रशंसनीय माना जाता है । इस तपकी कृपासे संसारमें सौभाग्य आदि गुणोंकी प्राप्ति होती है । उसीसे कामदेवके समान सुन्दर पुत्र उत्पन्न होते हैं । तथा रतिके समान परम सुन्दरी स्त्रियोंकी भी प्राप्ति होती है विशेष क्या सगर चक्रवर्ती आदिकी विभूतिके समान विभूतियां इस तपके द्वारा प्राप्त होती हैं इसलिये जो महानुभाव मोक्ष आदि विभूतियोंके इच्छुक हैं उन्हें चाहिये कि जूआ आदि निन्दित, परिणाममें दुःखदायी समस्त कार्योंका सर्वथा परित्याग कर धर्म और पुण्य आदि के साधन करनेवाले ही कार्योंको करें निन्दित कार्योंकी ओर रंजमात्र भी दृष्टि न डालें ॥४७८-४८३॥

अन्तमें आचार्य धर्मकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि धर्मके द्वारा ही पवित्र पुत्रोंकी प्राप्ति होती है । उत्तम निधिका स्वामीपना प्राप्त होता है । महा मनोज्ञ रूप सौभाग्य तीर्थकरपना हाथी घोडाओंसे शोभायमान पृथ्वीका ईश्वरपना अप्सराओंके समान स्त्रियोंका मिलना । प्रबल शक्ति जिससे कि शत्रुओंका विध्वंस किया जाता है प्राप्त होते हैं विशेष क्या स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्ति भी धर्मसे होती है इसलिये हे विद्वान् पुरुषो यदि तुम्हें पुत्र आदि विभूतियोंकी अभिलाषा है तो

रामा रमतोपमाश्च प्रयत्नबलव्रजध्वस्तशत्रूत्करत्वं । यस्मात्स्वर्गश्च मुक्तिः सकलबुधजनास्तं भजन्त्यं भजन्त्यं ॥ ४८४ ॥

कृष्णदाससुखदं वृशभेशं लेखनाथनरनाथनताम्रं

ध्ययताशु सुजना नितरां तं श्वेतभूधरतटे शिवमैद्यः ॥ ४८५ ॥

इत्यार्षे श्रीबृहद्विमलनाथपुराणं भट्टारक श्रीरत्नभूषणाम्नायालङ्कारविद्वज्जनवातुरीसमुद्रचंद्राचतारोभयभाषा

चक्रवर्तिवोरिकातनूजबलकृष्णदासविरचिते ब्रह्ममङ्गलशालसाहाय्यसापेक्षे श्रीविमलवाहन

दीक्षाज्ञानमधुस्वयंभूवलमद्रसमृद्धिवर्णनो नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

तुम्हें पवित्र धर्मको अवश्य आराधन करना चाहिये—क्षण भरके लिये भी धर्मसे मुख मोड़ना न चाहिये ॥ ४८४ ॥ हे सज्जनो ! तुम भगवान् ऋषभ देवका ध्यान करो जो ऋषभदेव भगवान्, ग्रन्थकर्त्ता कृष्णदासके सुखके देनेवाले हैं । जिनके चरण कमलोंकी बड़े २ देवेंद्र और नरेंद्र सेवा करते हैं और जिन्होंने कैलास पर्वतसे मोक्षको पाया है ॥ ४८५ ॥

इसप्रकार भट्टारक रत्नभूषणजी आम्नायके अलङ्कार स्वरूप विद्वानोंकी विद्वत्सारूपी समुद्रके लिये चन्द्रमा स्वरूप उभय भाषा के चक्रवर्ती हर्षवोरिकाके पुत्र अपने छोटे भाई ब्रह्ममङ्गलदासकी सहायतासे ब्रह्मकृष्णदास विरचित बृहद विमलनाथ पुराणमें भगवान् विमलनाथका दीक्षा विधान और मधु स्वयंम् और बलमद्र धर्मका समृद्धिका वर्णन करनेवाला चौथा सर्ग समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

पांचवां सर्ग ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

प्रजापतिं जिनं नौमि सादरं शर्मसिद्धये । स्याद्वादनायकं कंठप्रोदुगीतं सुरख्योपितां ॥१॥ विहरन्ते कदा देवो विमलो भ्रातियजिनः ।

जो भगवान् जिनेन्द्र प्रजापति—आदि ब्रह्मा हैं । कर्मोंके नाश करनेवाले हैं । स्याद्वाद विद्या के नायक हैं एवं देवांगना अपने कण्ठसे जिनके यशका गान करती हैं उन भगवान् जिनेन्द्रको

भारतेऽत्र महाद्वीपे मथुरामुत्तरं ययौ ॥ तत्राकाशे न्महाशभा विष्टरस्य धनाधिपः । गव्यूतिद्वादशानां च विशालस्य महातिवपः ॥ ३ ॥
 भोगस्तथा विचलति यत्नः ते यन्महतिताः । कासाराणि ततो हंसचक्रक्रीडान्वितानि च ॥ ४ ॥ पंचवर्णमहारत्नचूर्णसंदर्भितो व्यभात
 धूलीशालाभिः शालो लवणोदधिरिवापरः ॥ ५ ॥ सज्जलाः सजलास्तत्र स्वातिकाः पङ्कजांचिताः । विराजतेऽसरोवरातैः क्रीडालोलतरी
 कृताः ॥ ६ ॥ पुष्पाणां वाटिका नानापुष्पराजिविराजिताः । भांति शृंगारसंयुक्ताः स्त्रियो वा हासदर्विताः ॥ ७ ॥ हँपः प्राकार भाका
 शद्विवाकारीच सुन्दरः । नाट्यशाला विराजते किन्तरीनर्तनोत्सवैः ॥ ८ ॥ बल्लीनां भूमयो भांति चान्यदुद्यानसद्वनं । नानाशाखिस
 अपने कल्याणकी सिद्धिके लिये मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ समस्त प्रकारकी भांतिसे
 रहित वे भगवान विमलनाथ समस्त पृथ्वीपर विहार करते २ एक दिन भरत क्षेत्रके जम्बूद्वीपकी
 मथुरा पुरीमें जा पहुँचे । कुवेरने अत्यन्त शोभायमान समवसरण रच दिया जो कि बारह गव्यूति
 प्रमाण था विशाल था और महा कांतिसे देदीप्यमान था ॥ २—३ ॥ समवसरणके अन्दर चार
 भानस्तम्भ विद्यमान थे जो कि नाना प्रकारके रत्नोंसे व्याप्त थे । उनसे आगे तलाव शोभायमान थे
 जो कि हंस और चक्रवा पक्षियोंकी क्रीड़ाओंसे व्याप्त थे ॥ ४ ॥ धूलीशाल नामका शाल वहाँपर
 अत्यन्त शोभायमान था जो कि पांच वर्णके रत्नोंके चूर्णसे व्याप्त था और मनुष्योंको यह जान
 पड़ता था मानो यह लवणोदधि समुद्र है ॥ ५ ॥ धूलीशालके चारों ओर विशाल खाइयां शोभाय-
 मान थीं जो कि जलसे परिपूर्ण थीं । उनका जल सुगन्धित और उत्तम था । कमलोंसे व्याप्त था
 और सरोवरोंके सम्बन्धसे उनका जल हिलता डोलता था इसलिये वे ऐसी जान पड़ती थी मानो
 ये अपनी चञ्चल क्रीड़ाओंमें मस्त हैं । खिले हुए भांति भांतिके वहाँ पर पुष्पोंसे व्याप्त वाटिकायें
 अत्यन्त शोभायमान थीं जो कि भांति भांतिके पुष्पोंके शृङ्गारसे शोभायमान और हँसती हुई स्त्रियां
 सरोवरी जान पड़ती थीं ॥ ६—७ ॥ भीतर एक सुवर्णमयी प्राकार शोभायमान था जो कि अत्यन्त
 सुन्दर था और ऊँचाईसे ऐसा जान पड़ता था मानो यह आकाशके दो खण्ड कर रहा है । उसके

प्रकीर्णं भूमिद्वयमंडितं ॥ ६ ॥ वेदिका रत्नसंदर्भगर्भिताः स्वर्णिणां मताः । ध्वजदण्डा विराजते त्रिंशत्सहस्रसंख्यकाः ॥ १० ॥
 प्राकारो राजते भूयस्तारकालिलसद्व्युतिः । कल्यागानां घनं सम्यग्भूरिदानां च सर्वतः ॥ ११ ॥ नानामणिसमुद्रवद्भित्तिका हर्म्य-
 संचया । दुर्गोऽथ स्फाटिकः प्रोक्ष्यैः पुरस्तात्संति सत्सभाः ॥ १२ ॥ निर्ग्रन्थानां समा मुख्या कल्पयोषित्तभापगा । व्रतिकानां ततः
 प्रोक्ता ज्योतिःस्त्रीणां समा पुनः ॥ १३ ॥ व्यन्तरस्त्रीसभा नागरामाणां परिप्लुतः । भावनव्यन्तरक्षार्णां कमादुगणत्रयोरिताः ॥ १४ ॥

ऊपर नाट्यशाला विराजमान थीं जो कि किन्नरी जातिकी देवियोंके नृत्योंसे अत्यन्त शोभायमान थीं
 वहां पर लताओंकी वयारियां अत्यन्त शोभायमान थी तथा वगोचे और विशाल वन भी अत्यन्त
 शोभा बढ़ा रहे थे जो कि भांति भांतिके वृक्षोंसे व्याप्त थे और चलते फिरते भ्रमरोंसे शोभायमान
 थे ॥ ६ ॥ जिनके अन्दर अनेक प्रकारके रत्नोंकी रचना थी और जो अपनी शोभासे देवोंके भी
 चित्त चुरानेवालीं थीं ऐसी वहां पर विशाल वेदियां शोभायमान थीं । तीस हजार संख्या प्रमाण
 ध्वजाओंके दण्ड शोभायमान थे ॥ ८-१० ॥ दूसरा प्रकार चांदीका शोभायमान था जिसकी कान्ति
 तारागणोंसे और भी अधिक शोभायमान थी तथा उसके चारो ओर कल्पवृक्षोंका वन था जो कि
 लोगोंको इच्छाओंका बहुत प्रकारसे पूरण करनेवाला था । जिनकी भीतें नाना प्रकारकी मणियोंसे
 रचीं थीं ऐसे उत्तमोत्तम महल वहां पर शोभायमान थे । एक स्फटिक पाषाणका बना हुआ किला
 शोभायमान था और उसके सामने सुन्दर सभायें विद्यमान थीं ॥ ११ ॥ पहिली सभामें निर्ग्रन्थ
 विद्यमान थे । दूसरी सभामें कल्पवासी देवोंकी स्त्रियां थीं । तीसरी सभामें आर्यिकाये थीं चौथी
 सभामें ज्योतिषी देवोंकी स्त्रियां थीं । पांचवी सभामें व्यन्तरीकी स्त्रियां थीं । छठी सभामें भवन-
 वासी देवोंके स्त्रियां थी । सातवी सभामें भवनवासी देव थे । आठवीं सभामें व्यन्तर देव थे । नवमी
 सभामें ज्योतिषी देव थे । दशवीं सभामें कल्पवासी देव थे । ग्यारहवीं सभामें मनुष्य थे और बार-

मानुषाणां पशूनां च सभा शोभापरावहा । तन्मध्यस्थमहापीठं सिंहकूर्मोदयाभिधं ॥ १५ ॥ तन्मध्ये पङ्कजं ह्रीममष्टायुतदलं दलत्
 श्रीमद्विमलनाथोऽसौ व्यभातदुपरि स्थितः ॥ १६ ॥ विंशतीनां सहस्राणां सोपानानां व्यभाद्वरः । चतुःप्राकारका भूयो भित्तयः पञ्च-
 राजिताः ॥ १७ ॥ पट्टविंशत्प्रसोत्पश्च जयध्वानाः सुरैः कृताः । अप्सरोरिक्तकण्ठैश्च रुतराणां मनोहराः ॥ १८ ॥ जिनांगोत्सेधतः
 प्रोक्ष्यैर्दृष्टवाकारभित्तयः । द्वादशप्रगुणा भाति मानस्तम्भाश्च चित्तिवपः ॥ १९ ॥ चतुर्गुणा विशालाश्च चेदयो राजिरेऽलकं । पद्मराग
 परागादिनानारत्नचयांशयः ॥ २० ॥ भूमेः पञ्चसहस्राणि धनुषां चार्दवर्त्मनि । गत्वा विलोकनोपायं शोभा श्रीविष्टरस्य च ॥ २१ ॥
 हवीं सभामे पशु विद्यमान थे इस प्रकार ये बारह सभायें थीं । सभाओंके मध्यभागमें एक
 सिंहकूर्म नामका सिंहासन था और उसके मध्यभागमें सुवर्णमयी कमल था जो कि
 एक हजार आठ पत्तोंसे शोभायमान था उसके ऊपर भगवान् विमलनाथ विराजमान थे । वह
 समवसरण बीस हजार स्त्रीदियोंसे शोभायमान था । उसमें चार प्राकार थे और महा मनोज्ञ पांच
 भीतियें थीं । उनके भीतर छत्तीस गलियां थीं जिनमें कि देव गण जय जय शब्द करते थे ।
 अप्सराओंके सुरीले कंठोंसे रागोंकी छटा छटक रही थी जिससे वे अत्यंत मनोहर जान पड़ते थे ।
 भगवान् जिनेन्द्रके शरीरकी अवगाहनासे प्राकार और भित्तिओंकी उचाई बारह गुणी अधिक
 थी इसी तरह भांति २ की कांतियोंसे व्याप्त मानस्तम्भ भी विद्यमान थे चेदियां (मंडपशालायें)
 भगवान् जिनेन्द्रकी अवगाहनासे चौगुनी और विशाल थीं तथा पद्मराग आदि नाना प्रकारके
 रत्नोंकी किरणोंसे व्याप्त थीं ॥ १२—२० ॥ पृथ्वीसे पांच हजार धनुष आकाशमें जानेपर
 समवसरणकी शोभा देखी जा सकती थी । वहांपर साढ़े बारह करोड़ बाजोंके घोर शब्द
 होते थे इसप्रकार वहांपर समवसरणकी शोभा लोकोत्तर थी । तथा भगवान् जिनेन्द्रके माहात्म्यसे
 छहो ऋतुओंके फल फूलोंसे बृक्ष लद बढ़ा गये थे । इसप्रकार समवसरणकी शोभा और छहों
 ऋतुओंके फल फूलोंकी अपूर्व शोभा देखकर और कुछ फल एवं फूलोंको राजाकी भेटके लिये

सार्धं द्वादशकोटिनां वादिताणां महारवाः । एवमादिमहाशोभां वाङ्मनूद्भूतकौसुमीं ॥२२॥ दृष्ट्वा मालाकरो नीत्वा फलानि कुसुमानि च । मेरुमन्दरयोरग्रे मुमोचेति वदन् भृशं ॥ २३ ॥ देवः श्रीकिन्नरोद्याने समायातोऽस्ति श्रीजिनः । तत्प्रभावान्नगा वंध्या जज्ञिरे फल संयुताः ॥ २४ ॥ शोभा सर्ववृद्धता तं संभूयेव विलोकितुं । प्रादुरासीत्सुभङ्कारितासपुष्पविलोचना ॥ २५ ॥ श्रुत्वा तन्मुखतोऽदार्थि तस्मै ताम्यां धनं नृणां । नृञ्जाल्लुप्यन्तं धाम्नी मुह्यन् भक्त्या जितस्त्यक्त ॥२६॥ पुण्यादितं जगन्नाथं जिनं श्रीमेरुमन्दिरौ । राजपुत्री सुकामा लौ वंदितुं जग्मतुः पुरात् ॥ २७ ॥ महासेनासमुद्धारसागरोत्तरणक्षमौ । अरातिध्वंसकौ सर्वसामन्तालिराजितौ ॥ २८ ॥ (युग्मं)

लेकर मालाकार शीघ्र ही मथुरा नगरीकी ओर चल दिया उस समय मथुरापुरीके स्वामी राजा मेरु और मंदिर दोनों भाई थे । मालीने राजसभामें पहुँच कर उनके सामने फल फूलोंकी भेंट रखदी और इसप्रकार आनंदमयी बात सुनाने लगा—

स्वामिन् ! किन्नर नामके उद्यानमें भगवान विमलनाथका समवसरण आया है । भगवान विमलनाथके माहात्म्यसे जो वृक्ष बाँझ थे--कभी भी जिनपर फल फूल नहीं लगते थे वे इससमय फल और फूलोंसे व्याप्त हो गये हैं ॥ २०—२४ ॥ समस्त ऋतुओंमें होनेवाले फल और फूलोंसे वृक्षोंके लदपदा जानेसे यह जान पड़ता है कि नाना प्रकारके पुष्पोंकी लालसासे परिपूर्ण और ताराओंके समान पुष्परूपी नेत्रोंकी धारक समस्त ऋतुओंमें होनेवाली शोभा ही मिलकर भगवान जिनेन्द्रको देखनेके लिये आकर प्राप्त हो गई है ॥२५॥ मालीके मुखसे इस प्रकारके हर्ष समाचार सुन राजपुत्र मेरु और मन्दिरको बड़ा आनन्द हुआ । भगवान जिनेन्द्रके अन्दर अपनी भक्ति प्रगट करनेके लिये उन्होंने विशाल धन वस्त्र और अलङ्कार मालीको प्रदान किये । कामदेवके समान सुन्दर राजपुत्र मेरु और मन्दिरने यह समझकर कि भगवान जिनेन्द्रका पधारना बड़े पुण्य से हुआ है शीघ्र ही उनकी वंदनाके लिये वे नगरसे चल दिये । उस समय वे दोनों राजपुत्र विशाल

महाभूत्या जिनं पूज्य स्तुत्वा गंधादिभिः पुनः । नर्वेकादशमे कोष्ठे तस्थतुः सादरं तर्को ॥ २६ ॥ एयोराशिध्वनिर्दिव्यशायोवाच
जिनाधिपः । महानतिशयस्तस्याधरस्पर्शो न दृश्यते ॥ ३० ॥ गृहस्थयमिनां धर्मं प्रोक्त्वा पूर्वं ततः परं । तत्तद्रव्यपदार्थादिधर्मं गदित
वान् नृप ! ॥ ३१ ॥ अनादिनिधनो जीवो विद्यते संसृतांश्रमात् । कर्मयत्नकृतः केन नास्ति रत्नत्रयात्मकः ॥ ३२ ॥ सर्वकालं पुरा
प्राणी जीवति द्रव्यभेदाः । कदाचिद्व्यत्यस्तन्न स जीवो गद्यते जिनैः ॥ ३३ ॥ द्विपद्भेदोपयोगात्मा कर्ता व्यवहारतः खलु । अमृ
सेनाके भारसे विशाल समुद्रको तरनेकी सामर्थ्य रखते थे । वैरियोंका ध्वंस करनेवाले थे एवं समस्त
सामन्तोंसे शोभायमान थे ॥ २६—२८ ॥ समवसरणमें प्रवेशकर मेरु और मन्दिरने बड़े ठाट
वाटसे भगवान् जिनेन्द्रकी जल चन्दन आदि अष्ट द्रव्योंसे पूजा की । मनोहर पद्योंमें स्तुति की
एवं भक्ति-पूर्वक नमस्कार कर बड़े आदरसे मनुष्य कोठमें जाकर बैठ गये ॥ २९ ॥ समुद्रके समान
गम्भीर ध्वनिके धारक भगवान् जिनेन्द्र अपनी दिव्य ध्वनिसे धर्मका स्वरूप वर्णन करने लगे ।
बोलते समय अन्य मनुष्योंके तो होठ चलते हैं परन्तु भगवान् जिनेन्द्रके अन्दर यह महान् अति-
शय था कि उनके होठ किसी प्रकार हिलते डुलते न थे ॥ ३० ॥ भगवान् जिनेन्द्रने सबसे पहिले
गृहस्थ और मुनियोंके धर्मका वर्णन किया पीछे सात तत्त्व पांच द्रव्य और नव पदार्थोंका स्वरूप
निरूपण किया ॥ ३१ ॥ वह इसप्रकार है—

इस जीवकी न तो आदि है और न अन्त है । यह अनादि निधन है और कर्मरूपी यन्त्रके वश
में पड़कर यह बराबर संसारमें घूमता रहता है । यह किसीका बनाया हुआ नहीं है और सम्यग्द-
र्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र्य स्वरूप रत्नत्रयका स्वामी है ॥ ३२ ॥ यह जीव अपने जीवत्व
रूपसे सदा काल जीता है कभी भी इसका प्रलय नहीं होता इसलिये जो अपने जीवत्वरूपसे सदा
काल जीवे और जितका कभी भी प्रलय न हो वह भगवान् जिनेन्द्रने जीव द्रव्य कहा है ॥ ३३ ॥ यह
जीव आठ प्रकारका ज्ञान और चार प्रकारका दर्शन इसप्रकार बारह प्रकारके उपयोग स्वरूप है ।

तिर्देहपर्यंत स्थायी भोक्ता भवस्थितः ॥ ३४ ॥ कालत्रये भवंत्यस्य प्राणाश्चत्वार एव च । सत्तासौख्यमहाबोधचेतना गदिता इति ॥
 ३५ ॥ व्यवहारतया ख्याता दश प्राणा जिनागमे । मनोवाक्कायश्वासायुः पंच खान्दा च पञ्च हि ॥ ३६ ॥ उपयोगो द्विधा ख्यातो दर्शन-
 ज्ञानभेदतः । चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनं केवलं मतं ॥ ३७ ॥ ज्ञानं चाष्टविधं प्रोक्तं मतिः श्रौतावधौ ततः । तदज्ञानतथं प्रोक्तं मनःपर्यय
 केवले ॥ ३८ ॥ प्रमाणद्वयभेदाभ्यां मिश्रितं ज्ञानमष्टधा । सामान्यापेक्षया नूनं लक्षणं देहिनां मतं ॥ ३९ ॥ नित्यं शुद्धं समाख्यातं
 ज्ञानदर्शनयोर्द्वयं । ज्ञानं तज्ज्ञायते येन त्रैलोक्यं सचराचरं ॥ ४० ॥ दृश्यते येन सूक्ष्माद्वित्रीलोक्यार्था यथास्थिताः । भूताश्च वर्त-
 माताश्च भाविनो दर्शनं हि तत् ॥ ४१ ॥ वर्णाः पञ्चति रक्तश्च कृष्णश्चैतौ विशङ्ककः । हरितो देहिनः प्रोक्ताः सामान्यान्तैश्च निश्च-
 व्यवहार नयसे अपने कर्मोंका कर्ता है । अमूर्तिक है । जब तक इसका शरीरके साथ सम्बन्ध है तब
 तक संसारमें रहनेवाला है ॥ ३४ ॥ तीनों काल इसके चार प्राण सदा देदीप्यमान रहते हैं और
 वे चार प्राण सत्ता सौख्य ज्ञान और चेतना ये हैं ॥ ३५ ॥ व्यवहार नयको अपेक्षा जीवके मन
 वचन काय श्वासोच्छ्वास आयु और स्पर्शन आदि पांच इन्द्रियां ये दश प्राण हैं ॥ ३६ ॥ दर्शन
 और ज्ञानके भेदसे उपयोग दो प्रकारका माना है । चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन अवधि दर्शन और
 केवल दर्शनके भेदसे दर्शन चार प्रकारका है । मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान कुमति कुश्रुत और
 कुअवधि, मनःपर्यय और केवल इस प्रकार ज्ञान आठ प्रकारका माना है । ये जो मतिज्ञान आदि
 आठ भेद माने हैं वे प्रमाणके भेद प्रत्यक्ष और परोक्षसे युक्त हैं अर्थात् अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान
 और केवलज्ञान ये तीन ज्ञान तो प्रत्यक्ष हैं और बाकीके परोक्ष हैं । जीवका यह उपयोग ही सा-
 मान्य लक्षण है ॥ ३७—३९ ॥ ज्ञान और दर्शन यह दोनों प्रकारका उपयोग नित्य है कभी भी
 इसका विनाश नहीं होता और शुद्ध है । जिसके द्वारा तीन लोक सम्बन्धी चराचर पदार्थ जाने
 जायें वह ज्ञान कहा जाता है । तथा तीन लोक सम्बन्धी और भूत भविष्यत वर्तमान तीन काल
 संबंधी पदार्थ यथावस्थित रूपसे जिसके द्वारा देखें वह दर्शन नामका उपयोग है ॥ ४०—४१ ॥

यात् ॥ ४२ ॥ पुद्गलात्कर्मको जीवः सौख्यदुःखादिधावनं । व्यवहारान्निश्चयात्स्वतः कर्माभावान्तिरंजनः ॥ ४३ ॥ षड्सा मिष्टतो
 क्ष्णौ च कषायकटुकावणं । पाण्डिकं चेति सामान्यात्पञ्च वा तीक्ष्णज्ञारता ॥ ४४ ॥ गंधः स्याद्द्विचो नूनं सुगन्धैरभेदतः । अपौ
 स्पर्शाश्च सामान्यात् स्निग्धरुक्षौ लघुगुरुः ॥ ४५ ॥ उष्णशीतौ दृढो मूयः कोमलश्चेति वस्तुतः । निर्बन्धो ज्ञानवान् शुद्धो ज्योतिरूपो
 ऽकलो ध्रुवः ॥ ४६ ॥ यावद्देहं स्थितो देही यावांश्च लघुको गुरुः । उचसंहारावसंहारक्रेदाभ्यां च जिनागमे ॥ ४७ ॥ निश्चयाद्वेदना ना
 स्ति कषायो विक्रियाऽथवा । मारणांतिकतैजस्काहारा जीवस्य चिह्नतः ॥ ४८ ॥ समुद्घाता इति प्रोक्ताः सप्तमः केवलाभिधः । आत्मा
 निश्चय नयसे न मान कर सामान्यरूपसे लाल काला सफेद पीला और हरा यह पांच प्रकारका वर्ण
 माना है । व्यवहार नयकी अपेक्षा यह जीवात्मा पुद्गलीक कर्मको कृपासे सुखी दुःखी होता है किंतु
 निश्चय नयकी अपेक्षा यह समस्त प्रकारके कर्मोंसे रहित है और कर्म कालिमासे रहित होनेके कारण
 निरंजन है ॥ ४२—४३ ॥ मीठा तीखा कषैला कड़वा नुनखरा और खट्टा विशेष रूपसे ये छह रस
 माने हैं किंतु सामान्यसे तीखापन खारापनको एक मानकर पांच ही रस माने गये हैं । सुगन्ध और
 दुर्गन्धके भेदसे गंध दो प्रकारका माना है । चिकना रूखा हलका भारी गरम ठण्डा और कठोर
 कोमल, सामान्य रूपसे यह आठ प्रकारका स्पर्श माना है । यह जीव इन वर्ण रस गन्ध और स्पर्श
 से रहित है । बन्धहीन है । ज्ञानवान् शुद्ध ज्योतिरूप सुख स्वरूप और अविनाशी है ॥ ४३-४६ ॥
 जब तक यह जीव देहके अन्दर विद्यमान रहता है तब तक देही कहा जाता है एवं संकोच और
 विकास शक्तिका धारक होनेसे यह अपने शरीरके प्रमाण कभी लघु गुरु भी है । वेदना स-
 मुद्धात १ कषायसमुद्धात २ विक्रिया समुद्धात ३ मारणांतिकसमुद्धात ४ तैजससमुद्धात ५ आ-
 हारकसमुद्धात ६ और केवल समुद्धात ७ ये सात प्रकारके समुद्धात माने हैं । निश्चय नयसे
 यह आत्मा सातों प्रकारके समुद्धातोंसे रहित है और लोक जिसप्रकार असंख्यात प्रदेशी माना
 है उसीप्रकार यह असंख्यात प्रदेशी है ४७—४८ ॥ स्थावरोंके व्यालीस भेद माने हैं । तथा देव

संघप्रदेशश्च लोकवद्वस्तुतो यतः ॥ ४६ ॥ स्थावराणां द्विचत्वारिंशद्देशश्च विरायुशं । सुराणां नारकाणां च द्वौ भेदौ श्रीजिनाग्ने
 और नारिकियोंके दो दो भेद हैं तिर्यचोंके चौतीस मनुष्योंके नौ और विकलेन्द्रिय दो इन्द्रिय तेइ-
 न्द्रिय चौइन्द्रिय इस प्रकार विकलेन्द्रियोंके नौ मिलकर जीवोंके सब भेद ६८ हैं । खुलासा इस-
 प्रकार है—

पृथिवी जल तेज वायु नित्य निगोद और इतर निगोद इन सातोंको सूक्ष्म और वादरसे
 गुणा करनेपर चौदह भेद हो जाते हैं तथा उन चौदह भेदोंको पर्याप्त अपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त-
 से गुणा करने पर व्यालीस भेद हो जाते हैं । इस प्रकार स्थावरोंके व्यालीस भेद हैं । पर्याप्त और
 अपर्याप्तके भेदसे मनुष्य भी दो प्रकारके हैं और नारकी भी दो प्रकारके हैं । जलचर थलचर
 और नभचर इन तीनोंको संज्ञी और असंज्ञीसे गुणने पर छह भेद हो जाते हैं । भोगभूमिमें
 उत्पन्न होनेवाले गर्भज जीव थलचर और नभचरके भेदसे दो प्रकारके हैं । इव दो को पहिले
 छहोंके साथ जोड़ने पर आठ भेद हो जाते हैं । इन आठोंको पर्याप्त और अपर्याप्तसे गुणने पर
 सोलह भेद होते हैं । जिन जलचर थलचर और नभचर जीवोंको संज्ञी असंज्ञीके भेदसे दो प्रकार
 कह आये हैं उन्हें सम्मूछन मानकर पर्याप्त अपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्तसे गुणा करने पर अठारह
 भेद हो जाते हैं । अठारह और सोलहको आपसमें जोड़ने पर चौतीस भेद हो जाते हैं । इसप्रकार
 तिर्यचोंके चौतीस भेद हैं । आर्य मनुष्य म्लेच्छमनुष्य भोग भूमिज मनुष्य और कुभोग भूमिज
 मनुष्य इन चारोंको पर्याप्त अपर्याप्तसे गुणने पर आठ भेद हो जाते हैं । इन आठोंमें सम्मूछन
 मनुष्य नामका भेद जोड़ देने पर नौ भेद हो जाते हैं ये नौ भेद मनुष्योंके हैं । दोइन्द्रिय तेइ-

॥ ५० ॥ चतुस्त्रिंशत्प्रमाणभेदास्तिरक्षां च नृणां नव । नवैव विकलेन्द्राणामित्यष्टानवतिप्रमाः ॥ ५१ ॥ मार्गणैर्गुणकैश्चैव चतुर्विंश
मिरात्मनः । संसारित्वं च सामान्यात्सिद्धत्वं निश्चयान्मतं ॥ ५२ ॥ जीवास्तु द्विविधाः प्रोक्ता मुक्ताः संसारिणोऽपरे । जीवास्तु
द्विविधाः प्रोक्ता भव्याभव्यत्वभेदतः ॥ ५३ ॥ समनस्कामनस्काश्च ते भूयो द्विविधा मताः । प्रणीताः सूरिभिर्भूयः स्थावरा जङ्गमा
इति ॥ ५४ ॥ साकोराश्च निराकाराः सिद्धा भेदद्वयात्मकाः । तत्त्वतो मेव एकोऽस्ति सिद्धानां नापरः कश्चित् ॥ ५५ ॥ कर्माष्टकविनि-
क्रांता गुणाष्टकनिधोश्चराः । किंचिदूनाः स्वदेहावस्थ सिद्धा लोकाप्रवासिनः ॥ ५६ ॥ चतुर्धा बन्धनिर्मुक्ता ऊर्ध्वं यांति ततोऽपरे ।
न्द्रिय चौद्विन्द्रिय इन तीनोंको पर्याप्त अपर्याप्त और लब्धपर्याप्तसे गुणानेपर नौ भेद हो जाते हैं इस
प्रकार कुल जीवोंके मिलाकर अठानवे भेद हैं ॥ ५०—५१ ॥ गति इन्द्रिय आदि चौदह मार्गणा
और मिथ्यात्व सासादन आदि चौदह गुणस्थानोंकी अपेक्षा जीव चौदह प्रकार माने हैं । व्यवहार
नयसे आत्मा संसारी और निश्चय नयसे सिद्ध माना जाता है । सामान्यसे संसारी और मुक्तके
भेदसे जीव दो प्रकारके हैं । भव्य और अभव्यके भेदसे संसारी जीव दो प्रकारके हैं । समनस्क
और अमनस्कके भेदसे भी संसारी जीव दो प्रकारके हैं । जो मनसहित हों वे समनस्क और जो
मन रहित हों वे अमनस्क कहे जाते हैं । इस प्रकार स्थावर और व्रसके भेदसे संसारी जीवोंका यह
संक्षेप स्वरूप है ॥ ५२—५४ ॥ साकार और निराकारके भेदसे सिद्ध दो प्रकारके हैं । ये दो भेद
व्यवहार नयसे हैं निश्चय नयसे तो सिद्धोंका एक ही भेद है । दूसरा कोई भेद नहीं । ये सिद्ध पर
मेढरी आठ कर्मोंसे रहित हैं । सम्यक्त्व आदि आठ गुणोंके स्वामी हैं । चरम शरीरके आकारसे
कुछ ऊन आकारके धारक हैं और लोकके अग्रभागमें विराजमान हैं ॥ ५५—५६ ॥ प्रकृतिबन्ध स्थि-
तिबन्ध अनुभाग बन्ध और प्रदेशबन्ध इन चारों प्रकारके बन्धोंसे रहित महा पुरुषोंको केवल ऊर्ध्व
गति ही होती है । निश्चयरूपसे विदिशा आदिमें गमन नहीं होता । अभव्य भी जीव तपश्चरणा
कर प्रवेयक पर्यन्त चले जाते हैं । निगोद जीव पांच प्रकारके हैं और भेद उनके अनन्तानन्त माने

चिदिशादिविधि' कृत्वा गतिं याति न संशयः ॥ ५७ ॥ अनन्योऽपि तपसाप्यवा यात्याग्नेवेपकं भृतं । निगोदाः पञ्चधा प्रोक्तास्तेऽनन्ता-
नंतभेदकाः ॥ ५८ ॥ अनन्तानंतगुणितान् निगोदान् सिद्धतोऽवदन् । अनन्तानन्तकालेषु राज्ञांते श्रीजिनेश्वराः ॥ ५९ ॥ शुक्तिकाकुमिशङ्खाद्या
जलूका बालकस्तथा । कपर्दी चेति द्वयक्षाः स्युर्जिनदेवागमेऽगमे ॥ ६० ॥ मत्कुणाः कुन्धवो यूकाः प्रपेत्युर्देहिकाः पुनः । गोभ्यादशोऽ
परे जोवास्तयक्षाः श्रीजिनभाविताः ॥ ६१ ॥ वप्रटा मशका दंशा मक्षिकाः शलभास्तथा । पतंगाद्याः समाख्यातास्तुर्यक्षाः पूर्वसूरभिः
॥ ६२ ॥ तिर्यंचो नरदेवाश्च नारकाः अप्रचारिणः । जलस्थलगता जीवाः पञ्चाक्षाः संमता मतैः ॥ ६३ ॥ एकद्वयक्षादिजीवानां
हैं । जैन सिद्धान्तके अन्दर यह बात बतलाई गई है अनंतानंत कालोंमें निगोदराशि सिद्धराशिसे
अनंतानंत गुणी अधिक है ॥ ५७-५८ ॥ सीप मकोड़े शंख आदि जोक ये जीव तथा बालक जातिके
और कपर्दी जातिके जीव दो इन्द्रिय माने हैं । खटमल कुन्धुनामके जीव यूक और गोह आदिक जीव
तेइन्द्रिय हैं । मच्छर डांस माखी शलभ और पतङ्ग आदि जीव चौइन्द्रिय हैं । तिर्यंच मनुष्य देव
नारकी नभचर जलचर और धलचर जीव पंचेन्द्रिय हैं । एकेन्द्रिय दोइन्द्रिय आदि जीवोंकी उत्पत्ति
करनेवाला मन ही है क्योंकि मनरूपी बीज ही बंधरूपी बृक्षका उत्पन्न करनेवाला है और बन्धका
कारण होनेसे मोक्षकी प्राप्ति का बाधक है ॥ ५९-६३ ॥ यदि मनको वश कर लिया जाय तो सिद्धपने
की प्राप्ति दूर नहीं है और यदि मन चंचल बना रहे तो संसार दूर नहीं है अर्थात् मनको वश कर
नेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है और मनके वश न करनेसे संसारमें रहना पड़ता है । ज्ञानावरण आदि
मुख्य कर्मोंके जीतनेमें उपवास आदि तप बाह्य कारण हैं वास्तवमें महा बलवान मनका जीतना
ही मुख्य कर्मका जीतना है । जो महानुभाव परमात्मपदको अभिलाषा रखनेवाले हैं वे करोड़ों प्रकार
के बाह्य तप तपें तो वा क्षण भरके लिये मन वश करें तो दोनोंका फल उनके लिये समान ही है ।
अर्थात् वे करोड़ों प्रकारके बाह्य तपोंके आचरणसे जितने कर्मोंको खिपा सकते हैं उतने ही क्षण
भरके लिये मनको रोकनेसे भी खिपा सकते हैं ॥ ६४—६६ ॥ जिन महानुभावोंने आत्माको पहि-

संस्तुत्युत्पत्तिकारकं । मन एव रुद्रं कर्मवन्धमोक्षाकरं यतः ॥ ६४ ॥ रुद्रायस्ते मनसि नूनं सिद्धत्वं नैव दूरतः । खंचले मनसि नृणां संसारत्वं न दूरतः ॥ ६५ ॥ उपोषकादितपसः कर्तव्यं बाह्यमुच्यते । उग्रोऽग्रमनसो नूनं नेतृत्वं मुख्यकर्मणां ॥ ६६ ॥ समाकोटिलमुद्रं तवाश्वेन तपसा फलं । क्षणात्तन्मनसो रोधात्परमात्मावलंबिनः ॥ ६७ ॥ आत्माध्यक्षगतो येन तेन लब्धं परं महः । तपोऽप्यकारि सद्भानमदायि आपडि श्रुतं ॥ ६८ ॥ पितृशत्रुघ्नस्तं तत्त्वं नैव धर्षति पृथिविभिः । तैरेव अवलीण्यार्थं तपोभिर्दृश्यते तनुः ॥ ६९ ॥ जीवतत्त्वं समाख्यायाजीवतत्त्वं निगद्यते । पुद्गलश्चाथवा धर्माधर्मावाकाशमेव च ॥ ७० ॥ कालस्तेषां समाख्यातः पुद्गलो मूर्तिमान् गुणैः पूरणं द्रवताच्चैव पुद्गलो ध्वन्यते जिनैः ॥ ७० ॥ शब्दो बन्धोऽथ संस्थानं तमश्च्छायातपा मताः । उद्योतः पुद्गलस्यैव पर्याया महंदागमे चान लिया है उन्होंने ही संसारमें सर्वोच्च तेजकी प्राप्ति करली है ऐसा समझ लेना चाहिये तथा उन्होंने उत्तम तप तपा है । उन्होंने उत्तम दान दिया है और उन्होंने सिद्धांतको पढा है ऐसा भी समझ लेना चाहिये ॥ ६७ ॥ जो पुरुष आत्माके स्वरूपको न समझकर बाहिर बाहिर घूमनेवाले हैं वे संसारके सुखको ही परम सुख मानकर उसकी प्राप्तिके लिये पूर्ण प्रयत्न करते रहते हैं और वे जो भी तप तपते हैं वे केवल शरीरको ही उससे जलाते हैं । इस प्रकार जीवतत्त्वका वर्णन कर दिया गया अजीवतत्त्वका वर्णन इसप्रकार है—

पुद्गल धर्म अधर्म आकाश और कालके भेदसे अजीव तत्त्व पांच प्रकारका माना है । उनमें पुद्गल द्रव्य मूर्तिमान है क्योंकि वह रूप आदि मूर्तिक गुण स्वरूप है । जो पूरा जा सके और जो गल सके वह पुद्गल द्रव्य है ऐसा भगवान् जिनेन्द्रने पुद्गल द्रव्यका स्वरूप बतलाया है । शब्द बंध सूक्ष्मता स्थूलता आकार अंधकार छाया आतप—सूर्यका प्रकाश, उद्योत-चंद्रमाका प्रकाश—ये सब पुद्गल द्रव्यकी ही पर्यायें हैं ॥ ६७—७० ॥

जिस प्रकार मछलियोंके गमनमें सहायता पहुंचानेवाला जल माना गया है—बिना जलके मछलियां नहीं चल सकती उसीप्रकार जीव और पुद्गलोंके गमनमें सहकारी कारण धर्म द्रव्य है ।

॥ ७१ ॥ चतुर्गतिषु जीवानां धर्मोऽयं साहस्रकुम्भतः । पुद्गलानां च मत्स्यानां वास्त्विद्वणताथकैः ॥ ७२ ॥ जीवानां पुद्गलानां च स्थानं
 दातुं हि शक्तिमान् । अधर्मः पथिकानां वा छाया नैसर्गतो भृशः ॥ ७३ ॥ अवकाशो विद्यते योग्यं जीवादीनां विशेषतः । तल्लोकाकाश
 माख्यातमलोकस्तत्परो यतः ॥ ७४ ॥ नवजीर्णकरः कालो व्यवहारस्ततः परः । पक्वरूपतया ख्यातो निश्चयो रत्नराशिवत् ॥ ७५ ॥ काल
 स्यैकप्रदेशत्वादकाशो गद्यते मतैः । जीवाजीवोऽथ धर्मश्चाधर्मोऽसंख्यप्रदेशवान् ॥ ७६ ॥ आकाशं प्रोच्यते पूर्वं । प्रदेशोऽनन्तवद्भुवं ।
 जहां तक धर्म द्रव्यका संबंध रहता है वहीं तक जीव और पुद्गलोंकी गति होती है आगे नहीं होता
 जिस प्रकार छाया पथिक जनोंको ठहरानेवाली होती है—भूपके तापसे संतप्त पथिक जिस समय
 किसी वृक्षकी शीतलछाया देख लेता है तो कुछ विश्रामकी अभिलाषासे उसके नीचे ठहर जाता
 है । यदि वृक्षकी छाया न हो तो वह ठहर नहीं सकता उसीप्रकार जीव पुद्गलोंकी स्थितिमें कारण
 अधर्म द्रव्य है । अधर्म द्रव्यकी सहायतासे ही जीव और पुद्गलोंकी स्थिति होती है ॥ ७१—७२॥
 आकाशके लोकाकाश और अलोकाकाशके भेदसे दो भेद माने हैं जीव आदि द्रव्योंको जो विशेष
 रूपसे अवकाश दान दे वह लोकाकाश है और उसके आगे अलोकाकाश है । व्यवहार और
 निश्चयके भेदसे काल द्रव्यके भी दो भेद माने हैं । द्रव्योंकी जो नई पुरानी आदि पर्यायोंके करा-
 नेमें कारण है वह व्यवहार काल है और जो असंख्यात प्रदेशी लोकाकाशके प्रत्येक प्रदेशपर एक
 एक रूपसे स्थित है । रत्नोंकी राशिके समान जिसके अणू जुदे जुदे हैं वह निश्चय काल द्रव्य है
 ॥ ७३—७४ ॥ जिसके प्रदेश आपसमें मिल सकें वह काय कहलाता है काल द्रव्यके प्रदेशोंका
 मिलना नहीं होता और न उनमें मिलनेकी शक्ति ही है इसलिये काल द्रव्यको अकाय माना है ।
 जीव काल धर्म और अधर्म द्रव्य इनमें प्रत्येकके असंख्याते असंख्याते प्रदेश हैं । आकाशके प्रदेश
 अनंत हैं तथा पुद्गलके संख्यात भी प्रदेश हैं असंख्यात भी प्रदेश हैं और अनन्त भी प्रदेश हैं ।

त्रिविधः पुद्गलोऽनन्तसंख्यातासंख्यवानिति ॥७७॥ अकालास्ते समाख्याताः कायाः पञ्चास्तिसंज्ञकाः । जीवाजीवास्त्रया बन्धसम्बरो निर्ज-
राशिवौ ॥ ७८॥ तत्त्वान्येतानि पुण्यैर्भोग्यामाख्याताः पदार्थकाः । आस्रवो द्विविधो भावद्रव्यभेदात्प्रकीर्तितः ॥ ७९ ॥ । समाख्यात्या-
॥ ७५—७६ ॥ जीव पुद्गल धर्म अधर्म ओर आकाश इन पाँच द्रव्योंको अस्तिकाय कहते हैं
काल द्रव्यकी अस्तिकाय संज्ञा नहीं । जीव अजीव आस्रव बंध संवर निर्जरा और मोक्ष ये सात
तत्त्व हैं । इन्हींमें पुण्य पाप जोड़ देनेपर नव पदार्थ हो जाते हैं । जीव और अजीव तत्त्वका वर्णन
कर दिया गया । अब आस्रव आदि तत्त्वोंका वर्णन किया जाता है—

भावास्रव और द्रव्यास्रवके भेदसे आस्रवके दो भेद हैं । तन्दुल मत्स्यके समान आत्माके क्रोध
आदि भावोंसे जो कर्म आवें उन भावोंका नाम ही भावास्रव है । अर्थात् स्वयम्भूरमण नामके अ-
न्तिम समुद्रमें एक महामत्स्य नामका मत्स्य रहता है । जिस समय वह अपने विशाल मुखको फाड़
कर सोता है उस समय उसके मुखमें अगणित जलचर जीव आते जाते रहते हैं । उस महामत्स्य
के कानमें एक तंदुल नामका मत्स्य रहता है । महामत्स्यके मुखमें इसप्रकार जीवोंको आता जाता
देख वह सदा यह विचार करता रहता है कि देखो यह महामत्स्य बड़ा मूर्ख है । इसके मुखमें इतने
जीव अपने आप आते जाते हैं तब भी यह निकल जाने देता है यदि यह मुह बन्द कर लेवे तो
सबके सब इसके पेटमें जा सकते हैं परन्तु यह ऐसा नहीं करता यदि मैं ऐसा होता तो सबोंको
पेटमें रख लेता । यद्यपि वह तंदुल मत्स्य किसी जीवको सताता नहीं तथापि वह इसप्रकारके निं-
दित विचार करता रहता है इसलिये उन निंदित विचारोंसे सदा उसके कर्मोंका आस्रव होता रहता
है उसी प्रकार चाहें हिंसादि पाँच पाप किये जाय या न किये जाय आत्माके अन्दर जो क्रोध
आदि भावोंकी उत्पत्ति होता है उन क्रोध आदि भावोंका ही नाम भावास्रव है ठीक ही है जो

स्मनो भावैः कर्म तंदुलमस्त्यवत् । भावास्त्वचो हि स प्रोक्तो भावबद्धं दृढायते ॥८०॥ मिथ्यात्वविरतिरयोगकृतप्रमादः प्रवर्ज्यते । वत्कर्म
सूरिभिः ख्यातः स द्रव्यास्त्व एव च ॥ ८१ ॥ ज्ञानावरणादिसंयोगात्कर्मास्त्विति संहतः । द्रव्यास्त्वस्य भेदोऽयं प्रोक्तेऽन्यः पूर्वसू रे
भिः ॥ ८२ ॥ बन्धोऽथ द्विविधः प्रोक्तो भावद्रव्यानुसारतः । कुर्मादौ कर्म बध्नाति भावबन्धो हि सोऽगदि ॥ ८३ ॥ कर्मणामात्मन
स्त्वेव प्रदेशानां परस्परं । एकत्वं मिलनं यच्च द्रव्यबन्धो मतो हि सः ॥ ८४ ॥ बन्धश्चतुर्विधो भूयः प्रकृतिरनुभागकः । स्थितिः प्रदेश
इत्युक्तो बन्धो हि दुस्त्यजो नृणां ॥ ८५ ॥ प्रवेशः प्रकृतिर्योगादनुभागः स्थितिश्च ये । कषायेभ्यो हि जायते निर्णोतं केवलाधिपैः ॥

कार्य भावोंसे किया जाता है वह दृढ होता ही है यहाँ पर मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषाय और
योगोंके द्वारा कर्मोंका आना होता है इसलिये मिथ्यात्व आदि भावोंका ही नाम भावास्त्व है तथा
मिथ्यात्व अविरति योग कषाय और प्रमादके द्वारा जो द्रव्य कर्म आते हैं उन द्रव्य कर्मोंका नाम
द्रव्यास्त्व है । द्रव्यकर्म जिस समय आता है वह ज्ञानावरण आदि समूह स्वरूप आता है इसलिये
ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय मोहनीय आयु नाम गोत्र और अन्तराय ये आठ द्रव्य कर्मके भेद
हैं । ये आठ प्रकारके द्रव्य कर्म ही द्रव्यास्त्वके आठ भेद माने हैं ॥ ८०—८१ ॥ द्रव्य बंध और
भाव बंधके भेदसे बंध भी दो प्रकारका माना है । जिन मिथ्यात्व अविरति आदि दुर्भावोंके द्वारा
कर्म बंधते हैं उन दुर्भावोंका नाम तो भावबंध है एवं कर्म और आत्माके प्रदेशोंका जो एक क्षेत्र
वगाहरूप आपसमें मिलना है वह द्रव्य बंध कहा गया है । वह बंध तत्त्व चार प्रकारका माना है
प्रकृतिबंध अनुभागबंध स्थितिबंध और प्रदेशबंध । इस बंधका छूटना बड़ी कठिनतासे होता है ।
इन चारों प्रकारके बंधोंमें प्रदेशबंध और प्रकृतिबंध तो योगोंके द्वारा होते हैं और अनुभाग एवं
स्थितिबंध कषायोंके द्वारा होते हैं ऐसा भगवान् जिनेंद्रने कहा है ॥ ८२—८५ ॥ द्रव्य संवर और
भावसंवरके भेदसे संवर तत्त्व भी दो प्रकारका माना है । व्रत गुप्ति समिति धर्म अनुप्रेक्षा चारित्र

८६ ॥ संवरो द्विविधः प्रोक्तो भावद्रव्यप्रमेदतः । आत्मनो भावतः कर्मास्त्रवस्य यन्निरोधनं ॥ ८७ ॥ उक्तोऽस्तीं ज्ञानिभिर्भावः संवरोः । प्रत्येकं गुप्तिमिदं मेरुनुपेक्षादिभिः पुनः ॥ ८८ ॥ चारित्र्येण क्षुधादोनां जेतृत्वेनागतं धनं । द्रव्यास्त्रवेण यत्पापं वार्यते द्रव्यसंवरात् ॥ ८९ ॥ निर्जरा द्विविधा यथा सविपाकाविपाकतः । सर्वेषां सविपाका स्यादविपाका हठादिति ॥ ९० ॥ भेदद्वयात्मको भोक्तृ आत्मभावश्च कर्मणां । सर्वेषां क्षयकारी यो भावमोक्षोमुनोरितः ॥ ९१ ॥ ध्यानैर्लक्ष्यैर्महोपैश्च पृथग्भावो हि कर्मणां । द्रव्य-
और परीषद्द्वय रूप आत्माके भावोंसे जो आसुवके द्वारा आये हुए कर्मों का रुकना है उन व्रत गुप्ति आदि भावोंका नाम भावसंवर है । यह भाव संवर संवर स्वरूप है अर्थात् किवाड़ लगा देने पर जिसप्रकार भीतर महलमें प्रवेश नहीं किया जाता उसी प्रकार जिस समय यह आत्मा संवर स्वरूप परिणत हो जाता है उस समय आत्मारूपी महलके अंदर कर्मों का भी प्रवेश नहीं होता तथा द्रव्यास्त्रवसे जो द्रव्यरूप कर्म जाते हैं उन द्रव्य कर्मोंका व्रत गुप्ति समिति आदिके द्वारा जो रुक जाना है वह द्रव्य संवर है अर्थात् व्रत गुप्ति आदिके द्वारा मिथ्यात्व अविरति आदि भावोंका रुकना तो भाव संवर है और द्रव्यरूप कर्मोंका रुकना द्रव्य संवर है ॥ ८६—८८ ॥ सविपाक निर्जरा और अविपाक निर्जराके भेदसे निर्जरा भी दो प्रकारकी मानी है । अपने आप फल देकर कर्मोंका खिर जाना अविपाक निर्जरा कहलाती है प्रत्येक संसारी जीवके कर्म प्रतिक्षण फल देदे कर खिरते रहते हैं इसलिये सविपाक निर्जरा तो संसारी जीवोंके प्रतिक्षण होती रहती है । तथा तप आदि के द्वारा जवरन कर्मोंका झड़ाना अविपाक निर्जरा है । यह तप आदिके आचरण करनेपर होती है द्रव्य मोक्ष और भाव मोक्षके भेदसे मोक्ष तत्त्व भी दो प्रकारका माना है । गुप्ति आदि आत्माके भावोंके द्वारा समस्त कर्मोंका सर्वथा क्षय हो जाना भाव मोक्ष है तथा ध्यान जप मनका वश करना, और उग्र तपोंके द्वारा जो द्रव्य कर्मोंकी आत्मासे जुदाई कर देना है वह द्रव्य मोक्ष है

मोक्षो जिनाधीशः स्व प्रोक्तो ह्यजरादिभिः ॥ ६२ ॥ दुष्कर्मणां लज्जापुण्यं पापं दुर्मावर्त्तेतसां । सातासुखादिसन्तापसद्गोत्रायुषि
पुण्यतः ॥ ६३ ॥ पापास्तद्विप्लोतानि श्वस्रतिर्यग्गतिः पुनः । द्रव्यतत्त्वपदार्थाश्च भाषितास्तेन मागध ॥ ६४ ॥ अथो श्रीजिननाथोऽसौ
मोक्षमार्गमन्वीकथत् । ध्यानसाध्यं विना तेन मुक्त्यर्थातिर्न जायते ॥ ६५ ॥ दर्शनज्ञानचरित्रं मन्येऽहं मोक्षकारणं । तन्मयो
निरुद्धाहं ही कर्मापाप्मावसोदति ॥ ६६ ॥ ध्यानेन विना योगी न समर्थः कर्मनाशने । अदंष्ट्रः कुञ्जराणां वा ध्वंसने केसरी यथा ॥

ऐसा केवल ज्ञानी भगवान् जिनेन्द्रका सिद्धांत है ॥ ८६—८९ ॥ जिन महानुभावोंके परि-
णाम पदत्र रहते हैं उनके तो उत्तम पुण्यकी प्राप्ति होती है और जिनके निन्दित परिणाम रहते
हैं उनके पापोंकी उत्पत्ति होती है । साता रूप सुख उत्तम नाम उत्तम गोत्र और उत्तम आयु इनकी
पुण्यसे प्राप्ति होती है और पापसे आसाता रूप दुःख निन्दित नाम गोत्र और आयुकी प्राप्ति
होती है एवं पापके उदयसे नरकगतिमें जाना पड़ता है इस प्रकार भगवान् विमलनाथने द्रव्य
तत्त्व और पदार्थोंका विस्तारसे उपदेश दिया ॥ ८२—८३ ॥

इसके बाद भगवान् विमलनाथने मोक्ष मार्गका वर्णन किया जिसकी कि सिद्धि ध्यानसे है
और उस ध्यानके विना मोक्षकी प्राप्ति ही नहीं हो सकती । भगवान् विमलनाथने कहा सम्यग्द-
र्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चरित्र ये तीनों मिलकर मोक्षके कारण हैं जो आत्मा निश्चयनयसे
सम्यग्दर्शन आदि स्वरूप हो जाता है वह ज्ञानावरण आदि आठ कर्मोंसे रहित हो जाता है जिस
प्रकार डाढ़ोंसे रहित सिंह हाथियोंके विध्वंस करनेकी समर्थ नहीं रखता उसी प्रकार ध्यानके विना
योगी भी कर्मोंके नाशकी सामर्थ्य नहीं रखता । कर्मोंका नाश ध्यानके द्वारा ही हो सकता है ॥ ८४ ॥
॥ ८६ ॥ आर्तध्यान रौद्र ध्यान धर्म्यध्यान और शुक्ल ध्यानके भेदसे ध्यानके चार भेद माने हैं ।
इनमें आर्त और रौद्र ये दो ध्यान अप्रशस्त हैं इसलिये ये छोड़ने योग्य है । धर्म्य और शुक्ल ये

६७ ॥ आर्तं रौद्रं क्षिप्रं ध्यानं तदात्म्यं ब्राह्मं विधापरं । धर्म्यं शुक्लं महाध्यानं मुक्तिशर्मप्रदं हितं ॥ ६८ ॥ पुत्रस्त्री
 विनतं धानं मुच्यते । वन्यनादिममुद्गू नचिंतनं रुद्रमीरितं ॥ ६९ ॥ सूत्रार्थश्रवणं यच्च व्रतस्यादानभावना । दानस्य तपसश्चैव
 धर्म्यध्यानं हि तन्मतं ॥ १०० ॥ सङ्कल्पाद्यतिमं सात्व्यमात्मनश्चित्तनं परं । शुक्लध्यानं तदाख्यातं निःसङ्गैः साध्यते हि तत् ॥ १०१ ॥
 गिरौ दशैश्मसालेषु विधरेषु शिलागले । मठमन्दिरशून्येषु ध्यानसिद्धिः प्रजायते ॥ १०२ ॥ पिण्डस्थं च पदस्थं च रूपस्थं रूपव-
 दो ध्यानं प्रशस्तं ध्यानं है एवं ये दोनों मुक्तिरूपी कल्याणके प्रदान करनेवाले और परम हितकारी
 हैं ॥ ६७ ॥ पुत्र स्त्री और भोजन आदिका चिंतन करना अर्थात् ये मुझे कब मिलेंगे और कैसे
 मिलेंगे इस प्रकारका विचार करना आर्तध्यान कहा जाता है । दूसरे जीवोंके बांधने मारने आदि-
 का विचार करना रौद्रध्यान कहा जाता है । सूत्रके अर्थका श्रवण करना, व्रतोंके ग्रहण करनेकी
 भावना भाना एवं दान तथा तपके आचरणकी भावना भाना धर्म्यध्यान कहा जाता है । तथा जिस
 ध्यानमें समस्त संकल्प विकल्पोसे रहित और निर्मल आत्माके स्वरूपका चिंतन किया जाता है
 वह शुक्ल ध्यान है । समस्त परिग्रहोंसे रहित मुनिगण इस ध्यानका आचरण करते हैं ॥ ६७-६९ ॥
 पर्वत गुफा मरघट खोलार मठ मन्दिर और शून्य स्थानोंमें शिलाओंपर बैठनेसे ध्यानकी सिद्धि
 होती है । पिण्डस्थ पदस्थ रूपस्थ और रूपातीतके भेदसे भी ध्यानके चार भेद माने हैं । ध्यानी
 पुरुषको चाहिये कि वह समस्त आरंभोंसे रहित होकर और मनको स्थिर कर ध्यानकी आराधना
 करे ॥ १००—१०१ ॥ जिसकी कांतिको छटा चारों ओर छटक रही है और जो सूर्यके तेजके
 समान देदोप्यमान है ऐसे अपने आत्मरूपका जो नाभि कमलके मध्यभागमें चिंतन करना है
 वह पिण्डस्थ नामका ध्यान है । तथा भालके मध्यभागमें वा करोंके मध्यभागमें हृदयमें वा गले
 के मध्यभागमें जो अपने आत्मस्वरूपका चिंतन करना है वह भी पिण्डस्थ नामका ध्यान कहा

जितं । ध्यानस्थैर्यमना ध्यायेत् सर्वारम्भज्युतः पुमान् ॥ १०३ ॥ नाभ्यर्भोजांतरे ध्येयमात्मरूपं स्फुरद्युतिः । सूर्यतेजःसमं तद्वि
 ण्डस्थं । जनाचंचनं ॥ १०४ ॥ भालमध्ये करंतर्वा हृदये वा गलांतरे । निजरूपं चिंतयेत्तच्च षण्डस्थं मन्यते यतिः ॥ १०५ ॥ अहमित्यक्षरं
 च योगी ध्यायेन्निरतरं । पदस्थं तन्मतं ध्यानमेकवर्णादिकं पुनः ॥ १०६ ॥ कर्माष्टकज्युतश्चार्हन् प्रातिहार्यादिसंयुतः । ध्यायते शुक्ल
 वर्णः सन् तद्रूपस्थं जिनागमे ॥ १०७ ॥ कंदर्पदर्परागद्वेषमनोवाकायमत्सरममत्त्वतलुसंस्कारधनधान्यकषायादिव्यापारनिष्कांतो
 भूत्वा कस्यहं न मे कश्चनेति निःसङ्गाध्यायत्वहंशब्दं सकारकलितादिं तद्रूपातीतध्यानमिति गद्यं ॥ १०८ ॥ शिवं च शीतलं ध्यानं
 निश्चयं भ्रातिवाजितं । सुधापानसमा ज्योत्स्ना शारदीय सुधावतः ॥ १०९ ॥ अकारवर्धमानाक्षरजातिः । अयजङ्गयते येनाहंशब्दा-
 जाता है ॥ १०२—१०३ ॥ जो योगी 'अहं' ऐसे पदका सदा ध्यान करते हैं उनका वह ध्यान प-
 दस्थ ध्यान माना जाता है । अथवा 'ओं' इत्यादि एक अक्षर स्वरूप ध्यानका नाम भी पदस्थ ध्यान
 है ॥ १०४ ॥ जिस ध्यानमें आठ प्रातिहार्य आदि महिमासे विराजनान शुक्ल वर्णके धारक और
 कर्मरहित भगवान् अहंतके स्वरूपका चिंतवन किया जाता है वह रूपस्थ ध्यान कहा जाता है ॥ १०५ ॥
 काम विकार राग द्वेष मन वचन काथकी कुटिलता मत्सरता ममता शरीरका संस्कार धन धान्य
 और कषाय आदिके व्यापारसे रहित होकर एवं समस्त परिग्रहसे विमुख न मैं किसीका हूं और
 न कोई मेरा है ' ऐसा पूर्ण विचार कर जिस ध्यानके अन्दर 'सोऽहं, वह मैं हूं ' ऐसा ध्यान किया
 जाता है वह रूपातीत नामका ध्यान है ॥ १०६ ॥ यह रूपातीत ध्यान अत्यन्त कल्याणकारी है ।
 शांतिमय है । वास्तविक है । समस्त प्रकारकी भ्रांतिओंसे रहित है । अमृतपानके समान आनंद-
 दायी है और शरद कालकी चांदनीके समान शांति प्रदान करनेवाला है । जिसका चित्त अहं
 शब्दसे व्याप्त है ऐसा जो योगी इस निश्चय ध्यानका आराधन करता है उसे संसारमें नहीं रूलना
 पड़ता वह मोक्ष सुख प्राप्त कर लेता है ॥ १०७—१०८ ॥ इन चारों प्रकारके ध्यानोंमेंसे आर्त-
 ध्यानसे तिर्यच गति मिलती है । रौद्र ध्यानसे नरक गतिमें जाना पड़ता है । धर्म्यध्यानसे स्वर्ग
 और शुक्ल ध्यानसे मोक्ष धाम प्राप्त होता है ॥ १०९ ॥ इस प्रकार धर्मोपदेशके बाद भगवान् वि-

नवीनचेतसा । योगिना निश्चयं ध्यानं तस्यास्ते का च ससृतिः ॥ ११० ॥ तिर्यग्गतिर्भवेदार्ताद्द्रुद्रात् भवन्नगतिर्भवेत् । धर्मध्याना
द्वयेत्स्वर्गः शुक्लध्यानाच्छिवास्त्वयः ॥ १११ ॥ इत्यादिश्रद्धया राजन् ! सम्यक्त्वं निर्मलं भवेत् । तस्मिन् सति महाकर्मक्षयस्तस्मिन्
निरजतः ॥ ११२ ॥ तद्व्यापीनां कथा कार्या ध्यानं ध्येयं मनोविभिः । अन्तर्मुहूर्तं मनुष्यानात्कोटिकर्मक्षयो भवेत् ॥ ११३ ॥

श्रुत्वा तस्यामृतं रसमहं राजपुत्रौ सुभाषात् देवेन्द्रार्थं जिनवरमुखाभोजजातं प्रशस्तं ।

भक्ष्यस्वाद्यं सखलजनआलसकृद् गतिदत्तं पारमौ लीं सुदुर्लभं नन्दयामासतुर्वै ॥ ११४ ॥

जगत्तुर्विन्ध्यमेरुमन्दिरौ सद्यप्यङ्गजद्वयौ गुणान्वितौ ।

मलनाथने कहा—इस प्रकारके तत्त्वोंके स्वरूप पर श्रद्धान करनेसे सम्यक्त्व निर्मल होता है । स-
म्यक्त्वकी निर्मलतासे समस्त कर्मोंका क्षय होता है एवं जिस समय समस्त कर्म नष्ट हो जाते हैं
उस समय यह आत्मा निरंजन-परमात्मा बन जाता है । जो पुरुष मनीषी—विद्वान हैं उन्हें अपने
आत्मकल्याणकी अभिलाषासे सदा तत्त्व आदिकी कथा करते रहना चाहिये क्योंकि यदि अन्तर्मु-
हूर्त पर्यन्त भी उत्तम ध्यान आचरण कर लिया जाता है तो उस ध्यानसे देखते २ करोड़ों कर्मों
का क्षय हो जाता है ॥ ११०—११२ ॥

इस प्रकार मेरु और मंदिर नामके राज पुत्रोंने उत्तम भावोंसे भगवान विमलनाथके समवस-
रणमें तत्त्वामृत रसको आस्वादन किया जिसकी कि लालसा बड़े २ देवोंके इन्द्र रखते हैं । जो भग-
वान जिनेन्द्रके मुखरूपी ममुद्रसे उत्पन्न है । जो प्रशस्त है । भक्ष्य जीवोंके स्वादने योग्य है ।
समस्त मनुष्योंको आनंद प्रदान करनेवाला है और दुर्गतियोंका नाशक है तथा कामदेवके समान
सुन्दर और कोमल परिणामी वे दोनों राजपुत्र उस तत्त्वामृतरसके आस्वादनसे बड़े ही आनंदित
हुए । तथा कमलके समान दिशाल नेत्रोंके धारक अनेक गुणोंके भण्डार एवं धीर वीर चित्तके

अर्हतातविमलेन भाषितं धार्य धीरमनसो मनोऽतरे ॥ ११५ ॥

इत्यार्षे बृहद्विमलनाथपुराणे रत्नभूषणान्नयालङ्कार वि० समवस्तुतिसंदर्भमेरुमन्दिरा

रत्नमयीविरचितेन पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

धारक वे मेरु और मंदिर नामके राजकुमार भगवान विमलनाथके मुखसे जायमान धर्मका स्वरूप अपने चित्तमें अच्छी तरह धारण कर अपने अपने राजमहल लोट आये ॥ ११३—११४ ॥

ब्रह्मकृष्णदास विरचित बृहद्विमलनाथ पुराणमें समवसरणकी रचना मेरु और मंदिर नामके राजकुमारोंका आगमन और

भगवान विमलनाथके मुखसे जायमान तत्त्वामृत रसका उपदेश वर्णन करनेवाला पांचवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

छठा सर्ग ।

०००० ००००

श्रीमन्तं काश्यपं नौमि लसंतं श्वेतभूषरे । कोटिशेषप्रभं भव्यास्तं यं दृष्ट्वा चकोरधत् ॥ १ ॥ अथेतां स्रातरी भव्यौ प्रातरु

जो भगवान आदिनाथ बाह्य अभ्यन्तर दोनों प्रकारकी लक्ष्मीके स्वामी हैं । भरत क्षेत्रके आदि तीर्थङ्कर हैं । कैलाश पर्वतसे जिन्होंने मोक्षको पाया है । करोड़ों चन्द्रमाओंकी प्रभाके धारक हैं एवं चकोर पक्षी जिस प्रकार चंद्रमाकी ओर टकटकी लगाये रहता है उसी प्रकार भव्य जीव जिनकी ओर टकटकी लगाये रहते हैं ऐसे श्रीआदिनाथ भगवानको मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ दूसरे दिन पुनः वे दोनों भाई मेरु और मन्दिर प्रातःकाल बहुत जल्दी सोकर उठ गये एवं बड़े ठाट वाट और विभूतिके साथ भगवान जिनेन्द्रकी वंदनाके लिये चल दिये । भगवान वि-

स्थाय वेगतः । संरम्भेण महाभूत्या अभ्यनुर्वदितुं जिने ॥ २ ॥ गत्वा रत्नासंनानीने जिने विमलबाह्वं । नत्वा पद्मारिजं स्तुत्वा गद्य-
पद्यैः स्थितौ सुखं ॥ ३ ॥ तदावददराधीशो मेरुस्तामरसप्रवः । प्रभाभारभरिं देवं निर्द्वन्द्वं चेति सादरात् ॥ ४ ॥ कर्ममुष्महेष्माकेद्ब्रात
वर्धितपटकज ! । प्रभो ! हं श्रोतुमिच्छामि भ्रातुर्मेऽथ भवावलिं ॥ ५ ॥ ज्योत्स्नोल्लासितवाराशिमहाघोषसमध्वनिः । मेरुं प्राहेति भव्यौ
भाम्नोऽभ्यानुजिर्नो नृप ! ॥ ६ ॥ सम्यक् पृष्टं त्वया यत्सासंख्यजीवसुखप्रदं । त्वं च मंदरनामा च यास्यतोऽतः शिवालयं ॥

मलनाथ उस समय रत्नमयी सिंहासन पर विराजमान थे । दोनों भाइयोंने अनेक प्रकारके मनो-
हर गद्य पद्योंमें भगवान विमलनाथके चरण कमलोंकी स्तुति की एवं सुख पूर्वक मनुष्य कोठेमें
जाकर बैठ गये ॥ २—३ ॥ वे भगवान विमलनाथ उस समय महा मनोज्ञ कांतिसे शोभायमान
थे और समस्त प्रकारके द्वंदोंसे रहित थे । कमलकी प्रभाके समान शोभायमान राजा मेरुने अव-
सर पाकर भगवान जिनेंद्रसे इसप्रकार बड़े आदरसे पूछा—

भगवन् ! आप समस्त प्रकारके कर्मोंके नाश करनेवाले हो । सर्वोंके स्वामी हो । बड़े बड़े इन्द्र
भी आपके चरण कमलोंको पूजते हैं स्वामिन् । मैं अपने भाई मंदिरका पूर्वभवका वृत्तांत सुनना
चाहता हूं कृपाकर कहिये । वे भगवान जिनेंद्र चंद्रमाके संबंधसे लहलहाते हुए विशाल समुद्रके
गंभीर शब्दके समान दिव्य ध्वनिके धारक थे और भव्यरूपी कमलोंके प्रकाशनेके लिये सूर्यस्वरूप
थे । राजा मेरुका इस प्रकारका प्रश्न सुन उन्होंने उत्तरमें कहा— राजन् ! इस समयका तुम्हारा
प्रश्न बहुत ही उत्तम है । असंख्य जीवोंको सुख प्रदान करनेवाला है । तुम निश्चय समझो तुम
और मंदिर दोनों इस भवसे मोक्ष पाओगे । मन्दिरके पूर्व भवके वृत्तांतको तुम आदर पूर्वक
सुनो क्योंकि तुम एक मनीषी पुरुष हो किन्तु जो पुरुष अन्तरङ्गमें सार रहित मनीषी नहीं होते
उन्हें कितना भी उत्तम उपदेश क्यों न दिया जाय वह उनको बड़ा दुःखदायी जान पड़ता है क्यों

७ ॥ सावधानत्वमाश्रित्य शृणु स्वं सादरं यतः । अन्तःसारविहीनानां प्रतियोगोऽपि दुःखति ॥ ८ ॥ अन्तःसारविहीनानां बुद्धिः
कापि न जायते । मलयाचलसंसर्गाच्च वेणुश्चन्दनायते ॥ ९ ॥ अथासंख्यमहाद्वीपमध्ये राजेव राजते । जम्बूभूमेऽहं चिह्नत्वाज्जम्बूद्वीपो
ऽभिधानतः ॥ १० ॥ तन्मध्ये मेरुनाभाति नानास्तनविचित्रतिबट् । षोडशार्हन्महागारसंदर्भोऽकृतसत्तटः ॥ ११ ॥ विरंमन्ति यतः स्व
म्या नैव लोके श्रुतं कदा । अप्सरास्तनसंश्लेषविवितेलातलाद्विरेः ॥ १२ ॥ अस्यैव पश्चिमे भागे विदेहोऽपरसंज्ञिकः । सार्थकोऽतो
विदेहत्वं तपसा प्राप्नुवन्त्यहो ॥ १३ ॥ शीतोदानामतः सिंधुस्तथास्तेऽगाधसन्नदा । शतोन्नतमहाचैत्योद्भासितोमपार्श्वकाः ॥

कि मलयागिरि चन्दनके सम्बन्धसे जिस प्रकार अन्य वृक्ष तो चन्दन स्वरूप हो जाते हैं परन्तु
वासका वृक्ष चन्दन स्वरूप परिणत नहीं होता उसी प्रकार जो पुरुष अन्तः सार विहीन हैं कुछ भी
मनीषिता नहीं रखते उनकी बुद्धिपर भी धर्मोपदेशका असर नहीं पड़ता ॥ ४—६ ॥

असंख्याते द्वीपोंके मध्यभागमें एक जंबूद्वीप नामका विशाल द्वीप है जो कि समस्त द्वीपोंका
राजा सरीखा जान पड़ता है तथा जम्बूवृक्षके सम्बन्धसे ही उसका जंबूद्वीप यह प्रसिद्ध नाम है ।
जंबूद्वीपके ठीक मध्य भागमें मेरु नामका पर्वत है जो कि चित्र विचित्र रत्नोंकी प्रभासे देदोष्यमान
है एवं उसका तट बड़े २ विशाल मंदिरोंसे व्याप्त हैं । मेरु पर्वतकी पृथ्वीपर देवांगनाओंके
संघटनोंकी सदा प्रतिविंब पड़ती रहती हैं इसलिये जो पुरुष स्वस्थ है—विषय भोगोंसे रहित हैं वे
भी उस पृथ्वीसे विरक्त नहीं होते उस पृथ्वीपर विहार करना आनंदप्रद समझते हैं यह बात लोक
प्रसिद्ध है ॥ १०—१२ ॥ मेरु पर्वतकी दक्षिण श्रेणिमें विदेह नामका एक विशाल क्षेत्र है और
उसका नाम विदेह सार्थक है क्योंकि वहां तपोके द्वारा भनुष्य विदेह-देहरहित सिद्ध परमात्मा बन
जाते हैं । वहां पर शीतोदा नामकी विशाल नदी बहती है जिसका कि तलभाग अगाध है और
जिसके दोनों पसवाड़े विशाल सौ मंदिरोंसे शोभायमान है । शीतोदा नदीके उत्तर तटपर

१४ ॥ तस्या उद्वृत्ते गंधमालिनी विषयो महान् । यातायातैः सरामाणां सुराणां रम्यभूतलः ॥ १५ ॥ भूष्ये यत्र विद्यन्ते भूरिपुष्प
फलांचिताः । कोकिलालिकलाप्यता दानज्युत्कुम्भिकंपिताः ॥ १६ ॥ निगमा यत्र राजन्ते शालोक्ष क्षीतकोटिमिः । पदे पदे तडागानि
पङ्कजालियुतानि च ॥ १७ ॥ योगरूढर्चिपन्न्यासपवित्रितमहीधराः । लसन्ति लवलोवलोपुष्पसौगंधिवायवः ॥ १८ ॥ अञ्जधान्यजवस्त्रा
वा वासन्ती चलनालिङ्गम् । अर्णोवेषोर्मिवेषा च राजते हंसनूपरा ॥ १९ ॥ तत्रास्ते वीतशोकास्थ पवनमृद्विसंकुलः । गोपुरेद्वासि

गंध मालिनी नामका एक विशाल देश है । वहां पर अपनी अपनी देवांगनाओंके साथ सदा देवों-
का आना जाना बना रहता है इसलिये सदा उसकी पृथ्वी रमणीक बनी रहती है । गंधमालिनी
देशके वृक्ष सदा अनेक प्रकारके पुष्प और फलोंसे व्याप्त रहते हैं सदा उनपर कोयल भ्रमर और
मयूरोंके महा मनोहर शब्द हुआ करते हैं और मदोन्मत्त हाथी सदा उन्हें कंपित करते रहते हैं ।
गंधमालिनी देशके गांव करोडो धान्य और ईखोंके खेतोंसे व्याप्त रहते हैं तथा पदपद पर वहां
पर विद्यमान हैं जो कि भ्रमरोंसे युक्त कमलोंसे व्याप्त रहते हैं ॥ १३—१७ ॥ वहांके पर्वत ध्या-
नारूढ मुनियोंके चरणोंसे सदा पवित्र बने रहते हैं और लवली नामकी लताओंके पुष्पोंकी सुग-
न्धिसे सदा वहांकी पवन सुगंधित बहती रहती है । वहां पर वसंत ऋतुकी शोभा मनोहर स्त्रीके
समान अत्यन्त शोभायमान थी क्योंकि स्त्री जिसप्रकार वस्त्र पहिनती है उसीप्रकार वसंत ऋतुकी
शोभा भी फूले हुए कमलरूपी वस्त्र पहिने थी । स्त्रीका मुख होता है उसीप्रकार वसंत ऋतुकी शोभा
भी कमलरूपी मुखोंसे शोभायमान थी । स्त्रीके नेत्र होते हैं उसी प्रकार चलते फिरते भौंरेही उस
वसंतको शोभाके नेत्र थे । स्त्री जिसप्रकार सुन्दर वेषसे शोभायमान रहती है उसी प्रकार वसंत ऋतु
की शोभा भी जल वा तरङ्ग रूपी सुन्दर वेषसे शोभायमान थी ॥ १८—१९ ॥

शालाहमिदं स्वर्गपुरिच ॥ २० ॥ अर्हद्गृहा विराजन्ते प्रोक्ष्यैर्गन्तस्त्पृशः । पताकावलिभिर्मन्थानाद्धयति च वेगतः ॥ २१ ॥ धर्म-
धीरास्तपोधीरा दानधीराः कृपायुजः । श्रुतज्ञाः सुन्दराः शूरा विद्यते सज्जना अपि ॥ २२ ॥ पुरे तत्र महेश्वर्यो वैजयन्तो नराधिपः
दाता पाता श्रुतज्ञाता हर्तारिश्चिवश्च वे ॥ २३ ॥ प्रतापाकांतभूषालमंडलीकः कलानिधिः । कूरसौम्यगुणान्वीतो मोनरत्नीव वारिधिः
॥ २४ ॥ राजन्ते सिंधवो धामाः सुधाया इव सिंधवः । भूरयः कंबुगामिन्यः पुन्नागमतयोऽमलाः ॥ २५ ॥ सर्वश्रेष्ठया महावैवी नस्या

गन्ध मालिनी देशके अंदर एक वीत शोक नामका नगर है जो कि अनेक प्रकारकी कृद्धियों से व्याप्त है । जिनके अन्दर बड़े २ गोपुर खास दरवाजे शोभायमान हैं ऐसे विस्तीर्ण परकोटोंसे व्याप्त है अतएव वह स्वर्गपुरोके समान जान पड़ता है । वीत शोक नगरके विशाल जिनमंदिर जो कि अपनी ऊचाईसे आकाश मण्डलको स्पर्शते थे अत्यंत शोभायमान जान पड़ते थे तथा उनके ऊपर पताकायें फर हराती रहती थीं इसलिये वे ऐसे जान पड़ते थे मानों भव्य जीवोंको ये बुला रहे हैं । उस नगरके निवासी सज्जन धर्म कार्योंमें पूर्ण धैर्य रखनेवाले थे । तपके आचरणमें बड़े धीर वीर थे अत्यंत दानी कृपालु विद्वान सुन्दर और शूर वीर थे ॥ २०—२२ ॥ अनेक धनिकोंसे व्याप्त उस वीत शोक नगरका स्वामी राजा वैजयन्त था जो कि अत्यंत दानी था । प्रजाका न्याय पूर्वक पालन करनेवाला था । शास्त्रके मर्मका पूर्णज्ञाता था एवं शत्रुओंकी लक्ष्मीका हरण करने वाला था । अपने प्रतापसे उसने समस्त राजा लोग वश कर रखे थे । अनेक कलाओंका वह भंडार था एवं जिस प्रकार समुद्र मीन और रत्नोंका स्थान होता है उसी प्रकार वह राजा भी कूरता और सोमता रूपी गुणोंका स्थान था ॥ २३—२४ ॥ राजा वैजयन्तकी बहुत सी रानियां थीं जो कि परम सुन्दरी थीं । अमृतकी साक्षात्समुद्र थीं । गजगामिनी पवित्र बुद्धिकी धारक और विमल थीं । राजा वैजयन्तकी पटरानीका नाम सर्वश्रीप्या जो कि साक्षात् लक्ष्मी वा सूर्यकी स्त्री प्रभा वा रम्भा

स्ते पञ्चिकेव भाः । रवे रम्भा च दाक्षिण्यरूपलावण्यतोर्धाधः ॥ २६ ॥ पीधरस्तनभारेण द्रुनप्रा कृशोदरो । स्थूलगौरनितम्बेन मन्थरा
मृगलोचना ॥ २७ ॥ (युष्मत्) तपोभुंजान्त्योः स्तौष्यं सुलोमादुच्छ्रितयोः । हवाभूतां सुतो रम्यौ कामाभी कमलेक्षणी ॥ २८ ॥ संज
यन्तामित्रः सर्वलक्षणांकितविग्रहः । जयन्तारूपोऽपरः ख्यातः शुको वाङ्मयी च ताविव ॥ २९ ॥ एधेतां प्रत्यहं वाचचन्द्रवद्वदितान्धगौ
बालत्वेऽभ्यस्तविद्यौ तौ बाहुनारोपती ततः ॥ ३० ॥ पुत्राभ्यां सहितो राजा वैजयन्तोऽतिदुर्जयः । भुनक्तिस्माधिपत्यं च प्रतापेष्ण
सरीखी जान पड़ती थी । एवं वह चतुरता रूप और लावण्यकी समुद्रस्वरूप थी । वह स्थूल स्तनोंके
भारसे आगेको कुछ झुकी हुई थी, कृशोदरी थी । स्थूल और भारी नितम्बोंके कारण धीरे २ चलने
वाली थी एवं हरिणीके समान चंचल नेत्रोंसे शोभायमान थी । इन्द्र और इंद्राणीके समान इच्छा
नुसार सुख भोगनेवाले राजा वैजयन्त और रानी सर्वश्रीके दो पुत्र हुए जो कि अत्यन्त मनोहर थे
कामदेवके समान सुन्दर थे । कमलके समान विशाल नेत्रोंके धारक थे ॥ २५—२८ ॥ प्रथम पुत्र-
का नाम संजयत था जो कि समस्त उत्तमोत्तम लक्षणोंसे युक्त शरीरका धारक था तथा दूसरा
पुत्र जयन्त था जो कि अपने गुणोंसे समस्त पृथ्वीतलपर प्रसिद्ध था । दोनों ही पुत्र विद्वत्तामें शुक्र
और बृहस्पतिकी शोभा धारण करते थे । वे दोनों कुमार बाल चन्द्रमाके समान प्रतिदिन बढ़ते
रहते थे । बाल अवस्थामें ही उन्होंने समस्त विद्याओंका अभ्यास कर लिया था एवं वे शस्त्र विद्या-
रूपी स्त्रीके पति थे—पूर्ण शस्त्र कलाके जानकार थे ॥ २९—३० ॥ प्रतापी दोनों पुत्रोंके साथ राजा
वैजयन्त दुर्जय शत्रुओंका अगम्य था । एवं प्रतापी सूर्यके समान देदीप्यमान प्रभाका धारक वह
अपने राज्यका पूर्णरूपसे भोग करता था ॥ ३१ ॥

वीतशोक नगरके समीप एक अशोक नामका विशाल उद्यान था जो कि भांति २ के वृक्षों
से व्याप्त था । अनेक देवोंके साथ जहाँ तहाँ विहार कर भगवान् विमलनाथ उस उद्यानमें आकर

करप्रमः ॥ ३१ ॥ अथैकदा समायातस्तत्पुत्रस्य वने जिनः अशोकाख्ये द्रुमाकीर्णे स्वयम्भूर्निर्जराघृतः ॥ ३२ ॥ बन्धितुं जग्मतुस्तं तौ सोदरी सोदराविव । महाभूत्या गजारूढौ छत्रछन्नार्कदीधिति ॥ ३३ ॥ दृष्ट्वा स्वयम्भुवं दूरादुत्तीर्य गजराजतः । गत्वा भषत्या परीत्याशु नत्वा स्तुत्वा च तस्थतुः ॥ ३४ ॥ जिनोक्तं दशधा धर्मं संसारानित्यतां च तौ । श्रुत्वा वैराग्यमापन्नी कौशलं हि सतामिति ॥ ३५ ॥ वैजयंतोऽयनोनाथो दृष्ट्वा पुलविरक्ततां । ततर्कमनसि स्वीये मोहशैथिल्यतो महान् ॥ ३६ ॥ युवानोऽपि तपस्यनि ते धन्या विराज गये । कुमार संजयत और जयंतको भगवान् जिनेंद्रके आनेका समाचार मिल गया । शीघ्र ही लक्ष्मीके समुद्र स्वरूप वे दोनों भाई हाथियोंपर सवार हो गये और बड़े टाट बाटके साथ भगवान् जिनेंद्रकी वंदनाके लिये चल दिये । दोनों कुमारोंके ऊपर छत्र ढलते जाते थे जो कि अपनी उग्र दीप्तिसे सूर्यकी दीप्तिको दवानेवाले थे ॥ ३२—३३ ॥ भगवान् स्वयम्भूको दूरसे ही देखकर वे दोनों राजकुमार हाथीसे उतर गये । पासमें जाकर भक्तिपूर्वक तीन प्रदक्षिणा दीं । नमस्कार किया । मनोहर गद्य पद्यमें स्तुति की और अपने योग्य स्थानपर जाकर बैठ गये ॥ ३४ ॥ भगवान् जिनेंद्र उस समय उत्तम ज्ञाना आदि दश धर्मोंका स्वरूप निरूपण कर रहे थे और संसारकी अनित्यताका उपदेश दे रहे थे जिसे सुनकर सज्जयन्त और जयंत दोनों ही संसारसे विरक्त हो गये ठोक ही है सज्जनोंकी कुशलता यही कहलाती है । राजा वैजयंतने जब अपने पुत्रोंको संसारसे विरक्त देखा तो उसका भी मोह संसारमें शिथिल पड़ गया और वह अपने मनमें इस प्रकार विचार करने लगा—

युवा होकर भी जो विषय भोगोंसे विरक्त हो तप आचरण करते हैं संसारमें वे ही धन्य हैं । मुझ सरीखे पापियोंके लिये धिक्कार है जो कि अपनी वृद्ध अवस्थाको युवावस्था मान रहे हैं अर्थात् यह अवस्था धर्म साधनकी है उसे भोग विलासोंमें बिता रहे हैं । इन्द्रके पुत्रके समान और का-

तलेऽलिङ्गे । मादृक्षाणां महाघानां वृद्धत्वं तरुणायते ॥ ३८ ॥ तिष्ठेयं किमहं राज्ये जराक्रांतो विषण्णधीः । दोक्षेते चैत्कुमारौ द्व-
 षाग्नौ वा शकनन्दनौ ॥ ३९ ॥ एवमादि चिरं चिंतय जज्ञे निर्वेदमानसः । संजयंतस्य पुत्राय वैजयंताय धीमते ॥ ३९ ॥ इत्वा राज्यं
 वमायातं पुत्रान्यां सहितो नृपः । दिदीक्षे सकलं सर्वं त्यक्त्वा ममप्रनायक ! ॥ ४० ॥ वैजयंताख्ययोगीन्द्रः सममेति प्रमादवान् ।
 क्रियाकांडं भृशं शुद्धिं कर्तुं प्रोद्यमयान्भूत ॥ ४१ ॥ द्वादशे चाकषायाख्ये क्षोणाशेषकषायकः । तीर्थं करतव्यमापासी वैजयंतस्तपो-
 रत्नात् ॥ ४२ ॥ तदानीमेव देवेन्द्राः कर्तुं तत्कैवल्यलोत्सवः । समायाता जयध्यानवादिनः परमभक्तिकाः ॥ ४३ ॥ तत्क्षणे तौ गुणाम्बोधी-
 मके समान सुन्दर ये दोनों कुमार तो दिगम्बरी दीक्षा धारण करें और मैं वृद्धावस्थामें भी राज्यके फासे
 में फंसा रहूँ मुझसे बढ़कर संसारमें कोई मूर्ख नहीं । वस इस प्रकार बहुत देरतक अपने मनमें
 विचार कर राजा वैजयंतका चित्त संसारसे विरक्त हो गया । कुल परम्परासे प्राप्त राज्यको राजा
 वैजयन्तने अपने पोते कुमार संजयन्तके पुत्र वैजयन्तको प्रदान कर दिया और वह समस्त परिग्रह
 का सर्वथा त्यागकर दोनों पुत्रोंके साथ शीघ्र ही दिगम्बरी दीक्षासे दीक्षित हो गया ॥ ३५—४० ॥
 मुनिराज वैजयन्तने अप्रमत्त नामक सातवें गुण स्थानमें प्राप्त होकर समस्त प्रमादोंका सर्वथा नाश
 कर दिया एवं अपने चारित्रिकी शुद्धिका वे विशेष रूपसे प्रयत्न करने लगे । क्षोण कषाय नामक
 बाहवें गुणस्थानमें उन्होंने समस्त कषायोंका सर्वथा नाश कर दिया । विशिष्ट तपके बलसे उन्होंने
 ने तीर्थंकर गोत्रका बंध कर लिया और उन्हें अन्तमुद्धूतमें केवलज्ञान प्राप्त हो गया । मुनिराज
 वैजयन्तको केवल ज्ञानकी प्राप्ति का ज्ञान होते ही उनके केवलज्ञानका उत्सव मनानेके लिये शीघ्र
 ही इन्द्र आ गये । उस समय समस्त इन्द्रोंके मुखोंसे जय जयकार शब्द निकलता था और सबके
 सब प्रबलभक्तिके स्रोतमें मग्न थे ॥ ४१—४३ ॥ गुणोंके ससुद्र परम तपस्वी प्रबलकांतिके धारक
 वस्तु स्वरूपके जानकार क्षमारूपी भूषणसे शोभायमान एवं शास्त्ररूपी समुद्रके पारगामी उन संज

तपोभारभगी मुनि । संजयत तपताख्यौ श्रुत्वा तातस्य केवलं ॥ ४४ ॥ यन्वितुं भूरिजस्रौ तत्त्वज्ञौ क्षांतिभूषणौ । समायातां स्तुवंतौ
 तौ श्रुत्वा धितरौ परौ ॥ ४५ ॥ धरणेंद्रस्तदायासीदुत्सवार्थं जिनस्य च । द्विसप्तकोटिर्मर्दे वैरावृतः कम्पतावधि ॥ ४६ ॥ जयं
 ताख्यो मुनस्तत्र दृष्ट्वा रूपं धरापतेः । विह्वलांगो बभूवाशु भोगोदयविधेर्वशात् ॥ ४७ ॥ तपो घोरतरं तप्तं साशङ्कं दरिकादिषु ।
 सोऽकार्षोन्नितरां प्रान्ते निदानमिति शल्यवत् ॥ ४८ ॥ फलं चेत्तपसो मेऽत्र चिरं तप्तं सादरात् । भूयान्मे नागनाथत्वं माघश्यक
 महोदय ॥ ४९ ॥ सृष्ट्वा निदानतो जज्ञे धरणेंद्रः शुभाशयः । महर्द्धिः फणिमण्डोभारकिरीटः पुष्पश्चक्रमः ॥ ५० ॥ तपसोऽग्रेण दुःप्राप्यं
 यंत्यौर जयंत नामके मुनियोने भो अपने पिताको केवलज्ञान हुआ सुना इसलिये वे भी तत्काल
 मुनिराज वैजयन्तकी वन्दनाके लिये आ गये । चौदह करोड़ देवोंसे व्याप्त अतिशय मनोहर श-
 रीरका धारक धरणेंद्र भी जिनराज वैजयंतके केवलज्ञान उत्सवमें शामिल हुआ था । धरणेंद्रके मनो-
 हर रूपको देखकर मुनिराज जयंत एकदम निर्वुद्धि हो गये । मोहनीय कर्मके तीव्र उदयसे उनकी
 स्त्री आदिमें लालसा फटकने लगी इसलिये तीव्र तपके तपनेके बाद यह उन्होंने निदान नामकी
 शल्य बांध ली—

‘चिरकाल पर्यंत तपे गये तपका यदि आदर्शपूर्वक मुझे फल प्राप्त हो तो मैं महान अभ्युदय
 का स्वामी धरणेंद्र बनूँ’ वस आयुके अन्तमें मरकर वे महान ऋद्धिके स्वामी और शुभ चित्तके
 धारक धरणेंद्र हुए । उनका मुकुट नागके भारसे शोभायमान था और सूर्य चन्द्रमाके समान उनको
 अद्वितीय प्रभा थी ॥ ४४—५० ॥ ग्रन्थकार निदान शल्यकी निंदा करते हुए कहते हैं कि जब
 उग्र तपके प्रभादसे मोक्ष तक प्राप्त हो जाती है तब उससे धरणेंद्र पदका मिलना कठिन नहीं
 क्योंकि यह संसार प्रसिद्ध बात है कि बहुमूल्यकी वस्तुसे थोड़े मूल्यकी वस्तुका मिलना कठिन
 नहीं है । उग्रतपका तपना बहुमूल्य वस्तु है और धरणेंद्र पदकी प्राप्ति थोड़े मूल्यकी वस्तु है ।
 इसलिये मुनिराज जयन्तका उस प्रकारका निदान एक निर्दित निदान था ।

धरणात्वं कदापि न । अत्यन्तं बहुमूल्यं सौख्यं विद्यते ननु ॥ ५१ ॥ अथासौ संजयं ताव्यो योगीन्द्रो व्यवहरदुचि । तपस्यन् भूधरप्रस्थे
ऽमिसूर्यं ब्रह्म संजपन् ॥ ५२ ॥ त्रिधामङ्गादिनिर्मुक्तो निश्चलो भेरुवत्परः । निःक्रियो ध्यानसंरुद्धचेताः परमतत्त्ववित् ॥ ५३ ॥ तत्त्वे
हाप्रगते नूनं संसृतिः कियती यते । क्षैणिकध्यानलेशेन वज्रवत्कर्म भूधरः ॥ ५४ ॥ अन्येषुः पर्वतारूढो ध्यानस्तमितलोचनः । ब्रह्मण्या
त्मानमायाज्य स्थितो यावन्महीं मुनिः ॥ ५५ ॥ मनोहरपुराम्यर्णो भीमारण्यांतरे यतिः । प्रतिमायोगसंलीनं ध्यायंतं परमं महः ॥ ५६ ॥
विद्युद्दंष्ट्रः खगो दृष्ट्वा तं मार्गं वेगतो ब्रजन् । पूर्ववैशानुसंघर्षाज्जातिस्मरणयानभूत् ॥ ५७ ॥ महाक्रोधेन दुष्टात्मा ताडयामास
प्रस्तरैः । मुष्टिभर्तृकुट्टैर्घातैस्तु मुनिं ब्रह्मचिंतितं ॥ ५८ ॥ समुद्रत्यू मूनिं वैराग्योत्थाकाशं जिघांसया । यायो विद्यावलेनाशु खगस्ते

मुनिराज जयन्तकं धरणेंद्र हो जानेके बाद वे योगिराज संजयंत पृथ्वीमण्डल पर विहार करने
लगे । सूर्यकी ओर मुखकर परमात्माके स्वरूपका ध्यान करते हुए पर्वतोंकी शिलाओंपर स्थिर हो
कर घोर तप तपने लगे ॥ ५१—५२ ॥ वे मुनिराज संजयंत चेतन अचेतन एवं चेतनाचेतन तीनों
प्रकारकी परिग्रहसे रहित थे जिस समय वे ध्यानारूढ निश्चल होते थे उस समय वे निश्चल मेरु
पर्वतके समान जान पड़ते थे । समस्त प्रकारकी बाह्य क्रियाओंसे रहित थे । वे सदा परमात्माका
ध्यान करते रहते थे इसलिये उनके चित्तकी वृत्ति रुकी रहती थी और वे पदार्थोंके वास्तविक स्वरूपके पूर्ण जानकार थे । यह निश्चय है कि जहांपर वस्तुके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान हो जाता है
वहां पर विशेष संसारमें नहीं रुलना पड़ता किंतु जिस प्रकार वज्रसे विशाल भी पर्वत चूर चूर हो
जाता है उसीप्रकार शुक्ल ध्यानके द्वारा बलवान् भी कर्मरूपी पर्वत खण्ड २ हो जाता है ॥ ५३-५४ ॥

एक दिनकी बात है कि वे मुनिराज संजयंत पर्वतके अग्र भागपर विराजमान थे । ध्यानकी
कृपासे उनके दोनों नेत्र निश्चल थे, चित्तमें परमात्माका चिंतन कर रहे थे । मनोहर पुरके उद्यान
में एक भीमारण्य नामका वन था उसमें प्रतिमा योगसे वे ध्यानारूढ थे उसी समय एक विद्यु-

मेरुनिभृतं ॥ ५६ ॥ अथ जम्बूमति द्वीपे भारतं क्षेत्रमुक्तम् । विद्याधराचलस्तत्र राजते राजतोषमः ॥ ६० ॥ तस्य पूर्वदिशायां च सरि-
त्पंचसमागमः । आद्या कुसुमवत्याख्या हरिवत्यभिधाऽपरा ॥ ६१ ॥ सुवर्णगजवती च चन्द्रवेगा च पञ्चमो । न्यक्षिपत्संगमे तासा
मनाधे मलिले खलः ॥ ६२ ॥ क्षिप्तवायं पुरमध्ये स समागतोऽपकारकः । पटहेन खगान् सर्वान् पिण्डोद्धृत्य जगामिति ॥ ६३ ॥ अयं
पापो महाकायो दानको मानवाशनः । सर्वान् विद्याधरानस्मान् पृथक्कृत्यात्तु मास्थितः ॥ ६४ ॥ बाणखड्गदिशस्त्रौघैर्निष्कृपं सर्वभक्षणं ।
बंष्ट्रं नामका विद्याधर विमानमें बैठकर उनके ऊपरसे निकला । मुनिराज संजयन्तके साथ उसका
पूर्व भवका बैर था इसलिये पूर्व भवके बैरके सम्बन्धसे उसे शीघ्र ही जाति स्मरण हो गया । पूर्व
भवके बैरसे मारे क्रोधके वह भवत गया एवं परम ध्यानी उन मुनिराजको वह पत्थर मुक्क लाठी
और धक्कोंसे मारने लगा । मेरु पर्वतके समान निश्चल उन मुनिराजको मारनेकी इच्छासे दुष्ट
विद्याधरने अपने विद्यावलसे आकाशमें उठा लिया और शीघ्र ही लेकर चल दिया ।

इसी जंबू द्वीपके भारत क्षेत्रमें एक विजयार्ध नामका विद्याधर पर्वत है जो कि चांदीके समान
सफेद वर्णका है । विजयार्ध पर्वतकी पूर्व दिशामें कुसुमवती, हरिवती, सुवर्णवती, गजवती और
चन्द्रवेगा नामकी पांच नदियोंका समागम है । दुष्ट विद्याधरने उन्हीं पांचों नदियोंके समागमके
आगाथ जलमें परम पवित्र मुनिराज संजयन्तको लेजाकर पटक दिया । वह निर्दयी मुनिराजको
पटक कर अपने नगरमें आ गया । भेरी बजाकर सयस्त विद्याधरोंका इकट्ठाकर लिया और उनसे
इसप्रकार कहने लगा—

विशाल शरीरका धारक मनुष्योंका खानेवाला राजस यह महा पापी है । हम सब विद्याधरों
को एक एक कर खानेके लिये यहां पर स्थित है । निर्दयी सर्व भक्षी और हम सबोंको खानेकी
अभिलाषा रखनेवाले इस दुष्टको बाण खड्ग आदि शस्त्रोंसे हम सबोंको मिलकर मार डालना चा-

चयं सर्वेऽपि संभूय हनामोऽखिलघातिनं ॥ ६५ ॥ माकुरुतास्य विश्वासं मन्त्रध्वं मद्रवो ध्रुवं । अयं रात्रौ स्त्रियो बालान् पशून् वा
 भक्षयिष्यति ॥ ६६ ॥ तस्मान्नस इचनं यूयं प्रनीत किमहं वृथा । मृषा भावे किमेतेन धीरमस्त्यत्र मे पृथक् ॥ ६७ ॥ इति विद्याधराः सर्वे
 मुग्धास्तेन प्रताग्निनाः । सायुधा निर्ययुस्तूर्णं मृत्युभीत्रस्तमानसाः ॥ ६८ ॥ गत्वा ते शस्त्रघातैस्तं युगपज्जञ्जुरादरात् । दृग्दण्डकरा
 घातैरागलान्मुनिपुङ्गव ॥ ६९ ॥ रोहिणीमचतुर्दश्यां चतुर्दशमिते ध्रुवं । गुणस्योद्भावभावायां ध्रितयां भुवनेश्वरैः ॥ ७० ॥ शमालं
 हिये । इसका तुम रश्मिमात्र भी विश्वास मत करो मैं जो कहूँ उसे ठीक समझो तुम निश्चय स-
 मझो रात्रिमें यह स्त्री बालक और पशुओंको नियमसे खा लेगा । भरे हितकारी वचनों पर तुम
 सब लोगोंको पूर्ण विश्वास करना चाहिये मैं मिथ्या नहीं बोल सकता क्योंकि इसके साथ मेरा
 कोई खास बैर नहीं है ॥ ५५-६७ ॥ दुष्ट विद्युद्दंष्ट्रके वचनोंका मूर्ख विद्याधरों पर प्रभाव पड़ गया
 मृत्युके भयसे जिनका चित्त चल विचल है ऐसे वे समस्त विद्याधर अपने २ शस्त्रोंको लेकर शीघ्र
 नगरसे निकल दिये । वे दुष्ट पास जाकर मुनिराज संजयन्तको एक साथ बड़े उत्साहसे नीचेसे
 ऊपर तक पत्थर लाठी मुक्के और अनेक शास्त्रोंसे एक साथ मारने लगे ॥ ६८—६९ ॥ रोहिणी
 (भाद्रपद मासकी ?) कृष्ण चतुर्दशी जो कि अनेक गुणोंके विकासका स्थान है और तीनों लोक
 के इन्द्र जिसकी पूजा करते हैं उस दिन मुनिराज संजयन्तने अपने परिणामोंमें उत्कृष्ट सीमाकी
 समता धारण कर ली एवं अनेक प्रकारके कष्टोंको अनेक प्रकारका आनन्द मान वे आनन्दमय
 हो गये ठाक ह। है जिन पुरुषोंका चित्त धीर वीर है उनके लिये घोर आपत्ति भी उत्सव स्वरूप हो
 जाती है । परम पवित्र मुनिराज संजयन्तने जिसप्रकार काष्ठसे अग्नि जुड़ी कर दी जाती है कोप-
 खोलसे तलवार और दूधसे घी पृथक् कर दिया जाता है उस प्रकार अपनी आत्माको देहसे सर्वथा
 जुदा समझ लिया । दुष्ट विद्युद्दंष्ट्र द्वारा किये गये सारे उपसर्गको उन्होंने सह लिया । उपसर्गोंके

व्य समुत्पत्त्यन्तेकानन्दमयोऽभवत् । विद्वन्वाप्युत्सवायते सतां निभूतचेतसां ॥ ७१ ॥ पृथग्भूतं चकाराशु स्वात्मानं देहत
काष्ठादग्निमसिं कोषाद्गुधात्सपिरिवामलं ॥ ७२ ॥ तत्कृतं संहिष्णुः सन् वज्रदेहो नगाकृतिः । निश्चलो निर्वृतिं यातः शुक्लध्या-
नेन शुद्धयाः ॥ ७३ ॥ अतीन्द्रियं पदं पापमायाकायविषजितं । धर्ममावादयो नित्यं कर्माभावाद्गोचरं ॥ ७४ ॥ यत्रैकस्मिन्ननन्ताहि-
निष्ठं तिसिद्धराशयः । सूक्ष्मादिगुणभेदत्वात्सूक्ष्मसूक्ष्मातिसूक्ष्मतः ॥ ७५ ॥ सूक्ष्मं जन्तुजीवानां कंदे स्थितिरुद्भूता । तेऽनन्ता-
न्तमेवेन यदा स्थूलीभवन्त्यहो ॥ ७६ ॥ पूरयित्वा तदा लोककाशं यात्यग्रतो ध्रुवं । अतः सूक्ष्मातिसूक्ष्मं च जीवतत्त्वं निगद्यते ॥ ७७ ॥

समय उन्होंने अपना शरीर वज्र के समान कठोर बना लिया । पर्वत के समान वे निश्चल बने रहे
जिससे विशुद्ध बुद्धि के धारक वे मुनिराज शुक्लध्यान के बल से मोक्ष सुख के पात्र बन गये । उन पूज्य
मुनिराज ने ममता और शरीर से रहित अतीन्द्रिय—मोक्ष पद प्राप्त कर लिया । पवित्र धर्म की कृपा से
वे जन्म जरा मरण रहित हो गये एवं कर्मों के सर्वथा नाश हो जाने से वे तत्क्षण सिद्धालय में जाकर
विराज गये इसलिये सब लोगों के नेत्रों के अगोचर हो गये ॥ ७०—७४ ॥ सिद्धगण सूक्ष्म अध्या-
याध जो निजो गुण हैं उनके स्थान एवं सूक्ष्म २ जो पुद्गलों का भेद होता है उससे भी अत्यन्त
सूक्ष्म होते हैं इसलिये जहां पर एक सिद्ध आत्मा रहता है वहीं पर अनन्तानन्त सिद्ध रहते हैं । सुई
की अणुओं के समान कन्द में अनन्तानन्त जीव रहते हैं ऐसा शास्त्र का उपदेश है । यदि वे अनन्ता-
नन्त जीव स्थूल शरीर धारण करें तो असंख्यात प्रदेशी लोककाश में भी न समाकर वे अलो-
काकाश तक चले जा सकते हैं इसलिये जीव तत्त्व को सूक्ष्मातिसूक्ष्म बतलाया गया है । यदि जीव
तत्त्व को सूक्ष्मातिसूक्ष्म न माना जायगा तब सिद्ध जीवों को भी संख्यात मानना होगा । उससे
मोक्ष स्थान के भर जाने से मोक्ष ही समाप्ति हो जायगी—किसी की भी मोक्ष न होगी एवं मोक्ष
की कारण स्वरूप धार्मिक क्रियाओं का सर्वथा नाश हो जायगा इसलिये कर्मों के सर्वथा नाश हो

वेदमयथा तदा सिद्धा भवेयुः संख्यता यतः । तदा मुक्ति समाप्तिः स्यात्प्रातोऽभूद्धर्मकर्मणोः ॥७८॥ भतः सूक्ष्मातिसूक्ष्मं च जीवतत्वं क्षयाद्विधेः । स्वभावाद्यं संप्राप्य शिष्यं सुक्ष्मं न जायते ॥ ७९ ॥ अधो निर्वाणकल्याणपूर्जा कर्तुं सुराधिपः । समोदुर्बेगतः स्वस्य बाहन्ताकृद्मूर्मयः ॥ ८० ॥ चतुर्विधामरा नैदुर्मेयं गार्थंति सन्मुनेः । नमन्नागेट् तदा स्वस्य भ्रात्राकृतिमश्वितयत् ॥ ८१ ॥ स्वाग्रप्रागे क्षणोद्भूततृतीयावगमः क्रुधा । अर्हीद्वो नागपाशेन तान्त्वबन्धाखिलान् खगान् ॥ ८२ ॥ महाक्रोधारूणीभूतलोचनो धरणो जगौ । तान् दुष्टानिति वाणोघैर्बन्धोभिस्तद्भयप्रदैः ॥ ८३ ॥ भो भो गतधियः खेटा युष्माभिर्मत्सहोदरः । निर्मदो निर्मलः शान्तो ध्यानस्थो हि कथं जानेसे स्वभावसे ही जीवतत्व सूक्ष्मातिसूक्ष्म है परन्तु मोक्ष स्थान छोटा नहीं हो सकता किंतु कितने भी मुक्त जीव क्यों न जाय उन सबोंका उसमें समावेश हो जाता है ॥ ७५—७९ ॥

मुनिराज संजयन्तने घोर उपसर्ग सहकर जब मोक्ष प्राप्त कर ली उस समय अपने २ बाहनों पर चढ़कर शीघ्र ही समस्त देव उनके निर्वाण कल्याणकी पूजाकेलिये आ गये । मुनिराज संजयन्त-के निर्वाण कल्याणकी खुशीमें चारो निकायोंके देव आनन्द नृत्य करने लगे । मुनिराज संजयन्तके गुणोंका गान करने लगे । मुनिराज संजयन्तके निर्वाण उत्सवमें उनके छोटे भाई मुनिराज जयन्तका जीव नाग कुमारोंका इन्द्र भी आया था वह वार २ अपने बड़े भाईकी मूर्तिका स्मरण करने लगा । अवधि ज्ञानके बलसे उसे इस बातका भी पता लग गया कि विद्युद्दंष्ट्र आदि दुष्ट विद्याधरोंने मुनिराज संजयन्तको विशेष प्रास दिया है जिससे उसका हृदय मारे क्रोधके भवत गया । शीघ्र ही उसने नाग पाशसे समस्त विद्याधरोंको बांध लिया । प्रबल क्रोधसे उसके दोनों नेत्र लाल हो गये एवं महा भयप्रद वाण स्वरूप वचनोंसे समस्त विद्याधरोंको ताड़ता हुआ वह इस प्रकार कहने लगा—

रे दुष्ट विद्याधरो ! मेरे बड़े भाई संजयन्त मुनि अहङ्कार रहित निर्मल शांत और दृढ ध्यानी थे तुम सबोंने मिलकर उन्हें क्यों मारा ! तुम लोग शीघ्र कहो तुम्हारा उन्होंने क्या अपराध किया

हतः ॥ ८४ ॥ कोऽपराधः कृतस्तेन युष्माकं वदत स्वरा । यूयं कृतापराधा मे रे रे विद्याधराधमाः ॥ ८५ ॥ इदानीं मारयिष्यामि मत्सहोदर-
घातकान् । सर्वान् वियदुगतोन् नागपाशवज्रप्रहारतः ॥ ८६ ॥ धर्वाक्षहनुनरं द्वाक्षाश्चऽबुभिहेति कारवाः । प्रभवो मत्समा ये तु ते
सहते कथं द्विषः ॥ ८७ ॥ वासयन् विप्रभृन्नाथस्तान् कुर्मकर्मकरान् शठान् । ततर्केति चिरं चित्ते क्षिपामि क्षारतोयधौ ॥ ८८ ॥ एतानधो
विभागे वा पर्वतस्य क्षिपामि स्थित् । अग्निपुतीमाशु वज्रेण दिक्षु दद्यां बलिं बलात् ॥ ८९ ॥ अन्यथा हि यथा भ्राता हतः शस्त्रैर्दुःरात्मभिः
तथाहं शस्त्रजालेन कण्ठं कण्ठं करोम्यमीन् ॥ ९० ॥ विह्वलाङ्गास्तदा खेटा अब्रुवन् लेलिहानपं । स्वरूपोभूत्वा कृपानाथ ! शृणुतावृत्त

था । दुष्टो ! तुम लोगोंने मेरे भाईको मारकर मेरा घोर अपराध किया है । तुम समस्त विद्याधर
मेरे पूज्य भाईके मारनेवाले दुष्ट हो । तुम्हें नागपाशके वज्र प्रहारसे शीघ्र ही मारुंगा इसमें कोई
संशय नहीं ॥ ८०—८६ ॥ एक काकको यदि कोई पुरुष मार देता है तो उस मारनेवालेको अन्य
काक पूर्ण कोलाहल मचाकर अपनी चोंचोंके घातोंसे जब मार डालते हैं तब जो पुरुष मेरे समान
समर्थ हैं वे कैसे वैरियोंको सह सकते हैं ! वे तो कभी वैरियोंसे बदला चुकाये बिना मान नहीं
सकते । वस इस प्रकार उन दुष्ट कार्यके करनेवाले समस्त विद्याधरोंको नाग कुमारोंके इन्द्रने
बेहद डाटा एवं उन दुष्टोंके विषयमें वह इसप्रकार विचार करने लगा—

इन दुष्टोंने अकारण मुनिराज संजयन्तको दुखाकर तीव्र अपराध किया है ऐसे दुष्टोंको
क्षमा कर देना महा पाप है इसलिये उस अपराधके बदलेमें इन्हे क्या मैं किसी खारे समुद्रमें जा-
कर फेंक दूँ । वा वज्र शस्त्रसे चारो दिशाओंमें इनकी बलि प्रदान कर दूँ । अथवा इन दुष्टोंने
जिसप्रकार मेरे भाईको शस्त्रोंसे मारा है मैं भी उसी प्रकार शस्त्रोंसे इनके खण्ड खण्ड कर दूँ ।
नागेन्द्र कुमारका यह प्रबल क्रोध देखकर समस्त अपराधी विद्याधर थर थर कांपने लगे एवं चाटु-
मय वचनोंमें इसप्रकार उन्होंने नागेन्द्र कुमारसे कहा—

मादितः ॥ ६१ ॥ अयं दोषोऽस्ति नास्माकं सुदूरां धर्मशालिनां । प्रसारिता वयं मुग्धा विद्युद्द्वेण पाविना ॥ ६२ ॥ पुरस्तात्तव की
येतो वयं क्षुद्राः सचरिणः । गण्डशैला यथा मेरोः पर्वतस्योद्वेगप्रभो ! ६३ ॥ देवधिष्यं विशांर्वं वा विकल्प्यथ वाटिका । कदली
होना न भोत्येष न्यायहीना नरस्तथा ॥ ६४ ॥ अतो देव विचार्योशु न्यायमार्गेण धर्मवित् । सदोषो हन्यतां हन्त न्यायवन्तो हि पण्डिताः

कृपानाथ ! आप शांत हुजिये और आदिसे अन्त तक सारा यथार्थ वृत्तांत सुन लीजिये ॥ ६१-६४ ॥ हम लोग धर्म मार्गके अनुयायी और कोमल परिणामी हैं । यह जो बलवान् अनर्थ बन पड़ा है इसमें हमारा कोई अपराध नहीं है । हम लोगोमेंसे एक विद्युद्बंष्ट्र नामका महा पापी विद्याधर है उसीकी यह करतूत है—उसीके बचनों पर विश्वास कर हमसे यह निंदित कार्य बन गया है । स्वामिन् ! जिस प्रकार विशाल मेरु पर्वतके सामने गण्डशैल—स्थूल पर्वतोंके धारक पर्वत कोई चीज नहीं । तथा सूर्य और चन्द्रमाके सामने नक्षत्र कोई चीज नहीं उसी प्रकार हम क्षुद्र विद्याधर आपके सामने क्या चीज हैं ? प्रभो ! जिस प्रकार शिखरके बिना मन्दिर शोभा नहीं पाता कदली (केला) के बृक्षोंसे रहित बगीचा जिस प्रकार कदली बृक्षोंके बिना शोभा नहीं धारण करता उसी प्रकार जो मनुष्य न्यायहीन है—न्याय पूर्वक कार्य नहीं करता वह भी शोभित नहीं होता ॥ ६२—६४ ॥ अतएव हे देव ! आप धर्म मार्गके अनुयायी हैं आपको चाहिये कि आप न्याय—पूर्वक विचार कर जो दोषी हो उसे ही मारें और दण्ड दें क्योंकि आप पूर्ण विज्ञ हैं और विज्ञ पुरुष जितना भी कार्य करते हैं न्याय पूर्वक कार्य ही करते हैं । जो मनुष्य मदोन्मत्त हो अपनी इच्छानुसार न्यायमार्गके प्रतिकूल कार्य करते हैं संसारमें उनके विशिष्ट बलकी प्रशंसा नहीं होती ठीक ही है कर्मोंकी निर्जरा जो भी होती है वह निरंकुश होती है अर्थात् उत्तम बल प्राप्त कर जो न्याय पूर्वक कार्य करते हैं उन्हींको बलवान् माना जाता है किन्तु बलवान् होकर भी अन्याय पूर्वक

॥ ६५ ॥ यथाकृच्छ्रं ततः दुर्धाः प्रोगमत्तत्त्वदमार्गतः । नैवारय सद्गुरुं चात्र निर्जग हि निरंकुशः ॥ ६६ ॥ तुष्टीभूयामितो नागराजस्तेषां
 वचोरमैः । नुमोच स्तुत्ररान्नायान् विद्युद्वट्टमबन्धयत् ॥ ६७ ॥ पुत्रस्त्राभ तृदायादसंयुतं तं पयोधरे । संक्षिप्तगुह्यतोऽर्हीद्रस्तावदन्य
 कथांशः ॥ ६८ ॥ आदित्याभः सुसौख्यः प्राहेति सार्विकं धनः । अनेनाकां यो दोषः क्षम्यतामाग्रहान्मम ॥ ६९ ॥ त्वांद्दृशां महतां
 नागदृक्षुर्द्वे वापा न शस्यत । गामायु इन्त न क्रूरः कृतेष्यं चापि केसरी ॥ १०० ॥ पुरा पुरुजिनेन्द्रस्य काले विद्याधरेशिनां । विद्या
 कार्य करनेवालोंको बलवान नहीं माना जाता ॥ ६५—६६ ॥ विद्याधरोंके इसप्रकार शांतिमय दीन
 वचन सुन नागेन्द्र कुमार क्रोधरहित संतुष्ट हो गया । जितने भी निरपराध आर्य विद्याधर थे ना-
 गेन्द्र कुमारने उन्हें क्षमा कर छोड़ दिया । अपराधी विद्युद्वट्टको कसकर बांध लिया एवं पुत्र स्त्री
 भाई और कुटुम्बियोंके साथ उसे समुद्रमें डालनेके लिये उद्यत हो गया । नागेन्द्रकुमार जिस
 समय यह कार्य करनेकी चप्टा कर रहा था उस समय आदित्याभ नामक नागकुमारको दया
 आगई और वह शांत वचनोंमें इसप्रकार कहने लगा—

यद्यपि इस विद्युद्वट्ट विद्याधरने आपको घोर अपराध किया है तथापि मेरे आग्रहसे तुम्हें इसे
 क्षमा कर देना चाहिये । प्रिय नागेन्द्र ! आप एक महान पुरुष हो आप सरीखे महान पुरुषोंको चुद्र
 पुरुषों पर कोप करना शोभा नहीं पाता यह तुम अच्छीतरह जानते हो कि चुद्र शृगाल क्रूर के-
 सरीसे कितनी भी ईर्ष्या क्यों न करे तो भी वह क्रूर सिंह उसे कभी नहीं मारता । भाई ! भगवान्
 षष्ठभ देवके समयमें तुम्हारे वंशजोंने विद्याधर राजाओंको अनेक प्रकारकी विद्यायें दीं थीं उसी
 समय विद्याधर वंशका संसारमें उदय हुआ था । प्रिय नागेन्द्र ! यह संसार प्रसिद्ध बात है कि जिस
 मनुष्यने विष वृक्षका भी अच्छी तरह दूधसे सींचकर बहाया है वह चाहें वजू मूढ़ भी हो तो भी
 उसे स्वयं नहीं छेद सकता तुम तो एक महान और विद्वान पुरुष हो तुम अपने वंशजों द्वारा नि-

तथा भवत्प्रत्येकेशोऽस्य निर्ममे मुखा ॥१०१॥ पूर्व दुग्धैः प्रसिष्यैव संखर्ष्य विषभूतह । उपक्रमेत को मूढः छेत्तुं भी लेलिहानप ! ॥
॥ १०२ ॥ इत्युक्तस्तेन नागेन्द्रः प्रत्युवाच रविप्रभ । पापीषसोऽस्य दुर्धृक् त्वया ह्यस्तं न विद्यते ॥ १०३ ॥ मदप्रजं तपोभारभूषितांगं
दयानिधिं । अयं विनापराधेन संजयतममीमरत् १०४ ॥ अतोऽयं अम हंतव्यो न निषेध्यं त्वयामर । मुमुक्षोऽन्नातृहंतारं यः स स्यात्पाप
भाजनं ॥ १०५ ॥ आदित्याभस्तदा प्राह वैयर्थ्यं याचितो मया याश्चाभंगे गतो माना भानमङ्गे तृणं पुमान् ॥ १०६ ॥ मानहीना नरा
लोके विदनीयाः पदे पदे । किञ्चित्कर्तुं मशक्तत्वादलीकपुरुषोपमाः ॥ १०७ ॥ विमानमानधं पद्मा विजहात्येव दूरतः । शांतार्विधं प्रदीपं

मापित वंशका कैसे संहार कर सकोगे ? सूर्यके समान देदीप्यमान आदित्याभ नामक नाग कुमार
की यह बात सुनकर मुनिराज जयंतके जीव नागेन्द्रने कहा—

भाई ! तुम इस अतिशय पापी विद्युद्वृष्टका क्रूर कर्म जानते नहीं हो इसलिये इसे दयाका पात्र
समझ रहे हो मेरे बड़े भाई संजयन्त परम तपस्वी थे और दयाके सागर निरपराध थे इस दुष्टने
बिना अपराध उन्हें मार डाला है इसलिये अपना भाईका बदला चुकानेके लिये मुझे इसे मार डा-
लना ही ठीक होगा तुम्हें इस बातमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं डालना चाहिये क्योंकि यह नीति
है कि जो अपने भाईके मारने वालेको क्षमा कर देता है—उससे बदला नहीं लेता वह संसारमें
पापी माना जाता है ॥ ६७—१०५ ॥ जयंतके जीव नागेन्द्रकी यह बात सुन आदित्याभ नामका
नागकुमार अपने मनमें विचारने लगा—

मैंने जो विद्युद्वृष्ट विद्याधरकी रक्षाके लिये याचना की वह ठीक नहीं हुआ क्योंकि मुनिराज
जयंतके जीव नागेन्द्रने वह मेरी याचना स्वीकार नहीं की । यह नियम है जहांपर याचनाका भंग है
वहां पर सन्मानका भी भङ्ग है और जिस मनुष्यका सन्मान नहीं वह मनुष्य तृणके बराबर है ।
संसारमें यह बात स्पष्टरूपसे दीख पड़ती है कि जिन पुरुषोंका सन्मान नहीं होता वे पद २ पर

या प्रकाशोऽतितरां गुरुः ॥ १०८ ॥ अतिरेको हि दर्पस्य गतमानं नरं त्यजेत् । प्रतिमेवाधियं नागेन्द्र घोशं मङ्गलदेवता ॥ १०९ ॥ वृणुते
मानिनं मा च संभ्रमेण गुरुं गुरुं । विनेयः कुञ्जलाभम् स्वामीमिन्द्रितं गुरुं ॥ ११० ॥ पुरस्तात्तव नागेन्द्र ! याज्ञाभंगोऽपि मे सुखः ।
अधमे लब्धकामा नु वरं शिष्टे विपर्ययः ॥ १११ ॥ इति शास्त्रद्विपतिमाशु सुखकरकांतिनामकः । अम्बरगफणिपयोः परममयिष्यति

निन्दा जन्य दुःख भोगते रहते हैं । वे संसारमें कुछ महत्त्व पूर्ण कार्य भी नहीं कर सकते इसलिये वे मिट्टी आदिके बने पुरुषके समान गिने जाते हैं । जिस प्रकार लो रहित दीपकको प्रकाश छोड़ देता है उसी प्रकार जो पुरुष सन्मान रहित हैं लक्ष्मी उन्हें छोड़ देती है मानहीन पुरुषोंपर उसका प्रेम नहीं होता ॥ १०६—१०८ ॥ जिस प्रकार निर्वृद्धि पुरुषोंको प्रतिभा-उत्तम बुद्धि छोड़ देती है और भाग्यहीन पुरुषोंको मङ्गल देवता—लक्ष्मी आदि छोड़कर चली जाती हैं उसी प्रकार मानहीन पुरुषोंको अभिमान भी छोड़ देता है । क्रोधी भी सन्माननीय गुरुको जिस प्रकार शिष्य मानता है । सन्माननीय पतिको जिस प्रकार स्त्री मानती है उसी प्रकार सम्माननीय महत्त्वशाली पुरुषको लक्ष्मी करती है । चण एक इस प्रकार विचार कर आदित्याभ नामक कुमारने अपने स्वामी नागेन्द्रसे कहा—

प्रिय नागेन्द्र ! यद्यपि तुम्हारे सामने मेरी याचनाका भङ्ग हुआ है तथापि वह मेरे लिये सुखदायी है क्योंकि जो अधन पुरुष हैं उनमें यदि याचना पूरी भी हो जाय तब भी ठीक नहीं किन्तु जो पुरुष महान हैं उनमें वह निष्फल भी चली जाय तब भी ठीक है आप एक उत्तम पुरुष हो मेरी याचना आपने स्वीकार नहीं की तब भी वह मेरे लिये कल्याणकारो है ॥ १०८-११० ॥ इसप्रकार जिस आदित्याभ नामके नागकुमारने जयन्तके जीव नागेन्द्रके वचनोंकी पुष्टिकी वही आदित्याभ नाग कुमार अपने उत्तम उपदेशसे विद्याधर विद्युदंष्ट्र और धरशेन्द्रके कल्याणोके करनेवाला होगा ॥ १११ ॥

विधाय शत्करं ॥ ११२ ॥ महातपा यः परमेण तेजसा । जगाम सिद्धिं सुकृतोदयान्मुनिः । सुरासुरैर्द्रावितपरकृतः सदा । स पातु
मथ्यान् जिनगणसेविनः ॥ ११३ ॥

इत्यार्षे श्रीबृहद्विमलनाथपुराणे भ० रत्नभूषणात्मनायालङ्कारविद्वज्जनचातुरीसमुद्रचन्द्रावतारोभयभाषाचक्रवर्तिहर्ष

वीरकातनूजब्रह्मकृष्णदासविरचिते ब्रह्ममंगलदाससाहाय्यसाक्षे वैजयंतसंजयन्तजयंतदीक्षाग्रहणसंजयंतो

पसर्गशिष्यप्रसिद्धयंतधरणत्वप्राप्तितद्गमादित्याभदेवसमागमो नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

जो मुनिराज संजयन्त दिव्य तेजके धारक परम तपस्वी थे । तीव्र पुण्यके उदयसे जो मोक्ष
लक्ष्मीके पात्र देने जिनके चरणोंको बड़े २ इन्द्र पूजते हैं और बड़े २ मुनि जिनकी आराधना करते
हैं वे मुनिराज भव्य जीवोंकी रक्षा करें ॥ ११ ॥

इसप्रकार भट्टारक रत्नभूषणकी आम्नायके अलंकार स्वरूप विद्वानोंके विद्वत्तारूपी समुद्रके लिये चंद्रमा समान उभय

भाषाके चक्रवर्ती हर्षवारिकाके पुत्र भाई ब्रह्ममंगल दासकी सहायता पूर्वक ब्रह्म कृष्णदास विरचित बृहत्

विमलनाथ पुराणमें वैजयंत संजयंत और जयंतका दीक्षा ग्रहण संजयंतको घोर उपसर्ग

और मोक्ष प्राप्ति जयंतका धरणेंद्र होना और आदित्याभ नाग कुमारका

समागम वर्णन करनेवाला छठा सर्ग समाप्त हुआ ॥ ६ ॥

सातवां सर्ग ।

ॐ नमः शिवाय

श्रीमद्विजयं जगन्नाथं मातं पापच्छेदं शब्दं । यं स्तुतिस्म देवालिस्तं चापे परमेश्वरं ॥ १ ॥ अथादित्यप्रभोऽहीशंप्रोवाचेति

जो भगवान् जिनेन्द्र जगतके नाथ हैं । लक्ष्मी प्रदान करनेवाले हैं । पापोंके नाशक और क-
ल्याणके देनेवाले हैं और जिनकी स्तुति बड़े २ इन्द्र करते हैं उन भगवान् जिनेन्द्रको मैं नमस्कार
करता हूँ ॥ १ ॥ महान् ऋद्धिके धारक आदित्याभ नागकुमारने अपने मित्र नागेंद्रसे कहा—

महर्षिकं । शृणु नागाधिराज ! त्वं मद्रचो रोतिसंयुतं ॥ २ ॥ किं करोषि वृथा वैरं शल्यवद्भवदुःखदं । तस्मान्नश्यन्ति जीवाश्च स्यंति
किं नो परस्परं ॥ ३ ॥ विद्युदंष्ट्रो हि ते भ्राता न जातः संसृतौ भ्रमन् । को बन्धुः को न वा बन्धुः को हितव्याहितो हि कः ॥ ४ ॥ क-
स्तातः को न वा तातः सवित्रो का मता न का । कः स्वीयः को न वा स्वीयः जातौ जातौ वदहिराट् ॥ ५ ॥ सर्वे परस्परं जीवाः सगोनाः
सन्ति वस्तुतः । शत्रवोऽपि तथा सर्वे मातृपितृसहोदराः ॥ ६ ॥ पूर्वजन्मनि ते भ्राता संजयंतो महामुनिः । अदण्डयन्महाक्रोधाद्विद्यु-
दंष्ट्रं कृतागसं ॥ ७ ॥ ततो वैरादयं खेटो भूत्वा जातिस्मरोऽधुना । महादुःखं चकारोच्चैः संजयंतस्य सन्मुनेः ॥ ८ ॥ भ्रातरं तव

प्रिय नागेंद्र ! तुम मेरे न्यायपूर्वक वचनोंको सुनो तुम जो विद्याधर विद्युदंष्ट्रके साथ वैर बांध
रहे हो वह वृथा है क्योंकि वैर भव भवमें शल्यके समान दुःख देनेवाला है । इसी वैरके कारण
जीव नष्ट होते रहते हैं और आपसमें एक दूसरेको छेदनेके लिये उद्यत हो जाते हैं । संसारमें भ्रमण
करता हुआ यह विद्युदंष्ट्र क्या तुम्हारा भाई किसी भवमें नहीं हुआ ? अनेक बार हो चुका है, क्योंकि
संसारमें भ्रमण करते हुए इस जीवका जन्म जन्ममें कौन तो बंधु नहीं हुआ और कौन अबंधु, वैरी-
नहीं हुआ । कौन हितकारी नहीं हुआ और कौन अहितकारी नहीं हुआ । कौन तात नहीं हुआ
और कौन वेतात नहीं हुआ । कौन माता नहीं हुई और कौन अमाता-स्त्री आदि नहीं हुई । एवं कौन
अपना नहीं हुआ और कौन पराया नहीं हुआ ? भाई नागेंद्र ! संसारमें भ्रमण करते हुए ये सब
जीव नियमसे अपने सगे हो चुके हैं । तथा जो इस समय शत्रु दीख पड़ते हैं वे भी माता पिता
और भाई हो चुके हैं ॥ २—६ ॥ पूर्व जन्ममें तुम्हारे भाई संजयन्त मुनिराजने अपराधी विद्युदंष्ट्र-
को क्रुद्ध हो दराड़ दिया था उसी वैरसे मरकर यह विद्युदंष्ट्र विद्याधर हुआ । मुनिराज संजयन्तको
देखकर इसे पूर्व जन्मका स्मरण हो गया उसीसे इसने मुनिराज संजयन्तको विशेष कष्ट पहुंचाया
॥ ७—८ ॥ यह पापी विद्युदंष्ट्र चार जन्मोंसे बार बार तुम्हारे भाईका वैरी चला आया है उसी

पापोऽयं प्राक्तजन्मचतुर्थे । महावीरानुबंधेन लोकांतरमजीगमत् ॥ ६ ॥ अस्मिन्भवे शुभं मन्ये विद्युद्दंष्ट्रं खरं यतः । सुप्तोद्धेतव्यं तं विघ्नं मुक्तिं यातो महामुनिः ॥ १० ॥ केनचित्साहस्रापायोऽकारि तेन गुणोऽजनि । तं गुणं धीधनः सक्तो मन्यते नापकारकं ॥ ११ ॥ परिभूतिमितो धोमान् विवृतिं नैव गच्छति । अन्दनो वा भिदां प्राप्तरवन्दते पुरतः स्थितान् ॥ १२ ॥ खलो विव्याध यं साधुं जिहोभवति सोऽपि न । दह्यमानोऽशुभः साधु प्रकाशयति सवगुणं ॥ १३ ॥ कोविदानां मतिर्जातु प्राणांते विवकार न । इक्षुर्निष्पीज्यमानोऽपि

महा वैरके सम्बन्धसे इसने तुम्हारे भाईको मारा है ॥ ६ ॥ मैं तो इस भवमें विद्याधर विद्युद्दंष्ट्र-को मुनिराज सञ्जयन्तका परममित्र मानता हूँ क्योंकि इसके द्वारा किये गये उपसर्गको सहकर मुनिराज सञ्जयन्तने मोक्ष स्थान प्राप्त कर लिया ॥ १० ॥ जिस किसी भी पापीने किसीको कष्ट पहुँचाया है वह कष्ट उसके लिये गुणस्वरूप ही हुआ है इसलिये विद्वान लोग उस कष्टको गुण ही मानते हैं दुःख नहीं मानते ॥ ११ ॥ जो पुरुष विद्वान हैं संसारकी वास्तविक स्थितिके जानकार हैं उन्हें कितना भी कष्ट क्यों न पहुँचाया जाय वे उस कष्टसे कष्टायमान नहीं होते—विकृत न होकर उनका स्वभाव ज्योंका त्यों बना रहता है । जिस तरह कि चंदनको कितना भी काटा छेदा जाय तब भी वह अपना सुगन्धित स्वभाव नहीं छोड़ता—जैसा उसे छेदा जाता है वैसा ही वह पासमें खड़े रहनेवालोंके लिये महकता चला जाता है । सज्जनोंका स्वभावभी चन्दन सरीखा होता है ॥ १२ ॥ जिस प्रकार अगरको कितना भी जलाया जाय वह सुगन्धि ही छोड़ता जाता है उसी प्रकार दुष्ट पुरुष मुनियोंको भले ही मार डाले तथापि वे मारनेवाले पर क्रोध नहीं करते वे अपने परिणामोंमें समता भाव ही रखते हैं ॥ १३ ॥ जिस प्रकार ईखके पेड़को जितना २ पेरा जाता है वह मिठास ही छोड़ता चला जाता है—उसमें कोई विकार नहीं उत्पन्न होता उसी प्रकार जो पुरुष विद्वान हैं दुष्टोंसे दुःखित होनेपर भी उनकी बुद्धिमें किसी प्रकारका विकार नहीं होता वे

माधुर्य क्षरति ध्रुवं ॥ १४ ॥ अहो आस्तामतो नागेन्द्र वैरेण गुणवाग्धि ! । पूर्ववैरोत्थदुःखस्य वद केन प्रतिक्रिया ॥ १५ ॥ इत्याकर्ण्यो
रमाधीशः प्राहादित्ययमं सुरं । कथयतां सा कथा देव । वैरसंबन्धवादिनो ॥ १६ ॥ तदोवाचेति सूर्यामः शृणु त्वं फणिशेखर ! ।
अमुष्मिन् वैरमुत्सृज्य तत्पर्यंच वदाम्यहं ॥ १७ ॥ अथ जंबूमति द्वीपे विशाले लक्ष्ययोजनैः । भारतं वर्षमाभाति कार्मुकाकृतिमादधत्
॥ १८ ॥ रारजोति पुरं तत्र नानाशोभासमन्वितं । पद्ममालयसुपधीशैरिष्टं सिंहपुरं पुरं ॥ १९ ॥ सतभूमिगृहा यत्र सविलासाश्च
यायितः । रक्तोष्णः पीथरस्तन्यः सदासा भान्ति भूरिशः ॥ २० ॥ यत्र दंडोऽस्ति चेत्येषु भ्रान्तिरहं प्रदिक्षणे । काठिन्यं हृदये स्तोत्राणां

शांत ही बने रहते हैं ॥ १४ ॥ इसलिये भाई नागेन्द्र ! तुम्हारे लिये मेरा यही हितकारी कहना है
कि संसारमें तुम एक गुणशाली व्यक्ति कहे जाते हो । विद्याधर विद्युदंष्ट्र के साथ तुम्हें वैर न
बांधना चाहिये । भाई ! तुम्हीं सोच लो पूर्व भवसे जो वैर बन्ध हो चुका है उसका क्या प्रती-
कार हो सकता है ? वह तो बंध गया सो बंध ही गया ॥ १५ ॥ नागकुमार आदित्याभकी यह बात
सुन धरणीन्द्रका क्रोध कुछ शांत पड़ गया और विद्युदंष्ट्र का मुनिराज सञ्जयन्तके साथ कैसे वैर बंधा
यह कथा जाननेको उसके मनमें लालसा होगई इसलिये वह आदित्याभसे इसप्रकार कहने लगा—

मुनिराज सञ्जयन्त और विद्युदंष्ट्र के आपसो वैरसे संबन्ध रखनेवाली कथा कृपाकर कहिये !
उत्तरमें देव आदित्याभने कहा प्रिय नागराज ! मैं सारी कथा विस्तारपूर्वक कहता हूँ । विद्याधर
विद्युदंष्ट्र के साथ वैर छोड़कर तुम आनन्द पूर्वक सुनो—

एक लाख योजनके चौड़े इसी जम्बू द्वीपमें एक भरत नामका क्षेत्र है जो कि धनुषकी आकृ-
तिका धारण करने वाला महा शोभायमान जान पड़ता है । प्रसिद्ध भरतक्षेत्रके अन्दर एक सिंह
पुर नामका नगर है जोकि अनेक प्रकारकी शोभाओंसे व्याप्त अत्यन्त शोभायमान है । लक्ष्मीके
स्थान बड़े २ देवेंद्रोंको प्यारा है और उत्तम है ॥ १६-१६ ॥ सिंहपुर नगरके अन्दर उस समय सतखंडे

ताडनं कर्मपंकजे ॥ २१ ॥ नास्तिक्यं सौगतागारे विरोधोवरपल्लवे । जघने चापि दन्तैर्वा करजैर्विद्यते कृतः ॥ २२ ॥ तत्र राजा बभू-
 वारिभामालोचनतोयकृत् । सिंहसेनो महासैन्यः सिंहभूरिपराक्रमः ॥ २३ ॥ चित्रभाद्रसुधाभानुचन्द्रभानुप्रभाधिकः । साक्षिथ-
 मोरवे नैव कातरः कदवालयः ॥ २४ ॥ युगं । अत्रोक्तदरं धर्मोपूजजगद्गुरुं । अदीदृहद्विवर्षां देशानर्षिभ्योऽदोदिशद्वसु ॥ २५ ॥

मकान शोभायमान थे एवं लाल २ ओठों की धारक स्थूल स्तनों से व्याप्त सदा हंसनेवाली और विलासरस-
 परिपूर्ण स्त्रियां थीं । सिंहपुर नगरमें सारी प्रजा सदाचारिणी थी इसलिये राजा की ओरसे किसी
 प्रकारके दण्डका विधान न था । यदि दण्ड था तो चैत्यालयोंके शिखर भागोंपर था जिसपर कि-
 ध्वजा फहराती थीं । वहांपर किसी बातमें भ्रांति न थी—सब लोगोंको ठीकरूपसे पदार्थोंका
 निश्चय था । यदि भ्रांति थी तो भगवानकी प्रदक्षिणाओंमें थी—लोग घूम २ कर भगवान जिनेन्द्रकी
 प्रदक्षिणा करते थे । कठिनता वहांपर स्त्रियोंके स्तनोंमें ही थी अन्य कहीं किसी मनुष्यके हृदयमें
 कठिनता न थी—सब लोग सरलपरिणामी थे । कर्मपंकजके सिवाय वहांपर किसीको मारने पीटने-
 की प्रथा न थी । उस सिंह पुरमें नास्तिकता बौद्धमन्दिरोंकी थी—कोई भी बौद्धधर्मका अनुयायी
 न होनेके कारण किसी भी बुद्ध मन्दिरकी वहांपर सत्ता न थी परन्तु वहांपर लोग नास्तिक न थे—
 पर लोक आदि पदार्थोंपर पूर्ण विश्वास रखनेवाले थे । वहांपर दांत वा नखोंका जघन और अधर
 पल्लवोंके ही साथ विरोध था आपसमें किसीके साथ कोई विरोध नहीं रखता था ॥ २०—२२ ॥
 सिंहपुरका रक्षण करने वाला राजा सिंहसेन था जो कि शत्रुओंकी स्त्रियोंके नेत्रोंसे आंसू बहाने वाला
 था । विशाल सेनाका स्वामी था और सिंहके समान प्रबल पराक्रमी था । वह राजा सिंहसेन चित्र
 भानु सुधा भानु और चन्द्रमाओंसे भी अधिक प्रभाका धारक था । संग्राममें शत्रुओंको पीठ न
 दिखानेके कारण वह बलवान खड्गधारी था । धर्मका आचरण करता था । तीन जगतके गुरुकी पूजा

जज्ञे तस्यै महादेवी रामदत्तेति विश्रुता । भोगप्रिया समांगतवान्नानाभोगासन्नोत्सुकाः ॥ २६ ॥ सती प्रियाऽनुकूलत्वात्कामिनीव मनो
 भुवः । कपरंभोन्नतस्थूलवृत्तनैतंयमंधरा ॥ २७ ॥ युग्मं । मंत्री तस्य गुणागारो वेदविद्वज्ज्ञाणोत्तमः । श्रीभूतीत्यभिधो मान्यो लोकानां
 सत्यवाच्या ॥ २८ ॥ अन्यदा स चकारैमां प्रतिज्ञां कैतवादिष । अधश्च वेदलीकं तदकरिष्यं गलच्छिदां ॥ २९ ॥ लोकेऽथाभूत्तदा-
 स्यातः पत्तने राजसंसदि । कंठासिपुत्रको भूत्वा स्वल्पभाषी च तिष्ठति ॥ ३० ॥ नामधेयं तदा क्लृप्तं द्वितीयं तस्य हर्षतः । सिंहसेनेन सेनेन

करता था शत्रुओंके देशोंको राखमें मिलाता था और याचकोंको विशिष्ट धन प्रदान करता था
 ॥ २३—२५ ॥ राजा सिंहसेनकी स्त्रीका नाम रामदत्ता था जो कि अपने गुणोंसे संसारमें प्रसिद्ध
 थी । भोगोंको प्यारा मानती थी और भोग भोगनेके जो भी आसन है उनमें सदा लालायित रहती
 थी । वह रानी रामदत्ता अपने पतिके अनुकूल चेष्टा करनेवाली थी इसलिये सती थी । सुन्दरतामें
 कामदेवकी स्त्री रति थी । रूपसे रम्भाकी उपमा धारण करती थी एवं उन्नत स्थूल और गोलाकार
 नितम्बोंसे शोभायमान होनेके कारण मन्द मंदरूपसे गमन करने वाली थी ॥ २६—२७ ॥ राजा
 सिंहसेनके मन्त्रीका नाम श्रीभूति था जो कि अनेक गुणोंका भण्डार था । वेदोंका जानकार था ।
 जातिका ब्राह्मण था और सत्य बोलनेके कारण समस्त लोकका आदरणीय था ॥ २८ ॥ एक दिन
 श्रीभूतिने छलसे यह प्रतिज्ञा की कि यदि मैं झूठ बोलूंगा तो अपना गला छेद डालूंगा ॥ २८—
 २९ ॥ अपने सत्यवक्तापनेके कारण वह श्रीभूति समस्तलोक नगर और राजसभामें प्रख्यात था
 एवं वह अपनी की हुई प्रतिज्ञाकी दृढ़ता बतलाकर बहुत थोड़ा बोलने वाला होकर रहने लगा
 ॥ ३० ॥ श्रीभूतिकी यह कड़ी प्रतिज्ञा सुन राजा सिंहसेन बड़ा प्रसन्न हुआ और लक्ष्मीके भण्डार
 राजा सिंहसेनने हर्ष पूर्वक मन्त्री श्रीभूतिका नाम सत्यघोष रखदिया ॥ ३१ ॥

सत्यघोष इति ध्रुवं ॥ ३१ ॥ अथास्ते पद्मखंडाख्यं पुरुषसुपुरोषम् । पत्तनं नयनानंदि सदानन्दभरैभृतं ॥ ३२ ॥ तत्रोवास महाश्रेष्ठी सुदत्ता
 ण्यशुजाधिकः । धार्मिकाणां घुरि स्थायी विनेयानां यथा गुरुः ॥ ३३ ॥ सुमित्रा भामिनी तस्य भामिनीव मनोभुवः । भ्रूमङ्गकामुक-
 दृष्टिवागाहतमुष्णान् व्यधात् ॥ ३४ ॥ भद्रमित्रस्योरासीत् सुतः शक्रसुतोपमः । अधीताखिलसद्विद्यो युवा भोगपुरन्दरः ॥ ३५ ॥
 एकदा स्वपुत्रेयाने वन्तु मभ्यसुता ययुः । तदासी भद्रमित्राख्यस्तैरमा तद्वनं गतः ॥ ३६ ॥ समयं प्राप्य ते प्रोचुर्भद्रमित्रमिति स्फुटं ।
 मित्र ! यस्तु वणिक्पुत्रो व्यथसायेन जीवति ॥ ३७ ॥ उपायेन विनागारे त्वं किं तिष्ठसि सर्वदा । साकभस्मोयिरेहो हि रत्नद्वीपं
 यियास्यसि ॥ ३८ ॥ जातेनानर्जिता मित्र ! पुत्रेणार्थक्षयकृता । किं भवेन्पुनिना भूमतपसा सकुप्येष च ॥ ३९ ॥ जहासोच्चैस्तदा

इसी पृथ्वीपर एक पद्मखण्ड नामका नगर है जो कि अपनी शोभासे इन्द्रपुरीकी समता धारण
 करता है । सदा नेत्रोंको आनन्द प्रदान करनेवाला है और सदा नाना प्रकारके आनन्दोंसे व्याप्त
 रहता है । पद्मखण्ड नगरमें एक सुदत्त नामका सेठ रहता था जो कि विपुल संपत्तिका स्वामी था ।
 अनेक गुणोंका भण्डार था । एवं जिसप्रकार शिष्योंके लिये शिक्षा देनेवाला गुरु होता है उसीप्रकार
 वह धर्मात्मा पुरुषोंका गुरु स्वरूप था ॥ ३२—३३ ॥ सेठ सुदत्तकी स्त्रीका नाम सुमित्रा था जोकि
 अपनी अद्वितीय सुन्दरतामें कामदेवकी स्त्री रतिके समान जान पड़ती थी और मृकुटीरूपी धनुष पर
 कटाक्ष रूपी बाण चढ़ाकर वह बड़े २ देवोंके चित्त व्यथित करनेवाली थी ॥ ३४ ॥ सेठ सुदत्तके सेठानी
 सुमित्रासे उत्पन्न पुत्र भद्रमित्र था जो कि सुन्दरतामें इन्द्रपुत्रके समान जान पड़ता था, समस्त
 विद्याओंका पारगामी था । युवा और पूर्णरूपसे भोग भोगने वाला था । एक दिनकी बात है कि
 नगर निवासी समस्त सेठोंके पुत्र सिंहपुरके उद्यानमें क्रीड़ा करनेके लिये गये । कुमार भद्रमित्र भी
 उनके साथ क्रीड़ा करनेके लिये वनमें गया । अवसर पाकर अन्य सेठ पुत्रोंने भद्रमित्रसे कहा—

मित्र ! अपन वणिक्पुत्र कहलाते हैं । वणिक्पुत्रोंका जीवन व्यवसायके आधीन है । व्यवसाय
 केलिये तुम कोई भी उपाय न कर निरर्थक घरमें रहते हो । हम लोग व्यवसायके लिये रत्नद्वीप

भद्रमित्रो दृष्ट्वा सुतालिकां । भद्रो मुनिः कथं तेन दरिद्रेणोपसीयते ॥ ४० ॥ तदोचुस्तेऽथ मुनिमहं कथ्यमानां कथां शृणु । श्रुता मुनिभुक्प्रोक्तान्निश्चयेत्पादिनीं सुहृत् ॥ ४१ ॥ अथास्ति स्तवकग्लुंछपन्नं सागरांतिके । हेमरूप्यायसां दुर्गैर्वैष्टितं त्रिमिरुर्मिगं । ॥ ४२ ॥ रामाणां पुण्याणां वा चातुर्याः सद्गमनां पुरः । शोभायाः सरसः केन वर्ण्यते गुरुणापि न ॥ ४३ ॥ तत्र ऐरावणो राजा राज-

जाना चाहते हैं तुम्हें भी चाहिये कि हमारे साथ तुम भी व्यापारके लिये रत्नद्वीप चलो । मित्र ! जिसप्रकार प्रवल तप तपनेवाले क्रोधी मुनिकां विपुल भी तप निरर्थक माना जाता है उसीप्रकार पुत्र भी उत्पन्न हो परन्तु वह धनका उपार्जन करने वाला न होकर उसका क्षय करने वाला हो तो उसका होना भी निरर्थक है । अन्य धनिक पुत्रोंकी यह बात सुन भद्रमित्र ताली देकर हंसने लगा और हंसते हंसते उसने यह कहा—

भाई ! तुमने जो मुनिके साथ दरिद्रकी तुलना की है वह बड़ी हास्य जनक है । उत्तम मुनिके साथ दरिद्रकी तुलना कैसी ! भद्रमित्रकी यह बात सुन सेठ पुत्रोंने कहा—प्रिय भद्रमित्र ! इसी विषयमें हमने मुनिराजके मुखसे कथा सुनी है जो कि सर्वथा निश्चय करने योग्य है हम वह कथा तुम्हें सुनाते हैं तुम ध्यान पूर्वक सुनो ।

इसी पृथ्वीपर एक स्तवकग्लुंछ नामका नगर है जो कि सोना चांदी और लोहेके बने तीन परकोटोंसे शोभायमान है इसी लिये तीन तरङ्गोंसे व्याप्त वह समुद्र सरोखा जान पड़ता है ॥ ३५—४१ ॥ वह स्तवकग्लुंछ नगर चतुरता और शोभाकी स्थान स्वरूप स्त्री और पुरुषोंसे सरसरूप था इसलिये वह ब्रह्मा और बृहस्पतिकी भी वर्णनाके अगोचर था ॥ ४२ स्तवकग्लुंछ नगरका स्वामी राजा ऐरावण था जो कि कुबेरके समान दानी था । और चन्द्रमाके समान स्वच्छ यशका धारक था । शत्रुओंके लिये शल्यस्वरूप था और समृद्ध था ॥ ४३ ॥ उस समय राजा ऐरावणके राज्यकालमें

राजवदुर्जितः । राजते रजनीशांशुयशाः शल्यं द्विषां महान् ॥ ४४ ॥ राजधान्यश्च पीलूनां वीराणामुग्रतेजसां । औत्कण्ड्यं विद्यते भूमौ
बाहुवल्यादिषुदुभृशं ॥ ४५ ॥ षट्सहस्रप्रभा रामाः संति ग्लौमुखपंकजाः । पृथुस्तनतला मध्ये क्षामास्तस्य रतिप्रभाः ॥ ४६ ॥ सुताः
पंचशतान्यस्य वीरसेनादयो बभूवुः । मृगयासक्तचेतस्का योद्धारो रणकोविदाः ॥ ४७ ॥ प्रयाणसमये यस्य रारटन्ति महानकाः ।
एकलक्षप्रभा नूनं तावन्तः पटहा हठात् ॥ ४८ ॥ बिष्टरासीन आभाति धर्मतेजाः पुरन्दरः । शेषो वा शैलराजः किं स राजा दुर्जयो

प्रचण्ड तेजके धारक अगणित वीरोंकी राज धानियां बाहुबलि आदिकी राज धानियोंके समान
पृथ्वीपर विद्यमान थीं । राजा ऐरावणके छह हजार रानियां थीं जो कि चन्द्रमाके समान मुखकमल
की धारक थीं विशाल स्तनोंसे शोभायमान कृशोदरी और रतिके समान परम सुन्दरी थीं ॥ ४४—
४५ ॥ राजा ऐरावणके वीरसेन आदि पांचसौ पुत्र थे जो कि शिकार खेलनेके बड़े शौकीन थे
योद्धा थे अत एव संग्राम सम्बन्धी अनेक कलाओंके जानकार थे ॥ ४६ ॥ जिससमय राजा ऐरा-
वणका किसी शत्रु आदिके प्रति प्रयाण होता था उससमय उसके आगे आगे एक लाख नगाड़े
बजते थे तथा जिसप्रकार एक लाख नगाड़े बजते थे उसीप्रकार एक लाख ही पटहा जातिके बाजे
बजते थे । वह ऐरावण नामका राजा जिस समय सिंहानपर बैठा था उससमय ऐसा जान पड़ता
था कि सूर्यके समान तेजका धारक यह साक्षात् इन्द्र है वा शेषनाग और मेरुपर्वत है विशेष क्या
वह राजा समस्त शत्रुओंके लिये दुर्जय था—कोई भी शत्रु उसे जीतनेके लिये समर्थ न था
॥ ४७—४८ ॥

विजयार्द्धपर्वतकी उत्तर श्रेणिमें एक अलकपुर नामका नगर विद्यमान है । इस नगरका रक्षण
करने वाला राजा महाकच्छ था और उसकी पटरानीका नाम दामिनी था । राजा महाकच्छके रानी
दामिनीसे उत्पन्न एक प्रियंगुश्री नामकी कन्या थी जो कि सुन्दर रूपकी सीमास्वरूप थी—उससे

द्विषां ॥ ४९ ॥ विजयाधौ शरधेऽप्यामयाभास्थलकं पुरं । तत्र राजा महाकच्छो भामिनी तस्य वामिनी ॥ ५० ॥ तयोः पुत्री प्रियंगुश्री
रूपसीमा यमौतरां । दृष्ट्वैकदा स तं राजा यौवनाकांतशैशवीं ॥ ५१ ॥ इति चित्ते समादृत्यै कस्मा एवा प्रदीयते । राज्ञो यो-
ग्याय रूपेण जितचेतो जतेजसे ॥ ५२ ॥ नैमित्तिकाद्वरं मत्वा स्तवकग्लुंछस्वामिनं । कन्याया भकरोदिवस्तां तदानयन एव सः ॥
॥ ५३ ॥ मायासक्तिं पृथूरस्कं ह्रस्वकर्णं विधाय सः । जगाम स्तवकग्लुंछे मुक्तास्तवकर्मजिते ॥ ५४ ॥ दुर्गा हि दूरतो दृष्ट्वा दुर्निरीक्ष्यं
ततर्कं नु । श्वेतांगः शैलराजो नु दैमशौको नु देवपूः ॥ ५५ ॥ संभावयन्निति द्वारं सदृशस्तभतोरणं । पूर्वकाण्डोऽयं योऽष्टलक्षद्वयः

बढ़कर संसारमें कोई भी रूपवती उससमय कन्या न थी जिससमय कन्या प्रियंगुश्रीको यौवनसे
मंडित देखा राजा महाकच्छके मनमें यह चिंता होने लगी—

अपने सुन्दर रूपसे कामदेवकी कांतिको फीके करनेवाले किस योग्य राजाके लिये यह
कन्या प्रदान करनी चाहिये ? बस राजा महाकच्छने शीघ्र ही नैमित्तिकको बुलाया और उससे
यह जानकर कि इस कन्याका स्वामी स्तवकग्लुंछ नगरका राजा घेरावण होगा, शीघ्र ही वह उसको
अपने नगरमें ले आनेकी चिन्ता करने लगा ॥ ५०—५२ ॥ अच्छी तरह सोच विचार कर राजा
महाकच्छने शीघ्र ही विशाल वक्षस्थल और छोटे छोटे कानोंसे शोभायमान एक माया मयी घोड़ा
बनाया एवं मुक्ताओंकी मालाओंसे शोभायमान स्तवकग्लुंछ नगरकी ओर प्रयाण कर दिया ।
स्तवकग्लुंछ नगरका किला एक विशाल किला था । राजा महाकच्छ उसे देखकर विचार करने लगा
कि क्या यह कैलाश पर्वत है वा मेरुपर्वत वा अन्य सुवर्ण मयी पर्वत अथवा कोई देवनगर है
ऐसा विचार करता २ राजा महाकच्छ किलेके दरवाजेके पास पहुँच गया जो दरवाजा हजार
स्तंभोपर लटकते हुए तोरणोंसे शोभायमान था । जिसका मुख पूर्वको ओर था एवं बीस लाख
वीर योधाओंसे सदा रक्षित रहता था ॥ ५३—५५ ॥ इसप्रकार किलेको देखकर वह विद्याधर

रक्षितं ॥ ५६ ॥ विलोक्य दुर्गमं गत्वा घने व्याघ्रद्वय वेगतः । अधिष्ठ हारिं रेमे नानाकौतुककृत्यद्वयः ॥ ५७ ॥ राजपुत्रास्तदा रन्तुं
वीरसेनादयोऽभिलाः । आफेणुस्तद्वने दृष्ट्वा पप्रच्छुस्तं सकौतुकं ॥ ५८ ॥ कोऽसि त्वं कुत आयातः कस्याश्चोऽयं निरूप्यतां । अलक
वागतः खेटोऽस्म्यहं मेऽश्वोऽतिदुर्धरः ॥ ५९ ॥ घोटकं दुर्धरं घण्टाभालारावचलीकृतं । देदि तत्पाट्यं लोक्य मूल्यं दत्त्वा ततः
परं ॥ ६० ॥ गृण्णामीत्यगदीहीरसेनाक्यस्तं च खेचरं । आरूढं तं समावेद्य हरिर्वीरमपातयत् ॥ ६१ ॥ अश्वारोहेण ते जाता नष्टपाद
कदास्तदा । महापूतकारमाकर्ण्योपकाणैरावणो नृपः ॥ ६२ ॥ घोटकं दुर्धरं भस्वा संस्थाप्योच्चैः सकंधरं । आचरोह महातेजास्तं प्रः

राजा महाकच्छ शीघ्र ही वनको लोट आया और घोड़ेपर सवार हो अनेक प्रकारके कौतूहल करने लगा । ५६ । राजा ऐरावणके वीरसेन आदि कुमार भी उसी वनमें क्रीड़ा करनेके लिये आये । घोड़े पर चढ़े विद्याधर महाकच्छको देख उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और वे इसप्रकार पूछने लगे—

भाई ! तुम कौन हो ? कहांसे आये हो और जिस घोड़ेपर तुम चढ़े हो वह किसका घोड़ा है ? उत्तरमें विद्याधर राजा महाकच्छने कहा-मैं अलकपुरसे यहां आया हूं । मैं विद्याधर हूं और यह बलवान घोड़ा मेरा है । ५७-५८ । भाई ! घंटारियोंके शब्दोंसे शोभयमान और चंचल तुम्हारा यह घोड़ा बड़ा दुर्घट जान पड़ता है । कृपाकर दीजिये हम इसकी चाल ढाल देखलें । यदि हमें जच गया तो हम मूल्य देकर इसे खरीद लेंगे । जब ऐसा कुमार वीरसेनने कहा तो विद्याधर महाकच्छने उसे घोड़ा देदिया । वरिसेन घोड़ेपर चढ़ भी लिया ज्यों ही घोड़ेने उसे अपने ऊपर चढ़ा देखा देखते २ शीघ्र नीचे पटक दिया । ५९ । ६० । और भी कुमार घोड़ेपर चढ़े परन्तु घोड़ेने एककी भी सवारी नहीं भेली, क्रम क्रम कर सबोंको नीचे पटक दिया जिससे हाथ पैरोंमें चोट आनेसे उन समस्त राजाकुमारोंमें हाहाकार मच गया । अपने पुत्रोंका इसप्रकार हाहाकार सुन राजा ऐरावण शीघ्र वहांपर आया एवं अपने तेजसे चन्द्रमाको फीका बनाने वाला महातेजस्वी वह राजा ऐरावण

स्पर्शितबन्धुमाः ॥ ६३ ॥ साष्टांगान्धसदृशं च नमस्कारं पुरा पुरोः । पुरस्तात् श्वेतशैले स चर्करीतिस्म प्रत्यह ॥ ६४ ॥ तत्पुण्यो-
 दयतस्तस्य पद्मन्यामश्वो हि कीलितः । इषोत्पाटयितुं शक्तो न ध्रुव धरापति ॥ ६५ ॥ महीजसं नृपं मत्वा महाकच्छः खगाधियः
 नत्वा कन्योदुभयां चार्तां चकार विनयान्वितः ॥ ६५ ॥ निशम्यराश्रणो राजा रराणेति खगेश्वरं । अहं नैमि हविस्ते चेदन्तय त्वं च
 धर्म्यकां ॥ ६६ ॥ इक्ष्वाकुवन्वयसंभूतनृपाणां स्वार्थमागमः । सञ्ज्ञाघटीति भो जातु लंघ्यते न कुलकमः ॥ ६७ ॥ सांप्र तं स
 उत्तम गर्दनसे शोभायमान एवं अतिशय भयङ्कर उस घोड़े पर तत्काल सवार होलिया । ६१।६२।
 वह राजा ऐरावण प्रति दिन कैलाश पर्वतके आगे उस घोड़े के साथ साष्टांग नमस्कार
 करता था । राजा ऐरावण के पुण्य के उदय से उसके पैरों से वह घोड़ा कीलित हो गया था । अतएव
 वह राजा ऐरावण को कभी भी डाल नहीं सका था । ६३—६४ । विद्याधर महाकच्छ की यह इच्छा
 थी कि मैं घोड़े के द्वारा राजा ऐरावण को अपनी राजधानी ले जाऊंगा और वहां ले जाकर अपनी
 कन्या के साथ उसका विवाह कर दूंगा परन्तु जब घोड़ा राजा ऐरावण के पैरों से कीलित हो गया
 तब उसकी कुछ भी तीन पांच न चली इसलिये राजा ऐरावण को प्रबल पराक्रमी जान विद्याधर
 महाकच्छ ने उसे नमस्कार किया एवं कन्या सम्बन्धी जो कुछ भी बात थी विनय पूर्वक सारी कह
 सुनाई ॥ ६५ ॥ विद्याधर महाकच्छ की यह बात सुन राजा ऐरावण ने कहा—

मैं तुम्हारी राजधानी जाकर उस कन्या के साथ अपना विवाह नहीं कर सकता यदि मेरे
 साथ उस कन्या के विवाह करने की तुम्हारी इच्छा है तो तुम उस कन्या को यहां ला सकते हो ।
 क्योंकि जो राजा इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न हुए हैं स्त्री के लिये वे कहीं भी नहीं जा सकते, मैं भी तुम्हारे
 यहां जाकर अपनी कुल भयार्ता का लोप नहीं करना चाहता । ६६।६७ । राजा ऐरावण के ऐसे वचन
 सुन विद्याधर महाकच्छ अपने घर लोट आया और राजा ऐरावण के कहे अनुसार वह कन्या को
 ले ही जा रहा था कि उसी समय यह घटना आकर उपस्थित हो गई ।

वक्षस्तस्य श्रुत्वा सदनमापद्यौ । नीत्वा सुतां समायाति तावदन्यकथाऽभवत् ॥ ६८ ॥ तत्रत्यो वज्रसेनाख्यः खगचक्रो निशम्य तां ।
रूपलीमानमायात आहर्तुं पृष्ठतो बली ॥ ६९ ॥ ऐरावणपुराभ्यर्णे रणध्वजं निशम्य सः । ऐरावणोऽथ तं तिष्ठति परिणीय सुखं
स्थितः ॥ ७० ॥ विदीक्षो लज्जितो वज्रसेनाख्यस्तप आकरोत् । जाते वर्षसहस्रे स स्तवकग्लुंछमाययौ ॥ ७१ ॥ एकदा तं मुनिं दृष्ट्वा

विद्याधर नगर अलकपुरमें ही विद्याधरोंका चक्रवर्ती एक वज्रसेन नामका भी राजा रहता था कन्या प्रियंगुश्रीको परम रूपवती देख वह उसपर आसक्त होगया एवं राजा महाकच्छ जैसे ही उसे राजा ऐरावणके साथ विवाह करनेके लिये ले जा रहा था वैसे ही वह कन्या प्रियंगुश्रीको हरण करनेके लिये राजा महा कच्छके पीछे २ चक्र दिया ॥ ६८—६९ ॥ राजा ऐरावणकी राजधानीके पास पहुँचते २ विद्याधर वज्रसेन और महाकच्छकी मुठ भेंट होगई । दोनों सेनाओंमें रणबाजा बजने लगा और युद्ध होने लगा । रण बाजोंका शब्द राजा ऐरावणके कानतक भी पहुँच गया । वह शीघ्र ही रण क्षेत्रमें आ पहुँचा । विद्याधर वज्रसेनको जीतकर कन्या प्रियंगुश्रीको ब्याह लिया और विषय जनित सुखोंको भोगता हुआ सानन्द रहने लगा ।

अपमान बढ़ा दुख दायो होता है । राजा ऐरावणसे जब विद्याधर वज्रसेन हार गया तो उसे बड़ी लज्जा आई । लज्जित हो समस्त राज्यका उसने परित्याग कर दिया एवं दिगम्बरी दीक्षा धारण कर वे घोर तप तपने लगे । तप करते २ जब पूरे हजार वर्ष बीत गये तब बिहार करते २ वे मुनिराज एक दिन राजा ऐरावणकी राजधानी स्तवकग्लुंछ नगरकी और आये और नगरके बाहिर किसी बगीचेमें आकर विराज गये ॥ ७० । ७१ ॥ किसी दिन वे मुनिराज पूर्ण ध्यानमें लीन थे कि जहाँ तहाँ वनमें क्रीडा करने वाले राजा ऐरावणके पुत्रोंने उन्हें देखा और वे मूर्ख मुनिमुद्राका कुछ भी महत्त्व न समझ हँसी उड़ाते हुये आपसमें इसप्रकार कहने लगे—

ध्यानस्थं च बने सुताः । पेटवणस्य हास्येन भेणुरेवं परस्परं ॥ ७२ ॥ वराकोऽयं पुरा पित्रा बलिनामाऽकरोद्व्रणं । वव यास्यत्यधुनेत्यु-
 क्त्वा चकषुस्तं तपोधनं ॥ ७३ ॥ मुनेः कर्मवशाज्ज्वले क्रोधः प्रलयकारकः । तेन क्रोधेन तद्वामात्स्कन्धादग्निरुत्थितः ॥ ७४ ॥ पुरं जज्वाल
 तर्ध्वं सलोकं सनृपं सखे ! । महापाप्मरेणाशु मुनिर्नैरकमाविशत् ॥ ७५ ॥ अतो नर्जकगोधस्य सक्रोधस्य मुनेरपि । साम्यमुक्तं मया मित्र !
 तौ स्यातामर्थहारिणौ ॥ ७६ ॥ प्रतिपद्य तथागारमागत्य पितरं जगौ । प्रभोऽहं रत्नसद्वीपे यामि मित्रैः समं धने ॥ ७७ ॥ सुदत्तस्तं तदेत्याह

यह वही दुष्ट वज्रसेन नामका विद्याधर राजा है जिसने कि प्रियंगुश्रीके विवाहके समय अतिशय
 पराक्रमी भी हमारे पिताके साथ युद्ध किया था । रे दुष्ट ! अब तू कहाँ बचकर जायगा ऐसा कहकर
 उन तपस्वी मुनिराजको उन्होंने जकड़ कर पकड़ लिया और उन्हें मारने ताड़ने लगे । कर्मके प्रबल
 उदयसे मुनिराज वज्रसेनके प्रलय करनेवाला क्रोध उत्पन्न होगया । क्रोधके कारण उनकी बाई भुजा-
 से अग्निका फुलिंगा निकला जिससे मय प्रजा राजाके समस्त स्तवकलुंछ नगर जलकर खाख हो
 गया एवं पापके तीव्रभारसे वह मुनि भी नरकमें गया । इसप्रकार क्रोधी मुनिराजकी कथा सुनाकर
 श्रेष्ठ पुत्र भद्रमित्रसे उसके मित्र अन्य श्रेष्ठपुत्रोंने कहा—भाई भद्रमित्र ! इसीलिये हमने धन
 नहीं उपार्जन करनेवाले पुरुषकी और क्रोधी मुनिकी तुलनाकी थी क्योंकि धन न उपार्जन करने-
 वाला पुरुष और क्रोधी मुनि दोनों ही संचित धनके नाश करनेवाले हैं अर्थात् जो हजारों वर्ष तप
 कर क्रोध कर लेता है उसका समस्त तप व्यर्थ चला जाता है और जो पुरुष कुछ भी धन न कमा
 कर संचित धनको बैठा र खाता रहता है उसका भी धन समय आनेपर समस्त चला जाता है ॥
 ७४—७६ ॥ अपने मित्रोंसे इसप्रकार धन न उपार्जन करने वालेकी निन्दा सुन भद्रमित्र अपने घर
 लौट आया और अपने पिता सेठ सुदत्तसे इसप्रकार कहने लगा—

पूज्य पिता ! मैं अपने मित्रोंके साथ धन कमानेके लिये रत्नद्वीप जा रहा हूँ । अपने प्रिय पुत्र
 की यह बात सुन मोही सुदत्तने कहा—प्रियपुत्र ! हमारे बहुतसा धन विद्यमान है तुम क्यों धन

द्रव्यं भूरितरं सुत ! । विद्यतेऽस्माकमितर्हि ममर्धं मय्यस्ति स्वया ॥ ७८ ॥ पञ्च भव सुतोऽस्माकं त्वं लघुर्लघ्विप्रहः । प्रेषयित्वाथ तं पश्चात् योगी भूत्वा भ्रमाभ्यहं ॥ ७९ ॥ तिरस्कृत्य पितुर्वाक्यमत्याग्रहतया गतः । रत्नद्वीपे समुत्तीर्य ललत्क्लोलसागरं ॥ ८० ॥ तत्र स्थित्वाऽगमसिंहपत्तने भद्रमित्रयाक् ॥ ८१ ॥ सङ्कृत्य सत्यघोषाख्यं मन्त्रिणं परमादरात् ॥ प्राचुर्यं प्राभृतं मुक्त्वा पप्रच्छेति वणिक् सुतः ॥ ८२ ॥ युष्मत्प्रेम भवेत्तर्हि ममोपरि यदा विप्रो ! । निवासार्थं समायामि पत्तनेऽथ सुजातये ॥ ८३ ॥ सत्यघोषेण सन्मान्य जगदे

कमानेकी इच्छासे परदेश जा रहे हो ! पुत्र ! तुम मेरे एक ही पुत्र हो तिसपर भी तुम सुन्दर शरीर के धारक छोटी उम्रके हो तुम्हें परदेश भेजकर क्या मैं योगी होकर पृथ्वीपर घूमूंगा ? ॥ ७८--७९ ॥ कुमार भद्रमित्रने अपने पिताके वचनोंपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया वह मोह तोड़ शीघ्र ही चल दिया एवं जिसमें प्रबल तरङ्ग उठ रही हैं ऐसे गम्भीर समुद्रको पारकर रत्नद्वीपमें जा पहुँचा ॥ ८० ॥ वरावर बारहवर्ष तक रत्नद्वीपमें रहा । रत्न आदि बहुतसा धन उपार्जन किया और घूमता २ वह कुमार भद्रमित्र एक दिन सिंहपुर नामक नगरमें आ पहुँचा । सिंहपुर नामका नगर उस समय अद्वितीय सुन्दरताका स्थान था और उसमें सत्यघोष नामका राजमन्त्री निवास करता था । कुमार भद्रमित्र ! आदर पूर्वक मन्त्री सत्यघोषसे मिला । बहुतसी उसे भेंट दी और उससे इस प्रकार पूछा—

स्वामिन् ! यदि आपका मेरे ऊपर प्रेम हो तौ मैं सुख भोगनेकी आशासे इस महामनोह नगरमें कुछ दिन निवास करूँ । कुमार भद्रमित्रकी यह बात सुन मन्त्री सत्यघोष बड़ा प्रसन्न हुआ । कुमारको उसने बड़े सन्मानकी दृष्टिसे देखा और बड़े आदरसे यह कहा—

भाई ! तुम्हारे यहां रहनेसे मैं बड़ा प्रसन्न हूँ । शीघ्र ही तुम अपने माता पिताको लेकर यहां आइये और रहिये । मन्त्री सत्यघोषकी बातसे कुमार भद्रमित्र बड़ा ही सन्तुष्ट हुआ । कुमार भद्र

चेति सादरात् । आनय त्वं द्रुतं वंधो ! मातृपितादिसत्कुत्रे ॥ ८४ ॥ मन्त्रिवाक्यात्तदा तुष्टः सप्तरत्नानि सत्करे । स्थापयित्वा गतः
 एकाक्षपट्टाख्यं पत्तनं द्रुतं ॥ ८५ ॥ मातरं पितरं बन्धून् पशून्वापि धनादिकं । नीत्वा समागतो भद्रमित्रः सिंहपुरे जवात् ॥ ८६ ॥ सत्य
 घोषं समेत्याशु ययाचे रत्नसप्तकं । तदा क्रोधाहणो भूत्वा प्रोवासेति घणिकसुतं ॥ ८७ ॥ रे रे दुर्गत ! रत्नानि कदाऽद्यापिपत त्वया
 मद्रस्ते प्रूहि पापीयान् नाशोऽद्य भविता तव ॥ ८८ ॥ भद्रमित्रस्तदा प्राइ द्वीपे रत्नादिनामनि । गत्वा रत्नानि चानीध त्वत्करे स्थापि
 तानि भो ॥ ८९ ॥ तदा तत्सेवका भेषुर्येषां याति धनं महत् । तद्वत् प्रधिला नूनं भवेयुश्चित्तमल किं ॥ ९० ॥ अर्घवन्द्यं तदा थापं

मित्रके पास उससमय सात रत्न बहुमूल्यके थे । कुमारने उन्हें मन्त्री सत्यघोषको सौंप दिया और
 वह अपनी जन्मभूमि पद्मखण्ड नगरमें शीघ्र ही आगया । पद्मखण्ड नगरमें आकर भद्रमित्रने माता
 पिता भाई पशुगण और धन आदिक सबोंको साथ ले लिया और शीघ्र ही सिंहपुरमें आगया ।
 ८१—८६ ॥ सिंहपुरमें आकर कुमार भद्रमित्र मन्त्री सत्यघोषसे मिला और जो सात रत्न उसे
 सौंपकर गया था वे उससे मांगे । बहुमूल्य सात रत्नोंके मिलनेसे मन्त्री सत्यघोषकी नीयति पहिले
 हीसे बिगड़ चुकी थी । जिस समय कुमारने सात रत्न मांगे मारे क्रोधसे उसके नेत्र लाल हो गये
 एवं अनेक प्रकारकी ताड़ना करता हुआ वह भद्रमित्रको इसप्रकार दुर्वाक्य कहने लगा—

रे दरिद्रो ! तू महा पापी है । कह तो तूने मेरे हाथमें कब रत्न दिये थे ! याद रख इस
 प्रकार झूठ बोलनेसे तेरा काल तेरे शिरपर मड़रा रहा है ॥ ८७—८८ ॥ उत्तरमें भद्रमित्रने कहा—
 रत्नद्वीपमें जाकर मैं रत्न लाया था वे रत्न मैंने तुम्हें सौंपे थे तुम क्यों भूल रहे हो ! । सत्यघोष
 और भद्रमित्रका यह आपसी भगड़ा देख सत्यघोषके सेवक कहने लगे—जिन मनुष्योंका विपुल
 धन चला जाता है वे ही संसारमें पागल सरीखे हो जाते हैं इसमें किसी बातका आश्चर्य नहीं ।
 ॥ ८९—९० ॥ परदेशी भद्रमित्रकी दुष्ट मन्त्रीने एक बात भी न सुनी । बुद्धिमान कुमार भद्रमित्रके

कण्ठे दस्वास्य धीमतः । मुष्टिघातैर्द्वन्द्वं ताड्य स निष्कासित एव तैः ॥ ६१ ॥ स्वद्रव्यहरणोद्भूतशोकव्याकुलिताशयः । चकार पृच्छ
तिं गाढं राजद्वारे पुरेऽखिले ॥ ६२ ॥ सत्यघोषोपि राजाग्रे लोकाग्रे सर्वतोपि च । एवं निरूपयामास निःस्वाः स्युर्ग्रथिला ध्रुवं ॥
॥ ६३ ॥ चकार शपथं सैन्यः शुद्ध्यर्थं स्वस्य दुष्टयोः । नृपस्याग्रेऽधमो गृध्ररधीतोऽपि भृशं शठः ॥ ६४ ॥ भद्रमित्रो निशाग्रांते रोरौत्या
कृत्य भूकृहं । प्रत्यहं चेति पूरुषारं कुर्वन् कातरचेतसा ॥ ६५ ॥ द्विजेनानेन दुष्टेन वञ्चितोऽहं विनागसा । किं करोमि क्व गच्छामि
गलेमें अर्ध चन्द्र-अर्ध चन्द्रमाके आकार बाण गिरवा दिया । और मुक्योंकी मार मार कर उसे नगर
से बाहिर निकाल दिया ॥ ६१ ॥ अपने द्रव्यके इस प्रकार अपहरण हो जानेसे भद्रमित्रका चित्त
भयंकर शोकसे व्याकुल हो गया । उससे और तो कुछ नहीं बना समस्त पुर और राजाकी
छोटी पर वह रोता चिल्लाता घूमने लगा ॥ ६१-६२ ॥ मन्त्री सत्यघोषने भी राजा और पुरवासियों
के सामने सब जगह यही बात स्वीकार की कि जिन मनुष्योंका धन चला जाता है वे निश्चयरूप
से पागल हो ही जाते हैं ॥ ६३ ॥ दुष्ट बुद्धि सत्य घोषसे जब यह पूछा गया कि क्या तुमने इसके
रत्न लिये हैं ? तो समस्त शास्त्रोंको पढ़कर भी बज्र मूर्ख महा लालची और नीच उस दुष्टने अपनी
शुद्धिके लिये राजाके भी आगे न लेनेकी कसम खाई ॥ ६४ ॥ जिसका धन चला जाता है उसका दुख
वही जानता है विचारे भद्रमित्रको धनके चले जानेसे कल कहां थी उसने प्रति दिनका यह कार्य
हाथमें ले लिया कि वह प्रति दिन प्रातः कालके समय बृक्ष पर चढ़ जाय और दिन चित्तसे इस
प्रकार करुणा जनक चित्लावे—

बिना अपराधके इस दुष्ट ब्राह्मण मन्त्रीने मेरे रत्न अपहरण कर मुझे ठग लिया है । मैं क्या
करू कहां जाऊ और किसके सामने अपना रोना रोऊं ॥ ६५-६६ ॥ रे मन्त्री ! महाराज सिंहसेनकी
प्रसन्नतासे तुम्हारे सब कुछ है । यह तुम निश्चय समझो छत्र और सिंहासनके बिना सारा राज्य

कस्यापि च बधाम्यहं ॥ ६६ ॥ सिंहसेनमहाराजप्रसादेन न तेऽस्ति किं । छत्रसिंहासने मुक्त्वा ध्रुवं राज्यमिदं तव ॥ ६७ ॥ धर्मो यशो महारत्नं च यात्यपहवदोषतः । विद्वानपि महाशेषं करोति त्वं कथं द्विज ! ॥ ६८ ॥ भवाम्यहं न शत्रुस्ते तथापि मम सद्गुणं । अप हनुषे कथं मूढ ! द्विजाचारपराङ्मुख ! ॥ ६९ ॥ एकदा रात्रिपाश्चात्ययामे पूरुतिमकरोत् । तदा राक्षी स्वके चित्ते ततर्कति गुणोज्ज्वला ॥ १०० ॥ जानेऽहं नायमुन्मत्तः सर्वद्वानुगतं वदन् । अतोऽहमस्य विन्यायं न्यायं पश्यामि निश्चितं ॥ १०१ ॥ इत्थमुक्तवतो राक्षी

तुम्हारा है—तुम्हें इस प्रकार पर धन नहीं अपहरण करना चाहिये ॥ ६७ ॥ यह बात विलकुल सत्य है कि जो मनुष्य किसीकी कुछ वस्तु हरण कर लेता है उसके उस अपहरण करने रूप बल-वान दोषसे धर्म यश और उच्चपन सब गुण एक ओर किनारा कर जाते हैं अर्थात् अपहरण करने वाला मनुष्य धर्मात्मा यशस्वी और महान् कुछ भी नहीं माना जाता । रे ब्राह्मण मन्त्री ! विद्वान हो कर भी तू यह घोर पातक क्यों कर रहा है । भाई ! मैं तुम्हारा किसी प्रकारका शत्रु भी नहीं हूँ तथापि न मालूम तुम मेरा क्यों इस क्रूरताके साथ धन अपहरण कर रहे हो । ब्राह्मणों का जो आचार विचार है नीच कर्मकर तुम क्यों उससे विमुख होते हो ॥ ६८—६९ ॥ एक दिनकी बात है कि वह रात्रिके पिछले पहरमें प्रति दिनकी तरह बड़े जोरसे रो रहा था । राजा सिंहसेनकी रानी जो कि अनेक गुणोंकी भण्डार थी उसके कानमें भद्रमित्रके रोनेकी भनक पड़ी वह भद्रमित्रका इसप्रकार दुःख जनक रोना सुन मन ही मन इस प्रकार विचार करने लगी—

यह जो भद्रमित्र प्रतिदिन मन्त्रीको अपने धनका ठगनेवाला कह कर रोता चिल्लाता रहता है इसे लोग पागल कहते हैं, किन्तु यह पागल नहीं कहा जा सकता । मेरा यह दृढ़ निश्चय है कि राज दरवारमें जो कुछ भी न्याय किया गया है वह सर्वथा अन्याय है-मुख देखकर ही न्याय किया गया है ॥ १००—१०१ ॥ वस ऐसा अपने मनमें दृढ़ निश्चय कर रानीने राजा सिंहसेनसे यह कहा

राजाप्रे मो नराधिप ! त्वयाघातःपुरे स्थेयं करोम्येतत्परोक्षम् ॥ १०२ ॥ प्रातस्तथाय सा राज्ञो विदग्धा संहिप्ता रहः । तत्क्षणे स
समायातः सत्यघोषो द्विजाग्रमः ॥ १०३ ॥ तत्रैव स्थापितो राक्ष्या सम्मान्यासनदानतः । ततो द्यूतं समारम्भे साकं तेन द्विजातिना ॥
१०४ ॥ पाहेत्यमात्यमानन्दाद्रामदत्ता द्विजोत्तम ! । मया त्वं जीयसे खेत्तत् किं दद्या वद सांप्रतं ॥ १०५ ॥ अश्वं धनं गजं भूयो च
स्नालङ्कारसंघयं । दधां च हारितस्तुभ्यं सत्यं जानीहि सर्वथा ॥ १०६ ॥ श्रुत्वाथ तद्वचो राज्ञो रराणेति रतिप्रभा । तत्सर्वं भवता
प्रोक्तं समस्ति मम सौलभं ॥ १०७ ॥ मुद्रिकां नामसंयुक्तां संबद्धरिकां पुनः । यज्ञोपवीतमस्मभ्यं देयं देव ! विदांवर ! ॥ १०८ ॥

राजन् ! परदेशी भद्रमित्रका जो न्याय हूँआ है वह मुझे ठीक नहीं मालूम पड़ता । आज आप
रण वासके अन्दर रहें, मैं स्वयं इस न्यायकी जांच करूंगी । दूसरे दिन प्रातः काल उठकर बुद्धि-
मती वह रानी एकांतमें बैठ गई । उसी समय ब्राह्मण मन्त्री सत्यघोष भी वहीं आ पहुँचा ।
भोजन आदिके द्वारा उसका रानीने भले प्रकार सन्मान किया । वहीं पर विठा लिया और उसके
साथ जूआ खेलना प्रारम्भ कर दिया ॥ १०२—१०४ ॥ रानी रामदत्ता बड़ी ही चतुर थी उसने
आनन्दमय मीठे वचनोंसे इसप्रकार सत्यघोष मन्त्रीसे कहा—

हे विप्रोंके सरदार ! यदि इस जूआमें मैं तुम्हें जीत लूंगी तो कृपाकर कहिये तुम मुझे क्या
दोगे ! शीघ्र कहो ! उत्तरमें मन्त्री सत्यघोषने कहा— यदि मैं आपके साथ हार गया तो आप नि-
श्चय समझें मैं घोड़ा धन हाथी और नानाप्रकारके वस्त्र सभी कुछ आपको प्रदान कर दूंगा ॥ १०५
॥ १०६ ॥ मन्त्री सत्यघोषकी यह बात सुनकर रतिके समान सुन्दरी रानी रामदत्ताने कहा—

भद्र ! हारने पर जिन चीजोंके देनेका आपने वायदा किया है वे सारी चीज मेरे यहां विद्य-
मान हैं । मैं इन चीजोंकी लालसा नहीं रखती मुझे कुछ अपूर्व ही चीज तुम्हें देनी होगी और वह
यह है कि हारने पर आप मुझे अपने नामकी मुद्रिका कटारी और यज्ञोपवीत प्रदान कर दें ।

तथेति प्रतिपद्याशु रेमे यूतं निरंकुशं । अभाग्यवशतो मन्त्रो निर्जितो रामदत्ताया ॥ १०६ ॥ तदा तद्वित्तं नीत्वा सानन्दोभोजलोचना ।
 दत्त्वा निपुणमत्याख्यधातोरुतले शनैः ॥ ११० ॥ अत्रोदिति हे भ्रात्रि ! याहि शीघ्रं द्विजगृहे । एतत्पत्न्यै च दत्त्वेतद्भद्रमित्रकरण्डकं
 ॥ १११ ॥ याचयित्वा अवाहेहि सागता प्रियभाषिणी । अभिज्ञानेन तस्मैत्वा रत्नसप्तकरण्डकं ॥ ११२ ॥ आगत्यैव ददौ राक्ष्ये तदादापि
 नृपाय वा । सिंहसेनोऽपि तस्मीत्या समायामागतो ध्रुवं ॥ ११३ ॥ किर्याद्भिः स्वीयरत्नैश्च मिश्रितानि विधाय सः । तानि ग्राहेति हे
 वैश्य ! गृह्णाणैतत्स्वकं धनं ॥ ११४ ॥ भद्रमित्रः स्वस्त्वानि अप्राह गुणगौरवः । विहायान्यानि गृह्णामि तद्वा राक्षंति तर्कितं ॥ ११५ ॥

ब्राह्मण सत्यघोषकी निर्मल भी बुद्धिपर उस समय बलवान मूढ़ताका आवरण पड़ा हुआ था । रानी-
 के कहे अनुसार उसने सब चीज देनी स्वीकार कर लीं । वह निरंकुश हो सानन्द जूआ खेलने
 लगा । दुर्भाग्य वश उस मन्त्रोको अपनी चतुरतासे रानी रामदत्ताने जीत लिया । कमलनयनी
 रानी रामदत्ताने मुद्रिका और कटार दोनों चीजे लेकर धीरेसे निपुणमती नामकी धायके हाथमें
 दे दीं और उससे यह कहा—

तू शीघ्र ही ब्राह्मण सत्यघोषके घर जा । इसकी पत्नीसे सात रत्नोंवाली पिटारी मागला और
 मुझे जल्दी लाकर देदे । भ्रात्रो निपुणमती बड़ी ही प्रियवादिनी थी वह शीघ्र ही मन्त्री सत्यघोषके
 घर चली गई । अपनी चतुरतासे उसने सात रत्नोंको पिटारी लेली । लाकर रानी रामदत्ताको दे
 दी । रानीने राजाके हाथमें वह पिटारी दे दी । राजा लेकर शीघ्र ही राज सभामें आ गया । वहां
 आकर उसने कुछ अपने रत्नोंके साथ मिलाकर वे सातों रत्न रख दिये । वैश्यपुत्र कुमार भद्रमित्र
 को राज सभामें बुलाया और यह कहा—

भाई ! तुम अपने रत्नोंको पहिचान कर लो ॥ १०७—११४ ॥ वैश्य पुत्र भद्रमित्र एक
 ईमानदार व्यक्ति था । अनेक रत्नोंमेंसे उसने अपने सात रत्न चुनकर ले लिये एवं गुणशाली उस

अहो अयं महान् कोऽपि सत्यवक्ता सुकृतो नरः । निर्लोभः स्वकुलाचारे विदग्धो षड्विंशतोऽमुना ॥ ११६ ॥ सत्यघोषो महापापी स्वधर्माचारदूरगः । असत्योक्तिः कृपाहीनो दण्डनीयो महाशठः ॥ ११७ ॥ प्राहेत्याकार्यं भूमीशः स्वीयभृत्यान् प्रति कृधा । लिखा दण्डो विधा तव्या वाङ्मयास्त्य दुर्मतेः ॥ ११८ ॥ सर्वस्वहरणं पूर्वं विधेयं पूर्वरीतिभिः । चपेटा वज्रमुष्ट्याख्यमल्लस्य लिङ्गदूर्जिताः ॥ ११९ ॥ कांस्यपात्रत्रयापूर्णं नवगोमयमक्षयं । कारितव्यमिति त्रिधा दण्डोदेयोऽविलम्बतः ॥ १२० ॥ तथाकारि भृशं भृत्यैर्यमसन्निभविग्रहैः ।

कुमारने अन्य रत्न वहींपर छोड़ दिये । वैश्यपुत्र भद्रमित्रकी यह लोकोत्तर निर्लोभता देख राजा सिंहसेन बड़ा ही प्रसन्न हुआ और मन ही मन इसप्रकार विचार करने लगा—

यह भद्रमित्र कोई सामान्य पुरुष नहीं किन्तु महान् सत्यवक्ता पुरायवान् निर्लोभ और कुलाचारमें चतुर पुरुष रत्न है अवश्य इस पापी सत्यघोषने इस महापुरुषको ठगा है । यह सत्यघोष महापापी धर्माचारियोंसे विमुख झूठा निर्दयी और वज्र मूर्ख है इसे अवश्य दण्ड देना उचित है ॥ ११५—११७ ॥ राजा सिंहसेनने शीघ्र ही मन्त्री सत्यघोषको राजसभामें बुलाया और क्रोधसे आगवबूला हो इसप्रकार सेवकोंको आज्ञा दी—

यह ब्राह्मण बड़ा भारी दुष्ट है इसके लिये तीन दण्ड मैं निश्चित करता हूँ । प्रथम दण्ड यह है कि प्राचीन प्रथाके अनुसार इसका साराधन हरण कर लिया जाय । दूसरा यह है कि वज्र मुष्टि नामक मल्लके तीस मुक्रे इस पर पड़ें एवं तीसरा दण्ड यह है कि कांसेके तीन वर्तन ताजे गोबरसे भराये जाय और वह समस्त गोबर इसे खवाया जाय । इन तीन बातोंका प्रबन्ध बहुत शीघ्र कर देना चाहिये और इसे बहुत जल्दी दण्ड देना चाहिये ॥ ११८—११९ ॥ राजाकी आज्ञा पाते ही यमराजसरीखे क्रूरभृत्योंने शीघ्र ही अपना कार्य पूरा कर दिया । ठीक ही है जो भृत्य अपने स्वामी की आज्ञा मानने वाले हैं बहुत शीघ्र वे अपने पर सौंपे हुये कार्यको कर डालते हैं ॥ १२० ॥ अप-

संजाघटत्यही भृत्याः स्वनाथोक्तविधायिनः ॥ १२१ ॥ नृपे सम्बद्धवैरः सन् मृत्वा तद्धानदूषितः । द्विजिहोऽ गन्धनो नाम भांडागारे
 ५जनिष्ट सः ॥ १२२ ॥ अतश्चौर्यं न कर्तव्यं तेन कीर्तिर्न जायते । अन्यायेनान्यवित्तस्य स्वीकारश्चौर्यमुच्यते ॥ १२३ ॥ सौजन्यं हन्यते
 अंशो विस्त्रम्भस्य धनादिषु । विपत्तिः प्राणपदैता मित्रवध्वादिभिः सह ॥ १२४ ॥ गुणप्रसवसंदूष्या कीर्तिरम्लानमालिका । लतेव
 दावसंप्लुष्टा सद्यश्चौर्येण हन्यते ॥ १२५ ॥ इतीदं जानता सर्वं सत्यघोषेण दुर्धिया । नैसर्गिकेण चौर्येण तद्रत्नापहृतिः कृता ॥ १२६ ॥

राधा सत्यघोषको जब राजाने यह दण्ड दिया तो उसकी आत्माको अपमान जनित नितांत कष्ट
 हुआ । परणामोंकी क्रूरतासे राजाके साथ उसने तीव्र वैर बांध लिया एवं आर्त ध्यानसे मर कर
 वह राजाके भण्डारमें सर्प हो गया ॥ १२१ ॥ ग्रन्थकार उपदेश देते हैं कि सत्यघोषकी यह दुर्दशा
 देख कर किसी मनुष्यको चोरी पाप नहीं करना चाहिये क्योंकि चोरीका कार्य करनेसे संसारमें
 किसी प्रकारकी कीर्ति नहीं होती तथा अन्याय पूर्वक दूसरेका धन हरण कर लेना चोरी कहलाता है
 यह चोरी काम इतना निकृष्ट है कि इससे मनुष्योंकी सज्जनता नष्ट हो जाती है । धन आदिके
 सम्बन्धमें चोरी करनेवालेका विश्वास नष्ट हो जाता है । चोरी करनेवालेको जब तक वह जीता है
 तब तक मित्र बन्धु आदिके साथ सदा उसे आपत्तिका सामना करना पड़ता है । जिस प्रकार सुन्दर
 फूलोंसे शोभायमान और विकसित लता अग्निसे झुंलस जाने पर नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार
 चोरीका कार्य करनेसे अनेक गुणोंको उत्पन्न करनेवाली निर्मल कीर्ति भी नष्ट हो जाती है ।
 यह सब जानकर भी दुर्बुद्धि सत्यघोषने स्वभावसे ही चोरी कर भद्रमित्रके रत्नोंका अपहरण किया
 था ॥ १२२—१२४ ॥ इस चोरी रूप पापके ही कारण उसे मंत्रिपदसे हाथ धोना पड़ा । उस प्रकारका
 तीव्र अपमान सहना पड़ा ॥ १२५ ॥ तथा राजा सिंहसेनने संतुष्ट होकर बुद्धिमान कुमार भद्रमित्र-
 को राजसेठ पद प्रदान किया ठीक ही है जब शुभका उदय होता है तब कौन सी दुर्लभ भां बात

मल्लो मल्लिपदाद्दृष्टो निग्रहं तादृशं गतः । दुर्गतिं च पुनः प्राप्तो महापापानुधेधिनी ॥ १२७ ॥ संतुष्य नृपतिस्तस्मै भद्रमित्राय सद्धिये
ज्येष्ठं धेष्टिपदं भाष्यात् ददौ किं न शुभोदयात् ॥ १२८ ॥ इत्यमात्यस्य दुर्वृत्तं राजात्मनि व्यचिंतयत् । धम्मिल्लाख्याय विप्राय तत्सच्चि
व्यपदं ददौ ॥ १२९ ॥ अथासनादवी दुर्गा मृगजातिसमाकुला । नानादरीदरोदुगच्छहर्मा कुरविरोमधुः ॥ १३० ॥ तत्रास्ते विमलाद्युक्ति
कांतारं तारभूतलं । कांतारं तत्र तन्वामा भूधरो विद्यते महान् ॥ १३१ ॥ तत्रैकदा समायासीद्वरधर्मो मुमुक्षुकः । वदितुं तं गतो
नहीं प्राप्त हो जाती । १२६ । राजा सिंहसेनने मंत्री सत्यघोषके दुश्चरित्रपर बहुत समय तक
विचार किया एवं उसकी जगह धम्मिल्ल नामके विप्रको मंत्री पद प्रदान कर दिया ॥ १२७ ॥

इसी पृथ्वीपर एक भयंकर आसनानामकी अटवी विद्यमान थी जोकि अनेक प्रकारके मृगोंसे
व्याप्त थी एवं अनेक गुफाओंके दरवाजोंपर उगे हुए दर्भके अंकुरोंसे शोभायमान थी । उस अट-
वीके अंदर विमल कांतार नामका बन था जो कि विस्तीर्ण पृथ्वीतलसे शोभायमान था और कांतार
नामका ही उसके अंदर एक विशाल पर्वत था । उसके अंदर एक वरधर्म नामके मुनिराज आये
और उनका आगमन सुन भद्रमित्र नामका सेठ पुत्र उनकी बन्धनाके लिये गया । १२२—१३१ ।
मुनिराज वरधर्मने धर्मका उपदेश दिया । बुद्धिमान कुमार भद्रमित्रने धनकी असारता जान बहुत
सा दान करना प्रारम्भ कर दिया । पुत्रको इस प्रकार धारा प्रवाह दान देते देख उसकी माताको
बड़ा क्रोध हुआ । यद्यपि उसने भद्रमित्रको बहुत रोका परंतु उस समय भद्रमित्रके चित्तमें दान
देनेका पूरा उत्साह था इसलिये उसने अपनी माकी एक नहीं सुनी । भद्रमित्रकी उस समयकी इस
प्रकार दान परायणता देख भाट लोग इस प्रकार उसकी प्रशंसा करने लगे—

जो मनुष्य दानी है उसके लिये धन कोई चीज नहीं । जिनके चित्तमें राग भाव नहीं मोह
उनका कुछभी नहीं कर सकता । जो शूरवीर हैं उनके लिये रण क्या चीज है वे निर्भय

भद्रमित्रनामा षण्णिकसुतः ॥१३२॥ ध्रुत्वा धर्मं ततः प्राज्यं ददौ दानं स धोधनः । व्ययोर्कुर्वन्तमालोक्य तस्मै माता चुकोप च ॥१३३॥
 सवित्र्या धार्यमाणोऽपि दानं दातुं समुत्सुकः । वभूव च तदा कीर्तिर्वैतालिकमुखोद्गता ॥१३४॥ दातॄणां क्रोधनोऽरागचित्तानां
 मोह एव कः । शूराणां कातराणां च रणौत्सुक्यादयः च किं ॥१३५॥ कोपादसहमाना सा तद्वानं कुर्मतिप्रिया । काले मृत्वासनादव्यां व्याधौ
 जम्ने धिघेर्दशात् ॥१३६॥ रौद्रध्यानान्नवेषजीवो व्याघ्रमार्जारयोनिषु । प्रयाति पन्नगीभूय बुधोऽतस्तत्परित्यजेत् ॥१३७॥ एकदा भद्रमि-
 त्त्राख्यः क्रीडार्थं सदनं गतः । दष्टा तं सा महाकोपादक्तादत्स्वसुतं त्वरा ॥१३८॥ यतः क्रोधो यतो माया यतो धर्मार्थनाशनं
 यतो वैरं यतो हिंसा धिक्कृतं लोभं च नाचरेत् ॥१३९॥ स मृत्वा स्नेहतो मय्यो रामदत्तोदरेऽभवत् । सिंहचन्द्रः सुतो धीमान् मोन

होकर रणमें जाकर युद्ध करते हैं । भद्रमित्रकी माँ अत्यन्त दुर्बुद्धि थी भद्रमित्रके द्वारा दिये गये दानको मारे क्रोधके उसने अच्छा नहीं कहा मरकर वह कर्मके उदयसे उसी आसना नामकी अट-
 बीमें व्याध्री हो गई । ठीक ही है रौद्रध्यान ऐसी बुरी चीज है कि उससे जीवको व्याध्री और बिल्ली आदिकी योनियोंमें जन्म धारण करना पड़ता है । सर्प हो जाना पड़ता है इसलिये जो बुद्धिमान हैं उन्हें चाहिये कि वे रौद्रध्यानका सर्वथा त्यागकर दें—कभी उसके जालमें न फसें ॥१३२—१३६॥
 एक दिनकी बात है कि सेठ भद्रमित्र क्रीडार्थं बनमें गया । उसकी पूर्वभवकी माँ व्याध्रीकी दृष्टि उसपर पड़ी और उसने पूर्वभवके वैरके कारण भद्रमित्रको खा डाला । यह निश्चय है कि इस दुष्ट लोभके ही कारण क्रोध, माया, धर्म और धनका नाश एवं वैर होता है इसलिये ग्रन्थकार कहते हैं कि ऐसे दुष्ट लोभके लिये धिक्कार है ॥१३७॥१३८॥ राजा सिंहसेनकी रानी रामदत्ताने भद्रमित्रकी पूर्ण प्रतिष्ठा रखी थी इसलिये भद्रमित्र रानी रामदत्तासे विशेष स्नेह रखते थे और उसे अपनी मासे भी अधिक मानते थे ।

जिस समय व्याध्रीके खानेके बाद सेठ भद्रमित्रकी मृत्यु हुई वह पूर्व भवके स्नेहके संबंधसे

वेतुरिवापरः ॥ १४० ॥ पुत्रोऽनुजस्ततो जशे पूणचन्द्रो विशालदृक् । सिंहसेनस्य भूपस्य बलमौ तोवभूषतुः ॥ १४१ ॥
 रामापुत्राधिपत्योत्थं सुखं राजा भुभोज सः । लोकोत्तरं सुखं प्राप्य के न स्युर्मदमंधराः ॥ १४२ ॥ भाण्डागारावलोका
 र्थदेकदा काश्यपीपतिः । गतो रत्नादिसद्वस्तु दृष्ट्वा निर्यात्यसौ यदा ॥ १४३ ॥ दशतिस्म तदा क्रोधाच्चक्षुः
 श्रुतिरगन्धनः । धराधीशं महावैरादुत्फणोऽ रुणलोचनः ॥ १४४ ॥ पपात धरिणोनाथो भूतले पवितादितः ।

रानी रामदत्ताके गर्भमें आकर अवतीर्ण हो गया । उत्पन्न होनेपर सिंहचन्द्र उसका नाम रक्खा गया जो कि एक उत्तम बुद्धिका धारक था । कुमार सिंह चन्द्रका छोटा भाई एक दूसरा कुमार था जिसका कि नाम पूर्णचन्द्र था एवं वह अपने विशाल नेत्रोंसे अत्यन्त शोभायमान था । सिंहचन्द्र और पूर्णचन्द्र दोनों ही कुमार राजा सिंहसेनको बड़े ही प्यारे थे ॥ १३६—१४० ॥ इस प्रकार आज्ञाकारी स्त्री और दोनों पुत्रोंको पाकर राजा सिंहसेन लोकोत्तर संसारीक सुखका अनुभव करते थे । ठीक ही है लोकमें अद्वितीय सुख पाकर सभी आनन्दमें मग्न हो जाते हैं ॥ १४१ ॥ एक दिन राजा सिंहसेन अपने भण्डारके देखनेके लिये गये । उसमें रहनेवाली रत्न आदि वस्तु देखकर वे लोटते ही थे कि मन्त्री सत्यघोषके पूर्व भवके जीव अगन्धन सर्पकी दृष्टि उनपर पड़ गई । पूर्व वैरके सम्बन्धसे वह दुष्ट क्रोधसे आग बबूला हो गया । फणां उचैको कर लिया । क्रोधसे दोनों नेत्र लाल कर लिये और सिंहसेनको डस लिया ॥ १४२—१४३ ॥ वह सर्प एक अत्यन्त विषमय सर्प था इसलिये जिस प्रकार वज्रसे पर्वत नीचे गिर जाता है । पवनके तीव्र आघातसे वृक्ष उखड़ कर जमीन पर गिर पड़ता है उसी प्रकार राजा सिंहसेन भी सर्पके डसते ही नीचे जमीन पर गिर गये । महा राजकी यह दशा देखकर उसी समय अनेक वैद्य बुलाये गये और उनसे विषके नाश करनेके लिये कहा गया परन्तु उनमेंसे एक भी विषके नाश करनेके लिये समर्थ न हो सका । अन्तमें गारुड़

उर्वोधरोऽथ वा वृक्षो वायुवेगाकुलीकृतः ॥ १४५ ॥ नानावैद्याः समाहूता विषनाशार्थमञ्जसा । ते सर्वे तद्विषं हतुं शक्नुवन्तिस्म नो
यदा ॥ १४६ ॥ तदा गारुडदण्डाख्यो विषवैद्योऽहिमर्दकः । आहूतो मन्त्रचित्प्राज्ञः पन्नगाकर्षणोत्कटः ॥ १४७ ॥ मन्त्रं स्मृत्वा तदा तेन
समाहूताश्च पन्नगाः । दिविदिक्स्थिताः सर्वे समायता भवार्दिताः ॥ १४८ ॥ उवाच विषवैद्यस्तान् वन्दशूकानिति स्फुटं । अग्नि
कुण्डं प्रविश्याशु निर्दोषा यांतु शुद्धितां ॥ १४९ ॥ अन्यथा निगृह्यामि तेनेत्युक्तास्तु पन्नगाः । जलाश्रयादिवाक्लेशान्निर्योतिस्म
दंड नामके विष वैद्यको बुलाया गया जो कि सर्पोंकेमानको मर्दन करने वाला था मंत्रोंका जानकर
विद्वान और सर्पोंको अपने पास खींचलानेमें बड़ा चतुर था ॥ १४४—१४६ ॥ वस वहां आकर उसने
अपने मंत्रका स्मरण किया । जिससे भयसे व्याकुल हो दिशा बिदिशाओंमें रहनेवाले समस्त सर्प
उसने अपने पास बुला लिये और वे सबके सब आगये ॥ १४७ ॥ जिस समय वे समस्त सर्प आ
पहुंचे गारुडदण्डने उनसे कहा—

तुम लोग इस अश्विकुण्डमें प्रवेशकर शुद्ध हो और निर्दोष होकर अपने अपने स्थानोंपर
चले जाओ । यदि तुम लोग यह कार्य न करोगे तो याद रखो मैं तुम्हें कठोर दण्ड दूंगा । वस
उस विषवैद्यके कहते ही चट पट समस्त सर्प अश्विकुण्डमें गिर गये एवं जिस प्रकार जलसे
निकलकर बाहिर आजाते हैं और किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता उसी प्रकार वे समस्त
सर्प अग्निसे निकल आये उन्हें किसी प्रकारका कष्ट नहीं हुआ । अगंधन नामका सर्प जो कि
बिजलीके समान चंचल जीभका धारक था एवं क्रोधसे उसके दोनों नेत्र जाज्वल्यमान थे
ज्योका त्यों खड़ा रहा । उसने विषवैद्यको कुछ भीड़नहीं सुनी । विषवैद्यको मालूम पड़ गया
कि यही अपराधी हैं इसलिये उसने इस प्रकार कड़ककर कहा—

या तो तू इस राजाका विष पीकर इसे उज्जीवित करदे यदि तुझे यह बात मंजूर न हो तो

धुताशनात् ॥ १५० ॥ अगंधनः स्थितस्तत्र विद्युजिह्वोऽग्निद्वक्कुधा । तदा प्राहेति तं वैद्यो मुंचेनं वानलं विश ॥ १५१ ॥ महावैरोत्थ
क्रोधेन अस्मितोग्नावगंधनः । कीलकाख्ये वने जहो सलोभश्चमरोमृगः ॥ १५२ ॥ सिंहसेनो नरो मृत्वा कालेन सल्लकोवने ।
समजोऽभून्मदोन्मनोऽशनिघोषाभिधः परः ॥ १५३ ॥ तच्छोचनादिसंप्लुष्टवपुर्वष्टिर्विचक्षणा । रामदत्ता महामोहाद्विललाप रुपावैः
॥ १५४ ॥ कराघातैश्च सा वक्षस्ताडयन्ती पुनः पुनः । पतन्ती भूतले भूषां चिक्षेपाग्लानलोचना ॥ १५५ ॥ हा नाथ ! मदनावास ! मम
प्राणाधिकप्रिय ! । शत्रुपूराग्निजोमृत ! पूर्णैर्णांकस्य दीर्घद्वक् ॥ १५६ ॥ विष्ठासिनीमुक्ताभ्राजपुष्पप्रिय ! रतिप्रिय ! । मुक्त्वैकां मां महारा-

इस अग्निकुण्डमें प्रवेशकर । दोनों मार्गोंमेंसे एक मार्गका तुम्हे अनुसरण करना होगा । सर्प
अगंधनकी आत्मा पूर्वभवके महावैरसे पजली हुई थी उसने राजा का विष पीना स्वीकार नहीं
किया । वह अग्निकुण्डमें प्रवेश कर खाख होगया एवं वह लोभी मरकर कीलक वनमें चमर नामका
मृग हो गया । १४८—१५१ । राजा सिंहसेन भी मरकर सल्लकीवनमें अशनिघोष नामका मदो-
न्मत्त हाथी हो गया ॥ १५२ ॥ राजा सिंहसेनके मरजाने से रानी रामदत्ताका शरीर शोकाग्निसे
दग्ध होगया । वह करुणा जनक रोना रोने लगी । मारे शोकसे वह हाथोंसे वक्षःस्थल कूटने लगी ।
जमीनपर पड़ गई । समस्त भूषण बसन उतारकर उसने फेंक दिये । एवं रोते रोते उसके नेत्र
फीके पड़ गये । वह इस प्रकार चिल्लाकर रोने लगी—

कृपानाथ ? तुम कामदेवके समान सुन्दर थे । प्राणोंसे भी अधिक प्यारे थे । शत्रुरूपी अग्नि-
के लिये मेघ थे । पूर्णमासोके चन्द्रमाके समान विशाल नेत्रोंके धारक थे । स्त्रियोंके मुख रूपी कम-
लोंके भ्रमर थे और रतिकलामें प्रेम करने वाले थे । प्राणप्यारे । अभागिनी मुझ अकेलीको छोड़
कर आप कहां चले गये । १५३—१५६ । मैं क्या करू कहां रहूँ और तुम्हारे बिना प्राणोंको कैसे
राखूँ । नाथ । तुम्हारे बिना यह समस्त राज्य मुझे विषको ज्वालाके समान भयंकर, जान पड़ रहा

जन् ! सांप्रतं क्व गतोऽसि हा ॥ १५७ ॥ किं करोमि क्व तिष्ठामि कथं प्राणान् दधाम्यहं । विना त्वां भूतले राज्यं विषज्वालोपमं मम ॥ १५८ ॥
 विद्यमाने धवे स्त्रीणां तन्नयद्गुणकरं वत । तदभावे हि राज्यादि पराधीनत्वतोऽरिषत् ॥ १५९ ॥ विलापं भूरि कृत्वैव विरराम नृपप्रिया
 तदा तत्र समायाते द्वे आर्ये प्रतिबोधने ॥ १६० ॥ एका दांतमती ख्याता हिरण्यादिमती परा । पताभ्यां रामदत्ता सा बोधिताख्याय
 सवृषं ॥ १६१ ॥ द्रव्यक्षेत्रादिसद्भावं ह्यात्वाभ्यर्णे तयोस्तदा । जग्राह संयमं शुद्धं रामदत्ता पवित्रधीः ॥ १६२ ॥ सिंहचन्द्रोऽभव
 राजा सिंहोऽरातिगजोत्करे । पूर्णचन्द्रोऽधुम्राता यौवराज्ये बभूव च ॥ १६३ ॥ तयोर्भुजानयो राज्यमिवाभूत्स्तरः क्षणं । एकदा
 सिंहचन्द्रस्य पित्रोर्दुःखं दृशन्तं ॥ १६४ ॥ तदानीमागतं श्रुत्वा पूर्णचन्द्रमिधं मुनिं । गत्वा नत्वा द्विधाधर्मं श्रुत्वा वैराग्यमाप सा
 है । स्वामिन् ! पतिके विद्यमान रहते ही राज्य आदि समस्त पदार्थ सुखकर होते हैं किंतु
 उसके मरते ही पराधीन हो जानेके कारण वे सब शत्रुके समान दुःखदायी हो जाते हैं ॥ १५७ ॥
 १५८ । इस प्रकार बहुतसा विलापकर बड़ी कठिनतासे रानी रामदत्ता शांत हो पाई थी कि उस
 समय उसे प्रति बोध देनेके लिये दो आर्यिकाये आईं । दांतमती और हिरण्मती दोनों आर्यि-
 काओंके ये दो नाम थे । रानी रामदत्ताको धर्मका उपदेश दे संबोधा । रानी रामदत्ता भी पूर्ण-
 पंडिता थी । द्रव्य क्षेत्र आदिका स्वरूप समझकर उसने उन्हीं दोनों आर्यिकाओंके समीपमें संयम
 धारण कर लिया ॥ १५९—१६१ ॥ राजा सिंहसेनके मर जाने पर कुमार सिंहचन्द्र राजा बने जो
 कि शत्रुरूप हाथियोंका मान मर्दन करने वाले थे; एवं उनके छोटे भाई कुमार पूर्ण चन्द्रको युव-
 राज पद प्रदान किया गया । १६२ । राजा सिंहचन्द्रको राज्य करते करते एक ही वर्ष व्यतीत हुआ
 था कि अकस्मात् उनके चित्तमें पिताका दुःख उत्पन्न हो गया । उसी समय एक पूर्णचन्द्र नामके
 मुनिराज भी वहां पर पधारे थे । राजा सिंहसेन उनका आगमन सुन उनके पास गये । भक्तिपू-
 र्वक नमस्कार किया । मुनिराजके मुखसे यती और श्रावकका धर्म सुना जिससे उन्हें संसार शरीर
 भोगोंसे वैराग्य हो गया ॥ १६३—१६४ ॥ राजा सिंहचन्द्रने कुल परंपरासे प्राप्त राज्य अपने छोटे

॥ १६५ ॥ लघवे पूर्णचन्द्राय दावा राज्यं क्रमागतं । सिंहचन्द्रो हि तत्पार्श्वे गृहीतसंपन्नो मुनिः ॥ १६६ ॥ सिंहचन्द्रोऽप्रमादः सन्नम-
मादगुणस्थितः । स तपोनानाविधं कुर्वन् खवारणपटं समेत ॥ १६७ ॥ तुर्याश्रमोत्कर्षं पुनः प्राप तपोबलात् । सार्धदुषीरसूक्ष्मादि-
पदार्थविषये मतः ॥ १६८ ॥ मनोहरवनोद्याने रावदशोकश मुद्रा । सिंहचन्द्रं तपःसंस्थं दृष्ट्वा तं वदितुं गता ॥ १६९ ॥ नत्वेति तं

भाईको प्रदान किया एवं मुनिराज पूर्ण चन्द्रके चरणकमलोमें दिगम्बरी दीक्षा धारण करली २६५
मुनिराज सिंहचन्द्रने जिस समय विकृता कषाय आदि प्रमादोंका नाश किया उससमय वे अप्र-
मत्त गुणस्थानके पात्र बनगये । वे अनेक प्रकारके तपोंका आचरण करने लगे जिससे तपोंके प्रभा-
वसे उन्हें चारण श्रद्धि प्राप्त हो जानेके कारण वे चारण श्रद्धिधारी मुनिराज बन गये । तपके
बलसे उन्हें मनः पर्यय नामका चौथा ज्ञान प्राप्त हो गया जिससे ढाई द्वीपके अंदर रहनेवाले शुभ
पदार्थोंको वे अच्छी तरह जानने लगे ॥ १६५—१६७ आर्थिका रामदत्ताने मनोहर नामके वनमें
तप करते हुए मुनिराज सिंहचन्द्रको देखा इसलिये प्रेम पूर्वक बन्दना करनेके लिये वह उनके पास
गई भक्तिपूर्वक उन्हें नमस्कार किया मुनिराज सिंहचन्द्र आर्थिका रामदत्ताके उसीभवके बड़े पुत्र
थे इसलिये उन्हें देख पुत्रस्नेहसे उसका हृदय उमड़ आया । एवं मोहसे गदगद हो वह इसप्रकार
स्तुति करने लगी—

मुने ! युवा अवस्थामें राज्यका त्याग कर आपने यह मुनि मुद्रा धारण की है इसलिये आपके
लिये धन्यवाद है तुम राजा सिंहसेनके वंश रूपी कमलके लिये सूर्य समान हो । विद्वान् भव्यरूपी
चकोर पक्षियोंके लिये चन्द्रमाके समान हो और संसारसे पार होने वाले महापुरुष हो । वस इस
प्रकार स्तुतिकर आर्थिका रामदत्ता मुनिराज सिंहचन्द्रके समीप बैठ गई एवं बार बार आदर
पूर्वक उनके तपकी कुशल पूछने लगी तथा उसने इसप्रकार मुनिराजसे कहा—

सुतं स्नेहाद्रामदत्ता नयत्स्तुतिं । धन्यस्त्वं यौधने साधो ! राज्यं त्यक्त्वा भवेद्यतिः ॥ १७० ॥ सिंहसेनान्वयाभ्योजकर्मसाक्षी कला-
निधिः । भव्यविद्वज्जकोरेषु त्वं संसारतरस्तरां ॥ १७१ ॥ स्तुत्वा स्थित्वा तदभ्यर्णे कुशलं तत्तपोविधी । भन्वयुकादरादिव्या राम-
दत्ता मुहुर्मुहुः ॥ १७२ ॥ पप्रच्छेति मुनिं भूयः सा साधो ! तव बांधवः । पूर्णचन्द्राभिधो राज्यं धर्मे त्यक्त्वा भुनक्त्यर्थं ॥ १७३ ॥
सुखाकांक्षी स किं धर्मे गृहीष्यत्यथ वा नहि । ब्रूहि त्वं ज्ञानमार्गेण यायातथ्यं तपोनिधे ! ॥ १७४ ॥ सिंहचन्द्रो मुनिः प्राह युष्मद्धर्मं
गृहीष्यति । रामदत्ता पुनः प्राह कथं साधो ! निगद्यतां ॥ १७५ ॥ मुनिः प्राह भवांस्तस्य श्रुत्वा तात्मान्निरूपितान् । तदग्रे ज्ञानमार्गेण कथं

मुनिनाथ ! तुम्हारा बन्धु राजा पूर्णचन्द्र धर्मकी कुछ भी पर्वा न कर राज्य सुख भोग रहा है वह मुझे विषय सुखोंका प्रेमी जान पड़ता है कृपाकर कहिये कि वह पवित्र धर्मको धारण करेगा या नहीं क्योंकि तुम दिव्य ज्ञाननेत्रके धारक महापुरुष हो इसलिये अपने दिव्य ज्ञानके द्वारा यह बात मुझे समझा दीजिये ॥ १६८—१७३ ॥ उत्तरमें मुनिराज सिंहचन्द्रने कहा वह नियमसे जैन धर्मको धारण करेगा इस बातमें कोई सन्देह नहीं । रामदत्ताने फिर पूछा—प्रभो ! किस उपायसे वह जैनधर्म धारण करेगा कृपाकर कहिये । उत्तरमें पुनः मुनिराज सिंहचन्द्रने कहा—

मैं अपने अवधिज्ञानसे पूर्णचन्द्रके भवोंका वर्णन करता हूँ तुम ध्यान पूर्वक सुनो और पूर्ण चन्द्रको जाकर कह दो । तुम निश्चय समझो जिससमय वह अपने पूर्व भवोंको सुनेगा राज्य सुखमें अतिशय मग्न रहने पर भी वह नियमसे संसारसे विरक्त हो जायगा और दिगंबरों कीक्षा धारण करेगा । मुनिराज सिंहचन्द्रसे यह राजा पूर्णचन्द्रके वैराग्यका उपाय सुन आर्यिका रामदत्ता बड़ी प्रसन्न हुई और बड़े आदरसे उसने मुनिराजसे यह कहा—कृपाकर राजा पूर्णचन्द्र के पूर्वभवोंको आप कहिये मैं सुननेके लिये तयार हूँ । उत्तरमें मुनिराज सिंहचन्द्रने कहा—मैं खुला सा रूपसे राजा पूर्णचन्द्रके पूर्वभवोंको कहता हूँ तुम ध्यान पूर्वक सुनो—

यन्तु सुभावतः ॥१७६॥ श्रुत्वा स्वभक्तमन्यं निर्विषणो भवसागरे । अधिगम्याधिपत्ये स वैराग्यं प्रव्रजिष्यति ॥१७७॥ तद्ध्वं तद्भवसंबंधं
 शृणोमि सादरं यतः । तदा प्राह पुनः सुष्ठु, शृणुतास्य भवस्थितिः ॥१७८॥ जंबूद्वीपेन विख्याते भारते विषयो महान् । कोशलः कुशलैर्लोकैः
 संपूर्णः सम्पदा भूतः ॥ १७९ ॥ बृद्धगामः समाकीर्णो बृद्धग्रामो मनोहरः । मृगायणाभिधस्तत्र विद्यते घाडवाग्रिमः ॥१८०॥ धर्मपत्नी च
 तस्यैव बभूव मधुराहुया । स्वर्गचर्यसमद्वर्णा भर्तुः स्वेच्छानुचारिणी ॥१८१॥ बभूव वारुणीनाम्ना तयोः पुत्री विशालधीः । मृगायणो
 ऽयं कालांति मृतो मागधियो ध्रुवः ॥ १८२ ॥ अथ प्राक् पुरुदेवस्य भक्तये निर्मितामरैः । साकेता द्विरसौ स्त्रियुक् योजनेर्भाति भूतले ॥
 १८३ ॥ तत्र राजा गिषन्तः नध्वंसी सामन्तसेवितः । रराजातिबल्लो नाम्ना तिमोशब्दनो महान् ॥ १८४ ॥ तस्य रामा रमेयासौत्सुम-

इसी जंबूद्वीपके भरतर्षात्रमें एक कोशल नामका महादेश है जो कि विद्वान् लोगोंसे परिपूर्ण है और संपदाका खजाना है । कोशल देशमें एक बृद्धग्राम नामका महामनोहर नगर है जो कि सब बातोंमें बृद्ध पुरवासी जनोंसे भरा था । बृद्धग्राम नगरमें एक मृगायण नामका ब्राह्मणोंका सरदार रहता था । उसको धर्मपत्नीका नाम मधुरा था जो कि सोना और चंपाके रङ्गके समान महामनोहर वर्णकी धारक थी और पतिकी अतिशय आज्ञाकारिणी थी ॥१७४—१८०॥ उन दोनों ब्राह्मण और ब्राह्मणिके एक वारुणी नामकी पुत्री थी जो कि अत्यन्त बुद्धिमती थी कदाचित् काल पाकर उसका पिता मृगायण मर गया ॥ १८१—१८२ ॥

इसी पृथ्वीपर एक साकेता नामकी नगरी है जिसका कि निर्माण भगवान् ऋषभ देवके समयमें उनकी भक्ति प्रगट करनेके लिये देवोंने किया था और जो बारह योजन पर्यन्त पृथ्वीपर विस्तीर्ण है । साकेता नगरीका स्वामी राजा अतिबल था जो कि अपने शत्रु राजाओंके वंशका नाश करनेवाला था । अनेक समंतोंसे सेवित था । चन्द्रमाके समान मुखसे शोभायमान और महान था ॥ १८३ । १८४ ॥ राजा अतिबलकी रानीका नाम सुमति था जो कि लक्ष्मीके समान परम सुन्दरी

त्योख्या पिकस्वना । श्यामा रक्ताधरा हंसगतिर्गंभीरगोर्वरं ॥ १८५ ॥ तयोर्हिरण्यवत्याख्या पुत्री जाता मृगायणः । भोगोदयविपा-
केन स्त्रीत्वं प्राप्नोति मानवः ॥ १८६ ॥ बिवादिनो वदंतीत्यं नास्तिकैकांतदूषयः । गोधूमादिसुजातीनां प्रादुर्भावो हि नान्यथा ॥
१८७ ॥ नरत्वं स्त्री नरः स्त्रीत्वं पशुर्नृत्वं नरस्तथा । प्राप्नुयान्नविचारेण क्षेत्रधान्यादिवदुगतिः ॥ १८८ ॥ बादिनो भो भवद्विध्वं यदुक्तं
सत्यमेव तत् । यद्धान्यमुप्यते क्षेत्रं तद्धान्योत्पत्तिरेव हि ॥ १८९ ॥ जैनाः कर्मप्रधानीयाः नानाकर्माणि संत्यजे । अभुक्त्वा तत्क्षयो
नास्ति कल्पकोटिशताधिकः १९० ॥ मातृ मक्षेत्रं समादिष्टं तत्त्वज्ञानादसंशयं । कर्मबीजोदयो यादृक् समुत्पत्तिस्तु तादृशी ॥ १९१ ॥

थी । कोकिलाके समान वचन बोलने वाली थी । श्यामा थी । लाल २ होंठोंकी धारक हंसके
समान मनोहर गतिसे चलनेवाली गम्भीर वचन बोलनेवाली और प्रशस्त थी ॥ १८५ ॥ मृगायण
का जीव ब्राह्मण, रानी सुमतिके गर्भसे हिरण्यवती नामकी पुत्री हुआ ठीक ही है । अति रूपसे
भोग विलास करनेवाला पुरुष भी स्त्री हो जाता है ॥ १८६ ॥ जो पुरुष एकांत मिथ्यादृष्टि और
नास्तिक है उनका कहना यह है कि गेहूँ आदि पदार्थोंके समानही जीव पदार्थकी उत्पत्ति होती है,
जीव पदार्थ अनादिनिधन नहीं क्योंकि वे यह मानते हैं कि क्षेत्रमें जिस प्रकार धान्यसे दूसरा धान्य
उत्पन्न होता है उसी प्रकार स्त्रीसे पुरुष पुरुषसे स्त्री पशुसे पुरुष पुरुषसे पशु स्वभावसेही उत्पन्न हो
जाता है ॥ १८७-१८८ ॥ ग्रन्थकार इसका उत्तर देते हैं कि तुम्हारा एकांत मिथ्यादृष्टि बादियोंका
कहना कथांचित ठीक है क्योंकि क्षेत्रमें जो धान्य बोया जाता है उसी धान्यकी उत्पत्ति होती है जैन
सिद्धांतके अनुयायी पुरुष कर्मको प्रधान मानते हैं । वे कर्म अनेक प्रकारके हैं । बिना उनका फल
भोगे करोड़ों कल्पकाल क्यों न बीत जाय उनका क्षय नहीं हो सकता ॥ १९० ॥ यह निश्चय है तत्त्व
ज्ञानियोंने अपने तत्त्व ज्ञानसे आत्माको क्षेत्र कहा है उसमें जैसा कर्म रूपी बीज पड़ता है वैसी
ही उत्पत्ति होती है अर्थात् पुरुषपनेका कारण यदि कर्म उत्पन्न होगा तो पुरुष उत्पन्न होगा ।

अतः कर्मविदावेन नानाथोन्नितवमाश्रयेत् । तत्सम्बन्धक्षये मोक्षो जीवः स्यात्परमं महः ॥ १६२ ॥ इत्यलं कुविवादेन धर्मध्वंसो यतो भवेत्
तत्स्वज्ञानश्रया ये तु वादं कुर्यन्ति जातु न ॥ १६३ ॥ सत्यज्ञानं विवादे सो मानवानां भवत्यरं । तत्क्षये हानसंसिद्धिनिर्धूमप्रदीपवत्
॥ १६४ ॥ सा कमाद्यौवनं प्राप्ता ललितांगी ललद्गतिः । लोलदृक् पीथरस्थूलनितम्बोद्गाराशालिनी ॥ १६५ ॥ सुरम्यो विषयोऽथास्ति

और स्त्री पनेका कारण कर्म होगा तो स्त्री होगी इसलिये यह बात निर्विवाद रूपसे सिद्ध हो जाती है कि जब तक इस जीवके साथ कर्मका संबंध रहता है तब तक यह अनेक प्रकारकी योनियोंमें घूमता फिरता है किन्तु जिस समय उस कर्मके संबंधका सर्वथा नाश हो जाता है उस समय जीवको मोक्षकी प्राप्ति होजाती है जो मोक्ष एक उत्कृष्ट रोज कहा जाता है ॥ १६१—१६२ ॥ वस विशेष कुविवादके करनेकी कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि छोटे विवादसे वास्तविक धर्मका नाश हो जाता है । जो पुरुष तत्त्व ज्ञानी हैं वे कभी भी किसी प्रकारका विवाद नहीं करते ॥ १६३ ॥ जिस प्रकार धूँवाँके रहते दीपकका प्रकाश भदमेला रहता है किन्तु जिस समय धूँआ नष्ट हो जाता है उस समय दीपकका प्रकाश उज्ज्वल हो जाता है उसी प्रकार विवाद करनेसे मनुष्योंमें अज्ञानकी वृद्धि होती है और विवाद न करनेसे ज्ञानकी भले प्रकार सिद्धि होती है ॥ १६४ ॥ रुगायणका जीव कन्या हिरण्यवती क्रमसे युवति होगई । उसका समस्त अङ्ग सुडौल मनोहर था । लीला पूर्वक वह गमन करने वाली थी । चंचल नेत्रोंकी धारक थी एवं स्थूल स्तन और नितम्बोंके भारसे शोभायमान थी ॥ १६५ ॥

इसी पृथ्वीपर एक सुरम्य नामका देश है जो कि यथार्थ नामका धारक है । सुरम्य देशके अन्दर एक पोदन नामका नगर है जो कि अपनी सुन्दरतासे राजराजपुर—कुबेरपुरी अलकाकी शोभा धारण करता है ॥ १६५ ॥ पोदन पुरका स्वामी राजा पूर्ण चन्द्र था जो कि यशस्वी था । पूर्ण

नामान्वर्थं समुद्रहन् । पोदनाख्यं पुरं तत्र राजराजपुरोपमं ॥ १९६ ॥ तत्र राजा यशःसंवः पूर्णचन्द्राभिधोऽजनि । पूर्णचन्द्रमुखः पूर्ण
 रामाभोगपुरंदरः ॥ १९७ ॥ ददातिवलो राजा पूर्णचन्द्रनृपाय तां । हिरण्यादिचतोमाशु पङ्कजारुणपत्तलां ॥ १९८ ॥ प्रगल्भया तया
 साकं रेमे राजा चिरं सुखं । भोगावच्छिन्नमात्रेण कजमृद्वारवर्णया ॥ १९९ ॥ भुञ्जानयोस्तयोः सीम्यं सुता जाता विधेर्वशात् ।
 मधुरा ब्राह्मणी सैव रामदत्ता त्वमुत्तमा ॥ २०० ॥ भर्ता मातृत्वमायाति जाया पुत्रो भवेद्गो । पुत्री पुत्रत्वमाप्नोति धिक् धिक् संसार-
 चिह्नता ॥ २०१ ॥ भद्रमित्रवर्णिक् योऽहं सिंहचन्द्राभिधस्तत्र । पुत्रो भूत्वातिमोहेन मुनींश्चपदमाश्रितः ॥ २०२ ॥ तथैव प्राग्भवे याऽभूत्
 वारुणी पुलिका शुभा । सा मृत्वा पूर्णचन्द्राख्यो मेऽनुमोऽभूत्तवोदरे ॥ २०३ ॥ त्वत्पिपता पूर्णचन्द्रो यः पोदनाधीश्वरो हिं सः । त्यक्त्वा

चन्द्रमाके समान मुखसे शोभायमान था ॥ १९६ ॥ राजा अतिवलने कमलके समान लाल र
 चरणोंसे शोभायमान कन्या हिरण्यवतीका विवाह राजा पूर्णचन्द्रके साथ कर दिया ॥ १९७ ॥ १९८ ॥
 कन्या हिरण्यवती अपना प्रौढ अवस्थासे शोभायमान थी । कमलके समान कोमल और सुन्दर वर्ण
 की धारक थी इस लिये राजा पूर्णचन्द्रने चिर काल तक उसके साथ मनमाना सुख भोगा ॥ १९९ ॥
 बहुत दिनतक भोग विलास करते २ उन दोनोंके एक पुत्री हुई जो कि मधुरा ब्राह्मणीका जीव था
 वही मधुरा ब्राह्मणीका जीव तू रामदत्ता है ॥ २०० ॥ यह संसारकी बड़ी भारी विचित्रता है कि
 इसमें जो अपना पति है वह तो माता हो जाता है । स्त्री पुत्री हो जाती है और पुत्री पुत्र बन
 जाता है इसलिये ऐसे दुःखप्रद संसारके लिये सहल वार धिक्कार है ॥ २०१ ॥ मेरा तेरे ऊपर
 विशेष मोह था इसलिये भद्रमित्र नामका जो मैं सेठ पुत्र था वह तेरा सिंहचन्द्र नामका मैं पुत्र
 हुआ हूँ जो कि मैं इस संसारसे विरक्त हो मुनि बन गया हूँ ॥ २०२ ॥ पहिले भवमें जो तुम्हारे
 वारुणी नामकी कन्या थी वही मरकर तुम्हारे उदरसे उत्पन्न मेरा छोटा भाई पूर्णचन्द्र हुआ है ।
 ॥ २०३ ॥ तुम्हारा पिता राजा पूर्णचन्द्र जो कि पोदन पुरका स्वामी था समस्त राजपाटको छोड़

राज्यं प्रववाज भद्रबाहुसमीपके ॥ २०५ ॥ आचयोः स गुरुर्जने सर्वावधिविलोचनः । आर्यिकादांतमत्पन्ते तव मातापि दीक्षिता ॥
 २०५ ॥ त्वत्पतिः सिंहसेनास्यो मृत्वा दृष्टोऽहिना नृपः । करीन्द्रोऽशनिघोषाख्यः प्रौढो घन इवापरः ॥ २०६ ॥ भूत्वारण्ये भ्रमन् मत्तो
 मःमालोक्य जिघांसया । धावतिस्म मयाकाशे स्थित्वाऽ सौ प्रतिबोधितः ॥ २०७ ॥ मयोक्तं पूर्वसंबन्धं श्रुत्वा सम्यक् प्रबुद्धवान् । संयमा
 संयमं भव्यः कुम्भी सद्यः समग्रहीत् ॥ २०८ ॥ स्थिरचित्तः सनिर्वैगो ज्ञात्वा देहाद्यसारतां । कृत्वा मासोपवासादीन् शुष्कराणि भक्ष
 यन् ॥ २०९ ॥ कुर्वन्तेव महासत्त्वश्चिरं धीरतरं तपः । कृशोऽभूच्छक्तिहीनत्वात्पयोधिरिव निर्जलः ॥ २११ ॥ अथो यः पूर्वैर्द्विर् सप्तो
 कर मुनिराज भद्रबाहुके समीप दिगम्बरो दीक्षासे दीक्षित होगया था वही अवधि ज्ञानसे शोभा-
 यमान हमारा गुरु हुआ है । तुम्हारी माताने भी आर्यिका दांत मतिके समीपमें आर्यिकाके व्रत
 धारण कर लिये हैं । तुम्हारा पति सिंहसेन जो कि सपने इस लिया था अशनिघोष नामका
 विशाल हाथी हुआ जो कि साक्षात् काला मेघ सरीखा जान पड़ता था । वह इसी वनमें एक
 दिन मदोन्मत्त हो घूम रहा था कि उसने मुझे देखा एवं एकदम वह मुझपर मारनेके लिये रूर
 पड़ा । मैं चारण ऋद्धिका धारक था इसलिये मैं आकाशमें अवर स्थित होगया एवं मैंने उसे
 सुन्दर वाक्योंमें पूर्व जन्मका वृत्तान्त सुनाकर प्रतिबोध दिया । जिस समय उसने मुझसे अपने पूर्व
 भवका वृत्तान्त सुना तो वह एक दम प्रतिबुद्ध होगया और मेरे उपदेशानुसार उसने शीघ्रही संय-
 मासंयम-देश चरित्र धारण कर लिया ॥ २०४—२०८ ॥ वह अशनिघोष हाथी उस दिनसे स्थिर
 चित्त होगया । शरीर आदिको असार जानकर वह एक दम विरक्त होगया । एकमास तो कभी एक
 पक्ष आदिका उपवास करने लगा । जीव हिंसाके भयसे सूखे पत्ते खाने लगा इस प्रकार अत्यन्त
 बलवान भी वह चिर काल तक घोर तप तपनेके कारण एकदम कृश होगया इसीलिये जिस
 प्रकार जल रहित समुद्र शोभा नहीं पाता उसी प्रकार शक्तिहीन वह हाथी भी शोभायमान नहीं
 जान पड़ता था ॥ २०९—२१० ॥

मृत्वाऽभूच्चमरो मृगः । पुनर्मृत्वा स संजहो कुरुट्ठाहिः क्रुधान्वितः ॥ २११ ॥ अन्यथा स गजस्तोयं पानुं मासोपवासवान् । यूपके सरिणी नाम सरिस्तीर्थे प्रविष्टवान् ॥ २१२ ॥ क्षामकायोऽपतत्तल कर्म कुञ्जराधिपः । सर्पस्तं पतितं दृष्ट्वा पूर्ववैराच्चुकोप सः ॥ २१३ ॥ आसह्य मस्तकं तस्य पीलोः परमधर्मिणः । दन्द्शीतिरुम स व्यालः सांहास्तद्विजहाति न ॥ २१४ ॥ सारङ्गस्तद्विषेणैव समाधि मरणादभूत् । विमाने श्रीधरोदेवः सहस्रारे रविप्रभे ॥ २१५ ॥ सचिवः सिंहसेनस्य धम्मिल्लारूपश्च स मृतः । तत्रैव काननै सोऽभूत्

मन्त्री सरयधोषका जीव जो मर कर सर्प हुआ था और राजा सिंहसेनको काटनेसे वह उनका वैरी होचुका था अपनी सर्पकी पर्यायसे मरकर वह चमर मृग हुआ था एवं पुनः वहांसे मरकर क्रोधके कारण वह कुरुट जातिका सर्प होगया ॥ २११ ॥

एक दिनकी बात है कि एक मासका उपवासी वह आशनिघोष हाथी यूपकेसरिणी नामक नदीके किनारे जल पीनेको अभिलाषासे गया । वह एकदम कृशशरीरका धारक था इसलिये उसके गाढ़े कीचड़में फसकर गिर गया । उसके पूर्वभवका वैरी वह सर्प भी वहीं पर उत्पन्न हो गया वस हाथी अशनिघोषको देखते ही पूर्वभवके वैरसे उसका क्रोध उमड़ गया । परम धर्मात्मा उस हाथीके मस्तकपर वह चढ़ गया एवं उसे डसलिया ठीक ही है जो पापी होते हैं वे अपने पापकर्मोंको छोड़ते नहीं ॥ २१२—२१४ ॥ हाथी अशनिघोषने सर्पके तीव्र विषके कारण समाधिमरण पूर्वक अपने प्राण छोड़े एवं वह सूर्यके समान देदीप्यमान सहस्रारविमानमें श्रीधर नामका देव हो गया ॥ २१५ ॥ राजा सिंहसेनका जो धम्मिल्ल नामका मन्त्री था वह मरकर उसी वनमें जिसमें कि हाथी अशनिघोष उत्पन्न हुआ था बन्दर हो गया एवं हाथी और उसको आपस में गहरी मित्रता हो गई ॥ २१६ ॥ जिससमय बन्दरने अपने मित्र हाथीको सर्पसे डसा देखा मारे

पानरो गजसत्सवा ॥ २१६ ॥ दृष्ट्वा मित्रं गजं दृष्टं तेनाहिर्बानरेण सः । इतोऽगात्तृतीये श्वश्रे कुर्कुटः पापमाजम् ॥ २१७ ॥ अन्त
मुहूर्तमात्रेण सूपशदशिलातलात् । समुत्थाय लुलोकासौ चिरं स्वर्गश्रियं सुरः ॥ २१८ ॥ कौतस्कुटः पसरः पंक्तिर्विमानाश्च कुतस्तरां
शम्भुकोट्या नीचालिर्दृश्यते शशरो नु वा ॥ २१९ ॥ देवं श्रान्तिगतं दृष्ट्वा समुच्यस्तं सुरांगनाः । ओ भो नाथ ! घयं रम्भाः स्मस्तवैव
सुयवितः ॥ २२० ॥ भावतोऽयं सुरावासो यद्वत्तयं तवैव तत् । अतः किं तर्कयेद्वित्ते मामास्थं श्रान्तिमन्दिरं ॥ २२१ ॥ श्रुत्वा देवांगना
वाक्यं स दध्याविति चतसि । अदम्यं किं कृतं पुण्यं यद्वत्तवागतोऽस्म्यहं ॥ २२२ ॥ एवं चिंतयन्स्नस्य प्रादुरासोत्तृतीयद्वक् । तदैव
क्रोधके उसका हृदय पजल गया । उसने अपने मित्रका बदला लेनेके लिये उस कुर्कुट सर्पको भार
डाला जिससे वह पापी मर कर तीसरे नरकमें गया एवं राजा सिंहसेनका जीव श्रीधर देव अचरज
भरी दृष्टिसे स्वर्गको लक्ष्मीको देखकर मनही मन यह विचारने लगा—

कहांसे तो ये देवांगनाओंकी कतार आई । कहांसे ये विमान आये और अपनी ऊंचाईसे
आकाशको स्पर्शनेवाले ये बड़े २ महल कहांसे आये ? यह इन्द्रजालका खेल तो नहीं है । देव श्री
धर को स्वर्गकी विभूतिसे इसप्रकार आश्चर्यमय देखकर उसकी नियोगिनी देवियोंने कहा—

प्राणनाथ ! हम जो देवांगना दीख रही हैं वे आपकी ही स्त्रियां हैं । यह महल आपका ही है
तथा और भी जो चीजें आप देख रहे हैं सब आपकी ही हैं । आप यहांकी विभूति देख कर जो
आश्चर्य कर रहे हैं वह व्यर्थ है । आपको इसविभूतिको देखकर किसी प्रकारका भ्रम नहीं करना
चाहिये ॥ २१७—२२१ ॥ देवांगनाओंके इसप्रकार वचन सुन देव श्रीधरको बड़ा आश्चर्य हुआ एवं
वह अपने मनमें इसप्रकार विचार करने लगा—

मैंने ऐसा कौनसा ठोस पुण्य किया था जिसके कारण मैं यहां आकर उत्पन्न हुआ हूं !
उसीसमय उसके अधिज्ञान उदित होगया एवं उसके द्वारा उसने समझ लिया कि मैं जो हाथी
था वह कीचड़में फस जानेके कारण मरकर देव हुआ हूं ॥ २२२—२२३ ॥ बस वह अपने मनमें

पतितं नागं ददर्शवधिलोधनः ॥ २२३ ॥ तदा संभावयामास चेतसीति मुहुर्मुहुः । धन्यं व्रतं यतो जीवस्तिर्यगपि गुरोर्भवेत् ॥ २२४ ॥
 धन्यास्ते गुरवो भूमौ ज्ञानसारङ्गमध्यमाः । तरन्ति तारयन्त्येव नौका इव व्रतं यतः ॥ २२५ ॥ आरभ्य तद्दिनं देवो वभोज स्वर्गस्य
 असंख्यातसमुद्रेषु द्वीपेषु क्रीडयन् स्थितः ॥ २२६ ॥ क्रीडाशैलेषु देवीभिः शब्दभोगो महर्द्धिकः । रेमे तपः समुद्रतः फलं लब्ध्वा
 लसद्भुतिः ॥ २२७ ॥ चतुर्हस्तोन्नतांगं स सप्तधातुविवर्जितं । ह्रीमद्यिवभारैश्च चन्द्रमं पुण्यसंचयं ॥ २२८ ॥ अष्टादशसमुद्रायुर्मनसा
 हारमाहरन् । अष्टादशसहस्रैश्च यत्सरैः पुण्यतोऽमरः ॥ २२९ ॥ तावत्पक्षैः समुच्छ्वासं सुगन्धैश्च तदिक्रयं । कुर्वन् स्वर्गगुणपौष-
 वडा ही प्रसन्न दुःखा और बार बार इसप्रकार विचारने लगा—व्रताचरणको धन्यवाद है जिसके
 कारण तिर्यच भी जीव देव हो जाता है ॥ २२४ ॥ संसारमें वे गुरु धन्यवादके पात्र हैं जो ज्ञानरूपी
 समुद्रके अन्दर विद्यमान हैं एवं नावके समान जीवोंको संसारसमुद्रसे पार करते हैं और स्वयं भी
 पार होते हैं एवं जिनके द्वारा व्रतोंकी प्राप्ति होती है ॥ २२५ ॥ श्रीधर देवको जब अच्छी तरह
 ज्ञान होगया तब वह उसदिनसे स्वर्गकी सम्पदाको भोगने लगा । असंख्याते द्वीप और समुद्रोंमें
 जाकर क्रीडा करने लगा । वह विपुल कृद्धिका धारक श्रीधर देव अनेक क्रीडा पर्वतोंपर शब्द
 जनित भोग भोगने लगा । एवं सुन्दर कांतिका धारक वह तपसे जायमान उत्तम फलको पाकर
 सानन्द क्रीडा करने लगा ॥ २२७ ॥ देव श्रीधरका शरीर चार हाथ प्रमाण था जो कि मलमूत्र
 आदि सात धातुओंसे रहित था । चन्दनके समान महकने वाला चन्द्रमाके समान कांति वाला
 और पुण्यका समूह स्वरूप था । देव श्रीधरकी आयु अठारह सागर प्रमाण थी । अपने तीव्र पुण्य
 की कृपासे वह अठारह हजार वर्षवाद एक बार मनसे आहार ग्रहण करता था । अठारह पक्षोंके
 बाद ही वह उच्छ्वास लेता था जो कि अपनी सुगन्धिसे समस्त दिशाओंको महकानेवाला था
 एवं वह देव सदा कल्पवृक्षोंके संगृहित पुष्पोंसे बनी पुष्पमालाओंको धारण करता रहता था ।
 उसके पद्म नामकी लेश्या थी । सदा भगवान् जिनेन्द्रका वह ध्यान करता रहता था । मेरु आदिकी

भूषितः श्रीधरो मरुत् ॥ २३० ॥ पद्मलेश्यो जिनं ध्यायन् यातार्थं मेरुषु व्रजन् । नानानाट्यरसान् पश्यन् गतं कालं विवेद न ॥ २३१ ॥
 यतो मयात लेख्योऽमरबधूमुखांभोजलिह् । निकायकलरूपवान् बहुविलासिनीभोगगाक् ॥
 व्रतादक्षिलभूमिपः परमधामसौल्यालयः । अगम्यमिव किं यत्स्त्रिभुवने विधीयेत तत् ॥ २३२ ॥

इत्यार्षे श्रीबृहद्विमलनाथपुराणे भववरत्नभूषणाग्न्यायलङ्कारब्रह्मचारिकृष्णदास
 विरचिते ब्रह्ममङ्गलदाससाहाय्यसापेक्षे सिंहसेनचरश्रीधरदेवो
 त्यक्तचर्णनो नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

यात्रा करता था । नाना प्रकारके नाट्य रसोंको देखता था इसलिये उस दिव्य सुखमें इस बातका पता ही नहीं लगता था कि मेरा काल कहां बीत रहा है ॥ २३०—२३१ ॥ ग्रन्थकार व्रतकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि इस व्रत हो की कृपासे जीव देवांगनाओंके सुखकमलका आस्वादनवाला देव हो जाता है । सुन्दर शरीर कलायें और रूपका धारक होता है । भांति भांतिकी सुन्दर स्त्रियोंका भोक्ता होता है । समस्त पृथ्वीका स्वामी मोक्षसुखका स्थान होता है विशेष क्या तीनों लोकमें ऐसी कोई चीज नहीं जो इस व्रतके अगम्य हो अर्थात् व्रताचरणकी कृपासे जीवोंको सब बातें सुलभ रूपसे मिल जाती हैं । धर्मात्माओंको चाहिये कि वे व्रताचरणसे एक क्षण भी अपने चित्तको विमुख न करें ॥ २३२ ॥

इसप्रकार भट्टारक रत्नभूषणकी आम्नायके अलंकारस्वरूप ब्रह्ममङ्गलदासकी सहायतासे
 ब्रह्मकृष्णदास विरचित बृहत् विमलनाथपुराणमें सिंहसेनके जीव श्रीधर
 देवकी विभूतिका वर्णनकरनेवाला सातवां सर्ग समाप्त ॥ ७ ॥

आठवां सर्ग ।



आदिदेव परं ज्योतिः सिद्धं सर्वार्थगोचरं । शिक्षोद्धारं जगत्कारं गोपाचर्यं संस्मराम्यहं ॥ १ ॥ अथैवात्र वने व्याधो नाम्ना
शृंगालवानिति । दृष्ट्वा संपतितं नागं तुतोष हृदये निजे ॥ २ ॥ शुक्तिज्ज्ञानि रदौ तस्य भूरितेजांसि चोन्नतौ । आदाय गतवान्
सिंहपक्षने शश्वराग्रणीः ॥ ३ ॥ धनमित्रोऽस्ति तत्रैव राजश्रेष्ठो शुभाशयः । ददौ तस्मै स तौ तानि बहुमूल्यानि चादरात् ॥ ४ ॥ पूर्ण-
चन्द्रमहीशाय सोऽपि श्रेष्ठो ददौ मुदा । शुक्तिज्ज्ञानि च दन्तौ द्वौ शुक्तेजांसि सुन्दरौ ॥ ५ ॥ पूर्णचन्द्रोऽपि तद्व्या व्याधात्पादचतुष्टयं

जो भगवान् ऋषभदेव उत्कृष्ट ज्योतीस्वरूप हैं । समस्त कर्मों से रहित सिद्धस्वरूप हैं ।
समस्त पदार्थों के जानकार सर्वज्ञ हैं । जगतमें वास्तविक शिक्षा के प्रदान करनेवाले हैं और गोप-
बड़े २ मुनियों से स्तुत है उन भगवान् ऋषभदेव को मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ जिस
वनमें हाथी अशनिघोष मरा था उसी वनमें शृंगालवान नामका एक भील रहता था । हाथी को
इस प्रकार मरा देख उसे बड़ा हर्ष हुआ । अत्यन्त देदीप्यमान गजमोती और दांत उसने ले लिये
और वह राजा पूर्णचन्द्र की राजधानी सिंहपुर की ओर चल दिया ॥ २—३ ॥ सिंहपुरमें उस समय
एक धनमित्र नामका सेठ रहता था जो कि राज सेठ था और उत्तम हृदयका था । भीलने दोनों
दांत और गजमोती जो कि बहुमूल्य थे उस सेठ को जाकर दे दिये ॥ ४ ॥ राजसेठ धनमित्रने
भी उसे बहुमूल्य वस्तु के रूप में राजा पूर्णचन्द्र की भेंट कर दिये उन्हें देखकर पूर्णचन्द्र बड़ा प्रसन्न
हुआ क्योंकि वे गजमोती के समान देदीप्यमान थे और दोनों दांत परम सुन्दर थे
॥ ५ ॥ रति प्रेमी और शोभामें कुबेर की उपमा धारण करनेवाले राजा पूर्णचन्द्रने उन दोनों दांतों

पत्यं वस्थ रतिप्रेमा राजराजाधिकप्रभः ॥ ६ ॥ शुक्तिजानां विधायशु हारं चेतोहरं निजे । आससंजोरलि प्रीत्या संसारस्येदृशी गतिः ॥ ७ ॥ अतो मातर्ममे तोष को विदध्या इतीच्छया । धनं धन्यं सुतस्यादि कस्याभूद्रूतमे पद ॥ ८ ॥ वल्लभः कस्यचित्कोऽपि नल्लि स्वार्णहते ध्रुवं । अतस्तु न संसारे जन्मनाशादिदुःखदः ॥ ९ ॥ उक्त्वैतत् संसृतेर्मांश्च योषमाश्रितवान्मुनिः । रामदत्तापि तच्छ्रुत्वा विधावैराग्यसंगतः ॥ १० ॥ जगामानुजपुत्रस्य प्रतिबोधाय वेगतः । स्नेहतस्तत्र गत्वाशु बोधयामास तं सुतं ॥ ११ ॥ नाना वेदैर्यदा सोऽपि प्रतिबोधं हि नागतः । तदास्य मुनिना प्रोक्तं कथां सा समचीकथत् ॥ १२ ॥ वृत्तिं ध्रुत्वा भवोद्भूतां भव्यत्वान्मृष के तो पलङ्कके चार पाये वनवालिये और गजमोतियोंका महामनोहर हार वनवालिया जोकि प्रीति पूर्वक अपने गलेमें पहिना ठीक ही है संसारकी यही दशा है ॥ ६—७ ॥ माता! तुम्हीं कहो संसार की यह भयंकर दशा देख कौन बुद्धिमान इसमें सन्तोष धारण कर सकता है । एवं धन धान्य पुत्र ली आदि किसके संसारमें हुए हैं । तुम निश्चय समझो विना स्वार्थके कोई भी किसीसे संसारमें प्रेम करना नहीं चाहता क्योंकि यह संसार असार है और जन्म मृत्यु आदि दुखोंका देनेवाला है ॥ ८—९ ॥ मुनिराज सिंहसेन सबोंकी पूर्वभावलि सुनाकर चुप होगये आर्यिका रामदत्ता भी उसे सुनकर मन वचन कायसे एकदम विरक्त हो गई ॥ १० ॥ मोहसे मोहित हो आर्यिका रामदत्ता अपने छोटे पुत्र पूर्णचन्द्रके प्रतिबोधनेके लिये शीघ्र ही सिंहपुरकी ओर चल दी और राजा पूर्णचन्द्रको अनेक प्रकारसे प्रतिबोधने लगी परन्तु राजा पूर्णचन्द्र संसारमें एकदम लित था इस लिये आर्यिका रामदत्ताके वचनोंका उसपर रंचमात्र भी असर नहीं पड़ा । जब आर्यिका रामदत्ता ने यह समझ लिया कि—

यह किसी प्रकारसे प्रतिबुद्ध होना नहीं चाहता तब उसने जो मुनिराज सिंहचन्द्रने राजा पूर्णचन्द्रके पूर्व भवका वृत्तांत कहा था कह सुनाया ॥ ११—१२ ॥ राजा पूर्णचन्द्र भी भव्य पुरुष

पुङ्गवः । संसारानित्यतां चिंत्य विरागत्वमुपागतः ॥ १३ ॥ गृहीतधर्मतत्त्वोऽसौ चिरं राज्यमपालयत् । सम्यक्त्वाल्लंकृतांगः सन् कामिनीवल्लभोभूत् ॥ १४ ॥ रामदत्तापि कालांते निदानमकरोदिति । एतेषां मे पुनर्भूयात्संयोगः स्नेहतो ध्रुवं ॥ १५ ॥ महाशुक्रं विमानेऽभूद्भास्करे भास्कराक्षयः । ऋतुचन्द्रसमुद्रायुः पद्मलेश्यो हिमद्युतिः ॥ १६ ॥ षोडशायुतवर्षेभ्यः मानसाहारमाहरन् । पक्षैः षोडशभिर्देवैः श्वसन् विक्रियभूषितः ॥ १७ ॥ चतुर्बाहुप्रमाणांगोऽसंख्यद्वीपाविष्यु घञन् । यातार्थमप्सरोब्रातपरिषीतोऽरुणप्रभः ॥ १८ ॥ पूर्णचन्द्रोऽपि तत्रैव लेखलोके वृषोदयात् । वैदूर्यं व्योमन्याने च शैडूर्याख्योऽमरोऽभवत् ॥ १९ ॥ सिंहचन्द्रमुनीन्द्रोऽपि तपस्तप्त्वातिदुष्करं । प्रीतिपरविमानेऽभूदूर्ध्वप्रवेयकोर्ध्वके ॥ २० ॥ एकत्रिंशत्सगिष्ठायुः पद्मः श्वभ्रकावधिः । शुक्ललेश्यस्तुषाराभो बाहुसार्धैकदेहभाक् ॥ २१ ॥
 थे जिस समय उन्होंने अपने पूर्व भवका वृत्तांत सुना वे एक दम संसारसे भयभीत होगये । उसी समय अपने मनमें संसारकी अनित्यता विचारने लगे एवं परिणामीमें सदा वैराग्य धारण कर ही राज्य करते रहे ॥ १३ ॥ धर्मात्मा होकर उन्होंने बहुत काल तक राज्यका पालन किया एवं अनेक स्त्रियोंके प्यारे होकर भी उन्होंने अपनी आत्मा सम्यग्दर्शनसे ही अलंकृत रखी ॥ १४ ॥ मृत्युके समय आर्यिका रामदत्ताने मोहवश यह निदान बांध लिया कि इन पुत्रोंके साथ फिर भी मेरा सम्बन्ध हो । वह मरकर महाशुक्र स्वर्गके भास्कर नामक विमानमें भास्कर नामका देव होगया जो कि सोलह सागरकी आयुका धारक था । पद्म लेश्यासे शोभायमान था । चन्द्रमाके समान मनोहर था । सोलह हजार वर्षोंके बाद वह एकवार मनसे आहार ग्रहण करता था । सोलह पक्षोंके बाद उसास लेता था । विक्रिया शक्तिका धारक था । चार हाथ प्रमाण शरीरका धारक था । अनेक भांगनाओंसे मण्डित हो असंख्याते द्वीप और समुद्रोंमें यात्रा करता था एवं सूर्यके सगान देदीप्यमान था । ॥ १५—१८ ॥ राजा पूर्णचन्द्र भी पुण्यके उदयसे उसी स्वर्गके वैदूर्य नामक विमान में वैदूर्य नामका देव हुआ था । मुनिराज सिंहचन्द्रने भी घोर तप तपा और आयुके अन्तमें मर कर वे उर्ध्व प्रवेयकके प्रीतिकर विमानमें जाकर अहमिन्द्र होगये जो कि इक्कीस सागरकी आयुके

अहमिन्द्रत्वमाप्नो भुजक्तिस्म शिवाच्छिवं । किञ्चिदूनं जिनध्यानध्यायी प्रीतिकरोऽपरः ॥ २२ ॥ रूप्याद्रिदक्षिणश्रेण्यां विद्यतेऽथ पुरं परं । धरिणीतिलकाख्यं वै धारिण्यास्तिलकोऽनुस्वित् ॥ २३ ॥ तत्रैव नायकोऽद्यादिवेशाख्यः खेचराधिपः । समास्ते बहुविद्येनस्तस्य भार्या सुलक्षणा ॥ २४ ॥ महाशुकविमानात्तस्य पतिस्तस्याऽऽपि । मासुराख्यः सुरश्च्युत्वा श्रीधराख्या सुता तयोः ॥ २५ ॥ समस्तयन्या पुरी तत्र बहुरत्नालकाभिधा । वर्षाकाख्यः पतिस्तस्या बभूव स्मरविग्रहः ॥ २६ ॥ तस्मै दत्ता सुता पिता श्रीधराख्या दृढस्तनी धारक थे । छठे नरक तकके पदार्थोंको जाननेकी शक्ति रखनेवाले अवधिज्ञानसे शोभायमान थे । शुक लेश्याके धारक थे । तुषार—बरफके समान उज्ज्वल थे । डेढ़ हाथ प्रमाण उनका शरीर था एवं वे मुनिराज सिंह चन्द्रके जीव प्रीतिकर देव अहमिन्द्र हो मोक्षसे कुछ ही कम उर्ध्व प्रवेयकके सखका आस्वादन करने लगे और हृदयमें सदा भगवान् जिनेन्द्रका ध्यान करते २ सुखसे वहां रहने लगे ॥ २६—२२ ॥

इसी पृथ्वीके रूपाचल पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें धरणी तिलक नामका मनोहर पुर है जो कि अपनी अद्वितीय शोभासे पृथ्वीका तिलक ही जान पड़ता है ॥ २३ ॥ धरिणी तिलकपुरका स्वामी राजा अतिवेग था जो कि अनेक विद्याओंका पारगामी था । राजा अतिवेगकी स्त्रीका नाम सुलक्षणा था । महाशुक विमानसे आर्यिका रामदत्ताका जीव वह भास्कर देव चया और उसके गर्भमें आकर श्रीधरा नामकी पुत्री हुआ ॥ २४ । २५ ॥

उसी रूपाचल पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें एक अलका नामकी दूसरी पुरी है जो कि नाना प्रकारके रत्नोंका स्थान है । उस पुरीका रक्षण करने वाला राजा दर्शक था जो कि कामदेवके समान परम सुन्दर था ॥ २६ ॥ जिस समय कन्या श्रीधरा दृढ स्तनी पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखसे शोभायमान स्थूल नितम्ब और कृश कटिकी धारक पूर्ण युवती होगई राजा अतिवेगने उसका

। पूर्णचन्द्रानना स्थूलनितम्बा श्यामकोदरी ॥ २७ ॥ भुजानयोस्तयोः सौख्यं वैदूर्याधिपतिस्ततः । व्युत्वा पुत्रो धमूयेति क्वाता नाम्ना यशोधरा ॥ २८ ॥ नवयौवनसंपन्ना मधुश्यामा विशालदृक् । विततोरेनितम्बाभ्यां मथराभूद्भूषणता ॥ २९ ॥ भास्कराख्यं पुत्रं देवपुराभं स्मरते महत् । सूर्यावर्ताभिधी गता तत्रासोत्स्मरसुन्दरः ॥ ३० ॥ पितृभ्यां यौवनशाल्यां तस्मै दत्तायशोधरा । सोऽपि रेमे तथा साकं रोहिण्येव बलानिधिः ॥ ३१ ॥ गर्भे श्रीधरदेवोऽयं भुजत्वा नाकसुखं ततः । व्युत्वा तयोः सुतोज्ज्वलं रश्मिवेगाधिपः सुधीः ॥ ३२ ॥ कदा

विवाह अलकापुरीके स्वामी राजा दर्शकके साथ कर दिया ॥ २७ ॥ राजा दर्शक और रानी श्रीधरा दोनोंही सानन्द विषय सुखोंका अनुभव करने लगे । राजा पूर्णचन्द्रका जीव वैदूर्य देव वहांसे चया । रानी श्रीधराके गर्भमें आकर यशोधरा नामकी पुत्री हुआ । जो पुत्री खिलते हुए नवीन यौवनसे शोभायमान थी । पतली कटिकी धारक थी । उसके दोनों नेत्र विशाल थे । विशाल स्तन और नितम्बोंके कारण वह मंद मंद रूपसे गमन करनेवाली थी और चन्द्रमाके समान अतिशय शोभायमान थी ॥ २८—२९ ॥

इसी पृथ्वी पर एक भास्कर नामका पुर है जो कि अपनी अद्वितीय शोभासे स्वर्गपुरकी समानता धारण करता है । उस भास्कर पुरका रक्षण करनेवाला उस ममथ राजा सूर्यावर्त था जो कि कामदेवके समान परम सुन्दर था ॥ ३० ॥ जिससमय कन्या यशोधराके पिताको यह ज्ञात हो चुका कि कन्या यशोधरा पूर्ण युवती होगई है तो उन्होंने उसका विवाह राजा सूर्यावर्तके साथ कर दिया एवं राजा सूर्यावर्त भी जिस प्रकार चन्द्रमा रोहिणीके साथ रमण क्रीडा करता है उसी प्रकार युवती यशोधराके साथ मनमानी रमण क्रीडा करने लगा ॥ ३१ ॥ राजा सिंहसेनका जीव वह श्रीधर देव स्वर्गोंके अनुपम सुख भोगकर वहांसे आयुके अन्तमें चया और रानी यशोधराके गर्भमें अवतीर्ण हो रश्मिवेग नामका पुत्र होगया ॥ ३२ ॥ एक दिन राजा सूर्यावर्तको मुनिचन्द्र

चिरमुनिचन्द्राख्यो मुनिधर्मानुशासनात् । सूर्यावर्तौ नृपस्त्यक्त्वा राज्यं संयममग्रहीत् ॥ ३३ ॥ तद्वियोगोत्थदुःखेन विक्लवा सा यशोधरा । दीक्षां समग्रहीत्वाकाङ्क्षवभोगांगनिस्पृहा ॥ ३४ ॥ श्रुत्वा जामातृपुत्र्योश्च दीक्षाप्रदणमुत्तमं । ओधरा संयमं प्रापद्गुणवत्यायि कांतिके ॥ ३५ ॥ रश्मिवेगोऽधिगम्याशु राज्यं कामाधिको वभौ । भुञ्जन् पुराकृतं पुण्यं पुण्यचेताः प्रसन्नधीः ॥ ३६ ॥ अन्यदा रश्मिवेगोऽगासिद्धकूटजिनालयं । वदितुं क्रावितुं चैव मज्ज्याःस्थुः पुण्यबुद्धयः ॥ ३७ ॥ हरिचन्द्राह्वयं तत्र दृष्ट्वा चारणसंयमं । पुरस्तादसं नामके मुनिराजके दर्शनं होगये । उनसे मुनिधर्मका उपदेश सुनकर उन्हें संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य होगया । राज्यका सर्वथा परित्याग कर दिया और दिगम्बरी दीक्षा धारण करली ॥ ३३ ॥ राजा सूर्यावर्त जब मुनि बन गये तो रानी यशोधराको बड़ा कष्ट हुआ । उसे भी संसारकी असारतासे वैराग्य होगया एवं संसारके भोग और उनके कारणोंसे विमुख हो उसने आर्यिकाके व्रत धारण कर लिये ॥ ३४ ॥ जमाई और पुत्रीकी दीक्षाका समाचार सुन यशोधराकी मा रानी श्रीधरा भी एक दिन संसारसे विरक्त होगई और गुणवती आर्यिकाके पास जाकर उसने आर्यिकाके व्रत धारण कर लिये ॥ ३५ ॥ पिता माताके दीक्षा ले जाने पर कुमार रश्मिवेग राजा बन गये । कामदेवके समान उनकी उस समयकी अद्वितीय शोभा थी । पहिले उपार्जन किये गये पुण्यके फलको भोगने वाले थे । पुण्यात्मा और प्रसन्न चित्तके धारक थे ॥ ३६ ॥

एक दिनकी बात है कि राजा रश्मिवेग सिद्धकूटके जिन मन्दिरोंकी वंदनाके लिये और उनके बनोंमें क्रीड़ा करनेके लिये गये ठीक ही है भट्य जीवोंकी बुद्धि पवित्र हुआ ही करती है । वहां पर एक हरिचन्द्र नामके चारण ऋद्धि धारी मुनि विद्यमान थे उन्हें देखकर राजा रश्मिवेगने भक्ति पूर्वक नमस्कार किया और हाथ जोड़कर उनके सामने बैठ गया ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ प्रामके बदलेमें मुनिराज हरिचन्द्रने राजा रश्मिवेगको धर्म बुद्धि दी एवं वे यह कहने लगे—

स्थितो भग्य प्राञ्जलिः परमोदयात् ॥ ३८ ॥ धर्मोद्विद्धं प्रवाधास्मै शुभिः प्रदेति तद्विदुः । यत्तु इत्यदधमस्त्वं राजन् ! धर्मं जिनोदितं ॥
 ३९ ॥ श्वभ्रतिर्यगतिभ्यां यः समुद्धरति देहिनः । तं धर्मं मुनयः प्राहुरज्जुः कृपादिव स्फुटं ॥ ४० ॥ सांप्रतं दृश्यते यच्च न तस्य नैव
 दृश्यते । अनित्यो भवो विद्धि समाख्यतो व्यलीकदः ॥ ४१ ॥ संयोगविप्रयोगोत्थं भवे दुःखं भृगायते । तेन दुःखेन तललब्धिनं
 स्यादश्वविषाणवत् ॥ ४२ ॥ संयोगे विप्रयोगे च नानाकर्म दूढी भवेत् । कर्मणायाति पातालं संसृतो भ्रमणं पुनः ॥ ४३ ॥ कस्य
 स्त्रीसुतदायादिराज्यं प्राउयं वपुः सुखं । किं नैवनेऽशुयात्पेव स्नेहाद्व्यर्थमतोऽखिलं ॥ ४४ ॥ ते धीराः सुखिनस्तेपि विग्धास्ते

राजन ! मैं भगवान् जिनेंद्रके द्वारा प्रतिपादित, अतिशय हितकारी धर्मका उपदेश देता हूँ,
 तुम ध्यान पूर्वक सुनो जिस प्रकार रस्सो कूवेमेंसे घड़ा आदि चीजको बाहर खींच लेती है उसी
 प्रकार जो धर्म जीवोंको नरक और तिर्यच गतिसे छुटा दे उसे ही वास्तविक धर्म कहते हैं । ३९ ।
 ॥ ४० ॥ जो चीज सवेरे देखनेमें आती है वह शामको देखनेमें नहीं आती इसीलिये विद्वानोंने
 संसारको अनित्य और दुःखोंका देनेवाला ठहराया है ॥ ४१ ॥ संसारमें रहकर संयोग और
 वियोगोंसे जायमान प्रचुर दुःख भोगने पड़ते हैं एवं उन दुःखोंसे जिस प्रकार घोड़ेके सींगोंमें
 धर्मकी प्राप्ति नहीं होती उस प्रकार धर्मको प्राप्ति नहीं हो सकती ॥ ४२ ॥ राजन् ! संसारमें अनेक
 संयोग और वियोगोंके कारण दृढ रूपसे कर्म बंधते रहते हैं । उन कर्मोंके कारण नरक जाना
 पड़ता है । समस्त संसारमें घूमना पड़ता है ॥ ४३ ॥ स्त्री पुत्र कुटुम्बी राज्य शरीर सुख ये
 सब बातें मृत्युके समय साथ नहीं चलती इसलिये इनके साथ स्नेह करना बुरा है ॥ ४४ ॥ संसार
 में वे ही पुरुष धीर वीर हैं वे ही सुखी विद्वान् और सुन्दर हैं जो कि दश प्रकार भोगोंका सर्वथा
 परित्याग कर मोक्षकी इच्छासे दिगम्बरी दीक्षा धारते हैं ॥ ४५ ॥ जो मूढ़ पुरुष सदा स्त्रियोंमें आसक्त
 रहते हैं महा लोभी और महा मानी होते हैं वे शुद्रोंके समान महा निंद्य कीचड़से व्याप्त संसार

च सुंदराः । भोगान् दशविधान् भुक्त्वा प्रवृजंति शिवेच्छया ॥ ४५ ॥ सदैव स्त्रीसुखासक्ता लोभिनो मानिनो नराः । अमेध्यकर्म
 कीर्णकूपे ते शूकरा इव ॥ ४६ ॥ स्वार्थमुख्यं सुखं त्यक्त्वा ये ध्यायन्ति परं महः । अन्तर्मुहूर्तस्तस्तेऽपि कर्मालिं त्व क्षणवन्त्यहो ॥ ४७ ॥
 इत्यादितरधसङ्गीजं ध्यानबुद्ध्या मुनीर्जितं । शुद्धासीं चिंतयामास मामसे रश्मिवेगकः ॥ ४८ ॥ आधिपत्ये सति प्राज्ये भूरिभोगेषु
 सत्सु वा । समासीन्मरणं नूनं तर्हि किं तैः सुभंगुरैः ॥ ४९ ॥ साधयामोदृशं धर्मं यतो न स्यात्पुनर्भवः । विचिंत्येत्यसं जग्राह सस-
 म्यक्त्वं सुसंयमं ॥ ५० ॥ परिणामविशुद्धं स तपस्तप्त्वाऽगरोधसि । चारणत्वं च संप्राप्तः सद्यो गगनगोचरं ॥ ५१ ॥ विहरन्नेव दा-
 सोऽपि रश्मिवेगो यमोश्करः । कांचनाभयगुहं दृष्ट्वा तस्यौ तत्र समाधये ॥ ५२ ॥ पर्यंकासनमाकृष्टं ध्यानस्तिमितलोचनं । ध्यायन्तं
 रूपी कूपमें पड़े रहते हैं । किन्तु जो महापुरुष स्वार्थ परिपूर्ण सुखका सर्वथा परित्याग कर चिदानन्द
 चैतन्य स्वरूप आत्माका ध्यान करते हैं देखते २ वे अन्तर्मुहूर्तमें समस्त कर्मोंको खिपा देते हैं ॥
 ॥ ४६—४७ ॥ राजा रश्मिवेगने मुनिराज हरिचंद्रसे जब यह धर्मका स्वरूप सुना तो वह मन ही
 मन ऐसा विचारने लगा—

विशाल राज्य और विपुल भोगोंके रहते भी जब संसारमें मरण है तब क्षण भरमें विनश
 जानेवाले राज्य भोग आदिको अपनाना व्यर्थ है । मैं अब उस परम पावन धर्मका आराधन
 करूंगा जिससे मुझे फिर संसारमें न घूमना पड़े वस उसने यह दृढ विचार कर शीघ्र ही सम्यग्द-
 र्शनके साथ संयम धारण कर लिया दिगम्बरी दीक्षासे दीक्षित होगया ॥ ४८—५० ॥ परिणामों
 को विशेष विशुद्धिसे उन्होंने उग्र तप तपा । तपके प्रभावसे चारण ऋद्धि प्राप्त होगई जिससे वे
 आकाशमें भ्रमण करने लगे ॥ ५१ ॥ एक दिनकी बात है कि विहार करते करते वे मुनिराज
 रश्मिवेग कांचन नामकी गुफाके पास जा पहुंचे और उसे समाधिके उचित जानकर उसमें विराज
 गये । वहांपर उन्होंने पर्यंक आसन मार लिया । ध्यानसे दोनों नेत्र निश्चल कर लिये एवं बाह्य
 अभ्यन्तर दोनों प्रकारकी आकुलतासे रहित वे चिदानन्द चैतन्य स्वरूप परमात्माका ध्यान करने

परमात्मानं विधा द्वंद्वविषयितं ॥ ५३ ॥ तं विलोक्य स्वपाशते हो आर्य रक्षितं मुदा ! अन्दिता विप्रतां तल श्रीधरा च यशोधरा ॥ ५४ ॥ श्वाभोऽथ प्राक्तनस्तस्मात्प्रवृत्त्वाधविपाकतः । चिरं श्रांत्वा स संसारे महानजगरोऽमरत् ॥ ५५ ॥ पूर्ववैरानुबन्धेन तत्तागत्य मुनि च ते । आर्यिके क्रोधतः पापी वैरं त्पाउयमतोऽगितत् ॥ ५६ ॥ आराध्याशधनाः प्रांतेरश्मिवेगोऽमरोऽनवत् । कापिष्ठेऽर्कप्रभाख्ये च विमाने तत्कृताह्वयः ॥ ५७ ॥ सृत्वा ते आर्यिके तल विमाने रुचकानिधे । अभूताममरी रम्यावणिमादिविभूषितौ ॥ ५८ ॥ चतुर्दश समुद्रायुरायुर्वेषां प्रकीर्तितं । पञ्चपाणिप्रमाथानां रूपभोगवतां भृशं ॥ ५९ ॥ प्रांते पङ्कजमां प्रापत्पापादजगरोहि सः । मुनकिस्म कृतं

लगे ॥ ५२—५३ ॥ मुनिराज रश्मिवेगको कांचन गुफामें इस प्रकार ध्याना रुढ सुन श्रीधरा और यशोधरा नामकी दो आर्यिकायें उनके पास आईं और भक्तिपूर्वक बंदना कर उनके पास बैठ गईं ॥ ५४ ॥ मंत्री सत्यघोषका जीव जो कि अपने प्रबल पापसे नरक गया था वहांके दुःखोंको भोगकर वह वहांसे निकल आया । प्रबल पापके उदयसे वह संसारमें जहां तहां बहुत घूमा और कांचन गुफामें एक विशाल अजगर होगया ॥ ५५ ॥ पूर्व वैरके संबन्धसे वह अजगर मुनिराज रश्मिवेगके पास आया और क्रोधसे भबल कर मय दोनों आर्यिकाओंके मुनिराज रश्मिवेगको निगल गया । ॥ ५६ ॥ मुनिराज रश्मिवेगने अन्त समयमें अच्छी तरह आराधनाओंको .आराधा जिससे कापिष्ठ स्वर्गके सूर्यप्रभ नामक विमानमें वह सूर्यप्रभ नामका देव होगया ॥ ५७ ॥ श्रीधरा और यशोधरा नामकी दोनों आर्यिकायें भी कापिष्ठ स्वर्गके रुचक विमानमें जाकर देव होगईं, दोनों आर्यिकाओं के जीव वे दोनों देव अत्यन्त मनोहर थे । अणिमा आदि विभूतियोंसे विभूषित थे । चौदह सागर प्रमाण आयु थी एवं मनोहर रूप और अनेक भागोंके खजाने स्वरूप वे पांच हाथ प्रमाण शरीरसे शोभायमान थे ॥ ५८—५९ ॥ मुनिराज और दोनों आर्यिकाओंके निगलनेसे उस अजगरने तीव्र पापका बंध किया था इसलिये आयुके अन्तमें उस तीव्र पापके उदयसे वह अजगर

पापं तत्र वाचाभगोचरं ॥ ६० ॥ नारकास्तं विलोक्याशु परस्परममीमरत् । छेदभेदनैः शूलारोपणैर्द्वैप्रवादनैः ॥ ६१ ॥ ध्वंशोलूक
विडालाश्च व्याघ्रवृश्चिकरूपिभिः । नारकैस्तु यतेऽस्मांश्च लभ्यते न गतिर्विधेः ॥ ६२ ॥ अथ जम्बूद्वीपे विद्यमाने त्वत् भारते ।
विद्यते चक्रपुरम्या पौरहतीव पूः परा ॥ ६३ ॥ राजा पराजितस्तत्र शत्रुभिः कुलशासनः । अस्यास्ति सुन्दरी नाम्ना रामा रम्भालुकारि
णी ॥ ६४ ॥ ऊर्ध्वप्रैवेयकाहेव सिंहचन्द्रचरस्तयोः । च्युत्वा प्राप्ते चभूयैव पुत्रश्चक्रायुधो महान् ॥ ६५ ॥ मक्षराजसुताः पञ्चसहस्रप्र
मिताः पराः । उपयस्य सुखं तस्यौ पुत्रश्चक्रायुधो वली ॥ ६६ ॥ अर्कप्रभोऽपि क्षापिष्ठाच्च्युत्वा चक्रायुधस्य तु क । संजातश्चित्रमालायां

पद्म प्रभा नामके नरकमें जाकर नारकी होगया और अपना किया हुआ पापोंका फल जोकि वचनों
से कहा नहीं जा सकता भोगने लगा ॥ ६० ॥ अन्य नारकियोंने जिस समय उस अजगरके जीव
नारकीको देखा तो उनका एक दम क्रोध उबल उठा एवं वे आपसमें छेदना भेदना शूलीपर चढ़ा
देना और गाली गलौज करना आदि कारणोंसे उसे मारने ताड़ने लगे । उस पापी अजगरके
जीव नारकीको काक उल्लू, बिल्ली घोड़ा बाघ बिल्लूके स्वरूपके धारक नारकियोंने अनेक प्रकारसे
मारना पीटना प्रारम्भ कर दिया । ठीक ही हैं कर्मकी गति रोकी नहीं जा सकती ॥ ६१—६२ ॥

इसी जम्बूद्वीपके प्रसिद्ध भरत क्षेत्रमें एक चक्रपुरी नामकी नगरी है जो कि उत्कृष्ट है और
शोभामें इन्द्रपुरीकी उपमा धारण करती है ॥ ६३ ॥ चक्रपुरीका स्वामी राजा अपराजित था ।
जिसका कि शासन शत्रुओंपर पूर्ण रूपसे चलता था और उसकी सुन्दरी नामकी रानी थी जो
कि शोभामें इन्द्राणीका अनुकरण करती थी ॥ ६४ ॥ मुनिराज सिंहचन्द्रका जीव वह अहमिंद
ऊर्ध्व प्रैवेयकसे चया और रानी सुन्दरीके गर्भमें अवतीर्ण हो चक्रायुध नामका पुत्र होगया ॥
॥ ६५ ॥ अपनी युवावस्थामें कुमार चक्रायुधने पांचसौ राज कन्याओंके साथ विवाह किया और
वह सानन्द विषय भोगोंका अनुभव करने लगा ॥ ६६ ॥ मुनिराज रश्मिवेगका जीव अर्कप्रभ देव

नाम्ना वज्रायुधः सुधीः ॥ ६७ ॥ पृथिवीतिलकं नाम्ना पत्न्यं तिलको भुवः । रत्नाज नररत्नाख्यं सौत्सवं चैत्यमंडितं ॥ ६८ ॥ अतिवेग
महोपासस्तताभूद्वाजलक्षणः । प्रियकारिणिका तस्य वभूवेशामरप्रिया ॥ ६९ ॥ कापिष्ठात् श्रीधराजोवश्युत्वासी रुचकामिवः । सुता
ऽभक्तयोरप्या रत्नमालामिधा शुभा ॥ ७० ॥ एकदा तां पिता दृष्ट्वा यौवनश्रीचिराजितां । वज्रायुधकुमाराय ददौ भानुप्रियामिव ॥
७१ ॥ वज्रायुधस्तयामेव रेमे रात्रिदिवं सुखं । रम्भापो रम्भयाद्दोशः पश्यता तमसोऽपः ॥ ७२ ॥ यशोधरापि कापिष्ठाच्छुत्वा रत्नायुध
भी अपनी आयुके अन्तमें कापिष्ठ स्वर्गसे चया और राजा चक्रायुधकी चित्रमाला नामकी रानीसे
वज्रायुध नामका पुत्र होगया ॥ ६७ ॥

इसी पृथ्वी पर एक पृथिवी तिलक नामका नगर है जो कि अपनी शोभासे साक्षात् पृथिवीका
तिलक स्वरूप जान पड़ता है । सदा वह उत्तमोत्तम पुरुष रत्नोंसे भरा रहता है और उसके चैत्या-
लय और मन्दिर सदा अनेक उत्सवोंसे जग मगाते रहते हैं ॥ ६८ ॥ पृथिवी तिलक पुरका स्वामी
राजा अतिवल था जो कि समस्त राज लक्ष्णोंसे शोभायमान था । उसकी रानीका नाम प्रिय
कारिणी था जो कि अपनी अनुपम शोभासे देवांगना सरीखी जान पड़ती थी ॥ ६९ ॥ श्रीधरा
नामक आर्यिकाका जो व रुचक देव कापिष्ठ स्वर्गसे चया और रानी प्रिय कारिणीके गर्भमें अव-
तीर्ण हो कन्या होगया जिसका कि नाम रत्न माला था ॥ ७० ॥ एक दिन राजा अतिवेगने पूर्ण
यौवनसे शोभायमान राजपुत्री रत्नमालाको देखा । उसे विवाहके योग्य समझकर कुमार वज्रायुध
को प्रदान करदी एवं सूर्यको जिस प्रकार अपनी स्त्री प्यारी है उसी प्रकार वह रत्नमाला कुमार
वज्रायुधकी परम प्यारी बन गई ॥ ७१ ॥ जिस प्रकार रंभाका स्वामी रंभाके साथ रमण करता है
वागेन्द्र लक्ष्मणके साथ और चन्द्रमा रोहिणीके साथ रमण करता है उसी प्रकार कुमार वज्रायुध भी
सुन्दरी रत्नमालाके साथ रात दिन रमण करने लगा और भोग जन्य सुख भोगने लगा ॥ ७२ ॥

स्तयोः । सुतो जहो मनोऽभोजः पूर्णचन्द्राननोऽरिजित् ॥ ७३ ॥ एवं संयोगमापन्ना एते पुण्यफलं मइत् । भुञ्जतिस्म महाम्रीत्या
दुर्लभं किमयोद्यात् ॥ ७४ ॥ गन्धेभाश्चोत्कटामास्थरतिरामासमुद्भव । सुखं ते भोजयामासुर्धर्मकवद्भूमापितं ॥ ७५ ॥ श्रुत्वा पराजितो
धर्ममन्येषुः पिहितास्त्रवात् । चक्रायुधाय साम्राज्यं दत्त्वा दीक्षिष्ट धीरधीः ॥ ७६ ॥ चक्रायुधोऽपि तद्राज्यं प्राप्याधिकतरं वभौ । चिन्दन्
कुषलयं राजा राजवत्पालयन् प्रजाः ॥ ७७ ॥ अन्यथा विष्टरासीनो लोकयन् विष्टरे सुखं । पलितं काससंकाशं मस्तके दृष्टवान् नृपः ।

आर्यिका यशोधराका जीव देव भी कापिण्ठ स्वर्गसे चया और रानी रत्नमालाके गर्भसे रत्नायुध
नामका पुत्र हुआ जो कि मन रूपी कमलको विकास करने वाले पूर्ण चन्द्रमाके समान
मुखसे शोभायमान था । इस प्रकार आपसमें संबंधके रखनेवाले वे सिंहसेन आदिके जीव बड़े
प्रेमसे पुण्यके महाफल स्वरूप सुखका भोग करने लगे ठीक ही है पुण्यके उदयसे सब कुछ प्राप्त
हो जाता है ॥ ७३—७४ ॥ वे सबके सब उत्तम धर्मरूपी कल्पवृक्षके द्वारा समर्पित उत्तम हाथी
घोड़े मंत्री रतिके समान स्त्रियोंसे जाय मान सुखको सानन्द भोगने लगे ॥ ७५ ॥

एक दिनकी बात है कि राजा अपराजितने पिहितास्त्रव नामके मुनिराजसे धर्मका उपदेश
सुना जिससे उन्हें संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य होगया । धीर वीर राजा अपराजितने अपने पुत्र
चक्रायुधको समस्त राज्य प्रदान कर दिया और वह तत्काल दिगंबर दीक्षासे दीक्षित होगया ।
॥ ७६ ॥ अपने कुल परम्परासे प्राप्त राज्यको पाकर कुमार चक्रायुध अतिशय शोभायमान जान
पड़ने लगा । उसने समस्त पृथ्वीको अपने वश कर लिया और वह पूर्ण रूपसे प्रजाका पालन करने
लगा ॥ ७७ ॥

एक दिनकी बात है कि राजा चक्रायुध सानन्द राजसिंहासन पर विराजमान थे और सिंहो-
सनमें लगे हुए दर्पणमें अपना मुख देख रहे थे अचानक ही उन्हें अपने मस्तकमें एक कासके

७८ । तदेति चिन्तयामास मानसे स विशुद्धधीः । आगतो यमदूतोऽयं मामाकारयितुं ध्रुव ॥ ७९ ॥ अहो आयुर्गतं सर्वं वैयर्थ्यं मामकं
वने । मल्लिकापुष्पवद्धर्मं विना स्वर्गापवर्गादं ॥ ८० ॥ त्रिधा वैराग्यमापन्नश्चक्रायुधनराधिपः । धञ्जयुधे सुतेऽराज्यं समारोप्य बनेऽगमत्
॥ ८१ ॥ प्राप्ताजीत् स्वपितुःपार्श्वे राक्षांताऽभ्युधिपारमः । नद्यास्तीरे महारण्ये भगवानौ तपोऽकरोत् ॥ ८२ ॥ धञ्जयुधोऽपि तद्राज्यं
दत्त्वा रत्नायुधाय च । पितुःपार्श्वेऽग्रहीदोक्षां किं न कुर्यति सात्त्विकाः ॥ ८३ ॥ मुनिश्चक्रायुधो ध्यात्वा स्वात्मानं परमं पदं । प्राप्य जज्ञे
फूलके समान सफेद केश दीख पड़ा ॥ ७८ ॥ विशुद्ध बुद्धिका धारक वह राजा अपने मस्तकका
सफेद केश देख इस प्रकार विचारने लगा—

मुझे बुलानेके लिये यह महाराज यमराजका दूत आपहुं चा है । नियमसे अब मुझे मृत्युका
सामना करना पड़ेगा । जिस प्रकार वनमें मालती लताके पुष्पका होना व्यर्थ है क्योंकि वहां
उसका आदर करनेवाला कोई नहीं होता उसी प्रकार स्वर्ग और मोक्षको प्रदान करनेवाले धर्मके
विना मेरा भी समस्त जीवन विफल ही चला गया ॥ ७९—८० ॥ वह राजा चक्रायुध मन बचन
काय तीनों योगोंसे संसारसे विरक्त होगया । अपने पुत्र बज्रायुधको उसने राज्य प्रदान कर दिया
और वह सीधा वनकी ओर चल दिया ॥ ८१ ॥ अपने पिता मुनिराज अपराजितसे उन्होंने दिगं-
वरी दीक्षा धारण कर ली । अभ्यासकर सिद्धांतरूपी समुद्रके पारको पहुंच गये । किसी नदीके
पास एक विशाल वन था उसके पहाड़की चोटी पर घोर तप तपने लगे ॥ ८२ ॥ अपने पिताके
दीक्षित होजानेके बाद कुछ दिन कुमार बज्रायुधने राज्य किया । कदाचित् उन्हें भी संसारसे
वैराग्य हो गया शीघ्र ही उन्होंने अपने पुत्र रत्नायुधको राज्य दे दिया और वे दिगम्बरी दीक्षासे
दीक्षित होगये । ठीक ही है सज्जन प्रकृतिके मनुष्य जो भी उत्तम कार्य कर डाले थोड़ा है ॥ ८३ ॥
जिस प्रकार धूपसे व्याकुल पुरुष वृक्षकी छाया पाकर शांतिका अनुभव करने लगता है उसी प्रकार

सुखी धर्मतमः श्रद्धायालुः यथा ॥ ८४ ॥ वज्रायुधो गिरौ प्रोक्षे हेमन्त्वे सखितस्तटे । प्राशुषि भूद्वं कण्ठे तपस्यन् पुरुषस्मरत् ॥ ८५ ॥
 अथ रत्नायुधो राजा शक्तो भोगेषु प्रत्यहं । धर्मेत्यक्त्वातिगृध्रनुहं वात्सुखानि चिरमन्वभूत् ॥ ८६ ॥ पट्टहस्त्येकशः तस्य दानवर्षोपयोदयत् ।
 कुम्भसानुवृत्तीभृदा मनोहरेण गतः ॥ ८७ ॥ तद्वारण्ये मुनिर्वज्रदन्तोऽपि समागतः । लोकानुयोगमूचे स नानाधर्मात्मकं यतिः
 ॥ ८८ ॥ तदा शास्त्रं गजः श्रुत्वा मेघादिविजयल्लयः । पूर्वजन्मस्मृतिं प्रापन्निर्निहोत्मानमङ्गसा ॥ ८९ ॥ तिर्यक्त्वं च मया प्राप्तं

मुनिराज चक्रायुधने भी पूर्ण रूपसे अपनी आत्माका ध्यान किया जिससे उन्होंने परमपद सोच पदको पा लिया और वे अविनाशी सुखके भोगनेवाले बन गये ॥ ८४ ॥ मुनिराज वज्रायुध भी प्रोक्ष्म ऋतुमें पर्वतोंके अग्रभागपर तप तपने लगे । शीत ऋतुमें नदियोंके तटोंपर और वर्षा ऋतुमें वृक्षोंके नीचे बैठकर उन्होंने तप तपना प्रारम्भ कर दिया तथा वे प्रति समय भगवान् ऋषम देवके गुणोंका स्मरण करने लगे ॥ ८५ ॥

वज्रायुधका पुत्र कुमार रत्नायुध जिस समय राजा बन गया तो धर्मका सर्वथा परित्याग कर वह प्रति समय भोगोंमें मग्न होने लगा और भोगोंका अति लोलुपी हो उनके सुखोंको भोगने लगा ॥ ८६ ॥ राजा रत्नायुधका एक मत्त हस्ती था जिसके कि गंडस्थलोंसे सदा मद भरता था अतएव वह साक्षात् मेघ सरीखा जान पड़ता था । उसके दोनों कुम्भस्थल पहाड़की चोटी सरीखे थे जिससे वह साक्षात् पर्वत सरीखा जान पड़ता था । एक दिन वह मनोहर नामके वन में गया वहांपर उस समय एक वज्रदन्त नामके मुनिराज आये थे और वे अनेक धर्म स्वरूप लोकानुयोगका वर्णन कर रहे थे । हाथी मेघ विजयको भी धर्मोपदेश सुननेका अवसर मिल गया धर्मोपदेश सुनते ही उसे पूर्व जन्मका स्मरण होगया और वह इस प्रकार अपनी जिन्दा करने लगा ॥ ८७—८९ ॥

पूर्वपापेदयादिति । मुहुर्मुहुर्विनिन्द्य स्वं तान्यद्वलफलं तथा ॥ ६० ॥ संछेतेर्दुःस्थितः ध्यायन् सामजो न भ्रमन्धने । विपासुः क्षुधितस्त
स्थी श्रुततत्त्वश्च होदृशः ॥ ६१ ॥ सत्संगः पाफलोत्थैवाचिराद्ब्रह्मात्मना भुवि । मधुमत्याशु सदावा भवेच्छ्रयामारि कोकिला ॥
६२ ॥ यथा पुरुषस्पर्शादर्भं इन्द्रशिरःस्थितः । सव्यापसव्यसंस्थायि पक्षादीनां तच्चोऽर्हतां ॥ ६३ ॥ तादृशं तं गजं दृष्ट्वा दुःस्थितं
भेषजं नृपः ॥ व्याकुलोभूयमापन्नः पृष्ठधान् मन्त्रिवैद्यकान् ॥ ६४ ॥ ब्रूत वैद्या गजस्यास्य को विकारोऽस्ति सौप्रतं । विश्वासभावतः
प्रोचुस्ते वैद्याः श्रुतवार्तिकाः ॥ ६५ ॥ अनुभा श्रूयतां राजन् ! कुष्ठरोगोऽयं कृपामयः । धर्मं श्रुत्वा कुतश्चिच्च मुनेर्जातिस्मरोऽभवत् ॥

पूर्व पापके उदयसे मैंने यह तिर्यच गति पाई है । मुझसे बढ़कर पापी कौन है वस इसप्रकार अपनी प्रतिक्षण निन्दा करने लगा । वनके साजे फलोंका भी उसने खाना छोड़ दिया ॥ ६० ॥ धर्म तत्त्वका यथार्थ रूपसे श्रवण करने वाला वह हाथी मेघ विजय रातदिन संसारकी असारता मानने लगा । वनमें घूमना उसने सर्वथा छोड़ दिया जिससे वह चाहे भूखा हो चाहे प्यासा हो एक ही जगह बह निश्चल खड़ा रहने लगा ॥ ६१ ॥ जो पुरुष भव्यजीव हैं उन्हें सत्सङ्गति अवश्य फल के देनेवाली होती है क्योंकि यह बात स्पष्ट रूपसे दीख पड़ती है कि काली भी कोयल वसंत ऋतुके संसर्गसे मीठे और मनोहर शब्द करने वाली हो जाती है एवं जिस दर्भ घासका भगवान् जिनेन्द्रके पैरसे स्पर्श हो जाता है वह इन्द्रके मस्तकका भूषण बन जाता है तथा भगवान् अर्हतके संसर्गसे उनका वचन भी पक्ष दिन मास आदिके भले बुरेका सूचक होजाता है । इसलिये सत्सङ्गतिका प्रभाव अचिन्त्य है ॥ ६१—६३ ॥ मेघ विजय हाथीकी इस प्रकार दुःखित अवस्था देख कर राजा रत्नायुध एक दम व्याकुल होगया और उसने शीघ्र ही मंत्री और वैद्योको बुलाकर इस प्रकार पूछा—

वैद्यो ! शीघ्र बताओ हाथी मेघ विजयको यह क्या विकार उत्पन्न होगया है जिससे यह एक

६६ ॥ अतः सत्पात्रनिष्पन्नं शुद्धाहारं घृतदिभिः । निश्चितं भक्षयेन्नागो नान्यत्फलफलादिकं ॥ ६७ ॥ कृत्याहारं तथाभूतं न्यक्षिपत्
कुंजराग्रतः । कुंजरोऽपि जघासैष आहारं मिश्रितं घृतैः ॥ ६८ ॥ यदा रत्नायुधो राजा धिस्मयीभूयमागतः । जगाम सामजारुढो मनो
हरधनेऽधनः ॥ ६९ ॥ धञ्जदन्तं मुनिं तत्र नत्वाधधिविलोचनं । गजवृक्षं समाख्याय तद्धेतुं पृच्छतिस्म सः ॥ १०० ॥ मुनिः प्राह तदा
भग्यपंकजालिदिवाकरः । सादरं शृणु राजेन्द्र प्रोच्यमानो मया कथां ॥ १०१ ॥ अत्र जम्बूमति द्वीपे भारते भारते-रतं । भारते भाति

दम निबुद्धि दीख पड़ता है ? । वैयोंको इस बातका पता लग चुका था कि वनमें मुनिराज वज्रदंत
को देखनेसे इसकी यह दशा हुई है इस लिये उन्होंने कोई भी विकार न बतलाकर यह कहा—

राजन् ! कृपाकर हमारी बात सुनिये । यह हाथी मेघ विजय अत्यन्त दयालु है । वनमें जाकर
इसने किसी मुनिसे धर्मोपदेश सुना है इसलिये इसे जाति स्मरण होगया है अब यह शुद्ध मनुष्य
से बनाये गये और घृत आदिसे तयार किये गये भोजनको ही खा सकेगा अब यह पहिलेके
समान फल फूल आदि नहीं भक्षण कर सकेगा ॥ ६४—६७ ॥ राजा रत्नायुधकी आज्ञासे शीघ्रही
वैसा आहार तयार होगया । तयार हो जाने पर हाथीके सामने रख दिया गया । हाथी भी उसे
शुद्ध जानकर चट खागया ॥ ६८ ॥ हाथीको यह विलक्षण चेष्टा देख राजा रत्नायुधको बड़ा
आश्चर्य हुआ और वह मुनिराज वज्रदंतसे सब हाल जाननेके लिये शीघ्र ही हाथी पर चढ़कर
वनकी ओर चल दिया ॥ ६९ ॥ वनमें जाकर उसने अवधिशानी मुनिराज वज्रदंतको नमस्कार
किया । हाथीका सब हाल कहा एवं इस बातकी प्रार्थना की कि हाथीकी ऐसी दशाका कारण
क्या है ? मुनिराज वज्रदंत भग्यरूपी कमलोंके लिये सूर्य स्वरूप थे इसलिये उन्होंने यह कहा—
राजन् ! मैं सब हाल कहे देता हूँ तुम ध्यान पूर्वक सुनो—

इसी जंबूद्वीपके सूर्यकी कांतिके समान देदीप्यमान भरत क्षेत्रमें एक छत्रपुर नामका उत्तम

छत्रादि पुरं रत्नालिसुन्दरं ॥ १०२ ॥ प्रीतिभद्रो नृपस्तत्र शत्रुभ्योऽतस्तमानसः । राजतेऽमरराजो वा विशालोरा गुणार्णवः ॥ १०३ ॥
तस्यासीत्सुन्दरी नाम्ना द्रिया मधुरभादिणी । सुन्दरीव सती रम्या सुन्दरी ख मनोभुवः ॥ १०४ ॥ तयोर्भूतयोः सौख्यं नाम्ना
प्रीतिकरः सुतः । संवभूव गरीयांश्च चातुरीरजितामरः ॥ १०५ ॥ मन्त्री चित्रमतिस्तस्य कमला कमलोपमा । भामिनी भूरिधर्णांगी
जातास्येव सुरांगना ॥ १०६ ॥ तुष्यच्चित्रमतिर्नाम्ना नानाविज्ञानपारगाः । कलासु कुशलः कतुपम्यांगो भेश्वराननः ॥ १०७ ॥ अन्यदा
मन्त्रिपुत्रेण साकं राजात्मजोवने । क्रीडितुं गतवांस्तत्र दृष्ट्वा धर्मरुचिं मुनिं ॥ १०८ ॥ नत्वा तत्पुरतो धीमान् निविष्टः कालभासने

नगर है जो कि रत्नोंकी पंक्तियोंसे सदा शोभायमान रहता है ॥ १००—१०२ ॥ छत्रपुरका स्वामी
राजा प्रीतिभद्र था जो कि शत्रुओंसे सदा निभय रहता था । शोभामें इन्द्रके समान शोभायमान
था । विशाल वक्षस्थलका धारक था और अनेक गुणोंका समुद्र था ॥ १०३ ॥ राजा प्रीतिभद्र
की स्त्रीका नाम सुन्दरी था जो कि अत्यन्त मीठा बोलने वाली थी । पतिव्रतापनमें सती सुन्दरीके
समान थी और सुन्दरतामें कामदेवकी सुन्दरी रतिकी उपमा धारण करती थी ॥ १०४ ॥ राजा
प्रीतिभद्रके रानी सुन्दरीसे उत्पन्न प्रीतिङ्कर नामका पुत्र था जो कि गुणोंमें महान था और अपनी
पांडित्य पूर्ण चतुरतासे देवोंकोभी रंजायमान करनेवाला था ॥ १०५ ॥ राजा प्रीतिभद्रके मंत्रीका
नाम चित्रमति था । उसकी स्त्रीका नाम कमला था जो कि कमला लक्ष्मीके समान परम
सुन्दर वर्णके धारक शरीरसे शोभायमान थी अतएव वह देवांगना सरीखी परमसुन्दरी थी ॥ १०६ ॥
मन्त्री चित्रमतिका पुत्र विचित्रमति था जो कि ज्ञान विज्ञानोंका पारगामी था । अनेक कलाओंमें
कुशल था । कामदेवके समान परम सुन्दर था और चन्द्रमाके समान मुखसे शोभायमान
था ॥ १०७ ॥

एक दिनकी बात है कि मन्त्रिपुत्र विचित्रमतिके साथ राजपुत्र प्रीतिकर वनमें क्रीड़ा करनेके

। पप्रच्छेति पुनर्नत्वा कुमारः प्रीतिकृत्यति ॥१०९॥ भो स्यामिन् सर्वधर्माणां व्रतानां च विशक्तिभिः । किं कर्तव्यं व्रतं ब्रूहि सद्गमस्थैः सादरं सदा ॥ ११० ॥ धर्मरुची रराणेति कुमारः भव्यमानसं । तिथिपंचसु कर्तव्यः प्रीयधो धर्मवेदिभिः ॥ १११ ॥ गृहाचारोऽमलः कार्यः स्त्रीपुष्पौ चेष्ये इर्जितः । सुखाय श्रेष्ठशुद्धधर्ममन्यधाचारहीनताः ॥ ११२ ॥ स्त्रीपुष्पौ चेष्ये धर्मेण नरा यांति दरिद्रतां । रोगत्वं विश्रुतत्वं च विधर्मत्वं तमः परं ॥ ११३ ॥ देवार्चा च गुरुपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः । दानं च गृहिभिर्देवं धर्मलोपानहिद्वये ॥ ११४ ॥ तथाभूता न शक्तिश्चेत्सर्हि मीनं विधीयते । सप्तभेदं जिनैः प्रोक्तं तद्वैधं पुनरुच्यते ॥ ११५ ॥ वमने गैशुने स्नाने भोजने मलमोचने

लिये गया । वहांपर उस समय एक धर्मरुचि नामके मुनिराज विद्यमान थे । कुमार प्रीतिकरने उन्हें भक्ति पूर्वक नमस्कार किया । सिंहाकार आसनसे उनके सामने बैठ गया एवं पुनः नमस्कार कर वह इस प्रकार पूछने लगा—

भगवन् ! जो मनुष्य गृहस्थ हैं और व्रतोंके धारण करनेकी परिपूर्ण शक्ति नहीं रखते उन्हें धर्म स्वरूप संपूर्ण व्रतोंमेंसे कौनसा व्रत आचरण करना चाहिये ! ॥ १०८—११० ॥ मुनिराज धर्मरुचिने कुमार प्रीतिकरको आसन्न भव्य समझ कर यह कहा—प्रिय कुमार ? जो मनुष्य धर्म के स्वरूपके जानकार हैं उन्हें चाहिये कि वे पांचों तिथियोंमें निर्मल रूपसे प्रोषधोपवास व्रतको धारण करें और स्त्रियोंके अंगका सर्वथा परित्याग कर दें क्योंकि ऐसा करनेसे सुख प्राप्त होता है और आत्माकी विशुद्धि होती है यदि प्रोषधोपवासके समय स्त्रियोंकी लालसा रखी जायगी तो अनाचार माना जायगा ॥ १११—११२ ॥ यह निश्चय है जो पुरुष उत्कृष्ट रूपसे स्त्रियोंके अभिलाषी हैं वे दरिद्री रोगी मूर्ख और धर्मरहित पापी माने जाते हैं ॥ ११३ ॥ देव पूजा गुरुओंकी सेवा स्वाध्याय संयम तप और दान ये गृहस्थोंके छह आवश्यक कर्म वतलाये हैं इनके करनेसे मोक्षकी सीढ़ी स्वरूप धर्मकी सिद्धि होती है ॥ ११४ ॥ यदि किसी पुरुषमें इतनी वातकी करनेकी

सामायिके जिनाचांशविति स्यान्मौनसप्तकं ॥ ११६ ॥ नित्यमेतत्समाध्यातं मौनं सर्वजनैर्धुर्वं । इत्यनेन न जायेत ज्ञानावर्णादिको-
दयः ॥ ११७ ॥ अन्यन्नैमित्तिकं प्रोक्तं विधिना तत्समाचरेत् । तेन मौनेन मुक्तिः स्यादितोऽपि साध्यते द्वयोः ॥ ११८ ॥ पुनस्तं प्राह धर्मा-
णः कुमारो मारविग्रहः । हे स्वामिन् प्राकृतं केन फलं लब्धं ततश्च किं ॥ ११९ ॥ तदा प्राह यमी वत्स ! शृणु त्वं सादरं व्रतं । मयो-
च्यते तथाभूतं धर्मशीला हि साधवः ॥ १२० ॥ इह जम्बूप्रति द्वीपे क्षेत्रे भारतनामनि । जनार्तः कौशलस्तत्र कौशांबी विद्यते पुरी ॥

भो शक्ति न हो तो भगवान् जिनेन्द्रने बाह्य अभ्यन्तर रूप सात प्रकारका मौन बतलाया है उसे धारण करना चाहिये ॥ ११५ ॥ वह मौन इस प्रकार है—

वमिके समय मौन रखना मैथुन स्नान भोजन मल (मूत्र विष्ठा) का मोचन सामायिक भगवान् जिनेन्द्रकी पूजा वंदना आदिमें मौन रखना । समस्त मनुष्योंको चाहिये कि वे प्रति-दिन इस सात प्रकारके मौनको धारण करें ऐसा करनेसे उनके ज्ञानावरण आदि कर्मोंका बंध नहीं हो सकता ॥ ११६-११७ ॥ तथा इस नित्य मौनके सिवाय नैमित्तिक—किसी खास समयका भी मौन बतलाया है उसका भी विधि पूर्वक आचरण करना चाहिये । उस नैमित्तिक मौनके धारण करनेसे भी परम्परासे मोक्ष मिलती है और इह लोक परलोक दोनों लोकोंका सुधार होता है । मुनिराजसे इस प्रकार गृहस्थके योग्य धर्मका स्वरूप सुनकर धर्मात्मा कुमार प्रीतिङ्करने पुनः उनसे यह पूछा—भगवन् ! पूर्व जन्ममें मैंने कौनसा घोर तप तपा था जिससे मुझे यह विभूति इस भवमें प्राप्त हुई है । उत्तरमें मुनिराज धर्मरुचिने कहा—वत्स ! मैं यथार्थ रूपसे तुम्हारे पूर्व भवका वृत्तान्त सुनाता हूँ तुम ध्यान पूर्वक सुनो ठीक ही है मुनिगण धर्म शील हुआ ही करते हैं ॥ ११८—१२० ॥

इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें एक कौशल नामका देश है और उसमें कौशांबी नामकी प्रसिद्ध

१२१ ॥ हरिवाहननामाभूदिलापः पालितप्रजः । शशिप्रभा प्रिया तस्य तपोः पुत्रः सुकोशत्रः ॥ १२२ ॥ गुरोर्विनयतः स्वल्पकालेनापी
षट्कृतं । समप्रमार्हतं धीमान् पूर्वपुण्यात्सुकोशलः ॥ १२३ ॥ समातयीवतो जज्ञे सत्कन्यापरिणायिनः । विद्याभ्यासेन रामाणां संगं
अकरो न राजतुक् ॥ १२४ ॥ तदा तत्पितरौ वित्तं तर्कयामासुस्तदा । दुःखिनौ च कथं तस्य वंशवृद्धिर्मश्नुयति ॥ १२५ ॥ अन्यदा तत्पु
रोद्याने सोमप्रभयमोक्षदं । आगतं वनपालात्तत्र त्वेनं वदितुं ययौ ॥ १२६ ॥ यत्वा नत्वा दृष्ट्वा श्रुत्वा प्रागहोदिति तं नृपः । हे

नगरो है । कौशांबी पुरीका स्वामी उस समय राजा हरिवाहन था जो कि न्याय मार्गके अनुसार
प्रजाका पालन करनेवाला था । उसकी स्त्रीका नाम शशिप्रभा था और उन दोनोंसे उत्पन्न पुत्र
सुकोशल था ॥ १२१—१२२ ॥ कुमार सुकोशल गुरुका अतिशय विनयी था इसलिये पूर्व पुण्यके
उदयसे भगवान् जिनेन्द्र प्रति पादित समस्त सिद्धान्तको वह थोड़े ही दिनोंमें पढ़ गया था ।
जिस समय वह पूर्ण युवा होगया उसके साथ अनेक कन्याओंका विवाह होगया परन्तु कुमार
सुकोशलके चित्तपर विद्याभ्यासका पूर्ण प्रभाव जमा हुआ था इस लिये परिणामोंमें सदा विरक्ति
के कारण वह उनके संग रंचमत्र भी भोग विलास करना नहीं पसन्द करता था । कुमार सुकोशल
की यह लोकोत्तर विरक्ति देख उसके माता पिताको बड़ी चिन्ता होगई । दुःखित हो वे इसप्रकार
विचारने लगे—

यदि कुमारकी यही वैराग्यमय चेष्टा रही तो यह निश्चय है इसके कोई भी संतान नहीं हो
सकती और विना संतानके इसके वंशकी वृद्धि भी असम्भव है ॥ १२३—१२४ ॥ एक दिन
कौशांबी पुरीके उद्यानमें मुनिराज सोमप्रभ आकर विराजे । वनपालके मुखसे उनका आना सुना
इसलिये उनकी वंदनाके लिये वह चल दिया । १२५ ॥ मुनिराजके पास पहुंचकर राजा हरिवाहनने उन्हें
भक्तिपूर्वक नमस्कार किया । उन्होंने जो धर्मोपदेश दिया वह सुना एवं इसप्रकार मुनिराजसे कहा

स्वामिन् ! मामकः पुत्रो राजनीतिं च वेद न ॥ १२६ ॥ विद्याभ्यासेन रामाणां सांगत्यं प्रकरोति न । तत्किं देव द्र तं ब्रूहि संतो हि भ्रां
तिवेदिनः ॥ १२७ ॥ नृपं भ्रांतिगतं मत्वा प्रोवाच मुनिपुङ्गवः । देशेऽस्मिन् पत्तनं भाति नरकूटमिधं महत् ॥ १२८ ॥ तत्पत्नी राणको
नाम्ना धतापी रणजित्पुत्रीः । तत्रैव पत्तने श्रीलः कुटुम्बी तुंगिलाद्वयः ॥ १२९ ॥ तस्यास्ति तुङ्गिला रामा सती भर्तानुगामिनी ।
दुहिताभूत्तयोस्तु गम्भद्राख्या मूलमे शुभे ॥ १३० ॥ पूर्वपापदयात्तस्याः पिता माता सहोदराः । क्षयं प्राप्तास्तदा सापि भिक्षयावीर्यवद्
दात् ॥ १३१ ॥ कालेन साष्टयर्षीया जह्वे दुःखमरादिताः । पृथगारं बहन्ती वै चक्रे स्वोदरपूरणं ॥ १३२ ॥ एकस्मिन्वासरे काष्ठानय

भगवन् ! मेरा पुत्र सुकोशल राजनीतिका रश्ममात्र भी जानकार नहीं है । अनेक सुन्दरी स्त्रियां
उसके मौजूद हैं तथापि वह उनके साथ भोग विलास करना नहीं चाहता यह क्या बात है ? मुझे
इस बातको बड़ी भारी चिन्ता है आप मेरी इस भ्रांतिको शीघ्र दूर करें क्योंकि भ्रांतिका दूर करना
सबजनोंका स्वभाव होता है ॥ १२६—१२७ ॥ राजा हरिवाहनको इसप्रकार चिन्तित देख मुनि-
राज इस प्रकार कहने लगे—

इसी कोशल देशमें एक नरकूट नामका विशाल नगर है । उसका स्वामी राजा राणक था
जो कि अत्यन्त प्रतापी था और रणमें सदा विजय पानेवाला था । उसी नगरमें एक तुङ्गिल
नामका गृहस्थ सेठ भी निवास करता था ॥ १२८—१२९ ॥ सेठ तुङ्गिलको स्त्रीका नाम तुङ्गिला था
जो कि सती साध्वी और अपने स्वामीको आज्ञाकारिणी थी । उन दोनोंसे उत्पन्न तुंगभद्रा
नामकी पुत्री थी जो कि मूल नक्षत्रमें उत्पन्न हुई थी ॥ १३० ॥ पूर्व जन्मके तीव्र पापके उदयसे
उसके बाप मा भाई सभी मर गये । धन भी सब किनारा कर गया जिससे वह भोज मांगकर
अपना पेट भरने लगी ॥ १३१ ॥ जब वह आठ वर्षकी होगई तब वह दुखित होकर ई धन ढोने लगी
और बड़े कष्टसे अपना पेट भरने लगी ॥ १३२ ॥

नार्थ' बने गता । तत्रायातोऽवधिलानी पिहितास्त्रयनामभाक् ॥ १३३ ॥ जनतापरिवीतं तं तेजःपुंजं विलोक्य सा । आगता बन्धितुं
दीना दीनानार्थं यदीश्वरं ॥ १३४ ॥ ननाम कुङ्कुमलीकृत्य करयोः संयताग्रिमं । समीपे संस्थिता पुण्याद्धर्मं ध्रुत्वाऽबद्धन्मुनिं ॥ १३५ ॥
हे स्वामिन् ! किं कृतं पापं मया प्राक् येन दुर्भगा । दुर्बधा ईदृशी नाथ ! बभूवाहं च दुःखिनी ॥ १३६ ॥ मुनीश्वराय हे पुत्रि ! दुःखं माकुरु
माकुरु । जीवः पापं करोत्येव तद्विशको हि दुःसहः ॥ १३७ ॥ ततोऽबद्धत्तुङ्गभद्रा सा सत्यं देव मया वितं । एनो विलीयते येन तदुन्नतं

एक दिनकी बात है कि वह लकड़ी लानेके लिये वनको गई । वहाँपर एक पिहितास्त्रय नामके अवधिलानी मुनिराज विराजमान थे । उनके चारो ओर अनेक जन विद्यमान थे इसलिये उनके मध्यमें वे तेजपुंज सरीखे जान पड़ते थे । दीन कन्या तुंगभद्रा भी उनके पास आई । मुनिराज की भक्ति पूर्वक बंदना की । नमस्कार किया । हाथ जोड़कर उनके समीप बैठ गई । पुण्यके उदयसे धर्मोपदेश सुना । और विनय पूर्वक मुनिराजसे यह पूछा—

स्वामिन् ! एवं जन्ममें मैंने ऐसा कौनसा घोर पाप किया था जिससे मैं महा बड़ सूरत निन्द्य कार्य करनेवाली और दुःखिनी हुई हूँ । उत्तरमें मुनिराजने कहा—

पुत्रि ! तू किसी बातका अपने चित्तमें दुःख न कर । यह जीव सदा अनेक प्रकारके पाप करता ही रहता है और उनका दुःखदायी कष्ट भोगता रहता है ॥ १३३—१३७ ॥ प्रीतिके ये वचन सुन तुंगभद्राने कहा—कृपानाथ इसमें कोई संदेह नहीं मैंने अवश्य दुष्कर्मोंका उपार्जन किया है । अब यह बतलाइये कि किस उपायसे मेरे इन सब पापोंका नाश होवे । उत्तरमें ध्यानशील अवधिलानी मुनिराजने कहा—

पुत्री ! तुम स्वर्ग और मोक्ष सुखके देने वाले मौन व्रतको धारण करो । मौन व्रतके धारण करनेसे तुम्हारा यह सब संकट कट जायगा । मुनिराजके मुखसे यह बात सुनकर तुंगभद्राने

ब्रूहि तत्त्ववित् ॥ १३८ ॥ सद्योऽलीलपद्म्यानी तामेवावधिलोचनः । पुत्रि ! मौनव्रतं धेहि लेखावासशिवप्रदं ॥ १३९ ॥ तत्कथं कियते ध्यानिम् ! कस्मिन् मास्यस्य को विधिः । कथ्यते शृणु सानन्दाद्विधिं मौनव्रतस्य च ॥ १४० ॥ भोजने वमने स्नाने मैथुने मलमोचने नित्यमेतेषु कुर्यात्स्व मौनं पुत्रि स्वसिद्धये ॥ १४१ ॥ नैमित्तिकं पुनर्योषं कर्तव्यं शृणु तद्विधिं । पौषे मास्यसिते पक्षे ध्रुवं चैकादशोदिते ॥ १४२ ॥ आश्विनपौषाशान्मौनसंयुतः प्रोषधः परः । वर्तव्यस्तद्विने पुत्रि ! हस्तसंज्ञादिवर्जनं ॥ १४३ ॥ हुङ्कारो न विधातव्यो मुखसंज्ञा तथैव च । कासः खंखारवो हुं हुं दन्तशब्देन जवर्जनं ॥ १४४ ॥ हसनं दृष्टिविक्षेपः शरीरस्य विधूननं । शयनं नैव कुर्नीत दिवागक्तं जिनालये ॥ १४५ ॥ सुकरं व्रतमेतत् कर्तव्यं कर्मदानये । प्रमाणीकृत्य सा मोत्वा व्रतं याता निजारूपदं ॥ १४६ ॥ विधिना तद्व्रतं कृत्वा

पूछा—प्रभो ! मौन व्रत कैसे और किस मासमें किया जाता है और उसके करनेकी क्या विधि है ! कृपाकर आप बतलाइये उत्तरमें मुनिराजने कहा—नित्य और नैमित्तिकके भेदसे मौनव्रत दो प्रकारका है । तुम सुनो हम उसका स्वरूप वर्णन करते हैं—

पुत्री ! अपने आत्माकी विशुद्धिके लिये तुम्हें भोजन वमि स्नान मैथुन और मलमोचनमें सदा मौन व्रत धारण करना चाहिये यह नित्य मौन व्रत है । तथा पूस मासकी वदी एकादशीके दिन खासकर तुम्हें मौन धारण करना चाहिये यह नैमित्तिक मौन व्रत है । नैमित्तिक मौनव्रतकी विधि इस प्रकार है—

पूस वदी एकादशीके दिन सोलह प्रहर पर्यन्त मौन सहित तुम्हें प्रोषध व्रत करना चाहिये । उस दिन मौन व्रतके समय तुम्हें हाथसे किसी प्रकारका इशारा न करना होगा । हुङ्कार भी न करना होगा । मुखसे भी किसी प्रकारका इशारा न करना होगा । खासी खखारका शब्द हुंहु शब्द दांत मीचकर बोलना हंसना आंखोंसे इशारा करना शरीरका कपाना और जिनालयके अंदर बैठकर दिनरात सोना भी न होगा । पुत्री ! यह व्रत अत्यंत सरल है । तुम्हें अपने कर्मोंके

स्मृत्वा पञ्चनमस्क्रियां । स्मृत्वा काले बभूवायं तव पुत्रः सुकोशलः ॥१४७॥ अस्मिन् भवे तपस्तप्त्वा मुक्तिं यास्यति भूपते ! ! नृणोऽपि तद्वचः श्रुत्वा यथै धामधिरक्तधीः ॥ १४८ ॥ निजं राज्यं तुजे तस्मै दद्यासी हरिवाहनः । पिहितान्त्रमादाय दीक्षां दिगम्बरीप्रितः ॥ १४९ ॥ तद्वीरत्वं समालोच्य शतं राज्ञां च धीमतां । प्राप्ताजोऽजितशत्रूणां धीराणां चेष्टितं हृदः ॥१५०॥ राजा सुकोशलः राज्यं चर्करीत्यथ नोदनात् । सचिवस्य श्रुत्वाभ्यासी नीरागी मल्लिकीषु न ॥ १५१ ॥ सन्निवेशेन प्रोक्तः शर्वतो देहजः सुधीः । श्रुतसागरस्त्रिपानेके लिये यह व्रत अवश्य करना चाहिये । तुंगभद्राने मुनिराजके वचन प्रमाणीक मान लिये और वह व्रत लेकर अपने घर चली आई । जब तक वह जीती रही विधि पूर्वक उस व्रतका आचरण उसने किया आयुके अंत समयमें पंचपरमेष्ठिका स्मरण कर उसने अपने प्राणोंका परित्याग किया वही तुंगभद्राका जीव यह कुमार सुकोशल हुआ है ॥ १३८—१४७ ॥ राजन् ! यह कुमार सुकोशल तीव्र तपोंको तपकर नियमसे इसी भवसे मोक्ष जायगा । इस बातमें किसी प्रकारका संदेह मत समझो । मुनिराजके मुखसे इस प्रकार सुकोशल कुमारका पूर्व भव सुनकर राजा हरिवाहनको संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य होगया । वह मुनिराजके पाससे सीधा राज महल लौट आया । अपने पुत्र सुकोशलको राज्य प्रदान किया एवं मुनिराज पिहितान्त्रवके चरणोंमें दिगम्बर दीक्षासे दीक्षित होगया ॥ १४८—१४९ ॥ राजा हरिवाहनको इसप्रकार धीर वीरता देख सौ राजा उसके साथ और भी दीक्षित होगये । ठीक ही है शत्रुओं पर सदा विजय पाने वाले धीर वीर पुरुषोंकी ऐसी ही चेष्टा हुआ करती है ॥ १५० ॥ कुमार सुकोशल अपने पिताके मुनि हो जानेपर यद्यपि राजा बन गये परन्तु परिणामोंमें वैराग्य रहनेके कारण उनका चित्त राजकी ओर कम झुकता था तथापि वे मंत्रीकी प्रेरणासे बराबर राज्यका कार्य सम्हालते थे किन्तु उनका शास्त्रोंका अभ्यास सदा चलता रहता था । और स्त्रियोंके अन्दर उनकी सदा अनिच्छा रहती थी ॥ १५१ ॥

मैव रहस्याकार्यं पापिना ॥ १५२ ॥ राजायं बालकः पुत्रः । राजनीतिं न वेत्यतः । कुशचित्कारणान्नूनं भारणीयस्त्वयाचिरात् ॥ १५३ ॥
तुभ्यं प्रौढाय पुत्राय राज्यं दास्यामि निश्चितं । अहं मन्त्री भवेयं ते स्वोयं राज्यं हि सौख्यदं ॥ १५४ ॥ श्रुत्वेति तत्पितुर्वाक्यं स्वामि
द्रोहकरं सुतः । शिरोविधूननं कुर्वन् भूषाभ्यासं समापयौ ॥ १५५ ॥ राजानं स समाह्वय निःशलाके सुप्रोत्तिमान् । पिञ्च्युक्तं सकलं
तस्मै नृपाय समधूबुधत् ॥ १५६ ॥ विचार्य वचनं तस्य राज्ञा मन्त्रो निराकृतः । देशात्स्वपुरतो वेगाद्भ्राजद्भाराच्च दुर्मतिः ॥ १५७ ॥
विद्युत्पातान्मृत् दृष्ट्वा मरालक्ष्यैकदा । सद्यो वैराग्यमापन्नो विरकोऽभून्मुनीदृवत् ॥ १५८ ॥ राज्यभारं ददौ तस्मै श्रुतसागरमन्त्रिणे

राजा सुकोशलका मंत्री बड़ा दुष्ट था एक दिन उसने अपने पुत्र श्रुतसागरको एकांतमें बुलाया और उस पापीने इस प्रकार उससे कहा—पुत्र ! राजा सुकोशल अभी बालक हैं । किसी प्रकारकी राजनीतिका जानकार नहीं तुम्हें चाहिये कि तुम किसी भी उपायसे इसे मार डालो ॥ १५२॥ १५३॥ तुम युवा और राजके योग्य हो तुम निश्चय समझो यह सारा राज्य मैं तुम्हें दूंगा और मैं तुम्हारा मंत्री बनकर रहूंगा वस फिर राज्य हमारा ही हो जायगा ॥ १५४ ॥ मंत्रीपुत्र श्रुत सागर अपने पिताके इस प्रकार स्वामी द्रोह सूचक वचन सुनकर चित्तमें बड़ा दुःखित हुआ । उसने अपने पिता भी मंत्रीकी कुछ भी पर्वा न की शिर पटकता हुआ वह शीघ्रही राजाके पास चला गया । सज्जन पुरुषोंपर सदा प्रेम रखनेवाले मंत्रीपुत्र श्रुत सागरने शीघ्रही राजाको बुलाया और जो उसके पिता मंत्रीने कहा था सब ज्यों का त्यों राजाको कह सुनाया ॥ १५५—१५६ ॥ श्रुतसागरके वचनोंपर राजा सुकोशलने पूर्ण ध्यान दिया । दुर्बुद्धिके धारक उस मंत्रीको तिरस्कार पूर्वक देश नगर और राज दरबारसे तत्काल बाहिर निकाल दिया ॥ १५७ ॥ एक दिन राजा सुकोशलने क्या देखा कि विजलीके गिरनेसे दो हंस मर गये है वस एक दम उन्हें संसारसे वैराग्य हो गया और मुनिके समान राज वैभवको उन्होंने मंत्री श्रुत सागरको समझा दिया ॥ १५८ ॥ राज्य भारके योग्य

जग्राह संयमं सारं वितुः पार्श्वे कृती स च ॥ १५६ ॥ मतिसागरनामा यो मंत्री निष्कासितः पुरात ॥ निदानं कृतधानैव स सांहाः
 स्वामिद्रुष्ट शठः ॥ १५७ ॥ यद्यहं वारितोऽनेन कोशलेन महीभुजा ॥ अहं प्रमाणं तर्ह्यग्रे हन्येनं कष्टतो ध्रुवं ॥ १५८ ॥ निदानमिति
 कृत्वासौ मंत्री निधनमासदत् ॥ मीदुगल्यपर्वते सिंहे वभूचारुणक्षेसरः ॥ १५९ ॥ अथैकदा मुनी तौ द्वौ मीदुगल्यगिरिमापतुः ॥ धृत्वा
 योगं स्थितौ तत्र तावत्सिंहः समागतः ॥ १६० ॥ पूर्ववैराचुर्वधेन क्रोधादणितलोचनः ॥ नखैर्दतैः खरैः पापो भक्षयामाण तौ मुनी ॥
 ॥ १६१ ॥ शुद्धध्यानेन तौ वीरौ क्षयकश्रेणिमाश्रितौ ॥ केवलज्ञानमुत्पाद्य प्राप्नुतः परमं पदं ॥ १६२ ॥ अतो वत्स ! विधातव्यं मौने द्वैधं

उन्होंने मंत्री श्रुत सागरको समझा इसलिये समस्त राजपाट उसे सौंप दिया एवं पुरायवान वे
 राजा सुकोशल अपने पिताके पास दिगम्बरी दीक्षासे दीक्षित होगये ॥ १५८—१५९ ॥ मंत्री
 मतिसागर जिसे कि राजा सुकोशलने उसके दुष्ट भावोंके कारण राज्यसे तिरस्कार पूर्वक निकाल
 दिया था वह जहां तहां पृथ्वी पर घूमता फिरा एवं अन्त समयमें उस स्वामीद्रोही मूर्ख और दुष्ट
 ने यह निदान बांधा—

मैं जो इस राजा सुकोशलने अनादर पूर्वक निकाला हूं उससे मैं ऐसा हूं जो इसे कष्ट
 पूर्वक मारूं वस ऐसा महादुष्ट निदान बांधकर वह मंत्री मरा और मुद्गल पर्वत पर वह लाल २
 आल वालोंका धारक सिंह होगया ॥ १६०—१६१ ॥ एक दिनकी बात है कि पिता पुत्र वे दोनों
 मुनि जहां तहां विहार करते २ मुद्गल पर्वत पर आये और उसकी विस्तीर्ण शिलापर योग धारण
 कर स्थित होगये । जहाँपर ये योग धारण कर विराजे थे वह सिंह भी वहाँपर आया । पूर्व जन्मके
 तीव्र वैरके कारण मारे क्रोधके उसके नेत्र लाल होगये एवं तीव्र नख और दांतोंसे दोनों मुनियों
 का शरीर विदारण कर वह दुष्ट भक्षण कर गया ॥ १६२—१६३ ॥ वे दोनों ही मुनिराज परम
 धीर वीर थे अपने परिणामोंकी विशुद्धिसे वे क्षपक श्रेणीमें आरुढ़ होगये एवं केवलज्ञानको प्राप्त

समाप्तये । महत्पुण्यं व्रतं स्तोकेनैव विधीयते ॥ १६६ ॥ तत्रुतं मन्त्रिपुत्रेण साकं जग्राह प्रीतिकृत् । गंतुकामौ यदाभूतां नत्वा
तो मुनिपुत्रं ॥ १६७ ॥ तदा च हरिणं मृगं कुर्वंतं सुलभकिरा । सिंहं प्रदत्तं वोक्ष्य तौ च वैराग्यमापनुः ॥ १६८ ॥ यथेणं हस्तवान्
सिंही सवृजं कांतया सह । तथा कालोऽपि नो हंत इति भवति दृढादिति ॥ १६९ ॥ तत्क्षणे वै द्विधा संगं त्यक्त्वा मार्दवमानसौ
कर मोक्षं शिताम्र जा विराजे ॥ १७० ॥ मोनव्रतका साहात्म्यं व्रतज्ञानेवाली यह कथा सुनाकर
मुनिराज धर्मरुचिने कुमार प्रीतिङ्करसे कहा —

कुमार ? मोनव्रतका यह विशिष्ट फल हैं इसलिये नित्य नैमित्तिकके भेदसे जो दो प्रकारका
मोन व्रतलाया गया है वह अवश्य आचरण करना चाहिये । यद्यपि यह व्रत देखनेमें अति सुलभ
जान पड़ता है तथापि वह महान् पुण्यका कारण है इसलिये यह अवश्य आचरण करने योग्य है ।
॥ १६६ ॥ मुनिराज धर्मरुचिसे यह मोनव्रतका विशेष साहात्म्य सुन राजपुत्र प्रीतिकरने मन्त्रीपुत्रके
साथ शीघ्र ही मोनव्रतकी प्रतिज्ञा लेलो । भक्ति पूर्वक दोनोंने मुनिराजको नमस्कार किया और वे
अग्ने नगरकी ओर चल दिये ॥ १६७ ॥ जिस समय वे अपने नगरकी ओर लौट रहे थे उस
समय मार्गमें क्या देखते हैं कि अग्नी हिरणीके साथ सानन्द विषय भोग करते हिरणको सिंहने
मार डाला है । वस हिरणको वैसी दशा देखकर उन्हें संसारसे वैराग्य होगया और वे मनही मन
यह विचारने लगे —

जिस प्रकार अग्नी आग्ने तोत्र तृष्णा रखनेवाले इस हिरणको इस सिंहने मार डाला है उसी
प्रकार काल रूयी सिंह भी हमें नियमसे हुनेगा—उसके भी पंजेसे बचना हमारा अत्यन्त कठिन है
वस शीघ्र ही उन दोनों कुमारोंने बाह्य अभ्यन्तर दोनों प्रकारके परिग्रहका त्याग कर दिया ।
परिणामोंमें अत्यन्त कोमलता धारण कर लो एवं वनमें मुनिराज धर्मरुचिके पास जाकर शीघ्रही

प्रमादित्तिसामोप्ये तौ प्रवयत्रतुर्वने ॥ १७० ॥ क्षीरस्त्रावर्द्धितपन्ता प्रीतिं कृतमहामुनेः । अद्भुतपत्ता क्षामशरीरस्य दयानिधेः ॥ १७१ ॥
एकदा जग्मतुः शुद्धौ साकेतस्य वनांतरे । विहरन्तौ मुनौ सौम्यौ तौ विद्वांसौ हतांसौ ॥ १७२ ॥ गणिका बुद्धिषेणाख्या दृष्ट्वा स्वयं
लन्निधौ । चर्यायं मुनिं नम्य जगादेति कृतोजलिः ॥ १७३ ॥ मुनेऽहं कुत्सिता निंदा दानयोग्यकुलातिगा । अस्मिन् मन्ये विधा प्राह्या न
नखेव तपोनिधेः ॥ १७४ ॥ कादंबरी पलं यत्न कुले स्वप्ने न दृश्यते । नानाचारोऽपि योगोन्द्रैस्तत्र प्राह्या विधान्यथा ॥ १७५ ॥ आथ
मद्वयस्रग्भस्ते मुनयो मांसमक्षिणः । अनाचारप्रलङ्घत्वाद्भवन्ति व्याधसन्निभा ॥ १७६ ॥ इत्यप्राक्षोन्मुनिं क्षुद्रा प्रोच्येर्गोत्रकुलादिकं ।

दिगम्बरी दीक्षासे दीक्षित होगये ॥ १६८—१७० ॥ अत्यन्त कृश शरीरके धारक दयाके समुद्र
महामुनि प्रीतिंकरके घोर तपके कारण क्षीरस्त्राव नामकी बद्धि प्राप्त होगई ॥ १७१ ॥

विद्वान् समस्त पापोंके नाश करनेवाले एवं शुद्ध मुनिराज प्रीतिङ्कर विहार करते २ एक दिन
साकेत नगरके वनमें जा पहुँचे । किसी दिन जब वे आहारके लिये नगरमें गये और बुद्धिषेणा
नामकी वेश्याने जब उन्हें चर्या पूर्वक अपने मकानके समीपसे निकलता देखा तो वह शोच ही
उनके पास आई और इस प्रकार विनय पूर्वक निवेदन करने लगी—

भगवन् ! मैं हीन निन्दनीक और दानके योग्य कुलसे रहित हूँ इसलिये तपके भंडार आप
मेरा दिया आहार तो ग्रहण कर ही नहीं सकते ? उत्तरमें मुनिराजने कहा जिस कुलमें शराब
और मांसका स्पर्श स्वप्नमें भी न होगा और जहाँपर किसी प्रकारका अनाचार न दोख पड़ेगा
योगोन्द्र लोग उसी कुलका आहार ग्रहण कर सकते हैं ॥ १७२—१७५ ॥ जो मुनि मांसका
भक्षण करते हैं वे दोनों ही आश्रमोंसे भ्रष्ट हैं अर्थात् न वे गृहस्थ हो कह जाते हैं और न मुनिही
ही कहे जाते हैं क्योंकि वे अनाचारी हैं । अतएव वे भीलोंके समान निन्दनीक हैं ॥ १७६ ॥ मुनि-
राजके ऐसे वचन सुनकर बुद्धिषेणाने पुनः यह पूछा—प्रभो ? जीवोंको उच्च वाच्य उच्चकुल सुन्दर

देहिनां ह्यात्कथं ब्रूहि रूपं कीर्तिष्व भो मुने ! ॥ १७७ ॥ पुनस्तां स मुनिः प्राह मयमांसदिवर्जनात् । ब्रह्मचर्याच्च तत्प्राप्तिर्नान्यथा
 देहिनां सुते ! ॥ १७८ ॥ उद्यम्येति गतोऽरण्ये मुनिः प्रीतिं करो महान् । तदा तमगदीत्साधुं विचित्रमतिरित्यहो ॥ १७९ ॥ पताचत्काश
 पथेन क स्थितं भवता पदे । संजाघट्टि सदा देव ! मुमुक्षूणां स्थितिर्वने ॥ १८० ॥ तदा प्रीतिकरः क्षुद्रावृत्तांतं सर्वमादितः । तस्मै न्य-
 वेद्यत्सोऽपि श्रुत्वा चानंदमागतः ॥ १८१ ॥ विचित्रमतिरन्येद्युर्भुक्तये प्राविशदुष्टं । क्षुद्रायाः सापि तं दृष्ट्वा ध्वंसे पूर्ववन्मुनिं
 रूप और कीर्ति किस प्रकार प्राप्त होती है कृपाकर आप खुलासा रूपसे यह बतलाइये । उत्तरमें
 मुनिराजने कहा—

जो मनुष्य मद्य मांस और मधुके त्यागी हैं और अपनी आत्मामें ब्रह्मचर्यका बल रखते हैं
 उन्हींके उच्च गोत्र वा उच्च कुल आदिकी प्राप्ति होती है अन्यको नहीं ॥ १७७—१७८ ॥ वस
 इस प्रकार बुद्धिवेणाको समझा कर मुनिराज प्रीतिकर वनमें लौट आये उन्हें कुछ विलम्बसे
 लौटते देख मुनिराज विचित्र मतिने कहा—

मुने ! इतनी देर तक आप किस स्थान पर ठहरे रहे थे । देव ! जो पुरुष मुमुक्षु है—मोक्ष
 प्राप्त करना चाहते हैं उनके लिये सदा वनमें ही रहना उचित बतलाया गया है । मुनिराज विचित्र
 मतिकी यह बात सुन मुनिराज प्रीतिकरने आदिसे अंत तक वेश्या बुद्धिवेणाका सप्तस्त वृत्तांत कह
 डाला जिसे सुनकर मुनिराज विचित्र मतिकी अति आनन्द हुआ ॥ १७९—१८१ ॥ दूसरे दिन
 मुनिराज विचित्र मतिभी आहारके लिये गये एवं दुर्भाग्यवश वे वेश्या क्षुद्राके घरमें प्रवेश कर गये
 वेश्याने उन्हें भी मुनिराज प्रीतिकरके समान जानकर बंदना की । और धर्मोपदेश सुननेका
 लालसा प्रगट की परन्तु उसे देख मुनिराजका चित्त चंचल होगया इसलिये वे धर्मकथाकी पर्वा न
 कर दुर्बुद्धि हो इसप्रकार काम कथा कहने लगे—

॥ १८२ ॥ अन्वयुक्त यथा धर्मं कुराजीवा मुनिं प्रति । कामरागकथामेव व्याजहार स दुर्मतिः ॥ १८३ ॥ सुन्दरि ! स्थूल वक्षोबे ! गौरांगि ! मृगलोचने ! खर्वकास्ये ! प्राणभे ! त्वं धर्मं पृच्छसि किं पुनः ॥ १८४ ॥ यौवनं यास्यति नूनं वार्धक्यं च समेष्यति । कस्मे कृत्याय देवोऽयं तव स्यात्सुखं विना ॥ १८५ ॥ श्रुत्वा तद्वचनं क्षुद्रा तं जगौ विदितस्मिता । कावार्थं सन्मणिं पीलुं गर्वभार्थं च कस्त्यजेत् ॥ १८६ ॥ मुनिस्तद्वचनं श्रुत्वा भृशं कामाकुलोऽभवत् । रत्नरश्मोत्तरेऽस्माकं त्वमेवासि गजेश्वरः ॥ १८७ ॥ पुनस्तं वृक्षि पण्डितः स्वीकृत्य शय्यं गता । नो नो कश्चापि शमे शयं कस्त्यजति शिवं ॥ १८८ ॥ तत्र तं पक्षीं ज्ञयं शर्म मह्यं रोचेत नायके !

सुन्दरी ! तुम उन्नत स्तनोंसे शोभायमान हो । गोरे अंगकी धारक हो । तुम्हारे दोनों नेत्र हिरणीके समान मनोहर हैं तुम चंद्रमुखी और प्रौढ़ उग्रकी हो धर्मके विषयमें .तुम क्या पूछना चाहती हो ? देखो यह यौवन चला जाता है और बुढ़ापा आ धमकता है । तुम्हारा यह सुन्दर शरीर भोग विलासोंके लिये है सो तुम भोग विलास न कर क्यों इस महा मनोहर शरीरको निरर्थक खो रहो हो और किस कार्यके लिये इसका लालन पालन कर रही हो ॥ १८२—१८५ ॥ मुनिराज विचित्रमतिकी यह बात सुनकर वेश्या वृद्धिपेणा मुस्कराने लगी एवं मुस्करातेहुए उसने यह उत्तर दिया—मुने ? काचके लिये उत्तम मणि और गधाके लिये हाथीको छोड़ता मैंने कोई नहीं देखा है । भोग विलास काच और गधाके समान हैं एवं धर्माचरण उत्तम मणि और हाथीके समान हैं । धर्माचरण छोड़कर भोग विलासोंसे शरीरको नष्ट करना व्यर्थ है । मुनि विचित्र मति की काम वासना प्रज्वलित हो चुकी थी । वेश्याको बातका उनके चित्तपर जरा भी असर नहीं पड़ा एवं कामसे अत्यन्त पीडित हो वे इस प्रकार कहने लगे—

सुन्दरी ! तुम देवांगनाके समान मनोहर रूपसे शोभायमान हो इसलिये मेरे लिये तो तुम्हीं उत्तम मणि और उत्तम हाथी हो तुम्हें देखकर धर्माचरणकी ओर चित्त नहीं जा सकता ॥ १८६ ॥

करणागोचरं शर्म साधितं नापि तत्तथा । सा तं भृष्टं परिह्राय तिरश्चकोऽतिवेगतः । तदा लब्धापमानः सः, वने गत्वा तपोऽकरोत् ॥ १६० ॥ मासे मासद्वये दाते पारणामकरोन्मुनिः । तत्तपो दुष्परं मत्वा राजा तद्वशमागतः ॥ १६१ ॥ बुद्धिषेणा तदा स्वति तत-
कोति मुहुर्मुहुः । अस्याधीनो दशो राजा तर्हि कोऽप्यस्त्ययं महान् ॥ १६२ ॥ वशीभूयमिता तस्य बुद्धिषेणापि लज्जिका । तत्सांगत्यं
१८७ ॥ बुद्धिषेणाका कार्यं यद्यपि वेश्याका था परन्तु वह धर्मको कुछ समझती थी इसलिये वह
पुनः मुनि विचित्रमतिको समझाने लगी—

मुने ! विषय जनित थोड़ेसे सुखकी लालसासे विलकुल पासमें आये हुए मोक्ष सुखको कोई
छोड़ता नहीं सुना । मोक्षका प्रधान कारण तुमने दिगंबर लिंग धारण कर रक्खा है मोक्षका सुख
विलकुल तुम्हारे समीप है तुम्हें निन्दित विषय भोगोंकी लालसा कर उसे न छोड़ देना चाहिये
॥ १८८ ॥ मूढ़ मुनिपर उसके वचनोंका कब प्रभाव पड़ सकता था । विचित्रमतिने अपने मुनिलिंग
की कुछ भी पर्या न की वह एक दम मूढ़ बनकर इसप्रकार कहने लगा—

सुन्दरी ! मुझे इस समय तो तुम्हारे संसर्गसे जगमान सुख ही रुच रहा है । जो सुख इंद्रियोंके
गोचर नहीं वह नित्य हो चाहे अनित्य वह वैसा हा रहे । मुनिके इन निर्लज्ज वचनोंसे वेश्या
बुद्धिषेणाको यह मालुम पड़ चुका कि यह धर्माचरणसे भ्रष्ट है इसलिये उसे बड़ा क्रोध आया
और उसका घोर तिरस्कार किया जिससे मुनि विचित्रमतिको गाढ़ अपमान मान बढ़ा कष्ट हुआ ।
सीधा वह वनको चला गया एवं मनमें किसी प्रकारका धर्माचरण न रख ढोंगसे वह एक एक
वा दो २ मासके बाद पारणा करने लगा जिससे रोजा पर भी उसका प्रभाव पड़ गया और वह विचि-
त्रमतिका अनन्य भक्त बन गया ॥ १८९—१९१ ॥ जिस समय विचित्रमतिका अनन्य भक्त राजा
होगया उस समय बुद्धिषेणा अपने मनमें बार २ विचारने लगी जब इस मुनिके बश राजा होगया

मुनिः प्राप्य मोहांधोऽभूत्तपश्चुतः ॥ १६३ ॥ पूर्ववैरेण वैरं स्यात्पूर्वस्नेहेन भोगता । न दोषोऽस्त्यत्र कस्यापि तन्निंदी नरकं व्रजेत् ॥ १६४ ॥ तिर्यग्योनिश्च मोहाद्दे निर्वंशो भवति स्फुटं । मृत्वा स कुंजरो जहो तवार्यं मानवाधिप ! ॥ १६५ ॥ अस्य त्रिलोकप्रवृत्तिश्रवणा जातिसंस्मृतिः वभूषातो मजोऽयं तेः नागृहीद्वक्ष्यं शुचा ॥ १६६ ॥ इत्याकर्ण्य नृपश्चित्तो चिंतयामास धिग्धनं । राज्यं रामा सुखं चेति निर्विण्णोऽभूत्तदा नरेत् ॥ १६७ ॥ साधिपत्यं तुजे दत्वा स्वमाता रत्नमालया । साकं संयममापदे रत्नयुधनराधपः ॥ १६८ ॥ योग्यश्रमादुत्ते व्यर्थं तपो भवति निश्चितं । यत्नाश्रमे मनो याति विलयं तत्तपो विदुः ॥ १६९ ॥ तपांसि विदधं शैले कृत्वाप्रं तिमरो

है तब अवश्य ही यह कोई महान पुरुष है वस मारे भयके बुद्धिबेणा भी मुनिके वश गई । मोहसे अन्ध हो मुनिराजने भी उसकी संगति करनी प्रारम्भ करदी और तपसे अपना मुंह मोड़ लिया । ॥ १६२—१६३ ॥ जिस किसी मनुष्यका जिस किसीके साथ बैर वा स्नेह होता है वह पूर्व भवके वैरके संबंधसे होता है इसमें किसीका दोष नहीं इसलिये किसीको बुरा भला कहना व्यर्थ है ॥ १६४ ॥ मोहकी प्रवलतासे जीवको तिर्यच योनिके अन्दर तिर्यच होना पड़ता है ।

राजन बज्रायुध ! वह विचित्रमति मुनिका जीव मरकर तुम्हारा यह हाथी हुआ है । तीनलोक का स्वरूप सुनकर इसे अपना जाति स्मरण होगया था इस लिये मारे शोकके इसने खाना पीना छोड़ दिया ॥ १६५—१६६ ॥ राजा रत्नायुधने मुनिराज बज्रदन्तके मुखसे जब इसप्रकार हाथीके पूर्व भवका वृत्तान्त सुना तो उसने लक्ष्मी राज्य स्त्री जनितसुख आदिको बहुत धिक्कारा । वह उनसे विरक्त होगया । राज्य भार अपने पुत्रको प्रदान किया एवं अपनी माता रत्नमालाके साथ संयम धार लिया ॥ १६७—१६८ ॥ तपके आचरणका जो आश्रम बतलाया गया है यदि उस आश्रमकी कुछ भी पूर्वा न की जाय तो वह तप हुआ तप भी व्यर्थ चला जाता है । यदि तप करते भी चित्त

लिपि । प्रांते समाधिना मृत्वां सोढाभूदच्युते दिधि ॥ २०० ॥ तपसा रत्नमालापि स्त्रीत्वं छित्त्वाऽच्युतामिधः । देवोऽभूदच्युते स्वर्गे
सुखाणो धौ पतङ्गमः ॥ २०१ ॥ द्वाविशत्यब्धितानां युः सुखं तौ प्रापतुः परं । तावद्विश्वं सहस्रैस्तौ मनसाहारमापतुः ॥ २०२ ॥
तावत्तक्षैः समुच्छ्रवात् सुगंधीकृतदिव्यं । कुर्वन्तौ सेव्यमानी च रम्भाराज्यामरादिभिः ॥ २०३ ॥ भोजयामासतुस्तौ शं निमिषा
अच्युतामिधौ । शुक्रलेश्यौ करभ्यंगौ पद्मगणमणिप्रभौ ॥ २०४ ॥ अथ यः प्राक्तनः श्वाभ्रो निर्गतः पङ्कजवन्नतः । नानायोनिषु दुःखानि
तानि भुङ्क्तानि तेन वै ॥ २०५ ॥ ताम्ना छत्रपुरे व्याधो वर्तते कज्जलप्रभः । दारुणाख्यो महापापो पापपुंज इवाहुतः ॥ २०६ ॥ तस्य

यहस्थाश्रममें हो फसा रहे तो वह तप नाशक बन जाता है ॥ १६६ ॥ वे मुनिराज रत्नायुध सूर्यकी
ओर टकटकी लगाकर घोर तप तपने लगे और अंतमें समाधिपूर्वक प्राणोंको त्याग कर अच्युत
स्वर्गमें जाकर देव होगये ॥ २०० ॥ आर्यिका रत्नमालाने भी घोर तपके भावसे स्त्रीलिंगको छेद दिया ।
अच्युत स्वर्गमें जाकर वह अच्युत नामका देव होगई जो कि देव सुखरूपी समुद्रकी वृद्धिके लिये चंद्रमा
स्वरूप था । वे दोनों देव बाईस सागर प्रमाण आयुके धारक थे । परम सुखी थे । बाईस हजार वर्षोंके
बाद एकवार मनसे आहार ग्रहण करते थे । बाईस पक्षोंके बाद अपनी सुगंधिसे समस्त दिशाओंको
महकानेवाला सुगंधित उल्हास लेते थे और अनेक देवांगना और देव उनकी सेवा करते थे ॥ २०१-
२०३ ॥ शुक्रलेश्याके धारक थे । तीन हाथके शरीरसे शोभायमान थे और पद्मराग मणिके समान
प्रभाके धारक थे ॥ २०४ ॥

मंत्री सत्यघोषका जीव जो अजगरकी पर्यायसे चौथे नरकमें गया था । वह वहांसे अपनी आयुके
समाप्त होजानेके बाद निकला एवं अनेक योनियोंमें घूमनेके कारण उसने बहुत दुःख भोगा ॥ २०५ ॥
पद्मपुर नगरमें एक दारुण नामका भील रहता था जो कि काजलके समान काला था और साक्षात्
पाप स्वरूप था ॥ २०६ ॥ उसको स्त्रीका नाम मंगिका था जो कि काजलका पिंड स्वरूप थी एवं

स्त्री मंगिका नाम्ना कज्जलादिश्च वैधसा । रक्षिता तमसां माला जगत्स्थानमिव ध्रुवं ॥ २०७ ॥ तयोः पुत्रोऽभवत्सोऽपि भीषणो
भीरुभीप्रदः । नाम्नातिदारुणोदुष्टो मृगादीनां विनाशकृत् ॥ २०८ ॥ बने प्रियंगुखण्डाख्ये वज्रायुधमुनीश्वरः । आययावेकदा हिंसा
भीषणे विहरन्तौ ॥ २०९ ॥ गहनं विपिनं स्थानं दृष्ट्वा तत्र स्थितो मुनिः । कायोत्सर्गं विधायानु संस्मरन् परमं महः ॥ २१० ॥
तपसा क्षामगात्रं समर्धदग्धपासुवत् । गतच्छायां मुनिं दृष्ट्वा समैस्तत्रातिदारुणः ॥ २११ ॥ अत्रवीदिति कोपेन समाकूटं विधाय
सः । कामुकं दुर्वचोभिस्तं दृष्टदस्तो समन्तभिः ॥ २२ ॥ कोऽस्ति त्वं कुत आयातो मद्वने जनवर्जिते । किमर्थं कस्य पुत्रोऽसि किं नामा

ऐसी जान पड़ती थी मानों यह जगतमें ब्रह्माने अंधकारकी माला रच दी है भीलिनी मंगीके मंत्री
सत्यघोषका जीव वह नारकी अतिदारुण नामका पुत्र हुआ जो कि महाभयंकर था । डरपोकोंको भय
प्रदान करनेवाला था दुष्ट था और मृग आदि दीन पशुओंका नाशक था । छत्रपुरका एक प्रियंगुखंड
नामका वन था जो कि हिंसक जीवोंसे गहा भयंकर था । जहां तहां विहार करते २ मुनिराज वज्रा-
युध वहांपर आये । गहन निर्जन स्थानमें कायोत्सर्ग मुद्रा धारणकर वे विराज गये और सिद्धोंके
स्वरूपका चिंतन करने लगे । मुनिराज वज्रायुधका शरीर घोर तपोंके तपनेके कारण एकदम कृश
था इसलिये वे आधे जले मुर्दे सरीखे जान पड़ते थे एवं उनके शरीरकी प्रभा एकदम नष्ट होगई थी ।
मृगोंके पकड़नेकी खोजमें भोलपुत्र अतिदारुण भी घूमता २ वहां आ पहुंचा एवं मुनिको देखकर
पूर्व वैरके संबन्धसे उस दुष्टने बाण धनुष पर चढ़ा लिया । हाथमें मारनेके लिये पत्थर ले लिये ।
एवं मारनेके लिये घुमाता हुआ वह इसप्रकार दुर्वचन कहने लगा—

तू कौन है ! और इस जनशून्य मेरे वनमें तू कहांसे और क्यों आया है ? किसका पुत्र
और तेरा क्या नाम है ? जल्दी बता यदि तू जल्दी न बतायेगा तो बाण पत्थर और मुक्कोंसे तुझ
अभी यमराजके मन्दिरमें पहुंचा दूंगा ॥ २०७—२१३ ॥ परम ध्यानी मुनिराज ऐसे कब भय

यद् वेगतः ॥ २१३ ॥ अथास्त्वं यदिः को सूर्यं तर्हि कीलाशमन्दिरं । नेव्याम्यहं धनुर्घातैस्त्वां पाषाणैश्च मुष्टिभिः ॥ २१४ ॥ निश्चलो मेरुवज्जीरः सिंहवद्वारिराशिवत् । गम्भीरः सत्त्वमाश्रित्य न चञ्चलः स योगतः ॥ २१५ ॥ तदासौ दुर्मतिर्व्याघस्तताञ्छोपल्लाशिभिः पूर्ववैरोदयाद्वाहं तस्य क्रोधोऽभूतायतः ॥ २१६ ॥ आकण्ठं ताड्यमानोऽपि तेन पापीयसा मुनिः । नापतद्भूतले भव्यो ध्यानमिरयवत्कं वतात् ॥ २१७ ॥ यदा भिक्षो मुनेः कण्ठे आपमारोप्य वेगतः । आचर्क्य बलाहोर्म्यां न चञ्चलः तदापि सः ॥ २१८ ॥ दोर्दण्डीकृत्य चार्पं स्वं किरातो मुनिमस्तके । अघान घन घातैश्च तद्विघ्नो दुर्वचो विदां ॥ २१९ ॥ द्वादशेति मुनिर्दध्याधनुप्रेक्षाः स्वमानसे । तदुध्यानं भोत होनेवाले थे वे मेरुपर्वतके समान निश्चल सिंहके समान धीरवीर समुद्रके समान गंभीर होगये । चित्तमें उत्तम कोटिकी शान्ति धारण कर वे रश्ममात्र भी ध्यानसे न चिगे । मुनिराजका इसप्रकार का मौन देख उस दुष्टका क्रोध एकदम उबल उठा एवं पूर्ववैरके सम्बन्धसे वह उन्हें पत्थरोंसे मारने लगा ॥ २१४—२१५ ॥ कण्ठपर्यन्त उस पापीने मुनिराजको पत्थरोंकी मार मारी परन्तु वे ध्यानरूपी मजबूत भीतिके सहारे खड़े थे इसलिये वे जमीनपर न गिरपाये ॥ २१६ ॥ मुनिके गलेमें दुष्टने धनुष डाल दिया और दोनों भुजाओंसे उन्हें खींचने लगा तथापि वे मुनिराज रश्ममात्र भी चल विचल न हुए ॥ २१७ ॥ अन्तमें दुष्टने क्या किया दोनों भुजाओंसे धनुषको पकड़ लिया एवं तीक्ष्ण बाणोंसे मुनिराजका मस्तक छेदने लगा । यह विघ्न वास्तवमें विद्वानोंके वचनके अगोचर था । मुनिराज वज्रायुधने अपने ऊपर तीव्र उपसर्ग समझकर बारह भावनाओंका चिन्तन करना प्रारम्भ कर दिया । वे रश्ममात्रभी उस विघ्नसे विचलित न हुये ठीक ही है ध्यान और तप वही प्रशस्त माना गया है जो विघ्नके उपस्थित हो जानेपर मनुष्यको विचलित न होने दे ॥ २१८—२१९ ॥ वे मुनिराज चित्तके अन्दर इसप्रकार भावना भाने लगे—

संसारमें जितने भी धन धान्य आदि पदार्थ दीख पड़ते हैं सब अनित्य हैं तथा पिता पुत्र

तत्तपः क्वातं यद्विघ्ने शक्तिमदुभवेत् ॥२२०॥ अनित्यं दृश्यते सर्वं धनधान्यादिकं भवे । पितृपुत्रकुटुम्बानां नित्यत्वं नैव दृश्यते ॥२२१॥
 चक्रवर्त्यादयो भूपाः षट् क्षण्डधराधिनः । मृतास्ते कालसर्पेण दृष्टा देवमस्कृताः ॥२२२॥ देवार्थक्षण्डभूभूपा दृश्यार्था पन्नगेशिनः ।
 भूधरा भूवहस्तारा महा दैत्याः सुराधिपाः ॥ इष्टानिष्टानि वस्तूनि पुद्गलाः पापकारिणः । सर्वे कालेन नश्यन्ति नास्ति कालप्रतिक्रि-
 या ॥ २२४ ॥ संसारकानने जीववृधतं कालपीलुभित् । अस्थेष कोपतः श्वेतः कस्तं शक्नोति रक्षितुं ॥ २२५ ॥ पिता पुत्रं सवित्री च
 पुत्रश्च पितरापि । अलन्त रक्षितुं कालगृह्यमाणमये मनः ॥ २२६ ॥ असारेऽत्र भवे चेतः । कः कस्यापि न विद्यते । स्वार्थभूतं
 कुटुम्ब आदि पदार्थोंमें भी कोई अविनाशी नहीं दीख पड़ता ॥ २२० ॥ छह खण्डके स्वामी अनेक
 देवोंसे सेवित चक्रवर्ती आदि राजा भी कालरूपी सर्पके द्वारा उसे जानेके कारण मृत्युके मुखमें
 प्रविष्ट होगये हैं ॥२२१॥ देव, आर्यखण्डकी पृथ्वीके स्वामी, दृष्टि गोचर उत्तमोत्तम पदार्थ, धरगोन्द्र
 पर्वत, वृक्ष तारा ग्रह दैत्य देवेन्द्र इष्ट और अनिष्ट रूप चीजें और पापके कारण पुद्गल सभी कालके
 द्वारा नष्ट हो जाते हैं ॥ कालका प्रतीकार किसीके पास नहीं—उसे कोई वश नहीं कर सकता
 ॥ २२२—२२३ ॥ इस प्रकार संसारमें समस्त पदार्थ अनित्य हैं इस संसार रूपी वनमें जीव रूपी
 मृगको कालरूपी सिंह नियमसे खाता ही है । जिस समय इस जीव पर कालरूपी सिंह कुपित हो
 जाता है उस समय इसकी कोई भी उससे रक्षा नहीं कर सकता ॥ २२३ ॥ विशेष क्या ! रे मन !
 इस संसारमें जिस समय इस जीवको कालरूपी सिंह जिकड़कर पकड़ लेता है उस समय पिता
 और माता, पुत्रकी रक्षा नहीं कर सकते एवं पुत्र, पिता माताको नहीं बचा सकता ॥ २२४-२२५ ॥
 इस प्रकार इस जीवका संसारमें कोई अपना नहीं है । इस संसारमें कोई किसीका नहीं है समस्त
 जगत मतलबी है स्वार्थ रहने पर एक दूसरेको चाहता है ॥ २२६ ॥ इस प्रकार संसार बड़ा ही
 स्वार्थी है । निश्चय नयसे यह जीव नित्य है । सिद्ध बुद्ध और निरंजन है । किसीके द्वारा छेदा

जगत्सर्वं मित्यं जानीहि वस्तुतः ॥ २२७ ॥ जीवोऽयं नित्य एवास्ति सिद्धोषुद्धो निरंजनः । अलङ्घ्योऽनामिचिद्रूपो ध्येयो निर्विकलता
मितः ॥ २२८ ॥ भिन्नोऽयं पुद्गलः व्याप्तो जीवाज्जीवोऽपि तन्मनः । अतोऽस्मिन् मित्रता कैव कर्मरूपे धिनश्वरे ॥ २२९ ॥ सप्तधातु
मयो देहो विषमूत्रैर्निचितोऽशुचिः । अस्थिसन्तानसंघट्टो रोगोरगपदं शठः ॥ २३० ॥ चर्मावृतः कदर्यैश्च दुर्गन्धैः वृत्तिर्धनं
ध्यानं मुक्त्वाथः केनायं पोष्यते कर्मभाजनं ॥ २३१ ॥ मिथ्यात्वाच्चिरतिलासैः कषायविषयादिभिः । कर्मास्त्रयति यशेन निरयं याति

जानेवाला न होनेके कारण अच्छे हैं । अनादि है । चैतन्य स्वरूप है । ध्यान करने योग्य है और
समस्त प्रकारके इन्द्रियोंसे रहित निर्विन्द है ॥ २२७ ॥ इस प्रकार यह जीव अकेला ही है । पुत्र स्त्री
आदि इसका कोई भी नहीं । जीवसे यह पुद्गल भिन्न है । पुद्गलसे जीव भिन्न है मन भी जीव
से भिन्न है इसलिये विनाशक कर्मके साथ अविनाशक जीवकी कोई भी मित्रता नहीं है ॥ २२८ ॥
इस प्रकार यह जीव कर्मसे अन्य है । यह देह मेद मज्जा आदि सप्त धातु स्वरूप है । विष्टा और
मूत्रसे व्याप्त है । अपवित्र है । हड्डियोंसे व्याप्त है । रोग रूपी सर्पोंका विल है और अनेक प्रकार
से पोषा जानेपर भी नष्ट ही होता चला जाता है इसलिये कृतघ्नी है ॥ २२९ ॥ यह शरीर चारों
ओरसे चामसे वेष्टित है । महानिन्द्य दुर्गन्धिका खजाना है इसलिये कर्मोंके कारण इस शरीरका
विद्वान लोग ध्यानके किये ही पोषण करते हैं विषय भोगके लिये नहीं ॥ २३० ॥ इस प्रकार यह
शरीर अपवित्र है । मिथ्यात्व अविरति त्रास प्रमाद कषाय और विषय आदिके द्वारा इस जीवके
सदा कर्मोंका आस्त्रव होता रहता है उससे यह जीव नरकमें जाकर अनेक प्रकारके दुःख भोगता
रहता है ॥ २३१ ॥ इस प्रकार इस जीवके मिथ्यात्व आदिके द्वारा सदा कर्मोंका आस्त्रव होता
रहता है । आस्त्रवके दो भेद माने हैं एक द्रव्यास्त्रव दूसरा भावास्त्रव । जिसके द्वारा दोनों प्रकार
के कर्मोंका निरोध हो वह संवर कहा जाता है इस संवर तत्त्वकी प्राप्ति गुप्ति समिति धर्मव्रत आदि

नायकः ॥ २३२ ॥ तत्त्वभावात्सर्वो येन रोध्येते सम्यरोहि सः । वतधर्मादिधान् जीवं कृतो नयति [सत्पथं ॥ २३३ ॥ द्वौ भेदौ निर्ज
 रायाः स्तः सविपाकोऽविपाककः । मुनीनामविपाकः स्यादन्यस्य सर्वदेहिनां ॥ २३४ ॥ अनादिनिधनो लोकः षट्द्रव्यादिचित्तो महान्
 केनाकारि न मूर्धोन्ननराकारमलं दधत् ॥ २३५ ॥ चिंत्यते ध्यानसिद्धयर्थं योगिना लोकसंस्थितिः । स्थैर्यं यतो मनो याति तस्मिन्नेव
 के द्वारा होती है इस लिये व्रत और धर्म आदिका करनेवाला जीव मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥ २३२ ॥
 इस प्रकार दोनों प्रकारके आस्रवका रुक जाना संवर कहा जाता है और संवर तत्त्वका चिंतवन
 संवरानुप्रेक्षा कही जाती है । सविपाक निर्जरा और अविपाक निर्जराके भेदसे निर्जराके दो भेद
 माने हैं । स्थितिके पूरे होनेपर प्रति समय कर्मोंका खिरता रहना सविपाक निर्जरा है और तप
 आदिके द्वारा जवरन कर्मोंका खिपा देना अविपाक निर्जरा है । वृत्तियोंके अविपाक निर्जरा होती
 है क्योंकि वे तप आदिके द्वारा जवरन कर्म खिपाते हैं और अन्य सबोंके सविपाक निर्जरा होती
 है ॥ २३३ ॥ इस प्रकार एक देश रूपसे कर्मोंका खिपना निर्जरा है । यह समस्त लोक अनादि
 निधन है न इसकी आदि है और न इसका अन्त है । यह जीव अजीव आदि द्रव्य स्वरूप है ।
 विशाल है । किसीके द्वारा बनाया हुआ नहीं है तथा यह उन्नत पुरुषाकार है ॥ २३४ ॥ ध्यानकी
 सिद्धिके लिये योगी लोग लोकके आकारका चिंतवन करते हैं क्योंकि मनके स्थिर करनेसे ध्यान
 हो सकता है तथा लोकका आकार चिन्तवन करनेसे मन स्थिर होता है और मनकी स्थिरतासे परम
 पद मोक्ष पदकी प्राप्ति होती है ॥ २३५ ॥ इस प्रकार लोकके स्वरूपका चिन्तवन करना लोकानु-
 प्रेक्षा है । समस्त पदार्थोंके प्रकाश करनेवाले सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति संसारमें बड़ी कठिन है क्योंकि
 इस सम्यग्ज्ञानके द्वारा जीवोंको आत्मरूपी तेजका स्पष्ट रूपसे ज्ञान हो जाता है । तथा वह
 सम्यग्ज्ञान कर्मरूपी बृक्षके लिये फरसा है । मनरूपी पर्वतके भेदनेमें वजू है और अज्ञानरूपी

परंपर्य ॥ २३६ ॥ संसारे बुद्धिहीनो बोधो दीपो वस्तुप्रदर्शने । मात्मज्योतिर्यतः स्पष्टीभूयमायाति कायिनां ॥ २३७ ॥ कर्माणि परशुर्वज्रं
चेतोऽग्रिणी गरीयसि । तमोऽरिस्तमसि हृषीकेश्यातव्यो बोध एव ते ॥ २३८ ॥ जगन्नाथेन यः कयातो धर्मो भावघ्नतान्वितः । दुःप्राप्यः
प्राणिनां मत्त्वा चिंतनीयः प्रयत्नतः ॥ २३९ ॥ चिंतयन्निति सद्ब्रह्मणं वज्रायुधमुनीश्वरः । प्रत्यूहं तत्कृतं जित्वा मुमोचासून
जितेन्द्रियः ॥ २४० ॥ सर्वार्थसिद्धिमाराशु धर्मध्यानपरोमुनिः । अहमिन्द्रो महासौख्यं भुञ्जन् तस्यौ स निर्मलः ॥ २४१ ॥ शुक्ल
लेश्योऽथ शुक्लांगहस्तमात्रा महोर्निधिः । अपांस्त्रिंशत्समुद्रायुर्निरुपधिर्धर्मातिगः ॥ २४२ ॥ ईदृशा तत्र देवस्य विद्यते शक्तिरुत्तमा ।

अन्धकारके नाशके लिये सूर्य है इसलिये सम्यग्ज्ञानका हृदयसे ध्यान करना आवश्यक है । इस प्रकार संसारमें सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति बड़ी दुर्लभ है ॥ २३६—२३७ ॥ भगवान् जिनेन्द्रने जो भावघ्नत आदि स्वरूप धर्म बतलाया हैं वह बड़ी कठिनतासे प्राप्त होता है इसलिये धर्मात्माओंको चाहिये कि वे प्रयत्न पूर्वक धर्मका चिंतन करते रहें ॥ २३८ ॥ इस प्रकार धर्मके स्वरूपका चिंतन करना धर्मानुप्रेक्षा है । इस प्रकार बारह भावनाओंके चिंतन करनेवाले मुनिराज वज्रायुधने दुष्ट अति दारुण भील द्वारा किया गया समस्त उपसर्ग बड़ी शांतिसे सह लिया । जितेन्द्रिय मुनिराज धर्म ध्यानमें लीन होगये । प्राणोंका परित्याग कर सर्वार्थ सिद्धि विमानमें जाकर अहमिन्द्र होगये । एवं वहांका सानन्द सुख भोगने लगे ॥ २३९—२४० ॥ मुनिराज वज्रायुधके जीवके शुक्ल लेश्या थी । एक हाथका सुन्दर शरीर था । वह तेजका खजाना था । तेतीस सागरकी आयु थी । किसी प्रकारकी उनके साथ विशेष उपाधि न थी एवं आंत ज्ञानसे वे रहित थे ॥ २४१ ॥ शास्त्रमें सर्वार्थ सिद्धिके देवोंके अन्दर इतनी अद्भुत शक्ति बतलाई है कि यदि वह चाहे तो निमेषका जितना प्रमाण बतलाया है उसके अठारहवें भागमें ही अर्थात् देखते देखते वह लोकाकाशको उलटा कर सकता है ॥ २४२ ॥ मुनिराज वज्रायुधको कष्ट देनेवाला वह अति दारुण भील पापके तीव्र उदयसे

लोकाकाशं करे कृत्वा काष्ठया विपरीतयेत् ॥ २४३ ॥ व्याधोसौ पापतो मृत्या न्यविशत् सप्तमीं मुर्वं तद्दुःखं गदितुं तत्र कः शक्नोति जिनं विना ॥ २४४ ॥ मुनी अहं लीना सफळमुल्लसंतामजनी । दुराप्या सर्वार्थासिद्धिं च वशतामेति ननु न । जगत्स्थामा रामा परमपद्मायाति जवतो यतो धैर्यध्यानातिकमिति यत चित्रं शमवता ॥ २४५ ॥ जितेन्द्रियाणां न भवेद् राघवं परं पदं स्वर्गं नरेन्द्रसौख्यं । जितेन्द्रियाणां न भवेद् राघवं परं पदं स्वर्गं नरेन्द्रसौख्यं ॥ २४६ ॥

इति श्रीविमलनाथपुराणे भट्टारक श्रीरत्नभूषणास्नायालङ्कारविद्व० हर्षवीरिकाच्योद्धारमानसरोजहंस
ब्रह्मचारोश्वरकृष्णदासविरचिते ब्रह्ममङ्गलदाससाहाय्यसापेक्षे रामदत्ताक्षररत्नमाळाव्युतदेव
पूर्णचन्द्रचरत्नायुधाव्युतदेवसिंहसेनबन्धुप्रायुधसर्वार्थसिद्धिगमनवर्णनो नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

मरकर सातवे नरक गया । सातवें नरकका इतना भयङ्कर दुःख है कि उसे भगवान् जिनेन्द्रके सिवाय कोई नहीं कह सकता ॥ २४३ ॥

मुनिराज वज्रायुध पर जब समस्त सुखोंकी स्थान और कठिनतासे प्राप्त होनेवाली सर्वार्थ सिद्धिरूपी स्त्री भी आसक्त होगई तब संसारकी स्त्रियोंका मुग्ध होना कोई बड़ी बात नहीं क्योंकि जो शांति स्वरूप संयमी हैं उनको स्थिर ध्यानसे मोक्ष सुख भी प्राप्त हो जाता है तब अन्य सुखोंका प्राप्त होना आश्चर्य कारी नहीं ॥ २४४ ॥ जिन महा पुरुषोंने इन्द्रियोंका विजय कर लिया है उनके मोक्ष स्थान स्वर्ग और नरेन्द्रोंका सुख दुर्लभ नहीं किन्तु जिन्हें इन्द्रियोंने ही जीत लिया है उनके लिये मोक्ष सुख और नरेन्द्र सुख सभी कुछ दुर्लभ हैं ॥ २४५ ॥

इसप्रकार भट्टारक रत्नभूषणकी आम्नायके अलङ्कारस्वरूप हर्षवीरिकाके पुत्र उत्तम ब्रह्मचारी

कृष्णदासद्वारा विरचित बृहत् विमलनाथपुराणमें रानी रामदत्ताके जीव रत्नभाला

और अच्युतदेव, पूर्णचन्द्रका जीव रत्नायुध और अच्युतदेव एवं सिंहसेनका

जीव वज्रायुधका सर्वार्थसिद्धि गमन वर्णन करनेवाला आठवां सर्ग समाप्त हुआ ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः



नीम्यहं शिवकर्तारं गोरक्षं वृषभं जितं । माद्यन्तवर्जितं सारं सारङ्गमं च शर्वणे ॥ १ ॥ अथैव धातुकीखण्डप्राग्भागे विस्तृतो महान् । विदेहः पश्चिमो माति मरुत्वास इवापरः ॥ २ ॥ तन्मध्ये गन्धिलो नाम्ना समस्ति विषयोभृतः । धार्मिकैर्धनधान्यैश्च विद्वन्मुनिपदांकितः ॥ ३ ॥ अयोध्या विद्यते तत्र पुरी स्वर्धामसन्निभा । अर्हदासोऽभवद्राजा तत्र लोलापुरंदरः ॥ ४ ॥ सुव्रताख्या प्रिया तस्य विलसन्ती रतेच्छया । विद्युन्मालेव संव्रजे कुंकुमावणरेहका ॥ ५ ॥ रत्नमालावरणयुक्ता स्वर्गादव्युतासयोः । जहो

जो भगवान् ऋषभदेव मोक्षके प्रदान करनेवाले हैं । पृथ्वीके रक्षक है । आदि अन्तसे रहित है सार स्वरूप है और कल्याण स्वरूप हैं उन भगवान् ऋषभ देवको मैं भक्ति पूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ इसी पृथ्वीपर धातुकी खंड द्वीपके पूर्व भागमें विदेह नामका क्षेत्र है जो कि अपनी अद्वितीय शोभासे उत्तम और स्वर्ग नगर सरोखा जान पड़ता है ॥ २ ॥ विदेह क्षेत्रमें एक गन्धिल नामका प्रसिद्ध नगर देश है जो कि धर्मात्मा पुरुष और धन धान्य आदिसे सदा व्याप्त बना रहता है और विद्वान् मुनियोंके चरण चिह्नोंसे सदा अंकित रहता है ॥ ३ ॥ गन्धिल देशमें एक अयोध्या नामकी नगरी है जो कि शोभामें स्वर्ग पुरीकी उपमा धारण करती है । अयोध्या नगरी का संरक्षक उस समय राजा अर्हदास था जो कि शोभा और क्रीड़ाओंमें इन्द्रके समान जान पड़ता था ॥ ४ ॥ राजा अर्हदासकी रानीका नाम सुव्रता था जो कि रति संबंधी अनेक प्रकारके विलासोंकी करनेवाली थी एवं उसका शरीर केसरके रङ्गका सदा शोभायमान रहता था इसलिये वह बीजलीके समान सुन्दर जान पड़ती थी ॥ ५ ॥ रानी रामदत्ताका जीव जो कि रत्नमाला होकर

धीमान् महातेजाः सुतो वीतभयाद्वयः ॥ ६ ॥ रत्नायुधोऽपि तन्माकाङ्क्ष्युश्चा तस्यैव भूपतेः । प्रियायां जिनदत्तायां सुतोऽजनि विभी-
षणः ॥ ७ ॥ बलदेवकेशवी तौ च वीतभीकविभूषणी । अज्ञाते पुण्यतो राज्यं भोजयामासतुश्चिरं ॥ ८ ॥ मृत्वा विभीषणे राजा केश-
वत्वाद्भूतः क्षितिं । द्वितीयायां महानोमिरारम्भोत्थैश्च दुस्त्यजैः ॥ ९ ॥ बलदेवोऽपि तद्भुजं विरं हृत्वातिमीहतः । त्यक्त्वा राज्यं निवृ-
त्त्यते संयमं प्राप पुण्यधीः ॥ १० ॥ दुष्करं च तपस्तपत्वा लांतवाच्यं दिवं ययौ । आदित्याभे विमानेऽभूदादित्याभः सुरोत्तमः ॥ ११ ॥

अच्युत स्वर्गमें जाकर देव हुआ था राजा अर्हदासके रानी सुव्रतासे उत्पन्न वीतभय नामका कुमार हुआ जो कि बुद्धिमान था उम तेजका धारक था । राजा पूर्णचन्द्रका जीव रत्नायुध जो कि मरकर अच्युत स्वर्गमें ही देव हुआ था आयुके अन्तमें वहांसे चयकर उसी राजा अर्हदासके जिनदत्ता नामकी रानीसे उत्पन्न विभीषण नामका पुत्र हुआ था ॥ ६—७ ॥ इन दोनों कुमारोंमें कुमार वीतभय बलदेव था और विभीषण नारायण था । ये दोनों ही बलदेव और केशव पदवियोंके धारक कुमार समस्त भयोंसे रहित थे । कवियोंके भूषण थे और पूर्व पुण्यके उदयसे सानन्द राज्य का भोग करते थे ॥ ८ ॥ राजा विभीषण जो कि नारायण पदका धारक था मरकर अनेक प्रकारके आरम्भोंसे जायमान घोर पापोंके द्वारा दूसरे नरकमें जाकर नारकी होगया ॥ ९ ॥ नारायण विभीषणके मरनेसे बलदेव वीतभयको बड़ा दुःख हुआ । मोहके तीव्र उदयसे भाईके मर जानेके बाद उसने राज्यका परित्याग कर दिया और संयम धारण कर लिया ॥ १० ॥ पुण्यात्मा वीतभय बलदेव ने घोर तप तपा जिससे वह लांतव स्वर्गके आदित्याभ नामक विमानमें आदित्याभ नामका उत्तम देव होगया ॥ ११ ॥ प्रिय जयन्त मुनिके जीव नागेंद्र वही मैं आदित्याभ नामका इस समय देव हूं । अपने पूर्व जन्मके भाई नारायण विभीषणको नरकमें अवधिज्ञानके द्वारा दुःखी देख एक दिन मैंने यह विचार किया—

नागनाथ स एवाहमादित्याभोऽस्मि सांप्रतं । बांधवं दुःखिनं श्वश्र्वेऽवधेर्दृष्ट्वा व्यचिंतयं ॥ १२ ॥ अहं स्वर्गेऽमरो जातो लीलायान्
 सुखभाजनं । मत्सोदरी महादुःखं भुनक्ति श्वश्र्वसागरे ॥ १३ ॥ निष्कासयाम्यहं पूर्णं 'बांधवं' प्राणतोऽधिकं । असुरान् ब्रह्मघातेन प्रह-
 त्यादिवति चिंत्य च ॥ १४ ॥ अगमं मोहतस्तत्राबोधयं बांधवं निजं । तास्यित्वा सुरान्पापान् प्रकृत्या दुःखदायिनः ॥ १५ ॥ निष्का-
 सितुं मयोपाया अकारिषत हे बहोदृ । जज्ञे तस्य महादुःखं तैरुपायैर्यदा तदा ॥ १६ ॥ निर्गतैन ततः पृष्टः श्रीमन्धरजिनाधिपः । त्वज्ज-
 वालिकां नूनं तत्प्रोक्तं मेऽखिलं श्रुतं ॥ १७ ॥ तत् श्रोतव्यं त्वया नागेन्द्र ब्रवीमि श्रान्तिहानये । जम्बूद्वीपेऽत्र विख्याते वर्षे चैरावताभिधे

मैं तो स्वर्गमें आकर अनेक क्रीड़ाओंका स्थान देव होगया हूं और अनेक प्रकारके सुख भोग
 रहा हूं परन्तु मेरा भाई विभीषण नरकमें पड़ा २ महा दुःख भोग रहा है मुझे चाहिये कि मैं
 समस्त असूरीको बजूसे छिन्न भिन्न कर शीघ्र ही अपने प्राण प्यारे भाईको नरकसे निकाल ले
 आऊँ बश में ऐसा विचार कर मोहसे व्याकुल हो शीघ्र हो दूसरे नरक गया । अपने भाईको पूर्व
 भवका वृत्तांत सुना संबोधा एवं जो असुर कुमार जातिके देव स्वभावसे ही नारकियोंको पीड़ा पहुँ-
 चानेवाले थे उन्हें शक्तिभर धमकाया डराया ॥ १२—१६ ॥ प्रिय नागेन्द्र ! अपने भाईका नरकसे
 निकालनेके लिये मैंने बहुत उपाय किये परन्तु उनसे उसे उल्टा घोर दुःख होने लगा । जब मैंने
 देखा कि इसके निकालनेके लिये जो उपाय किये जाते हैं उनसे इसे दुःख ही होता है, तो मैंने
 उसके निकालनेका विचार स्थगित कर दिया । सीधा मैं भगवान श्री मन्धरके पास गया । मैंने
 उनसे सब बात पूछी । उन्होंने तुम्हारे पूर्व भवोंका वर्णन किया जिसे मैंने रुचिपूर्वक सुना । प्रिय
 नागेन्द्र ! भगवान श्रीमन्धरके द्वारा सुना गया तुम्हारे पूर्व भवका वृत्तांत मैं तुम्हारे सामने वर्णन
 करता हूं तुम ध्यान पूर्वक सुनो ।

इसी जम्बूद्वीपके ऐरावत क्षेत्रमें एक अयोध्या नामकी पुरी है जो कि खाई और किलोसे

॥ १८ ॥ अयोध्यास्ते परीरम्या परिष्ठादुर्गवेष्टिता । श्रोधर्मा तत्र राजाऽभूत्सुसीमा तस्य भामिनी ॥ १९ ॥ श्वभ्राद्विभीषणः प्राति
निर्गत्याभूत्तयोः सुतः । सुधर्माप्या गुणाभ्योविर्भामिनीभोगचंचुरः ॥ २० ॥ एकदाऽनंतयोगीन्द्रात् श्रुत्वा धर्मं विरक्तधोः । तत्पार्श्वे
संयमं नीत्वा तप्यमानोऽहमिति ॥ २१ ॥ तदाऽप्येष्वनुव्रतैस्तत्र रम्भाणां सुखमन्वभूत् । गतं कालं न जानाति गीतनाट्यरसैरसौ ॥
२२ ॥ सर्वार्थसिद्धिजोदेवो बज्रायुधधरस्ततः । च्युत्वाभूत्संजयंताख्यो बलीयान् योगरोधकः ॥ २३ ॥ स ब्रह्मेशोऽपि तत्रत्यं सुखं
भुक्त्वायुषः क्षये । च्युत्वा जयंतनामाभूत्संजयंतानुजः सुधीः ॥ २४ ॥ निदानेन मृतः सोऽपि त्वं फणीशोऽमघ्नमहान् । मोहाद्विलुप्तः

महा शोभायमान जान पड़ती है । अयोध्यापुरीका स्वामी उस समय श्री धर्मा था और उसको
रानीका नाम सुशीला था ॥ १७—२० ॥ नारायण विभीषणका जीव नारकी अपनी आयुके अन्तमें
नरकसे निकला एवं राजा श्रीधर्माके रानी सुसीमासे उत्पन्न सुधर्म नामका पुत्र हुआ जो कि अनेक
गुणोंका समुद्र था और स्त्रियोंके भोगोंमें प्रेम रखनेवाला था ॥ २१ ॥ एक दिन मुनिराज अनंतसे
उसने धर्मका स्वरूप सुना जिससे उसे संसारसे बैराग्य होगया । शीघ्र ही उसने मुनिराज अनंतके
पासमें संयम धारणकर लिया । घोर तप तपा जिससे तपके प्रभावसे वह ब्रह्म स्वर्गमें उत्तम ऋद्धि
का धारक देव होगया ॥ २२ ॥ वहांपर पुण्यके उदयमें उसे सब सामग्री प्राप्त हुई वह देवांगनाओं
के साथ आलिंगन चुम्बन आदि क्रियाओंमें एवं उत्तमोत्तम गायन और नाटकोंके देखनेमें इतना
मग्न होने लगा कि उसे यह मो नही जान पड़ने लगा कि उसको आयुके दिन वहां बीत रहे हैं ।
॥ २३ ॥ राजा बज्रायुधका जीव अहमिन्द्र जो सर्वार्थ सिद्धि विमानमें जाकर देव हुआ था वह
अपनी आयुके अन्तमें वहांसे चया एवं महाशक्तिका धारक और योगोंका निरोध करनेवाला संजयंत
नामका महापुरुष हुआ जो कि तुम्हारा भाई था । मेरे भाई नारायण स्वयंभूका जीव जो ब्रह्म स्वर्गमें
जाकर देव हुआ था उसने वहांके बहुत काल पर्यंत दिव्य सुख भोगे । आयुके अन्तमें वहांसे चया

सम्यक्त्वो मोही केन विद्विष्यताः ॥ २५ ॥ प्राक्तनो नारकः प्रान्तपृथिवीतो विनिर्गतः । जघन्यायुरहिर्भूत्वा पातालं तुनीयं गतः ॥ २६ ॥
 ततो निर्गत्य तिर्यक्षु वसेषु सथाघरेषु च । भ्रांत्वाऽस्मिन् भारते भूतमणायवनांतरे ॥ २७ ॥ देशवतीनदीतीरे गोशृङ्गश्चास्ति ता-
 पसः । शङ्खिका भामिनो तस्य कृपादया भर्तृवल्लभा ॥ २८ ॥ तयोर्जज्ञे सुतः सोऽपि मृगशृङ्गाभिघो ध्रुवं । पञ्चाग्नि तपः कुर्वन्नेकदा
 वीक्ष्य खेचरं ॥ २९ ॥ दिव्यादितिलकस्यैव पुरस्य स्वामिनं परं । श्रीअंशुमालिनं नाम्ना निदानमकरोत्कुधोः ॥ ३० ॥ यथायं रूपवान्
 मानी प्रतापो प्राज्यराज्यमाक् । भूयामहं तथेतन्मे तपस्यायां अदः फलं ॥ ३१ ॥ अद्यात्त खेचराद्रेः प्रोदक् श्रेण्यां पुरं मदत् ।

और संजयन्तका छोटा भाई जयंत हुआ जो कि निदानसे मरकर तू धरणेंद्र हुआ है इस समय
 तुम्हारा सम्यग्दर्शन मोहसे मलिन हा गया है ठीक ही है मोहको बश करनेवाले संसारमें विरले ही
 पुरुष है ॥ २४—२६ ॥ मन्त्री सत्यघोषका जोव वह नारकी अपनी आयुके अन्तमें सातवें नरकसे
 निकल सर्प हुआ । वहांको जघन्य आयु धारण कर मरा फिर तीसरे नरकका नारकी हुआ वहांसे
 निकल कर त्रस स्थावर रूप तिर्यंच हुआ । इसी भरत क्षेत्रकी पृथ्वी पर एक भूत रमण नामका
 वन है । उसके अन्दर एक ऐरावती नामकी नदी है उसके तटपर एक गोशृंग नामका तपस्वी
 रहता था । शंखिका नामकी उसकी स्त्री थी जो कि अत्यन्त रूपवती और पतिकी प्राण प्यारी थी
 वह सत्यघोष मन्त्रीका जोव तपस्विनी शंखिकाके गर्भसे मृगशंख नामका पुत्र हुआ और
 प्रति दिन पञ्चाग्नि तप तपने लगा । एक दिनकी बात है कि दिव्य तिलक पुरका स्वामी अंशुमाली
 नामका विद्याधर आकाश मार्गसे जा रहा था । उसकी दिव्य विभूतिपर मृगशंख तपस्वी मोहित
 होगया दुर्बुद्धि हो उसने यह निदान बाधा—

जिस प्रकार यह विद्याधर अत्यंत रूपवान दानी प्रतापी और विशाल राज्यका स्वामी है उसी
 प्रकार मैं भी हो वस मैं अपने किये हुए तपका यही फल चाहता हूं ॥ २७—३१ ॥

नानासंदर्भसंयुक्तमास्ते गगनवत्कर्म ॥ ३२ ॥ बज्रदंष्ट्रः खगस्तत्र पति तत्पत्तनं सुधीः । जम्भारातिः स्वधामैव तस्य भार्याचलप्रभा ॥
३३ ॥ मृत्वासी तापसो दुष्टो विद्युदंष्ट्रः सुतस्तयोः । वभूवार्थं स पापीयान् त्वदग्रजममीमरत् ॥ ३४ ॥ वध्या कर्म चिरं दुःखमापदा
प्स्यति च परं । एवं कर्मवशाज्जंतुः संसृतौ परिवर्तते ॥ ३५ ॥ पिता पुत्रः सुभो जाता माता भ्राता स च खसा । को बन्धुः को न वा
बन्धुर्मुञ्च वैरघ्नतः फणीहू ! ॥ ३६ ॥ कस्य को नापकर्ताऽत्र नोपकर्ता च कस्य कः । तस्माद्वैरानुबन्धेन मा कथाः पापबन्धनं ॥ ३७ ॥

विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें एक गगन बल्लभ नामका नगर है जो कि विशाल है और अनेक रचनाओंसे शोभायमान है । गगन बल्लभ नगरका स्वामी राजा बज्रदंत था जो कि शोभामें इन्द्रकी तुलना करता था एवं उसको छोका नाम विद्युत्प्रभा था वह दुष्ट मृगशृंग नामका तपस्वी अपनी आयुके अन्तमें मरा और रानी विद्युत्प्रभाके गर्भसे विद्युदंष्ट्र नामका पुत्र हुआ । पूर्व जन्मके वैरसे इसी दुष्टने तुम्हारे भाई संजयन्तको मारा है ॥ ३२—३३ ॥ इसने मुनिराज संजयन्तके मारनेसे घोर कर्मोंका बंध किया है जिससे इसने यह कष्ट प्राप्त किया है और करेगा । भाई धरणेंद्र ! यह जीव इसी प्रकार कर्मोंके जालमें फसकर इस संसारमें परिभ्रमण करता रहता है ॥ ३४ ॥ देखो भाई ! इस संसारमें पिता तो पुत्र हो जाता है पुत्र माता हो जाता है । माता भाई बन जाता है और भाई सास बन जाता है इसलिये तुम निश्चय समझो इस संसारमें न कोई वास्तवमें किसी बंधु है और न बैरी है अतः प्रिय नागेंद्र ! तुम्हें कभी इस विद्याधरके साथ बैर नहीं बांधना चाहिये ॥ ३५ ॥ देखो इस संसारमें कौन तो किसका अपकारी नहीं और कौन किसका उपकारी नहीं अर्थात् हर एक दूसरेका अपकारी और उपकारी है इसलिये इसके साथ बैर बांधकर तुम ब्रथा पाप बांध रहे हो ॥ ३६ ॥ प्रिय धरणेंद्र ! तुम इस विद्याधरके साथ बैर मत बांधो इसे छोड़ दो वस इस प्रकार आदित्याभके वचन सुनकर धरणेंद्रका क्रोध शांत होगया ॥ ३७ ॥ उत्तरमें उसने यह कहा—

मुञ्च बेरमहीनास्मिन् विद्युहं द्रष्टुं मुच्यतां । इति देवघोषो वृष्ट्या ययौ शान्तिं कणीश्वरः ॥ ३८ ॥ ऋतोक्तौ सुजमायाति सज्जनो न कलौ विधीः । अहो हृदये हंसो मुहं याति न कोकभित् ॥ ३९ ॥ देवाहं त्वत्प्रसादेन सद्धर्मं श्रद्धये स्म भोः । किंतु विद्याबलादेव विद्युहं प्लोऽघमाचरत् ॥ ४० ॥ तस्मादस्यान्वयस्यैव महाविद्यां छिनद्म्यहं । इत्याहैतद्वचः श्रुत्वा सुरो मदनुरोधतः ॥ ४१ ॥ त्वया नैतद्विधातव्यमित्याख्यत्फणिनां पतिं । आदित्याभवचः श्रुत्वा ब्रवीदिति पुनः कणीट् ॥ ४२ ॥ यद्येवं तर्हि वंशमानां मेतस्यैव कुकर्मणा ।

प्रिय आदित्याभ ! मैं भी यह मानता हूँ कि जिसप्रकार सूर्यके उदय होने पर हंसको आनन्द होता है उस प्रकार उल्लूको आनन्द नहीं होता उसी प्रकार सत्य बोलनेसे सज्जनोंको ही परमानन्द प्राप्त होता है दुर्बुद्धि दुष्टको नहीं ॥ ३८ ॥ भाई आदित्याभ ! मैं तुम्हारे वचनोंसे परम पावन जैन धर्मका श्रद्धान कर रहा हूँ परन्तु इस दुष्ट विद्युहं ने अपनी विद्याला घमण्ड कर यह दुष्पाप किया है इस लिये मैं कुल परम्परासे प्राप्त इसकी समस्त विद्याका उच्छेद करूँगा । धरणेंद्रकी यह बात सुनकर विद्याधर आदित्याभने कहा—

भाई धरणेंद्र ! मेरे अनुरोधसे तुम्हें इसकी विद्यायें नहीं छेदनी चाहिये । आदित्याभके इस प्रकार वचन सुनकर पुनः धरणेंद्रने कहा—

यदि तुम इसकी कुल परम्परा प्राप्त विद्याओंके छेदनेकी मना करते हो तो मैं स्वीकार करता हूँ परन्तु मैं यह शाप देता हूँ कि इस विद्युहं के कुकर्मके कारण इसके जितने वंशके पुरुष हों उन्हें मुनिराज संजयन्तको विना आराधना किये किसी भी विद्याकी सिद्धि मत हो तथा जिस चतुर्दशीको मेरे भाईने मोक्ष प्राप्त की है उस तिथिको विना आराधे किसीको भी मोक्ष पदकी प्राप्ति मत हो, मालुम होता है इसीलिये चतुर्दशीको विशिष्ट पर्वका दिन माना है । भाई ! इस शापके देनेका मेरा तात्पर्य यह है कि यदि मैं ऐसा शाप न दूँगा तो ये क्रूर हृदयके धारक पापी विद्या-

संजयंतमनाराध्य विद्या मायातु सिद्धितां ॥ ४३ ॥ महामातुसिद्धिं साक्षादनाराध्य तिथिं जनाः । मायांतु सत्पदं कापि ततः पर्वचतु
र्दशी ॥ ४४ ॥ दद्यां चेन्नेदृशं शापं तर्ह्येते शपितः जगाः । अपरान्मात्यन्त्येव मुनीनां कुतिसताशयाः ॥ ४५ ॥ एषोऽपि पर्वतो विद्याधरागो
लज्जितोऽजनि । अतस्तं नामतः शैलं ह्रीमंतं कृतवांस्तदा ॥ ४६ ॥ धनुः बभ्राशतोऽशुगां सातृप्रतिनिधिं व्यधात् । प्रतिष्ठित्वाऽथ तं नत्वा
महोत्सवपरः शतैः ॥ ४७ ॥ मुक्त्वा तं खेवरं पापं देवमभ्यर्च्य नागराट् । कलुषीभाबमुत्सृज्य पफाणाशु निजं पदं ॥ ४८ ॥ आदित्या
भोऽपि स्वस्वर्गं जगाम मगधेश्वर ! । त्वाजयति भद्राक्षेपं सात्त्विका हि हितेच्छयाः ॥ ४९ ॥ अथ जंबूद्वीपं मान्वीते द्वीपे ह्रीमद्विधीकृतं ।
भारतं भाति यद्विषिष्ठ गङ्गासिंधुर्मिथुणं ॥ ५० ॥ लयांते यत्न सदैकानित्यत्वं दृश्यते यदि । ह्रीमत्सुरस्तदा नीत्वा द्विसप्ततियुगाणि च

धर अन्य मुनियोंको भी मारेंगे ॥ ३६—४६ ॥ इस विद्याधर पर्वत पर मुनिराज संजयन्तको कष्ट
पहुंचाया गया है इसलिये यह भी लज्जाका स्थान है अतः उस पर्वतका उस दिनसे ह्रीमन्त
(लज्जावान) नाम रख दिया गया ॥ ४७ ॥ धरशेन्द्रने अपने भाई संजयन्तकी पांचसौ धनुष ऊंची प्रतिमा
तयार कराई । सैकड़ों महोत्सवोंके साथ प्रतिष्ठाकर वहीं उसे विराजमान कर दिया और भक्तिपूर्वक
उसे नमस्कार किया ॥ ४८ ॥ धरशेन्द्रने पापी विद्याधर विद्युदंष्ट्रको छोड़ दिया । आदित्याभ देवका
परिपूर्ण आदर सत्कार किया । उसके हृदयमें जो विद्याधर विद्युदंष्ट्रके मारनेके कलुषित विचार थे
सब निकाल दिये और सानन्द अपने स्थान चला गया ॥ ४९ ॥ इतनी कथा सुनाकर गौतम स्वामीने
राजा श्रेणिकसे कहा—प्रिय राजन् ! जब आदित्याभने देखा कि नागेंद्र वैरका सर्वथा परित्याग
कर अपने स्थान चला गया है तब वह भी अपने स्थानको चला गया ठीक ही है जो मनुष्य दूसरों
के हितकी इच्छा रखने वाले और सज्जन प्रकृतिके होते हैं वे अवश्य ही दूसरोंका आपसमें वैर मिटा
देते हैं ॥ ५० ॥

ह्रीमन्त पर्वतसे जिसके कि दो खंड हो रहे हैं ऐसे इसी जंबुद्वीपके अन्दर भरत क्षेत्र है जो कि

॥ ५१ ॥ शैलदर्या क्षिपत्कोन गर्भजानामथापरे । नादकेऽवसजीवाश्च सन्ति गङ्गातटे भिया ॥ ५२ ॥ तत्रार्योभाति सत्खण्डः स्वर्गखण्ड इवापरः । अस्ति तल्लोत्तरा नाम्ना पुरी श्रीमथुरा नृपः ॥ ५३ ॥ तं पात्यनस्तवीर्याख्यो राजा सिंहपराक्रमः । चन्द्रास्या वर्तते तस्य नाम्ना स्त्री मेरुमालिनी ॥ ५४ ॥ द्वितीया सुन्दरी तस्य रोहिणीव चकोरदृक् । आस्ते मितवती नाम्ना नामैवामरसुन्दरो ५५ आदित्यामस्त तश्च्युत्वा पूर्वोक्तायामभूत्सुतः । नाम्ना मेरुः प्रमोक्षासी तिमोशुः कुलभूधरे ॥ ५६ ॥ धरणेन्द्रोऽपि पुत्रोऽभून्मन्दराख्यो महायशः । द्वितीयायां सुतौ तौ च सूर्याखन्मस्ताविव ॥ ५७ ॥ इत्थं विमलनाथस्य मुक्ताङ्गजान्मेरुमन्दरी । स्वभवांस्तौ समाकर्ण्य वैराग्यं प्राप

छह खंडोंसे शोभायमान है एवं गङ्गा सिन्धु नामकी दोनों नदियोंकी तरंग रूपी भूषणोंसे शोभायमान है ॥ ५१ ॥ प्रलय कालके अन्तमें जब भरत क्षेत्रके किसी एक खण्डका प्रलय होता है उस समय हीमन्त पर्वतका स्वामी देव हर एक गर्भज जीवके बहत्तर २ जोड़ा लेकर उस हीमन्त पर्वतकी गुफामें रखता है तथा और बहुतसे जीव मारे भयके उस समय गङ्गा नदीके तटपर जाकर रहने लगते हैं ॥ ५२—५३ ॥ भरत क्षेत्रके अन्दर एक आर्य खण्ड है जो कि शोभामें स्वर्ग खण्डके समान जान पड़ता है । आर्य खण्डकी उत्तर दिशामें मथुरा नामकी नगरी है । उस समय मथुरा पुरीका स्वामी राजा अनन्तवीर्य था जो कि सिंहके समान पराक्रमी था । उसकी रानीका नाम मेरु मालिनी था जो कि चंद्रमाके समान मुखसे शोभायमान थी । उसकी दूसरी स्त्रीका नाम मितवती था जो कि रोहिणीके समान परम सुन्दरी थी । चकोरके समान उत्तम नेत्रोंसे शोभायमान थी इसलिये वह साक्षात् देवांगना सरीखी जान पड़ती थी ॥ ५४—५६ ॥ आदित्याभ नामका देव अपनी आयुके अन्तमें स्वर्गसे चया और रानी मेरुमालिनीके गर्भसे मेरु नामका पुत्र हुआ जो कि कांतिसे अत्यन्त देदीप्यमान था और अपने वंशरूपी पर्वत पर उदित होनेवाला सूर्य स्वरूप था । ५७ धरणेन्द्रका जीव भी अपनी आयुके अन्तमें वहांसे चया और रानी मितवतीके गर्भमें अवतीर्ण

तुर्नृपौ ॥ ५८ ॥ गन्धे भस्मसिद्धिः प्रौढं राज्यं सामंतसेवितं । त्वयश्च जगद्गुरुर्दीक्षां तौ श्रीविमलसन्निधौ ॥ ५९ ॥ नत्वा स्वस्वामि
नं धीरौ चक्राते तौ तपश्चिरं । चन्द्रादिरश्ममासातं सरिसोरजगादिषु ॥ ६० ॥ पर्यंकासनसंयुक्तौ धीरौ द्रुमतले कश्चित् ।
कायोत्सर्गस्थितौ कापि तिष्ठतः स्म हरी इव ॥ ६१ ॥ शीतकाले सरित्तरे अश्वत्थं रुद्रकदंबके । पृष्ठरोमगतिच्छेदे दग्धांक्षीजवनेऽबने ॥
६२ ॥ तिष्ठतः स्म महाकायौ मेरुसंस्थौ शिवास्तये । चतुःपथेऽनिलप्रातैः केशा धर्माकुरा इव ॥ ६३ ॥ तयोः संजक्षिरे नूनमजनागस-
मानयोः । शीतदग्धांगयोर्भूश्चितपसा क्षामयोर्भूशं ॥ ६४ ॥ (त्रिभिर्विशेषकं) शुष्यचल जलं शोते नीरसीभूयमोत्तितः । द्रुपत्तुल्यं प्रवेत्त-

हो मन्दर नामका पुत्र हुआ जो कि बड़ा भारी यशस्वी था इस तरह वे दोनों कुमार सूर्य और
चन्द्रमाके समान सानंद रहने लगे ॥ ५८ ॥ वस इस प्रकार भगवान विमल नाथके मुखसे अपने
पूर्व भवोंका वृत्तांत सुन राजा मेरु और मन्दरको संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य होगया । जो उनका
राज्य अर्गाणत गज हस्ती और उत्तमोत्तम घोड़ोंसे शोभायमान था और अनेक दुर्घट सामन्त
जिसकी सेवा करते थे उस राज्यको उन्होंने जीर्णतृणके समान तत्काल छोड़ दिया और भगवान
विमलनाथके चरणोंमें तत्काल दिगम्बरी दीक्षासे दीक्षित होगये ॥ ५९ ॥ ५९—६० ॥ भगवान
विमलनाथको उन्होंने भक्ति पूर्वक नमस्कार किया एवं एक मास दोमास तीन मास चार मास
पांच मास और छह मास तकका उपवास धारण कर वे नदीके तट और पर्वतों पर घोर तप
तपने लगे ॥ ६१ ॥ वर्षा ऋतुमें धीर वीर वे दोनों मुनिराज पर्यंक आसन माड़कर और कायोत्सर्ग
मुद्रा धारण कर दो सिंहोंके समान वृक्षोंके नीचे रहने लगे ॥ ६२ ॥ जिस शीत कालमें वनके वृक्ष
दग्ध होजाते हैं । रोंगटे ठर्रा निकलते हैं और कमलोंके वनके वन दग्ध हो जाते हैं उस समय विशाल
शरीरके धारक और मेरु पर्वतके समान निश्चल दोनों मुनिराज मोक्ष प्राप्तिकी अभिलाषासे चौपटे
में निवास करते थे और तीखी पवनके झकोरे सहते थे । वे दोनों मुनि अञ्जन पर्वतके समान

हि मानवानां तु का कथा ॥ ६५ ॥ श्रोत्रतो वाग्युद्धेऽर्थशुभालिप्तिवती मुनी । ध्यायन्ती सिद्धावबोजं बद्धोभूताशुभूतये ॥ ६६ ॥
 अग्नितप्तकटाहार्धं घनमावृणु तस्थतुः । यद्विज्जालाधिके दुःखसमूहोत्पादके च तो ॥ ६७ ॥ प्रावृषि नीरनिर्होद्विताशायां यमोदरी ।
 मेकभीकृद्वयैः स्वस्तजीवायां कर्णरोधिभिः ॥ ६८ ॥ पतन्निर्होदिनोप्लुष्टभूतहायां च निर्ययी । दूर्वाकुरितपादाङ्गी सर्पवलयनिविताङ्गी ॥ ६९ ॥
 तिमिञ्जातमस्तां अतिरह्योयोर्ध्वराहृदि । तस्थतुर्ध्यानसंस्तौ मेखनिश्चली च तो ॥ ७० ॥ (तिमिर्विशेषकं) सप्तर्षिसमवेतः
 सन् मेरुस्तुर्यावबोधनः । बभूव मन्दस्वभापे मनःपथ्यमारविः ॥ ७१ ॥ पञ्चपञ्चाशदक्षसगणैर्विमलबाहनः । परीतो भाति ताराभि

काले पड़ गये थे । उनका समस्त शरीर कृश होगया था इसलिये उस समय उनके मस्तकके केश दाव घासके समान रुखे और बिखर गये थे ॥ ६३—६५ ॥ जिस शीतकालमें तालावोंका जल नीरस होकर सूखकर पत्थरके समान बरफ बन जाता है उस समय मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ! ॥ ६६ ॥ श्रोत्र चतुके समय जब कि पृथ्वीतल अग्निके समान दहकता रहता है उस समय वे दोनों मुनिराज सूर्यके सामने खड़े होकर पहाड़ोंपर तप तपते थे और हृदयमें 'सिद्ध' इस बीजाक्षर स्वरूप मंत्रका ध्यान करते थे । वे दोनों मुनिराज अग्निसे तपाये गये कड़ाहोंके समान जाज्वल्यमान अग्निकी ज्वालासे भी महा भयङ्कर और अनेक प्रकारके दुःखोंसे व्याप्त श्रोत्र चतुको वर्षा चतु सरीखी समझते थे ॥ ६७ ॥ जिस वर्षाकालमें चारों ओर महा भयङ्कर मेघोंकी गर्जना होती रहती है । कानोंको फोड़ देनेवाले मीडकोंके भयङ्कर शब्दोंसे समस्त जीव त्रस्त रहते हैं । बिजलियोंके गिरनेसे वृक्षके वृक्ष नष्ट हो जाते हैं उस वर्षाकालमें वे दोनों मुनिराज निर्भय हो अपने आत्म स्वरूपका चिन्तन करते थे । उस समय उनके चरण दाव घासके अंकुरोंसे व्याप्त रहते थे । समस्त शरीर सर्प और लताओंसे वेष्टित रहता था तथापि उन्हें किसी बातका भय न था । तथा वर्षा कालकी अधियारी रातोंमें जब कि पृथ्वी पर्वत और वृक्ष कुछ भी नहीं दीख पड़ते थे

विधुर्वा विहरन्गसौ ॥७२॥ असंख्यातसुरैरर्च्यः केवलज्ञानभास्करः । चतुर्विधमहासंघसमेतो विजहार सः ॥७३॥ अङ्गे वंगे तिलिगे मगध
जतपदे सिंधुदेशे विराटे । कर्णाटे कुंकुणाख्ये कुरुलमुखमहामोटभोटेषु याम्ये । काश्मारे लाटगौडे विरार (न) गङ्गे मेढपाटे जितेराः ।
पारस्ये मालवे वा व्यवहरदिति महाबोधहेतोजनानां ॥७४॥ शेषायुषि स्थिते तस्य मासैकस्य जिनाधिपः । सामेदाचलमासाद्य विससर्ज
समाश्रित्य ॥७५॥ आषाढस्योत्तराषाढे कृष्णाष्टम्यां निशामुक्ते । सद्यः कृत्वा समुद्रात् सूक्ष्मं शुक्लं समाश्रितः ॥७६॥ साम्ययोगादयोगः
सन् स्वास्थ्यं रोगीव सोऽगमत् । तदा प्रभृति लोकेऽस्मिन् पूज्या कालाष्टमो धुर्धः ॥ ७७ ॥ विश्वदृष्ट्वा जितो मोक्षमवाप त्रिमलोऽमलः

उस समय वे मुनिराज मेरुके समान निश्चल और ध्यानमें लीन रहते थे ॥ ६८—७१ ॥ तपके
घोर रूपसे आचरने पर मुनिराज मेरु और मन्दिरको सातों ऋद्धियां और चौथा मनः पर्यय ज्ञान
प्राप्त होगया और वे निभय हो पृथ्वी पर विहार करने लगे ॥ ७२ ॥ जिस प्रकार अनेक ताराओंसे
व्यास चन्द्रमा शोभायमान जान पड़ता है उसी प्रकार वे भगवान विमलनाथ साढ़े पांचसौ केवलज्ञानी
मुनियोंके साथ विहार करते हुए अत्यन्त शोभायमान जान पड़ते थे ॥ ७३ ॥ भगवान विमलनाथ
को सेवा असंख्याते देव करते थे और वे केवल ज्ञान रूपी सूर्यसे देदीप्यमान थे । भगवान विमल-
नाथने मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका इस प्रकार संघोंके साथ पृथ्वी पर विहार करना प्रारम्भ कर
दिया ॥ ७४ ॥ उन भगवान विमलनाथने मोक्षाभिलाषी भज्य जीवोंके संबोधनेके लिये अङ्ग बङ्ग
तेलंग मगध सिंधुदेश विराट कर्णाटक कुंकण पुरु महा भोट भोट काश्मीर लाट गौड़ मेढ पाट
फारस मालवा आदि देश जो कि पहाड़ और बनोंसे सघन थे उनमें भ्रमण किया ॥ ७५ ॥
जब भगवान जिनेन्द्रकी एक मासकी केवल आयु अशेष रह गई वे तो सम्मेदाचल पर्वतपर आ विराजे
और समवसरणकी विभूतिसे रहित होगये ॥ ७६ ॥ आषाढ़ मासकी बड़ी अष्टमोके दिन जब कि
उत्तराषाढ़ नक्षत्र विद्यमान था उन्होंने केवल समुद्रात् माढा । सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाती नामक शुक्ल

घात्यनातिक्षयात्सर्वदेवैर्द्रवितपत्कृतः ॥ ७८ ॥ संसारसागरस्तमुत्तरणप्रवीणः । कर्मातलायलिशमैकप्रनायमानः । लेखालिपस्तक
किरीटमणिप्रभाभिराश्लिष्टपाद इविजिह्विमलोऽवतादः ॥ ७९ ॥ कृत्वाष्टकर्मविलयं गणसेव्यमानो व्युत्पाद्य केवलविमालिमलं विबोध्य ।
मज्ज्यां बुभुक्षानि नितरां शिष्यमाप दिव्यसम्पदेभूधरतटे विमलोष्णरश्मिः ॥ ८० ॥

विहारसंबोधितजीवलोकपो जगाममोहाद्रिपविः परं पदं ।

स्वयंभुवा शुद्धसमाधितत्परो जिनोऽर्चितः केवलबोधलोचनः ॥ ८१ ॥

ध्यानको आश्रय किया । समता योगसे उन्होंने अयोग गुण स्थानमें पदार्पण किया एवं जिस प्रकार रोगके नाश हो जानेसे रोगी स्वास्थ्य लाभ करता है उसी प्रकार वे भगवान विमलनाथ भी स्वस्थ हो गये भगवान विमलनाथ आषाढ़ वदी अष्टमीको मोक्ष पधारे थे इसलिये उसी दिनसे उस अष्टमीका नाम कालाष्टमी पड़ गया और लोग उसे पूजने लगे ॥ ७७—७८ ॥ घाति अघाति दोनों कर्मोंके नाश होजानेपर सर्वज्ञ जिनेंद्र वे भगवान विमलनाथ मोक्ष शिलापर जाकर विराजमान होगये और बड़े बड़े देवेन्द्रोंकी पूजाके स्थान बन गये ॥ ७९ ॥ जो भगवान विमलनाथ जीवोंको संसार रूपी समुद्रसे पार करने वाले हैं । कर्मरूपी अग्निको बुझानेके लिये मेघ स्वरूप हैं । देवेन्द्रोंके मस्तकोंमें लगी हुई नील मणियोंसे व्यास चरणोंसे शोभायमान हैं और कामदेवके जीतनेवाले हैं वे भगवान विमलनाथ हमारी रक्षा करें ॥ ८० ॥ जिसप्रकार सूर्य अंधकारका नाश करने वाला है उसी प्रकार भगवान विमलनाथ भी कर्मरूपी अन्धकारके नाश करनेवाले हैं । जिसप्रकार सूर्य ऋषिगणोंसे सेवित रहता है उस प्रकार भगवान विमलनाथ भी मुनि आदिके गणोंसे सेवित हैं । जिस प्रकार सूर्य, प्रभासे मंडित है उस प्रकार भगवान विमलनाथ भी केवल ज्ञानको प्रभासे मण्डित हैं एवं जिस प्रकार सूर्य कमलोंको खिलाकर अस्ताचल पर अस्त हो जाता है उस प्रकार

इत्यार्षे श्रीविमलनाथपुराणे अ० श्री रत्नभूषणाभ्यामलङ्कारविद्वज्जनचातुरीसमुद्रकुमुदवांधवा
 धतारोमयभाषाचक्रवर्तिहर्षवीरिकाश्वयोदरमानसराजहंसब्रह्मकृष्णदासविरचिते
 ब्रह्ममङ्गलदाससाहाय्यसापेक्षे श्रीमेरुमन्दिरदीक्षाग्रहणश्रीविमल
 नाथनिर्वाणगमनो नाम नवमः सर्गः ॥ ६ ॥

भगवान् विमलनाथने भव्य रूपी कमलोंको खिलाकर सम्मेदाचलसे मोक्ष प्राप्त की है इसलिये सूर्य-
 के समान भगवान् विमल नाथ हमारी रक्षा करें ॥ ८१ ॥ जिन भगवान् विमलनाथने समस्त
 जीव लोकको संबोधा । जो मोहरूपी पर्वतके लिये वज्र स्वरूप हैं । शुद्ध समाधि—अपने
 आत्म स्वरूपमें निश्चल हैं । केवल ज्ञानरूपी लोचनके धारक हैं और जो स्वयं भी ब्रह्मासे अर्चित हैं
 उन भगवानने परम पद प्राप्त कर लिया अतः वे हमारे कल्याणके कर्त्ता हों ॥ ८२ ॥

इसप्रकार भट्टारक रत्नभूषणकी आभ्यायके अलङ्कारस्वरूप विद्वज्जनोंकी चतुरता रूपी समुद्रके लिये चन्द्रमा दोनों भाषाके
 चक्रवर्ती एवं हर्ष वीरिकाके कुलरूपी मानसरोवरके राजहंस ब्रह्मकृष्णदासद्वारा अपने छोटेभाई ब्रह्ममङ्गलदासकी
 सहायतासे रचेगयेबृहद्विमलनाथपुराणमें राजा मेरु और मंदरकी दीक्षाका ग्रहण और
 भगवान् विमलनाथका निर्वाण गमन वर्णन करनेवाला नववां सर्ग समाप्त हुआ ॥६॥

दशवा सर्ग ।

अथाश्विनः सुनासोरा ज्योमयामस्थिता मुदा । विमलेशस्य निर्वाणकल्याणकसमुत्सुकाः ॥ १ ॥ सत्पुर्णिकायदेवालिर्निर्ययी
 भगवान् विमलनाथके निर्वाण प्राप्त करने पर उनके कल्याणके उत्सव मनानेके लिये लाला-
 यित समस्त इन्द्रादि देव अपने विमानोंपर चढ़कर शीघ्र ही सम्मेदाचलकी ओर चल दिये ॥ १ ॥

युग पद्भुवि । बज्रपाण्यनुगा धीरजयध्वानप्रवादिनी ॥ २ ॥ ऐरावतं गजं शक्रः पुरस्कृत्य खचाल खे । पुरस्तात्कर्तकीव्रतो नमृतोति विमोहयन् ॥ ३ ॥ चित्रमेतद्यदाकाशे पावन्यासो न दृश्यते । रम्भाणां मर्तकीनां च देवानां चलतामपि ॥ ४ ॥ केचित्कुन्तकरा देवाः केचिच्छक्तिधनुर्धराः । केचित्कराशयः केचित्पाणिपाशा वभुस्तरां ॥ ५ ॥ त्रिशूलधारिणः केचिद्भुजिङ्गमालकराः परे । संचेलुरसुरा एते व्यन्तराश्च दिगाश्रिताः ॥ ६ ॥ कल्पामराः स्थिताः केचिद्व्योमयानेषु दोकृताः । हंसारुढामराः केचित् हस्तमाल्या मनोरमाः ॥ ७ ॥ वैभवेयासनारुढा देवाः केचित् शुकप्रियाः । केचित्थानाश्चलतिस्म मरुत्तमार्गे करायुधाः ॥ ८ ॥ असंख्यातसुराः पञ्चभण्यः शक्रकृता वभुः । प्रत्येकं पञ्चवर्णशुविचित्रवाससो ध्रुव ॥ ९ ॥ सम्मेदागं समालोक्य दूरतः सुरपादयः । उक्तेर्वाहनान्द्रक्त्या भक्ति उस समय चारों ओर जय २ शब्द करते हुए चारों निकायों के देव एक साथ इन्द्र के पीछे २ चल दिये ॥ २ ॥ ऐरावत हाथी पर चढ़कर सर्वों के सामने इन्द्र चलने लगा । उस समय ऐरावत हाथी के सामने अपने नाच से समस्त लोक को मोहित करता हुआ देवांगनाओं का समूह नाचता चला जाता था ॥ ३ ॥ ग्रन्थकार आश्चर्य प्रगट करते कहते हैं कि यद्यपि वे आकाश में चलते थे परंतु कहां पैर रखते थे और कहां नहीं रखते थे । सूझ नहीं पड़ता था । ४ । भगवान के निर्वाण कल्याण के उत्सव मना-ने के लिये आने वाले देवों में बहुत से देव अपने हाथों में माला लिये थे बहुत से शक्ति धनुष तलवार पाश त्रिशूल बन्दूक के धारक थे इस रूप से तो असुर जातिके देव चलने लगे तथा इसी प्रकार दिशाओं में रहने वाले व्यन्तर लोग भी चलने लगे ॥ ५-७ ॥ कल्पवासी देवों में से वहुत से देव अपने द्वारा रचे गये विमानों में सवार हो लिये । बहुत से हाथों में माला धारण किये हंसों पर चढ़ लिये । बहुत से हाथों में हथियार लेकर गरुड़ शुक और मयूरों के आसनों पर चढ़कर आकाशमार्ग में चलने लगे । यद्यपि देव असंख्याते थे तथापि इन्द्र ने उन्हें पांच श्रेणियों में विभक्त कर रक्खा था और हर एक पांचों वर्णों के अनेक प्रकार के वस्त्रों से शोभायमान थे ॥ १० ॥ जिस समय देवों ने सम्मेदाचल पहाड़ को देखा, भक्ति से गद्गद हो वे शीघ्र ही अपने २ वाहनों से उतर गये ठीक ही है जो पुरुष

भाजो हि धार्मिकाः ॥ १० ॥ हरिर्विमलनाथस्य प्रतिदिवं यथाकृति । कृत्वा स्फटिकसङ्कासमर्चयोमास सादरं ॥ ११ ॥ परोक्षस्तुति
 मारेमे देवराजो जिनेशिनः । इति दोःकुण्डलीयुक्तः भावनिर्गलगायकः ॥ १२ ॥ जय नमो जिनाधीश जय त्वं जगतांपते । तपोनिधि
 द्याम्भोधि मुक्तिलक्ष्मीप्रिय प्रभो ! १३ ॥ मोहजेता त्वमेवास्ति त्वं सर्वज्ञः शिवप्रदः । कर्मध्वंसी चिदानन्दो भव्याम्भोजदिवामणिः
 ॥ १४ ॥ त्वामाराध्य जनाः सर्वे देवदेवेश्वरादयः । शिवं सदातनं यांति समुन्नीय भवाम्बुधिं ॥ १५ ॥ स्तुतवेति मधवा भावसुधापान
 परो जिनं । कपूरगुरुकल्याणनमेरुकुसुमोद्भवैः ॥ १६ ॥ सुगंधैः केसरैर्नानावस्तुभिः सुरनायकः । संस्कारविनयं कृत्वा चक्षुरां प्रांश्य

धर्मात्मा होते हैं वे भक्तिमान होते ही हैं ॥ ११ ॥ इन्द्रने भगवान् विमलनाथकी स्फटिकमयी प्रति-
 माका शीघ्रही निर्माण किया और बड़ी भक्तिसे उसका पूजन किया । निर्मल चित्तके धारक इन्द्रने
 अपने दोनों हाथ जोड़ लिये और उनके परोक्ष रहते भी वह इस प्रकार निर्मल भावोंसे स्तुति
 करने लगा—

हे भगवन् ! आप आठो कर्मोंके जीतने वालोंके स्वामी हैं । समस्त जगतके पति हैं । तपो-
 निधि और दयाके समुद्र हैं । मोक्ष रूपी लक्ष्मीके प्यारे हैं । मोहके जीतनेवाले केवल आप ही हैं ।
 सर्वज्ञ और कल्याणोंके प्रदान करनेवाले हैं । कर्मोंके नाश करनेवाले चिदानन्द चैतन्य स्वरूप
 और भव्यरूपी कमलोंको प्रसन्न करनेवाले सूर्य हैं इसलिये हे भगवन् ! आप संसारमें जयवन्त
 रहें ॥ १२—१५ ॥ प्रभो ! देवोंके देव इन्द्र आदि भी तुम्हारा आराधन कर संसाररूपी समुद्रको
 तर कर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं । उत्तम भावरूपी अमृतके पान करनेवाले इन्द्रने इसप्रकार भगवान्
 विमल नाथकी स्तुति की । कपूर अगुरु कल्प वृक्षोंके फूल और भी नाना प्रकारको सुगन्धित
 चीजोंसे विनय पूर्वक भगवान्के शरीरका दाह संस्कार किया एवं भक्तिसे गद्गद हो नृत्य किया
 ॥ १६—१८ ॥ सम्मेदाचल पर्वतके चारो ओर अपनी २ देवांगनाओंके साथ श्रेणिरूपसे समस्त

नाटक ॥ १७ ॥ श्रेणीभूताः सुराः सर्वे परितस्तोभ्यधरे । नर्त्यन्तिस्म रम्भाभिः संगता जयवादिनः ॥ १८ ॥ रक्तदोःपल्लवाभिश्च
रम्भाबल्लीभिराचिताः । ह्रीमीभिः सुरकल्पागाः स्फुरन्तीभिरिवानलात् ॥ १९ ॥ गायन्ति रिक्तकंठैश्च गुणं श्रीविमलेशिनः । किंनर्यो
यन्त्रमादाय नानारागरसान्वितैः ॥ २० ॥ हावेर्भावेरसैस्सालैर्दालैर्ललिताभिः प्रहाः । जेगीयन्ते यशोवृन्दं स्थूलपीनपयोधराः ॥ २१ ॥ मृदंग
पट्टहारावैः स्निग्धै रम्भास्वनेर्वभी । गगनं भूतलं चापि जम्भारातिजयारवैः ॥ २२ ॥ जिनेन्द्रचरणाभोजपवित्रं भूधरं सुराः । पुरुहंता
हृदयो नत्वा जगन्धामं यथायथं ॥ २३ ॥ महतां संगतिर्नृणां सत्फलं विधाति च । जिनेन्द्रचरणन्यासाद्भूधरो बन्ध्यते जनेः ॥ २४ ॥

देव नृत्य करने लगे एवं मिलकर भगवान विमलनाथकी जय उच्चारने लगे ॥ १८ ॥ जिस प्रकार
कल्पवृक्ष पवनसे झकोरे खाती हुई लताओंसे विशेष शोभायमान जान पड़ता है उसी प्रकार उस
समय देव रूपो कल्पवृक्ष भी लाल २ हाथोंसे शोभायमान नृत्यकालमें चलती फिरती देवांगनाओं
से अत्यन्त शोभायमान जान पड़ते थे ॥ २० ॥ सुन्दर शरीरोंकी धारक एवं उन्नत स्थूल नितम्बोंसे
शोभायमान किन्नरो जातिकी देवांगना अनेक प्रकारकी राग रागिनियोंसे युक्त एवं हाव भाव रस
चाल ढालोंसे मिश्रित अपने मनोहर कंठोंसे भगवान विमलनाथके गुणोंको बखानने लगीं ॥ २१-२२
उस समय मृदङ्ग और नगाड़ोंके शब्दोंसे कोमल देवांगनाओंके शब्दोंसे एवं इन्द्रोंके द्वारा किये
गये जय जय शब्दोंसे गूंजता हुआ समस्त आकाश अत्यन्त शोभायमान जान पड़ता था ॥ २३ ॥
भगवान विमल नाथके चरणोंसे पवित्र सम्मेदाचलको देवेन्द्रोंने भक्ति पूर्वक नमस्कार किया एवं
सबके सब अपने २ स्थानोंपर चले गये ॥ २४ ॥ ग्रन्थकार सज्जनोंकी प्रशंसामें कहते हैं कि—महान
पुरुषोंकी संगति उत्तम फल प्रदान करती है देखो भगवान जिनेन्द्रके चरणोंके सम्पर्कसे ही सम्मे-
दाचल पर्यन्त समस्त लोकका वन्दनीय बन गया ॥ २५ ॥ जो महानुभाव मौनव्रत और ब्रह्मचर्यव्रत
से भूषित हैं सम्मेद शिखरकी यात्रा करते हैं उन्हें संसारमें अद्भुत विभूतिकी प्राप्ति होती है

तद्याथा ये करिष्यन्ति भौतब्रह्मज्ञानविज्ञताः । ते लभन्तेऽद्भुतां रामां व्यवहारादसंशयं ॥ २५ ॥ तिर्यं चोपि पदं देवं यांति तज्ज्ञाधराश्रयात् । मनुष्या न लभन्तेऽत्र तपसा किं परं पदं ॥ २६ ॥ भाद्रितीर्थं त्वतो लेखा निषेवतेऽनिशं मुदा । तद्यात्राकृन्नराणां च पशूनां न गतिर्मेवेत् ॥ २७ ॥ श्रीमत्सुविधितोर्थेऽमुन्मेघदेवस्य साधनं । मेघेश्वरस्य गस्यात् तद्दिनाद्भनवर्षणं ॥ २८ ॥ तथा भांडाष्टमी जज्ञे पर्वमूता हि सोत्सवा । सुकालेतरफालस्य दर्शिनी मध्यरात्रके ॥ २९ ॥ अथैकदा मुनिर्मेरुः प्रतिमायोगमाश्रितः । परं ज्योतिः स्मरन् स्वान्ति मूधराधस्तटे घञौ ॥ ३० ॥ निर्द्वन्द्वो निस्पृहः शान्तो कशीभूयमितो मुनिः । यावद्दृष्ट्यौ परं धाम मध्यरात्रे स मागध ! ॥ ३१ ॥

इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ २६ ॥ श्री सम्मेद शिखरके आश्रयसे जब तिर्यंच भी, देव पद प्राप्त कर लेते हैं तब उत्तम तपके आचरणसे मनुष्य तो परम पद प्राप्त कर ही लेते हैं, यह बात विलकुल निश्चित है । यह सम्मेद शिखर तीर्थ सबसे उत्तम तीर्थ है अनोद निधन है इस लिये देवगण रात्रि दिन इसकी बन्दना करते हैं तथा यह नियम है कि श्रीसम्मेद शिखरकी यात्रा करनेवालोंको तिर्यंच गतिका दुःख नहीं भोगना होता ॥ २८ ॥ भगवान् पुष्पदन्तके तीर्थकालमें विद्याधर मेघेश्वर ने मेघदेवका साधन किया था उसी दिनसे वर्षाका प्रारम्भ माना है वह दिन अष्टमीका था इस लिये उस अष्टमीका नाम भांडाष्टमी पड़ गया जो कि पर्व मानी जाती है और उसमें अनेक प्रकारके उत्सव हुआ करते हैं तथा उस दिन ठीक आधीरातके समय सुभिन्न होगा वा दुर्भिन्न होगा इस बातकी जांच की जाती है इसलिये संगति बड़ी चीज है ॥ २७—३० ॥

एक दिनकी बात है कि मुनिराज मेरु, पर्वतके अधो भागमें प्रतिमायोग धारणकर चिदानन्द चैतन्य स्वरूप आत्माका ध्यान कर रहे थे । उस समय वे समस्त प्रकारके द्वन्द्वोंसे रहित थे और निस्पृह थे । आधी रातके समय वे परमात्माके स्वरूपका चिंतन कर हीरहे थे कि विद्युन्माली नामका विद्याधर अनेक पर्वतों पर क्रीड़ा करता हुआ और आकाशमें विचरता हुआ मुनिराजके ऊपरसे

समायातो विद्युन्माली खतो मुनेः । उपर्ये कांतया सार्धं क्रीडयन् भुधरेषु च ॥ ३२ ॥ व्योमयानं निजं स्फोटं किंकिणीरण
राजितं । स्तम्भितं धातुकीलैर्वा विलोकांशु कथं गतः ॥ ३३ ॥ नमोगश्चित्तयामास त्वरं त्वत्तं मुहुर्पुद्गुः । इति क्रोधरूपो रौद्रः पद-
घातेष्वालयंस्तकत् ॥ ३४ ॥ मद्भिमानो महाविद्यारक्षितो द्विभयप्रदः । केन पापीयसा चङ्को हठात्सामर्थ्यशालिता ॥ ३५ ॥ अथैव चप्यते
हंसा व्याधेनाश्वथवा हयया । मन्त्रमार्गं तथा केनाकारि भगवति द्विधा । ३६ । पश्येयं चेद्दिव्यं पापमावश्यं मम हंशवरा । शस्त्रघातैर्द्वयं
द्विश्वं तं हन्यां हंत दुर्धन ॥ ३७ ॥ विमृश्येत्यं चिरं स्वति शिञ्जितं विधनुः खगः । जग्राहोद्धुरसामर्थ्यो भौवणो हरिकृत्कुधा ॥

निकृत्ता । यह नियम है जहां पर ऋद्धिधारी मुनि विराजते हैं उनके ऊपरसे किसीका विमान नहीं
निकलता । विद्याधर विद्युन्मालीका विमान विशाल था छोटी-घण्टियोंसे शोभायमान था ज्योंही
वह ठीक मुनिराजके ऊपरसे आया धातुकी कीलोंसे जैसे अटका दिया जाता है वैसे हो अटक
गया विमानकी यह दशा देख विद्याधर विद्युन्मालीको बड़ा क्रोध आया एवं वह विमानको पैरोंसे
बार बार चलाता हुआ अपने मनमें इस प्रकार विचारने लगा—

यह मेरा विमान अनेक महा विद्याओंसे रजित है । बैरियोंको भय प्रदान करनेवाला है किस
बलवान पापाने मेरे विमानको रोक दिया है ॥ ३१—३६ ॥ आश्चर्य है जिस प्रकार हंसको व्याध
पकड़ लेता है उसी प्रकार भाई ! तुम किस शत्रुने मेरा विमान पकड़ कर बांध लिया है ॥ ३७ ॥
मैं अभी तुम पापी वैराकी खोज करता हूं । मैं तुम दुष्ट बुद्धिको शस्त्रोंके घातोंसे और पत्थरोंसे
अभी प्राण रहित कर दूंगा । वस इस प्रकार दृढ़ विचार कर शीघ्र हो उसने धनुष हाथमें लेलिया
एवं मारे क्रोधके सर्पके समान भयङ्कर हो बलवान उस विद्याधरने शीघ्र ही धनुष पर बाण चढ़ा
लिया । लक्ष्य बांधकर वह नोचेको फेंकता ही था कि उसकी स्त्रीने उसका हाथ पकड़ लिया एवं
वह अपने पति विद्याधरको इस प्रकार समझाने लगी—

॥ ३८ ॥ संध्याशुगतिं यावदधोभागे ब्रह्मलोवली । क्षिप्तुमिच्छति तावत्स गृहीतो रामया करे ॥ ३९ ॥ श्रूयतां मायकं नाथ ! वचः परमपावनम् । अविमृश्य विधेयं न कृत्यं सभ्येन धीमता ॥ ४० ॥ स्वकीयं बलमज्ञाय ये कुर्वन्नि यत् शठाः । त एव तिष्ठन् यांति स्वाहानाथे पतंगवन् ॥ ४१ ॥ येनाद्यः स्तम्भितं व्योमयानं भर्तृस्तवैव सः । स्याद्वली तर्हि दुःखेन जीयते कणिनेव घोड् ॥ ४२ ॥ यदा नो जीयते शत्रुस्तदा कीर्तिः प्रणश्यति । तस्यां धिग्ज्ञोवितं नृणां गतायां गततेजसां ॥ ४३ ॥ नृभिश्चत्वारि कृत्यानि नो विधयानि वेगत विमृश्यकारिणं गोर्धं घृणाते यज्जपाब्धिवाः ४४ ॥ भामायास्तद्वचः श्रुत्वा विद्वद्विबुधैश्च हितं । जगौ प्रेमा नभोभागे कांतां कामप्रियोपमां

प्राणनाथ ! मेरे हितकारी वचन सुनिये जो मनुष्य सभ्य और बुद्धिमान हैं उन्हें बिना विचारे कोई भी कार्य नहीं करना चाहिये ॥ ४०—४१ ॥ जो मनुष्य अपनी शक्तिको न जानकर बिना विचारे ही बल कर बैठने हैं वे मूर्ख कहलाते हैं एवं अग्निमें गिरकर जिस प्रकार पतंग खाख हो जाता है उसी प्रकार वे भी मृत्युके कवल बन जाते हैं ॥ ४२ ॥ स्वामिन् ! जरा विचारो तो जिसने तुम्हारा यह विमान रोक दिया है वह यदि तुमसे अधिक बलवान हो तो जिस प्रकार सर्पसे गरुड़का जीता जाना कठिन है उस प्रकार तुमसे उसका जीतना कठिन हो जायगा ॥ ४३ ॥ यदि तुम शत्रुको न जीत सकोगे तो तुम्हारी कीर्ति नष्ट हो जायगी । कीर्तिके नष्ट हो जानेसे मनुष्य तेज रहित हो जाता है फिर उसका जीवन ही विफल माना जाता है ॥ ४४ ॥ बुद्धिमान मनुष्यों को चाहिये कि वे चार बातोंके करनेमें जल्दी न करें विचार पूर्वक ही हर एक कार्यको करें क्योंकि जो पुरुष विचार शील हैं लक्ष्मी उन्हें आपसे आप आकर घर लेती है ॥ ४५ ॥ विद्वानोंसे भी जल्दी नहीं कहे जानेवाले एवं हितकारी अपने स्त्रीके वचन सुन विद्याधर विष्णुमालीने कहा—

रतिके समान परम सुन्दरी भ्रमरोंकी पंक्तिके समान काले कटाक्षोंसे शोभायमान मृग लोचनी प्रिये ! तुमने कहा है कि विद्वानोंको चार कार्य जल्दी नहीं करने चाहिये तो वे चार कार्य कौन हैं

॥४५॥ हैं प्रिये चन्वरोकालोकटाक्षे मृगलोचने । कानि चत्वारि कृत्यानि कर्तव्यानि च धीमता ॥४६॥ पुनः प्राह प्रियं धीरं धीरवाम्बामलो-
चना । अकालगमनं चैकं विषमं गोष्ठिकां ततः ॥४७॥ कुमित्रैः सह सांगत्यं कामाभावात् कुधं युथाः । परस्त्रीभिः समं नैव कुर्वन्ति शर्म
काक्षिणः ॥ ४८ ॥ अथात्र विद्यते नाथ ! प्रवृत्तिः कथ्यते मया । यूयं शृणुत तां रम्यां श्रद्धान्वीतेन चेतसा ॥ ४९ ॥ महाभोटं जनां
तेऽभूत् श्रेष्ठं कौमारपालकः । शतपंचाशत्सु कोटीनां दीनाराणां प्रभुर्महान् ॥ ५० ॥ प्रियंगुसुन्दरी तस्य दायितास्ति गरीयसी । तयोः
स्यातां सुतौ द्वौ च रम्यौ क्लृप्तविचित्रकौ ॥ ५१ ॥ चित्रोऽभूद् धूतसंसको रायं नीत्वा गृहादिदी । धूतकदुभ्योऽनिशं पितृदुःखशो मस-

विद्याधर विद्युन्मालीको स्त्री बड़ी गम्भीर और बुद्धिमती थी अपने स्वामीको उसने इस प्रकार
उत्तर दिया—

प्रथम बात तो यह है कि मनुष्योंको जहां कहीं भी जाना चाहिये असमयमें नहीं जाना
चाहिये । दूसरी बात यह है कि जो गोष्ठी—संगति विषम हो उसमें सम्मिलित नहीं होना चाहिये
सत्सङ्गति हीं करना चाहिये । तीसरी बात यह है कि जो कुमित्र हैं उनके साथ किसी प्रकारका
सहवास नहीं करना चाहिये और चौथी बात यह है कि जो मनुष्य अपने कल्याणके आकांक्षी हैं
उन्हें चाहिये कि वे परस्त्रियोंसे किसी प्रकारका अपना काम न सटता देख रंचमात्र भी उनसे कोध
न करें ॥ ४६—४९ ॥ इसी सम्बन्धमें एक कथा प्रसिद्ध है । एकाग्र चित्त हो ध्यान देकर सुनो
मैं क्रमसे कहती हूँ—

इसी पृथ्वीके महाभोट देशमें एक कुमार पाल नामका सेठ निवास करता था जो कि छप्पन
दीनारोंका स्वामी था । उसकी स्त्रीका नाम प्रियंगुसुन्दरी था और उससे चित्र विचित्र नामके
दो पुत्र उत्पन्न थे ॥५० ५२॥ दोनों पुत्रोंमें चित्र नामका पुत्र बड़ा ही ज्वारी था । वह ज्वारियोंको
प्रतिदिन घरसे निकालकर धन दिया करता था । पिताको बड़ा कष्ट देता था और सदा पागलके

बद्धन् ॥ ५२ ॥ मत्वा पुत्रं विकीर्तिं तं श्रेष्ठो पृथ्वा कियद्वन । पुत्रकृद्गो गृहादुग्रूतं चित्रद्वानि तदापि न ॥ ५३ ॥ विचित्राकरो
लघुनन्तवा मातरं पितरं शुभः । चञ्चल सिंहलद्वीपं प्राणिन्यायै धनप्रियः ॥ ५४ ॥ समुत्तर्य पप्रोराशिं तं द्वीपं चाप पुण्यतः । वल्लु
द्वादशकोटीनां व्यापारं कृतवान् सकः ॥ ५५ ॥ अथाज्ञानेन चित्रेण भुक्तं सर्वं वल्लु स्वरा । निःस्वोभूय समाप्यैव दय्याविति मनोऽनरे
॥ ५६ ॥ स्वर्णकण्यादिधातूनां कर्तुः पार्श्वं यत्नं लभे । तदैव गुटिकाविद्यां स्वीकरोम्यपिलम्बतः ॥ ५७ ॥ दयात्वेति मानसे यावत्स्थ
तस्तावत्समाकणत् । कापाली प्रेतकांतारे कालम्दाक्योऽगममधृत् ॥ ५८ ॥ ख्यातं तं योगिनं श्रुत्वा नीत्वा मिष्टान्नमागतः । तत्प्राप्तं

समान बड़ २ करता रहता था ॥ ५३ पुत्रको इस प्रकार जूआका व्यसनो देख सेठ कुमारपालने
उसे कुछ धन देकर जुदा कर दिया तथापि उस दुष्टने जुआ खेलना नहीं छोड़ा ॥ ५४ ॥ छोटा
पुत्र विचित्र बड़ा ही सुशील और अच्छा था और धनमें विशेष प्रेम रखता था इसलिये अपने
पिता माताको नमस्कार कर वह एक दिन सिंहल द्वीपकी ओर व्यापारके लिये चल दिया ॥ ५५ ॥
विशाल समुद्रको तर कर वह अपने विशिष्ट पुण्यके उदयसे सिंहलद्वीप जा पहुँचा और बारह
कराड़ दोनारोंसे उसने व्यापार करना प्रारम्भ कर दिया ॥ ५६ ॥

बड़ा पुत्र चित्र देशमें ही था । उसने धन खा बिगाड़ डाला जब उसका सारा धन नष्ट हो
गया उस समय वह अपने मनमें विवचारने लगा—जो पुरुष सोना रूपा आदि धातुओंका
बनानेवाला हो यदि मैं उसके पास थोड़े दिन रहूँ तो मैं गुटिका विद्या(सोना आदि बनानेकी विद्या)
शीघ्र सीख लूँ वरन ऐसा विचार कर वह बैठा ही था कि उसी समय कालन्द नामका एक कापाली
श्मशान भूमिमें आ पहुँचा जो कि अङ्गमें भवूति रमाये था । चित्रने भी कापालीके आनेका समा-
चार सुना । शोध ही मिष्टान्न लेकर वह उसके पास गया । नमस्कार किया एवं वल्ल पुण्य फल भेंट
कर दिये ॥ ५७—६० ॥ चित्रकी यह चेष्टा देख कापालीने भी समझा कि यह बड़ा भक्त है इस

ऽमुमुचचच्चिद धासःपुष्पफलानि च ॥ ५६ ॥ योगी मत्वा परं भक्तं सन्मानं बभूवा ददौ । स्वार्थाधातोऽस्तु सत्प्रेमा स्वार्थः प्रेम
प्रियो हितः ॥ ६० ॥ तद्वासरं सामाख्य चित्रो भसर्मागिनोऽकरोत् । भक्तिं भूरितरां नित्यं दिवानक्तं प्रतिक्षणं ॥ ६१ ॥ यण्मासा
वधिमास्थित्वा गन्तुकामो बभूव सः । तदा घ्राणं क्षिप्तमिति प्रेमाद्र्मानसः ॥ ६२ ॥ हे अनङ्गाभ ! दीनेश ! मन्त्राह्वयमहासुरः ।
तथा त्वं देहि मे स्वामिन् भुनज्या तीव्रतं सुखं ॥ ६३ ॥ लिङ्गो तदुभक्तिभारेण प्रसन्नीभूयसेत्य वै । स्वर्णसंपादिसद्भिः दत्त्वोवा
चेति तं भूयः ॥ ६४ ॥ मध्यरात्रौ त्वया बाल ! विधेयो विधिवत्तमः । विद्याया गुप्तभावेन सिद्धिः संपद्यते सदा ॥ ६५ ॥ गते तस्मिन्

लिये उसे बड़े चाव आदरसे विठाया ठीक ही है जिससे स्वाध सटता है वही मनुष्योंका प्यारा
होता है क्योंकि स्वार्थ ही प्यारा और हितकारी माना है ॥ ६१ ॥ उस दिनसे लेकर चित्र प्रतिक्षण
योगीकी टहल चाकरी करने लगा । वह कापाली छह मास तक वहां ठहरा । छह मासके बाद
उसने चलनेका विचार कर लिया । कापालीको इसप्रकार जाते देख चित्रने प्रेमसे गद्गद हो
उससे इसप्रकार विनय पूर्वक प्रार्थना की—

प्रभो ! आप कामदेवके समान सुन्दर हो । दीनोंके स्वामी हो एवं मन्त्रसे महासुरको बुला
देने वाले हो । स्वामिन् मुझे कोई ऐसा मन्त्र दीजिये जिससे मैं अपना जीवन सुखसे बिता सकूँ
॥ ६२—६४ ॥ कापाली तो चित्रकी भक्तिसे अत्यन्त प्रसन्न था ही । उसने शीघ्र ही उसे सुवर्ण
बनानेवाली विद्या प्रदान करदी और सेठपुत्र चित्रसे यह कहा—

प्रिय बच्चा ! ठीक आधी रातके समय तुम इस मन्त्रको विधि पूर्वक साधना क्योंकि विद्याकी
सिद्धि गुप्त रूपसे ही होती है यह नियम है वस इसप्रकार मन्त्र देकर कापाली अपने अभीष्ट
स्थानको चला गया । सेठ पुत्र चित्रने उसके पीछे अनेक रसोंमें तामे और हंसपाक रसका सोना
बनाना प्रारम्भ कर दिया । इस रूपसे उसने पांचवार जाज्वल्यमान और उत्तम सोना बना लिया

महावप्येऽङ्गिर्लो नानारसैर्व्यधत् । हाटकं ताम्रलोहस्य हंसपाकरसस्य वा ॥ ६६ ॥ पञ्चकृत्यो विधायासी दीपं जम्बूनदं घनं ।
दध्यार्घ्यानि निजे चित्ते तृष्णासिंधूर्ममध्यगः ॥ ६७ ॥ यत्न शैलतटे सन्ति बल्लीजालानि वेगतः । तत्र गत्वा घनं पूर्णं कृत्वा तिष्ठा-
मि सुश्रमि ॥ ६८ ॥ एकदा धनुरावाय निवङ्गं सशरं पुनः । निशोथे निर्ययौ चित्तो महेंद्रं भूधरं प्रति ॥ ६९ ॥ अस्मिन् नवसरे भ्राता
विचित्राख्यो महामनः । अर्जयित्वा घनं प्राज्यं सेवकैर्दशभिः सह ॥ ७० ॥ अदूरवर्तिं मत्वा स्वपतनं नगराभिधं । द्वादशे वत्सरे
तस्मिन् मार्गे पति समुत्सुकः ॥ ७१ ॥ शान्तं न सन्नालोक्य प्रजज्ज्वलेऽप्रजोऽनुजं । श्यामायां कः समायाति निशि प्रूताद्भूतं

सोनेंके इस प्रकार तयार होने पर उसका तृष्णा समुद्र बराबर बढ़ने लगा इसलिये एक दिन उसने
अपने मनमें यह विचार किया—

जिस पर्वत पर बहुत सी लताये हों वहांपर जाकर मुझे बहुतसा सोना तयार कर लेना चाहिये
एवं पीछे आनन्दसे घरमें रहना चाहिये ॥ ६५—६६ ॥ एक दिन हाथमें उसने बाण चढ़ाया हुआ
धनुष लेलिया एवं ठीक रात्रिके समय वह महेंद्र नामक पर्वतकी ओर चल दिया ॥ ७० ॥ वह
पहाड़ पर जाकर पहुँचा ही था कि उसी समय उसका छोटा भाई विचित्र जो कि अत्यंत बुद्धि-
मान था बारह वर्ष बाद लौटकर अपने देश आया एवं अपना नगर नामका पुर बहुत ही समीप
समझकर केवल दश सेवकोंके साथ उस मार्गसे अपने पुरकी ओर जाने लगा । जिस समय वह
महेंद्र पर्वतके पास आया और चित्रने उसे देखा शीघ्र ही उससे इस प्रकार पूछा—

अत्यन्त अधियारी रातमें यह कौन जा रहा है । शीघ्र उत्तर दो । चित्रके इस प्रकार पूछने पर
विचित्रने भयभीत हो इस प्रकार उत्तर दिया—तुम्हीं बतलाओ तुम कौन हो । शीघ्र बतलाओ
नहीं अभी चक्रसे तुम्हारे दो खण्ड किये देता हूँ ॥ ७१—७४ ॥ विचित्रकी इस प्रकार निष्ठुर वाणी
सुन चित्र भी भयभीत होगया । एवं अपने भाई विचित्रको अपनी अज्ञानकारीसे बैरी मान उसके

भवान् ॥ ७२ ॥ तन्निशम्य तदा शोचद्विचित्रस्तं च भयारवैः । कोऽसि त्वं प्रूहि वेगेन चान्यथा हन्मि चक्रतः ॥ ७३ ॥ ध्रुत्वा तन्निष्ठु रां
 वाचं ततर्कोति स्वजनसं । चित्राख्यो भीतचित्तः सन् प्रतिकूलजिधांसया ॥ ७४ ॥ विश्वस्तो दुर्जनो नूनं हन्ति हन्त हठोन्नरं । अतो
 यावदयं शस्त्रं श्लिष्टावदहं द्रुनं ॥ ७५ ॥ विचार्यैतत् सुमोक्षाशु शिलीमुखमहो क्रुधा । विचित्रेण तथा ध्यात्वा वायचक्रं नुनोद तं
 ॥ ७६ ॥ इषुणा हृदये विन्नो विचित्रो भूतलेऽपतत् । चक्रेण युग्मपक्षिणो द्वावेतौ निधनं गतौ ॥ ७७ ॥ अतो भर्तो निशाभागेऽन्यात्मा
 लोकाविवेकता । जायते नास्यते जातु शस्त्रं पुनरा भवादृशा ॥ ७८ ॥ निशीथे गमनं चापि न विधीयेत धीधनैः । येनानिष्टसमु-

मारनेकी इच्छासे उसने यह विचार किया । यदि दुर्जन पर विश्वास कर लिया जाता है तो वह निय-
 मसे पुरुषको मार डालता है मुझे भी इसकी बातपर विश्वास नहीं करना चाहिये इसलिये जब तक
 वह शस्त्र मेरे ऊपर न छोड़े उसके पहले ही मुझे इस पर शस्त्र छोड़ देना चाहिये वस ऐसा विचार
 चित्रने शीघ्र ही विचित्र पर बाण छोड़ दिया । विचित्र भी उधर क्रोधायमान था जब चित्रसे
 उसने कोई जवाब नहीं पाया तो उसने चित्रके समान अपने मनमें दृढ़ विचार कर चित्रपर चक्र
 छोड़ दिया ॥ ७५—७७ ॥ देखो कर्मोंकी विचित्रता उसी समय चित्रके बाणसे विद्ध होकर तो
 विचित्र गिरकर मर गया और उसी समय विचित्रके चक्रसे कटकर चित्र जमीन पर गिरकर मर
 गया इस प्रकार दोनों ही मृत्युके कवल बन गये ॥ ७८ ॥ यह कथा सुनाकर विद्युन्मालीकी स्त्रीने
 अपने स्वामी विद्यधरसे कहा—

इसीलिये मैं कहती हूँ कि रात्रिके गाढ़ अन्धकारमें दूसरे मनुष्यका ज्ञान तो होता नहीं इस-
 लिये तुम्हारे सरीखे बुद्धिमान पुरुषको बिना विचारे रात्रिके समय शस्त्र न छोड़ना चाहिये ॥ ७६ ॥
 तथा जो पुरुष बुद्धिमान हैं उन्हें रात्रिमें गमन भी नहीं करना चाहिये क्योंकि रात्रिमें गमन करने
 से अनेक प्रकारके अनिष्टोंका सामना करना पड़ता है तथा जिसमें अनिष्ट जान पड़ते हैं बुद्धि-

दपस्तिस्तत्कृत्यं त्यज्यते ध्रुवं ॥ ७६ ॥ धकुलीनैर्नरैः सार्धं परस्त्र्यादि कथां श्रयेत् । सा चैव विषमा गोष्ठिर्बुधास्तामाश्रयति न ॥ ८० ॥
 एकदा मानसे हंसः जलकल्ल लराजिते । हंस्यमा क्रीडयन् स्थिरं धमाणेति प्रियां प्रियां ॥ ८१ ॥ हे कान्ति शुक्तिजाहारे ! कीप्यस्ति चाघयोः
 प्रभुः । येन सार्धं विधायशु मैत्रीं देनीष्यते स्फुटं ॥ ८२ ॥ व्याजहार मरालोत्तं शृणु त्वमिति मद्रवः । सर्वेषां वयनां मध्ये मान्योऽसि
 त्वं गुणालयः ॥ ८३ ॥ जले त्वं तिष्ठसि पक्षिन् मकरवद् भुजङ्गसि । तर्हि राजा भवेत्कस्मिन् ब्रूहि त्वं कारणं विना ॥ ८४ ॥ सितपक्ष
 स्तदादीत् पेशलं वचनं प्रिये ! । सर्वेषां विद्यत्रे नाथस्तत्कथं नाघयोः स च ॥ ८५ ॥ श्रुते गुरो श्रुते राज्ञः श्रुतं त्रविणतो भुवि ।
 जीवितं च श्रुते नार्याः श्रुते ज्ञानाद्भूया नृणां ॥ ८६ ॥ विनाधीशं कूला लोका वर्तन्ते न्यायवर्त्मनि । स्तेयकर्मकराः सन्तो न सरन्ति

मान लोग उस कार्यको सर्वथा छोड़ ही देते हैं ॥ ८० ॥ नीच पुरुषके साथ पर स्त्री आदिकी कथा
 करना विषम गोष्ठी कही जाती है विद्वान लोग ऐसी गोष्ठीका आश्रय नहीं करते ॥ ८१ ॥
 कुमित्रकी सङ्गतके विषयमें एक किं वदन्ती कथा है और वह इस प्रकार है—

एक हंस अनेक तरङ्गोंसे शोभायमान मानसरोवरमें क्रीडा करता था एक दिन कोडा करते २
 उसने अपनी प्यारी हंसिनीसे कहा—मोतियोंसे शोभायमान प्रिये ! अपना ऐसा भी कोई स्वामी
 है जिसके साथ अपन मित्रता कर सकें ॥ ८१—८३ ॥ उत्तरमें हंसिनीने कहा—मेरी सुनो समस्त
 पक्षियोंमें तुम मान्य और गुणोंके स्थान हो । जलमें तुम रहते और कमलदंड खाते हो तुम्हीं
 कहो तुमसे बढ़कर राजा कौन हो सकता है ! ॥ ८४—८५ ॥ उत्तरमें हंसने कहा—

तुमने कहा सो तो ठीक परन्तु जब संसारमें सबोंका कोई न कोई स्वामी माना जाता है तब
 हमारा भी कोई स्वामी हो सकता है । संसारमें गुरु राजा धन स्त्री और ज्ञानके बिना मनुष्योंका
 जीवन विफल है । विना स्वामीके समस्त जन न्याय मार्गपर नहीं चलते । चोरी करनेवाले होजाते
 हैं एवं धर्मायतनोंमें जानेकी लालसा नहीं रखते ॥ ८२—८८ ॥ इस लिये मैं अपने सुखकी आशा

वृथास्पदं ॥८७॥ अतोऽहं निजसौख्याय स्वामिचर्मद्वयः प्रिये ! । पृच्छामि त्वत्तिं स्वीयं विवेदय विवेदय ॥८८॥ अत्याग्रहयशोनाह मराली
तं शितच्छदं । सद्यो गिरौ तवाधीशः समास्ते निशि संचरन् ॥ ८९ ॥ श्वेतपक्षो गतस्तत्र सार्धं पत्न्यापि वारितः । अमे स्थित्वेक्षते
यावसायसोऽपि सभाययौ ॥ ९० ॥ अन्वयुक्त्युलूकस्तं कोऽसि कस्मात्समाहितः । कास्ति वासस्तत्र भूहि किमर्थं चागमोऽत्र वा ॥
९१ ॥ काकारिचचनं हंसो निशम्योवाच वेगतः । तत्रास्मि किं करो राजन् । त्वत्सेवायै समागतः ॥ ९२ ॥ मराडीयं वचः श्रुत्वा तुमो
प ध्वांचराड् भृशं । सार्धं नोत्वा गिरौ याति दूर्यां विषमकानने ॥ ९३ ॥ एकदा ध्वांश्चमिद्धं जगादेति विभीकरः । किं भुनक्षि त्वत्कं
येन सुन्दरो दृश्यसे मृदुः ॥ ९४ ॥ तदा प्रादेति तं पत्नी स्थानं मे मानसे विमो ! तत्र तामरसानां च मकरं भुनज्यहं ॥ ९५ ॥ दर्शय

से स्वामीको पहिचानना चाहता हूँ हमारा स्वामी कौन है । तुम जल्दी बतलाओ ! ॥ ८९ ॥ अपने
स्वामी हंसका जब यह अति आग्रह देखा तो उसने यह उत्तर दिया—सह पर्वत पर रात्रिमें घूमता
हुआ तुम्हारा स्वामी रहता है ॥ ९० ॥ शामके समय हंस अपने स्वामीको खोजने चला यद्यपि
हंसिनीने बहुत मना किया परन्तु उसने एक न सुनी । वह पर्वतके ऊपर पहुँचा ही था कि उसी
समय जिसको उसका स्वामी बनाया गया था वह भी वहाँ आगया ॥ ९१ ॥ उल्लूको हंसका
स्वामी हंसिनीने बतलाया था । उल्लूने जिस समय हंसको देखा—इस प्रकार पूछना प्रारम्भ
कर दिया—

तुम कौन हो कहाँसे आये हो कहाँ तुम्हारा स्थान है और यहाँ किस लिये आये हो । जल्दी
बोलो ! उल्लूके ऐसे वचन सुन हंसने कहा—राजन ! मैं आपका सेवक हूँ आपकी सेवाके लिये
यहाँपर आया हूँ । हंसके इस प्रकार वचन सुन उल्लू बड़ा प्रसन्न हुआ और भयङ्कर बनमें पर्वत
को गुफामें बड़े आदरसे लिवा गया ॥ ९१—९४ ॥ एक दिन उल्लूने हंससे पूछा भाई तुम बड़े
सुन्दर और कोमल जान पड़ते हो कहो तो तुम खाते क्या हो ! उत्तरमें हंसने कहा—

त्वं निजं धाम तथेति प्रतिपद्य सः । नीत्या काकाप्रियं मूढो मानसे त्वरया गतः ॥ ६६ ॥ मध्यरात्रे स्थितो लूकः सर्वं पश्यति पापमाक् ।
 हंसा निद्राकुला जातास्तद्देवान्यकथाऽभवत् ॥ ६७ ॥ हंसराजामिधस्तस्मिन्मार्गे याति धनुर्धरः । रराट् दक्षिणे लूकोऽक्षिपद्वाणं तदा
 ख तं ॥ ६८ ॥ तेनेषु पश्यता तूर्णमलूकेन पलायितं । तदा तद्वाणघातेन हंसः पञ्चदशमाप सः ॥ ६९ ॥ कुमित्रेण स न मेत्रीः धनं
 धान्यं चतुष्पदं । लज्जां मानं मदं प्रेम जीवितं नाशयत्यपि ॥ १०० ॥ अतो नाथ ! न कर्तव्या कुमित्रस्य च संगतिः । यतो नश्यति
 सन्तृणां मतिर्विद्या ख कौशलं ॥ १०१ ॥ निशा भूरितरा मरुका खगपत्नी कथां जगौ । परस्त्रीकोपसंभूतां मनोनिर्वेगदां नृणां ॥ १०२ ॥
 शृणु नाथ महादेशे गांधारे रुद्रनामकः । व्यवहारो विद्यते दानी परन्तु विषयी महान् ॥ १०३ ॥ तत्रैवास्ते धनी श्रेष्ठी श्रीशालाख्यो

स्वामिन् ! मेरा घर मानस सरोवर है वहां मैं मृणाल दण्ड खाया करता हूँ ॥ ६५—६६ ॥
 उल्लूने कहा भाई ! तुम्हारा घर मानस सरोवर कैसा है हमें भी दिखा दीजिये भोला हंस उसको
 बातोंमें आगया और उसे मानस सरोवर पर ले आया ॥ ६६ ॥ ॥ रात्रिके घोर भी अन्धकारमें
 उल्लूको तो सब दीखता ही है । जिस समय सारे हंस तो सो रहे थे और उल्लू जग रहा था उस
 समय यह घटना उपस्थित होगई—

जहांपर हंस रहते थे उसी मार्गसे एक हंसराज नामका धनुर्धारी मनुष्य निकला । धनुर्धारी
 मनुष्यकी ठीक दाईं ओर उल्लू बैठा था । धनुर्धारीको देखते ही वह चिल्लाने लगा । धनुर्धारीने
 अपना अपशकुन समझ उसपर बाण छोड़ दिया दुष्ट उल्लू भाग गया । बाणके घावसे हंस वि-
 चारा मर गया इस लिये यह निश्चित है दुष्ट मित्रके साथ की गई मित्रता धन धान्य, पशु आदि,
 लज्जा मान गौरव प्रेम और जीव सबकी नाशक होती है ॥ ६७—१०२ ॥ हे स्वामिन् ! बुद्धिमान
 मनुष्योंको कभी भी कुमित्रकी संगति नहीं करनी चाहिये क्योंकि बुद्धि विद्या और कुशलता सभी
 कुमित्र संगतिसे नष्ट हो जाते हैं ॥ १०३ ॥ उस समय अधिक रात्रि जानकर विद्याधर विद्युन्मालो

बहुप्रदः । तत्पत्नी सुन्दरी नाम्ना इति किं चामरप्रिया ॥ १०४ ॥ रुद्रनामैकदा दृष्ट्वा तां च होरदृशं शङ्कः । नित्यस्तनभारेण मंथरां
विह्वलोऽभवत् ॥ १०५ ॥ प्रत्यहं तद्गृहे याति केन चिच्छ्रयता स तां । विलोकितुं महामोहमूर्छितः पापपण्डितः ॥ १०६ ॥
एकदा तां दृष्ट्वा समाहितं जगादिति । भो श्यामे मद्यजः सारं प्रमाणीकुरु साधरं ॥ १०७ ॥ बाहं निर्घादितो दुष्टो जजल्प
दुःखदं वचः । पश्याहं ते करिष्यामि यद्वनर्थपरंरां ॥ १०८ ॥ धृष्टं भत्वा तदा साह शृणु त्वं मद्यजः प्रभो ! । विभेमि मत्प्रधानून

की स्त्रीने पर स्त्रीके क्रोधसे क्या फल प्राप्त होता है यह कथा कहनी प्रारम्भ कर दी जो कि मनु-
ष्योंके चित्तको वैराग्य उत्पन्न करने वाली थी । वह कथा इस प्रकार है—

गान्धार नामके महा देशमें एक रुद्र नामका व्यापारी रहता था जो कि दानी तो था परन्तु
महा विषयी था । उसी देशमें एक श्रीपाल नामका भी सेठ रहता था उसकी स्त्रीका नाम सुन्दरी
था जो कि ऐसी जान पड़ती थी कि यह कामदेवकी स्त्री रति है या कोई देवांगना है ॥ १०३-१०५ ॥
एक दिन व्यापारी रुद्रने चकोर नग्नो एवं नितम्ब और स्तनके भारसे मन्द २ चलनेवाली सेठानी
सुन्दरीको देख लिया । पापी वह मोहसे मूर्छित हो विकल होगया एवं किसी न किसी बहानेसे प्रति
दिन उसको देखनेके लिये उसके घर जाने लगा ॥ १०६—१०७ ॥ उसने बहुत चाहा कि सुन्दरी
सीधे साधे मेरे काबूमें आजाय परन्तु वह न फसी इसलिये एक दिन रुद्रने उसे जबरन पकड़कर
आलिङ्गन कर लिया एवं इस प्रकार अनुनय विनयके वचन कहने लगा—

सुन्दरी ! मेरी बात सुन और उसे स्वीकार करले । मैं तेरा बड़ा कृतज्ञ हूंगा । सुन्दरी
बुद्धिमती थी उसने एक भी बात रुद्रकी न सुनी एवं पकड़कर जबरन घरसे निकाल दिया । रुद्र
तो दुष्ट था ही । सुन्दरीके द्वारा अपना यह घोर अपमान देख उसे बड़ा रोष आया । सैकड़ों गाली
वकी भकी एवं यह कह कर कि अच्छा तुझे देख लूंगा यदि तेरे सैकड़ों अनर्थ न कर डालूं तो

मन्यथा त्वं पतिर्मम ॥ १०६ ॥ आभीष्येति समानीतः सद्यमध्ये धनी तथा । अन्तान्तरे समायातः श्रीपालो द्वारि सद्यः ॥ ११० ॥ मञ्जूषायां महार्घ्यायां चिन्तायां रत्नराजिभिः । क्षितो भर्तुर्मिया रुद्रो दत्ता मुद्रायसी ततः ॥ १११ ॥ जगादेति पुरो भर्तुः सुन्दरी ललितं वचः । स्वामिन्तात्मगृहे भृत्यः समागत्येति संजगुः ॥ ११३ ॥ मञ्जूषा विद्यते रम्या शुष्माकं फुंकु माहणाः प्रजापो यावते तां यः प्रेषणीया प्रयत्नतः ॥ ११३ ॥ नीत्वा तां वैमतो भीतः श्रीपालो भूपतेः पुरः । मुक्त्वोवाचेति तां रम्यां स्फुटार्थी गुणगर्भिता ॥ ११४ ॥ देव मे सिंहलद्वीपाटसमायाता मनोप्लुता । मञ्जूषा मणिभारेण भूयिता लोचनप्रिया ॥ ११५ ॥ प्राभृती

मेरा नाम रुद्र नहीं, चलने लगा ॥ १०८—१०९ ॥ रुद्रकै इस दुर्व्यवहारसे सुन्दरीने अपनी कीर्तिपर धब्बा लगता देखा इसलिये शांत हो प्रिय वचनोंमें वह इस प्रकार रुद्रसे कहने लगी—

स्वामिन् ! मेरी बात सुनो । मैं अपने पतिसे डरती हूँ । यदि मुझे उनका डर न होता तो मैं नियमसे तुम्हें पति बना लेती । तथा ऐसा कहकर उसने शीघ्रही रुद्रको अपने घरके भीतर बुला लिया । उसी समय उसका पति श्रीपाल भी महलके दरवाजे पर आगया । महलके भीतर रत्नोंकी जड़ी एक बहु मुख्य संदूक थी । अपने स्वामीके भयसे सुन्दरीने रुद्रको उसके भीतर छिपा दिया और बाहिरसे ताला जड़ दिया ॥ १११—११२ ॥ एवं अपने स्वामीके सामने उसने यह शांतिमय वचन कहा—

स्वामिन् ! अपने घर राजाके सेवक आये थे । अपने घरमें जो केसरके समान रंगकी रत्न जड़ी संदूक है राजा उसे मागता है तुम शीघ्र उसे राजाकी सेवामें भेज दो ॥ ११२—११४ ॥ राजाकी आज्ञासे श्रीपाल डर गया वह शीघ्र ही राज सभाकी ओर संदूक लेकर चल दिया एवं राजाके सामने रखकर मनोहर स्पष्ट और गंभीर वचनोंमें उसने इस प्रकार कहा—

स्वामिन् ! मणियोंसे शोभोयमान लोचनोंको प्यारी और अभीष्ट यह संदूक मैं सिंहलद्वीपसे

क्रियतेऽस्माभिर्गृह्यतां मीनवेत्तुम् । देवागारे नृपागारे युक्तं तद्वदयं पुनः ॥ ११६ ॥ राज्ञा नीत्वा दशौ सिंधुस्वामिने सौहृदात्तल्लु । स
ऽपि नीत्वा निजं धाम गंतुकामो नृपाक्षया ॥ ११७ ॥ चंचाल चतुरंगेण बलेनामा यदा तदा । पलं मत्वाथ भेरुण्डो गृहीत्वैद्विगतांगणे ॥
११८ ॥ सिंधुराजचरैः सैव मोचिता सागरैऽपतत् । यदा निष्कास्यते भृत्यैस्तन्मध्यस्थो जगाविति ॥ ११९ ॥

कइच्छा तइधरणा जोइण्णा पण्डिया च सहपवरा । तवण्णा रुद्रहिया इच्छकडक्खेहि' णो भिण्णाः ॥ १ ॥

राजभृत्याश्च भीरीताः मत्वा नरपतेः पुरः । व्याहरन्तिस्म भो देव ! मंजूषेयं प्रकल्पति ॥ १२० ॥ किं वक्ति ब्रूत वेगेन गाथा
ख्याता तदा स तैः । ध्रुत्वा घरापतिः प्राह भो भो भृत्या निशम्यतां ॥ १२१ ॥ केन चिद्विदुषा पुंसा वर्ततेऽधिष्ठिता शुभा । अतो वेगेन सा

लाया था उसे मैं आपकी भेंट कर रहा हूँ क्योंकि देव मंदिर वा राजमन्दिरमें ही इसका होना युक्त
है राजाने उसे सिंधुराज नामक व्यक्तिको देदिया वह भी राजाकी आज्ञासे उसे लेकर चतुरङ्ग सेनाके
साथ अपने घरकी ओर चल दिया एवं आगनमें आकर वह संदूक उसने रखवा दी, उस समय भेरुण्ड
नामका पक्षी आकाशमें उड़ रहा था उसने वह संदूक मांसका लोदा जाना इसलिये वह चूंचसे
उठाकर आकाशमें उड़ा लेगया । सिंधुराजके नोकरोंने बड़ी कठिनतासे उसे छुटाया तथापि वह
समुद्रके अन्दर जाकर पड़ गई । सेवक जब उसे निकालने लगे तो उसके भीतरसे यह शब्द निकला—

रुद्रके सिवाय सभी मनुष्य संसारमें कृतार्थ हैं धन्य योगी पंडित बुद्धिमान तत्त्वोंके जानकार
और स्त्रियोंके जालमें नहीं फसनेवाले हैं केवल रुद्रही इनसे विपरीत और दुष्ट हैं ” संदूकके
भीतरसे इस प्रकार शब्द सुनकर राजाके जितनेभर भी सेवक थे मारे भयके व्याकुल होगये दौड़ते
दौड़ते शीघ्र ही वे राजाके पास पहुँचे और इस प्रकार कहने लगे—स्वामिन ! जिस संदूकको
अपन ले गये थे वह संदूक बोलती है ॥ ११५—१२२ ॥ सेवकोंसे यह समाचार सुन राजाको भी
बड़ा आश्चर्य हुआ । इसलिये शीघ्र ही उसने पूछा—संदूक क्या बोलती है ? सेवकोंने जो गाथा

रम्या नीयतां धाविगशितः ॥ १२२ ॥ आदातुं ते यदा याति संजुषां स्तरंजितां । पाठीनोऽजीमिलचूर्णं वृथाऽसौ निधनं गतः ॥ १२३ ॥
 तथा मृतः परस्त्रीणां संगं कुर्वन्मि ये जहाः । त एव निधनं याति रुद्रश्रेष्ठोव निश्चितं ॥ १२४ ॥ शुभेतरं विचार्यैव विद्वद्भिः कुलक्षेदु-
 मिः । कार्यं सदाध्वं मर्तस्तद्गच्छेन्नकीर्तिमिः ॥ १२५ ॥ विद्युन्मालीं स्वगाभीशः ध्रुत्वा जायावचो जगी । हे प्रिये ते मया मूढा योषिद्वक्त्रा
 नुवापिनः ॥ १२६ ॥ सामीक्ष्णं तं वमणेति योषाया यद्वितं क्वः । उररीक्रियते सद्भिर्नाहितं विदुषामपि ॥ १२७ ॥ अधिक्षिप्य प्रिया
 वाक्यं मुमोक्षेण कबुप्सु सः । सम्यज्जीवाश्च तद्भवैः प्रणेष्टुर्लोकविनाशकः ॥ १२८ ॥ आशुगादया तपोऽग्नीधिमैरुमेरुविवापरः । सुनीशो

उसके भीतरसे सुन पड़ी थी कह सुनाई । राजा सुनकर अवाक् रह गया । और तो उससे कुछ नहीं बना । यही उसने सेवकोंको आज्ञा दी—

सुनो भाई ! किसी विद्वान् पुरुषका उसपर अधिकार है इसलिये तुम शीघ्र ही समुद्रसे उसे ले आओ । राजाको आज्ञानुसार भृत्य उसे लेनेके लिये गये वे समुद्रके पास पहुँचे ही थे कि एक विशाल मच्छने उसे लील लिया इस रूपसे बिना कारण रुद्र मृत्युका कवल बन गया ॥ १२३-१२५ ॥ इस प्रकार पर स्त्रीके क्रोधसे संबन्ध रखनेवाली कथा सुनाकर विद्याधरीने अपने पति विद्याधरसे कहा—

प्राणनाथ ! जो मूर्ख संसारमें परस्त्रियोंसे संबन्ध रखता है वह रुद्र व्यापारीके समान नियमसे मृत्युका पात्र बनता है । स्वामिन् ! आप बुद्धिमान हो । वंश रूपी आकाशके लिये चन्द्रमा एवं चन्द्रमाके समान निर्मलकोर्सिके धारक हो आप सरीखे मनुष्योंको शुभ अशुभ विचार कर ही कार्य करना चाहिये । किसी कार्यको जल्दी नहीं कर डालना चाहिये ॥ १२६—१२७ ॥ विद्याधरोंके स्वामी विद्याधर विद्युन्मालीका होनहार अच्छा न था । हितकारीभी अपनी स्त्रीके वचनोंपर उसने रत्न मात्र भी ध्यान नहीं दिया उत्तरमें यही कहा—

योगतो धीरो न चवालाद्विसारयान् ॥ १२६ ॥ तदा विद्याधरो दुष्टो विद्यां सस्मार धारिणी । चट्चिन्मशशङ्कादुवपन्नां स तिमिरायां
 क्रुधान्वितः ॥ १२७ ॥ उदराद्य खेचरोमेकं योगीन्द्रं खागणेऽब्रजत् । त्रासयन् दुर्वचोभिश्च कथयन् विद्यया शतः ॥ १२८ ॥ तदा वैदूर्यं
 देवस्य ज्योतिश्चक्रस्थितस्य च । चक्राय विष्टरं भानां चमत्कारककरं परं ॥ १२९ ॥ तृतीयावगमान्मत्वा विघ्नं मेरुमहामुनेः । तूर्णं
 वैदूर्यनामासौ खड्गं नीत्वा समागमत् ॥ १३० ॥ गर्जतं धनपद्मोरं बद्धन्तं दुस्सहं ययः । खड्गपाणिं तमालोक्य वियच्छारी भियाः मुनिं

जो पुरुष स्त्रियोंके कहनेमें चलते हैं वे मूढ़ कहलाते हैं मैं तुम्हारी बात कभी भी नहीं मान
 सकता । अपने स्वामीके ऐसे वचन सुन फिर भी विद्याधरीने कहा—स्वामिन ! जो पुरुष विद्वान हैं
 उन्हें यदि हितकारी स्त्रियोंका भी वचन हो तो उसे स्वीकार करलेना चाहिये और यदि अहित-
 कारी विद्वानोंका भी वचन हो तो उसे कभी भी स्वीकार नहीं करना चाहिये । मेरा यदि वचन युक्त
 हो तो आपको उसे स्वीकार करनेमें कुछ भी आपत्ति न करनी चाहिये ॥ १२८—१२९ ॥ विद्याधर
 विद्युन्मालीने अपनी स्त्रीके वचनोंका रंचमात्र भी आदर न किया । शीघ्रही उसने चारों दिशाओंमें
 बाण छोड़ दिये जिससे उनके भयङ्कर शब्दोंसे बहुतसे बनके जीव त्रस्त होगये । यद्यपि विद्याधर
 विद्युन्माली लड़ी बद्ध बाण छोड़ता रहा और उनका भयङ्कर शब्द होता रहा परन्तु तपके समुद्र
 मुनिराज मेरु, मेरुपर्वतके समान निश्चल बने रहे । पर्वतके समान कठिनता धारण कर अपने योगसे
 कुछ भी चल विचल नहीं हुए ॥ १३०—१३१ ॥ जब विद्याधरकी कुछ भी तीन पांच न चली तो
 उसने धारिणी नामको विद्याका स्मरण किया जो कि बत्तीस मुख और बत्तीस भुजाओंसे युक्त थी
 दुष्ट विद्याधर विद्युन्मालीने उस धारिणी विद्याके बलसे मुनिराज मेरुको उठा लिया एवं अनेक
 दुर्वचन कहकर उन्हें त्रास देता हुआ और अपनी विद्यासे कंपित करता हुआ आकाशमार्गसे ले
 चलने लगा । उसी समय वैदूर्य नामक ज्योतिषी देवका आसन कंपायमान हुआ जो कि समस्त

॥ १३४ ॥ मुक्ता द्योति यदा हिलिपादेषु तं वचन्ध सः । गण्डं भृङ्गुलया देव ! तदा कोधारुणेक्षणः ॥ १३५ ॥ तदैव केवलोत्पत्तिः प्रादुरासीत् गणेशिनः । लोकालोकामलप्रायदर्शिनी सर्वथा ध्रुवं ॥ १३६ ॥ मत्वा केवलसंप्रति मेरोराखण्डलादयः । आगत्य चकुरा- नंदादुत्सवं जयराघिनः ॥ १३७ ॥ शकादेशकृतोत्पीठत्रयस्थं तं सुरासुराः । किन्नराः सन्नरा नेमुर्ध्वरस्थं हरिं नु वा ॥ १३८ ॥ गद्य- पद्यादिभिः स्तुत्वा नत्वा तत्पादपङ्कजं । स्थितारते सर्वतो भाति हंसाः क्षीराबुधादिषु ॥ १३९ ॥ शक्रोऽचलत्वमालोक्य मेरुतामो ज्योतिषियोंको आश्चर्य करनेवाला था । देव बैडूर्यने शीघ्र ही अवधिज्ञानकी ओर उपयोग लगाया । महामुनि मेरुपर विघ्नका होना जान लिया एवं तत्काल खड्ग लेकर विद्युन्मालीके पास आ भपटा । ॥ १३२—१३५ ॥ मुनिराज पर अत्याचार करते देख देव बैडूर्य विद्युन्मालीके ऊपर मेघके समान गर्जा, अनेक दुस्सह वचनोंको कहकर तर्जा एवं मारनेके लिये हाथमें खड्ग तयार कर लिया । देव बैडूर्यका यह भयङ्कर रूप देख विद्याधर विद्युन्माली डरा । मुनिराजको छोड़कर वह दो तीन ही कदम भाग कर गया था कि क्रोधसे लाल २ नेत्रोंके धारक देव बैडूर्यने मजबूत सांकलसे उसे मजबूतीसे बांध लिया ॥ १३६—१३७ ॥ इधर बैडूर्य देवने तो विद्याधर विद्युन्मालीकी यह दशा की उधर मुनिराज मेरुको केवल ज्ञान होगया जो कि लोक अलोकके समस्त पदार्थोंको निर्मल रूपसे प्रकाश करनेवाला था और सर्वगत था ॥ १३८ ॥ मुनिराज मेरुके केवल ज्ञानकी उत्पत्तिका हाल इन्द्र आदि देवोंको भी ज्ञात होगया । जिससे जय जय शब्दोंके साथ उन्होंने सानंद मुनिराजके केवल ज्ञान कल्याणका उत्सव मनाया । इन्द्रकी आज्ञानुसार तिखने सिंघासनसे शोभायमान गंध कुटीकी रचना कर दीगई । उसमें विराजमान मुनिराज मेरुको सुर असुर किन्नर और राजा आदि महापुरुष नमस्कार करने लगे । महामनोहर गद्य पद्योंमें मुनिराजकी स्तुति की । चरण कमलोंकी वंदना की एवं जिस प्रकार क्षीर समुद्रके चारों ओर हंस आकर विराज जाते हैं उस प्रकार वे मुनिराजके

मुनीशितुः । अष्टोत्तरशतध्यानगुणपर्वसमन्वितां ॥ १४० ॥ मणिमालां समाधाय मेरुनामावधिं गले । मेरुवर्गिणश्चलत्वेन ममाल
स्पर्शभूषणैः ॥ १४१ ॥ उपसेनो महीनाथो बन्धितुं तं समादितः । इक्ष्वाक्यव्ययसंभूतः पल्लवाख्यपुराधिकः ॥ १४२ ॥
बन्धित्वा सादरं श्रुत्वा धर्मं मेरुमुखोद्भूतं । पप्रच्छेति मराधीशो ध्यानप्रत्यूहकारणं ॥ १४३ ॥ ओ स्वामिन् ! किमनेनामा
ते वैरं विद्यते पुरा । देवेनाथ कथं वदो ब्रूहि त्वं ज्ञानसागर ! ॥ १४४ ॥ मेरुस्तं प्राह राजानं शृणु त्वं साधुभक्तिभाक् ।
अथैव धातुकोद्वोषे वर्षमैरावताभिधं ॥ १४५ ॥ किष्किंधाख्यं पुरं तत्र विद्यते नागरेर्नरैः । राजमानं नृपस्तत्र शूरः सिंहस्थोऽभवत् ॥
चारों ओर बैठ गये ॥ १३६—१४० ॥ मुनिराज मेरुके अचलपद्मेपर ध्यान देकर ध्यानकी सिद्धिकी
कारण एकसौ आठ मनकोंकी माला तयार की एवं समस्त देव और विद्याधरोंके सामने मेरुके
समान अपनेमें विध्वलता प्राप्त करनेकी अभिलाषासे इन्द्रने उसे अपने गलेमें पहन लिया—

इक्ष्वाकु कुलमें उत्पन्न पल्लव पुरका स्वामी एक उपसेन नामका राजा था । मुनिराज मेरुको
केवल ज्ञानी स्मरण कर वह उनकी वंदनाके लिये आया । मुनिराजके मुखसे धर्मोपदेश सुना एवं यह
उपसर्ग कैसे उपस्थित हुआ यह जाननेकी इस प्रकार उसने इच्छा प्रगट की ॥ १४१—१४४ ॥

प्रभो ! आप ज्ञानके समुद्र हैं कृपाकर कहिये विद्याधर विद्युन्मालीके साथ आपका पूर्वभवमें कैसे
वैर बंधा ! और देवने इसे कैसे बांधा ! उत्तरमें मुनिराज मेरुने कहा— भाई तुम ध्यानपूर्वक सुनो,
मैं कहता हूँ—

धातुको खंड द्वीपके ऐरावत क्षेत्रमें एक किष्किंधापुर नामका नगर है जो कि नगर निवासी
लोगोंसे सदा शोभायमान रहता है । किष्किंधापुरका स्वामी राजा सिंहस्थ था जो कि शूर वीर
था । किष्किंधापुरमें ही उस समय एक माधव नामका सेठ रहता था जो कि विपुल धनका स्वामी
था । सेठ माधवके सात पुत्र थे जो कि अत्यंत रूपवान और विद्वान थे । किसी समय वर्षा कालमें
भाग्यके उदयसे सेठ माधवको भरा खजाना हाथ लग गया । रात्रिके समय उसने अपने पुत्रोंके साथ

१४६ ॥ तत्र माधवनामाभूत् श्रेष्ठो भूरिधनान्वितः । वभूवुः सप्त तत्पुत्रा कथयन्तो विदां वराः ॥१४७॥ एकदा गच्छतस्तस्य प्रावृषि श्रेष्ठिनो महत् । निधानं रत्नसंपूर्णं लब्धं दैवोदयादयात् ॥ १४८ ॥ नीत्वा निशि सुतैः साकमाससंज्ञ धरातले । सुखीभूर्यामितः श्रेष्ठो तस्थौ लोलापुरंदरः ॥ १४९ ॥ एकवारिंजयो वृद्धपुत्रश्चेति व्यचिंतयत् । व्यापन्ने श्रेष्ठिना तस्य भविता मायससर्क ॥ १५० ॥ विचिंतितं च निष्कास्य निधानं तेन पापिना । चिक्षेवान्यत्र भूभागे धिग् लोभं दुर्गतिप्रदं ॥ १५१ ॥ दिनेष्वयत्सु कीयत्तु श्रेष्ठो खजानेको जमीनमें खुदवाकर रखवा दिया एवं इन्द्रके समान सुख भोगता हुआ वह सुखसे रहने लगा ॥१४५—१४६ ॥

माधवके सबसे बड़े पुत्रका नाम अरिंजय था । एक दिन उसने अपने मनमें विचार किया कि पिताके मर जानेपर धनके सात भाग होंगे और उसमेंसे मुझे सातवां भाग मिलेगा । बस ऐसा विचारकर उस पापीने जमीनसे भरे खजानेको निकाला और अन्यत्र जाकर गाड़ दिया । हा ! इस लोभके लिये धिक्कार है क्योंकि यह दुर्गतिमें लेजानेवाला है ॥ १५०—१५१ ॥ थोड़े दिन बीत जानेपर सेठ माधवने अपना रत्नभरा खजाना देखा जब उसने वहां उसे न पाया तो उसे सीमांत दुःख हुआ एवं उस तीव्र दुःखसे उसे मूर्छा आगई । जमीनपर गिरकर मर गया एवं मोह कर्मके उदय से मर कर वह उसी खजानेपर सर्प होगया । एक दिन सेठपुत्र अरिंजय धन लेनेके लिये खजानेमें गया जहांपर वह खजाना गड़ा था धीरे धीरे वहांकी उसने पृथ्वी खोदना प्रारंभ कर दो । सर्पने ज्योंही अरिंजयको देखा उसे डस खाया । जिससे वह विषसे मूर्छित हो जमीनपर गिरकर मर गया । सर्पकी यह चेष्टा देख अरिंजयको भी क्रोध आगया था उसने भी सर्पके दो टुकड़े कर दिये इस रूपसे वे दोनों उसी समय मृत्युको प्राप्त होगये ।

इसी भरत क्षेत्रकी उत्तर दिशामें एक मथुरा नामकी नगरी है । उसमें एक बणिक रहता था

तल्लोक्ते यदा । अदृष्ट्वा मोहतो भूमौ मूर्खया पतितो नृप ! ॥१५२॥ मृत्या जहो महाव्यालो निधाने मोहकर्मतः । एकदा रिंजयस्तूर्ण-
मानेतुं याति तद्वत् ॥ १५३ ॥ सर्वं सर्वं खल्लानेलां यदा गत्वा तदा फणी । ददंशारिजयं कोपात् विषांधः सोऽपतदुवि ॥ १५४ ॥
तेन सर्पोद्विक्तः कोधादुद्वी युगपन्निधनं गतौ । अथात्र भारते द्वीपे चोचरा मथुरा पुरी ॥१५५॥ जहते तौ वणिक्पूत्रौ तत्र भद्रहराभि-
मिवौ । दुर्गती विमती दुष्टौ चिरुसौ त्रिगतत्रयी ॥ १५६ ॥ अन्यदा मगधे राष्ट्रे वाणिज्यार्थं च तौ गतौ । तदा सर्पचरोभद्रस्ततर्कति
अरिंजय और सर्प दोनोंके जीव उसके दो पुत्र होगये जो कि महा दुष्ट थे मैले कुचैले थे
दरिद्र और निर्लज्ज थे एवं दोनोंका नाम भद्र और हर था ॥ १५२—१५६ ॥ एक दिन वे दोनों
मगध राज्यमें व्यापारके लिये गये उस समय पापी और ठग सर्पका जीव भद्र अपने मनमें यह
विचारने लगा—

रात्रिके समय जघ हर सो जाय उस समय मुझे हरको मार देना चाहिये और सारा धन
अपने घर ले जाना चाहिये । बस ऐसा पूर्ण विचार कर वह ठीक आधी रातके समय उठा । हरके
धोकेमें एक दूसरे पथिकको मार डाला एवं वह मूर्ख अपने घर चला गया । प्रातः काल होते हर
उठा । अपने पासके मनुष्यको मरा देख वह एक दम भयभीत होगया । एवं इस प्रकार
मनमें विचारने लगा—

अवश्य मेरे भ्रमसे मेरे भाईने इस पथिकको मारा है, यदि मैं ठहरूंगा तो लोग मुझे ही
इसका मारनेवाला समझेंगे जिससे संसारमें मेरा ही अपवाद होगा । यह नियम है कि दुष्टोंके
साथ संवन्ध करने पर मनुष्यकी चिरकालसे संचित भी कीर्ति नष्ट हो जाती है तथा बन्धन ताड़न
विशेष क्या मृत्युका भी सामना करना पड़ता है । बस ऐसा विचार कर हर शीघ्रही वहांसे चल
दिया एवं बुद्धिमान वह इसप्रकार अपने मनमें सोचने लगा—

स्वमानसे ॥ १७ ॥ मारयित्वा हरं नूनं यदि नोत्वा धनं गृहे । नक्तं सुप्तो विचार्येत्यं पापयानन्यवंचकः ॥ १५८ ॥ मध्यरात्रौ समुत्थाय
हरभ्रांत्या जवान सः । अन्यं पार्थ ततः सन्न जगाम सटवरं शठः ॥ १५९ ॥ पश्चात्पश्यदहरे रात्रौर्जजागार हरस्तदा । दृष्ट्वा मूर्तं नरं
स्वांते दृष्ट्वा तं विततकं सः ॥ १६० ॥ महो भ्रात्रेव मदुभ्रांत्या पांधोऽयं मारितो ध्रुवं । तिष्ठेयं चेदहं तर्हि मेऽपवादी भविष्यति
॥ १६१ ॥ संसर्गेण जलस्पृश्याति कीर्तिश्चिरं धृता । यथनं ताडनं चैव पञ्चदशं सुलभं भवेत् ॥ १६२ ॥ विदुष्येत्यं चवाकाशु हर
शिवं तातुरः स च । गत्यैव स्वपुराम्पथे विचवारेति चेतसि ॥ १६३ ॥ विज्ञापयामि कं लभ्यं धर्माधर्मक्षमित्वहो । विचार्ये मम पार्वे

धर्म और अधर्मके जानकार किस महापुरुषसे मैं अपना यह हाल कहूं । वह सीधा मेरे पास
आया क्योंकि मैं राजा था और सारा वृत्तांत उसने मुझसे कह सुनाया । मैंने पापी भद्रको बुलाया
कठिन दंड दिया और नगरसे बाहिर निकाल दिया ॥ १५७—१६२ ॥ मेरे द्वारा दिये गये दंडसे
भद्रनित्रको बड़ी लज्जा आई । वनमें जाकर किसी मुनिराजके समीप भद्रने दिगंवरी दीक्षा धारण
करली । मुनि वन वह क्रोध पूर्वक संयमको आराधने लगा । आयुके अन्तमें वह मरा और विद्या-
धर विद्युन्माली होगया ॥ १६३ ॥ पहिले भवमें जो उसने मुझे दंड दिया था उसीसे जायमान
वैरके संबन्धसे इसने मेरे ऊपर यह उपसर्ग किया है इसलिये वैरका यह भयंकर फल देख किसीको
किसीके साथ बर नहीं करना चाहिये ॥ १६४ ॥

विजयार्ध पर्वतकी उत्तर दिशामें एक श्रीपुर नामका नगर है जोकि महा मनोहर स्त्रियोंसे
शोभायमान और शोभामें गंधर्व नगरको उपमा धारण करता है । उस पुरका स्वामी भूपाल नामका
राजा था जो कि अपने तेजसे शत्रुओंको भयभीत करनेवाला था । उसकी रानीका नाम ललांगी था
जो कि उत्तम नेत्रोंसे शोभायमान थी इन दोनों राजा और रानीके एक 'रुक्मी' नामकी कन्या
थी जो कि महा मनोहर थी । तपे सोनेके समान रंगकी धारक, सुवर्णके घड़ोंके समान स्तनोंसे

स समेतोवाच तं नृप ! ॥ १६४ ॥ तदाहं तं समाहूय भद्रं पापपरं पुरात् । निष्कासयाम् चकाराशु दत्त्वा दंडं च दुस्सहं ॥ १६५ ॥
 लज्जितोऽसौ वने गत्वा संयमं मुनिसन्निधौ । आददे क्रोधभावेन मृत्वायं खेचरोऽजनि ॥ १६६ ॥ पुरा दण्डोत्पद्यैरेण प्रत्यूहोऽनेन मे
 कृतः । अतो वरं न कर्तव्यं केन चिन्मानवाधिप ! ॥ १६७ ॥ आदित्याभभवे यो मे मोचितो धरणात्स्वगः । विद्युदंष्ट्रो महाविद्यो
 धर्माधारपरांमुखः ॥ १६८ ॥ खेचराद्व्युत्तरश्रेण्यामथास्ते श्रीपुरं पुरं । भामाभूरिविलासैश्च श्रीगन्धर्वपुरोपमं ॥ १६९ ॥ पाति तत्प-
 त्तनं भूपो भूपालाख्योऽरिभोतिदः । तस्यैव भामिनो भाति ललांगो कामलोचना ॥ १७० ॥ तयोर्जज्ञे सुता नाम्नो र्वक्षी कामकुन्दला ।
 शोभायमान और जघनके भारसे मंद मन्द गमन करने वाली थी । विद्याधर विद्युदंष्ट्र जो कि
 महा विद्याका स्वामी था । धर्माचरणोंसे सर्वथा विमुख था और आदित्याभके भवमें जिसे मैंने
 धरणीद्रसे वचाया था कन्या र्वक्षीपर मोहित हो गया और उसके पिता राजा भूपालसे उसने हठ
 पूर्वक मांगा परन्तु भूपालने उसे प्रदान नहीं की । भूपालका यह घमण्ड देख राजा विद्युदंष्ट्रने
 उसके साथ संग्राम ठान दिया । दुर्भाग्यवश संग्राममें विद्युदंष्ट्रको हार खान पड़ी । अपनी
 हारसे विद्युदंष्ट्र लज्जित होगया । राज्य छोड़ तपसी वन मिथ्यातप करने लगा । आयुके अन्तमें
 मरा एवं ज्योतिर्लोकमें तुम जाकर ज्योतिषी देव हुये हो तुम्हारे ऊपर जो मैंने उपकार किया
 था उसके बदले प्रत्युपकार करनेके लिये तुमने इस उपसर्गकी शांति की है । इस प्रकार
 पूर्वभवका संबन्ध सुन राजा उग्रसेन और विद्याधर विद्युन्मालीको संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य
 हो गया एवं नमस्कार पूर्वक मुनिराज मेरुसे ही उन्होंने दिगम्बरी दीक्षा धारण करली । ज्यो-
 तिषी देवने भी चित्तमें प्रसन्न हो मुनिराज मेरुकी स्तुतिकी एवं उन्हें नमस्कार कर अपने स्थानपर
 चला गया । ठीक है सज्जन लोग किये उपकारको भूलते नहीं ॥ १६६—१७६ ॥ पुन्नाग वृक्षको
 कितना भी पेरा जाय वह विकृत नहीं होता तथा रसीला ईखका वृक्ष अत्यन्त पिडित होनेपर भी

स्वर्णांभी स्वर्णकुम्भाभवश्रोजा जघनमंदगा ॥ १७१ ॥ बहुशो याचितस्तेन विद्युद्दंष्ट्रेण तां हठात् । तत्पिता न ददौ तस्मै तदासौ
संगरं व्यधात् ॥ १७२ ॥ जाते महसि संग्रामे भूषालाख्येन निर्जितः । लज्जितस्तापसो भूत्वा अकार कुतपश्चरं ॥ १७३ ॥ तप्त्वा मृत्वा
युषः प्राप्ते ज्योतिश्चक्रे सुरोऽभवत् । स्मृत्योपकृतिमायातो मम विधनोपशान्तये ॥ १७४ ॥ एवं सम्बन्धसङ्कुलं श्रुत्वा राजा स्वर्गोऽपि
सः । दिदीक्षाते विनेयत्वात् नत्वा मेरुं गणाधिपं ॥ १७५ ॥ पौडितोऽप्यविकारी स्यात्पुन्नागो जगतीतले । निष्पीडितोऽपि माधुर्यं क्षर
तीक्षुरसार्द्रितः ॥ १७६ ॥ परं न चन्दनः सन्तामकापिचुमन्दकादयः । न श्वेतपत्रिणो वृका वर्तते भूरयः खलाः । सहस्रैकाग्रपर्यंत

मधुर ही रस छोड़ता है उसी प्रकार सज्जनको कितनी भी पीड़ा पहुँचाई जाय वह शांत ही रहता है । संसारमें कपिचु मन्दक आदि नामोंके धारक बहुतसे वृक्ष हैं पर सभी चन्दन नहीं । तथा सभी उल्लू पक्षी सफेद पंखोंके धारक नहीं कोई कोई ही होते हैं उसी प्रकार संसारमें दुष्ट ही बहुत हैं सज्जन बहुत नहीं । परम पावन उन मुनिराज मेरुने एक हजार वर्ष पर्यंत अनेक देशोंमें विहार किया । अन्तमें उन्होंने मोक्ष सुख प्राप्त कर लिया—

सम्मेदाचल पर्वतके समीपमें एक पद्म कंवल नामका नगर था । उसमें यशोधर नामका सेठ रहता था और उसकी स्त्रीका नाम यशस्विनी था । सेठानी यशस्विनीको एक दिन सर्पने डस लिया उसे मरी समझ श्मशान भूमिमें उसकी दाह क्रियाके लिये लोग लेगये । वहां पर मुनिराज मन्दर विराजमान थे । उनके पवित्र शरीरसे स्पर्शी गई पवनसे सेठानी यशस्विनीका जहर दूर हो गया जिस समय सेठानी जीती जागती उठ बैठी उस समय सबके सब इस प्रकार विचारने लगे—

इस मुर्दाके शरीरमें भूत प्रविष्ट होगया जान पड़ता है बस सबके सब लोग भयसे आकुलित हो गये । उन्हें आकुलित देख करोड़ों मांसभक्षी राक्षस वहां आगये । राक्षसोंको इसप्रकार देखकर

विहृत्य विषयान् वहुन् । समाप शिवसंभूतं शर्म मेकर्णाधिपः ॥ १७६ ॥ सम्मेदभूधराभ्यर्णेऽस्ति पुरं पद्मकवर्धनं । इम्यो यशोधरस्तत्र
यशस्विन्यस्य भामिनी ॥ १८० ॥ सर्ववष्टैकदा नीता भूतारण्यं यशस्विनी । संस्कारार्थं च तदा जज्ञे मंदरांगानिलाच्छुभां ॥ १८१ ॥
असुवर्ती तदा दृष्ट्वा लोका विभ्युर्मनोऽतरे । इति प्रेतयुतं भीकृत् पराशु किमु सांप्रतं ॥ १८२ ॥ भीत्याकुलान्नराल्लोचय कप्यादाः
कोटिशोऽनवन् । प्रादुस्तद्वयतस्तूष्णं मन्वसमं दूरं तके ॥ १८३ ॥ मुनिप्रभावतो देवी वनस्य समचोकरत् । शाललयमधोवाचोवसीत्य
ध्यक्षमेव सा ॥ १८४ ॥ धन्योऽयं मन्दरो नाम विषं यातं यदाश्रयात् । श्रुत्वा समं स्त्रिया श्रेष्ठो प्रवद्राज तश्चिन्तके ॥ १८५ ॥ मन्दरोऽ
पि महाकर्म छित्त्वा ध्यानेन केषलं । समुत्पाद्य ययौ धीरो महत्पूज्यः शिवं शिवः ॥ १८६ ॥ उग्रसेनमुनिस्तीव्रं तपस्तप्या चिरं बहु ।

वे भयसे कंपायमान हो गये एवं वे सबके सब भयभीत हो मुनिराज मन्दरके चरणोंके पास चले
गये । मुनिराजके प्रभावसे वनदेवीने तीन प्राकारोंका कोट रच दिया एवं प्रातःकाल सबोंको लक्ष्य-
कर उसने यह कहा—

मुनिराज मंदरके लिये धन्यवाद है । इन्हींके आश्रयसे सेठानी यशस्विनीका विष दूर हुआ है ।
ज्यों ही सेठ यशोधर और सेठानी यशस्विनीने यह बात सुनी उन्हें संसारसे वैराग्य होगया एक
मुनिराज मंदरके समीपमें ही वे संयमसे दीक्षित हो गये ॥ १७७—१८५ ॥ मुनिराज मन्दरने भी
महा ध्यानके बलसे घातिया कर्मोंका नाशकर केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया एवं देव पूज्य वे मुनिराज
मोक्षके स्वामी बन गये ॥ १८६ ॥ महोदय मुनिराज उग्रसेनने भी धोर तप तपा एवं आयुके अंतमें
मरकर वे सर्वार्थ सिद्धि विमानमें अहमिंद्र होगये ॥ १८७ ॥ विद्याधर विद्युन्मालीने भी शक्तिके
अनुसार तप किया एवं आयुके अन्तमें मरकर वे पांचवें स्वर्गमें देव होगये । ललित उनका नाम
हुआ और अनेक देवांगना उनकी सेवा करने लगी ॥ १८८ ॥ ग्रन्थकार तपकी महिमा वर्णन करते
हुए कहते हैं कि—

सर्वार्थसिद्धिमासाद्य तस्थौ पुण्यान्महोदयः ॥ १८७ ॥ खेचरोऽपि यथाशक्ति तपः कृत्वा सुरालये । पञ्चवेभूत्सुरः सेव्योर्भाभिर्ललिता
मिथः ॥ १८८ ॥ तपः कुर्येति ये भव्यास्ते लभन्तेऽद्भुतो श्रियं । स्वर्गो नृदांगणे तेषां कामधेनुश्च किंकरी ॥ १८९ ॥ चभूवुः पञ्चपञ्चाशद्ग-
णाः श्रीविमलेशिनः । शतोत्तरसहस्रोक्ता मुनयः पूर्वधारिणः ॥ १९० ॥ स्रष्टृष्वष्टाष्टत्रिसंख्या आसन् शिष्या गुणोज्ज्वलाः । खट्वाष्ट
चतुर्मेयास्त्रिषिधावधयः स्फुटं ॥ १९१ ॥ अष्टाष्टिसहस्रोक्ताः सर्वसंयमिनः पराः । द्विसहस्रैकलक्षोक्ताः पञ्चाद्या आर्यिका मताः ॥ १९२ ॥

जो महानुभाव तप आचरण करते हैं उन्हें अद्भुत लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है । स्वर्ग उनके घरके आंगनमें प्राप्त हो जाता है और कामधेनु किंकरी बन जाती है ॥ १८९ ॥

भगवान् विमलनाथके पांच सौ तो गणधर थे । ग्यारह सौ पूर्वधारी मुनि थे । अड़तीस हजार पांच सौ शिष्य थे । अड़तालीस सौ देशावधि आदि अवधिज्ञानके स्वामी थे । पचपन सौ केवल ज्ञानी, छत्तीस सौ वादी मुनिराज, अड़सठ हजार संयमी मुनि, एक लाख तीन हजार आर्यिका दो लाख श्रावक और चार लाख श्राविका, नौ हजार विक्रिया ऋद्धिके धारक, पांच हजार पांच सौ मनःपर्यय ज्ञानी और असंख्याते देव इस प्रकार सबोंसे युक्त भगवान् विमलनाथ अत्यंत शोभायमान जान पड़ते थे ॥ १९०—१९२ ॥

जो भगवान् विमलनाथ बाह्य अभ्यन्तर दोनों प्रकारकी लक्ष्मीके स्वामी हैं । कल्याणके प्रदान करनेवाले हैं जीवोंके हितकारी हैं । कर्मरूपी कोचड़को सुखानेके लिये सूर्य स्वरूप हैं उन भगवान् विमलनाथको मैं बार बार नमस्कार करता हूँ ॥ १९२ ॥ पद्मसेन नामके जो राजा थे वे बारहवे स्वर्गके देवोंके स्वामी सहस्रारेंद्र होगये । केवल बिभतिके नायक वे भगवान् विमलनाथ हमारी रक्षा करें । जो भगवान् विमलनाथ भव्य रूपी कमलोंके लिये सूर्य समान हैं । मोह रूपी हस्तीके लिये सिंह स्वरूप हैं एवं देव इन्द्र स्वरूप चकोर पक्षियोंके लिये चन्द्रमा स्वरूप हैं अर्थात् हृदयका

द्विदक्षआदकाः प्रोक्ता द्विगुणा आधिका मताः । जलवनवसंख्याच्चः चिकित्सिर्विराजिताः ॥ १६३ ॥ खट्वर्येद्रियपञ्जीकृताः पूर्णतुर्धाव
 बोधनः । असंख्यातामरैरच्यो रराज विमलो जिनः ॥ १६४ ॥ श्रीमते परमशर्मदायिनेऽनेकजन्तुहितकारिणेऽस्तु नः । कर्मपंकर
 वधे व ते नमः श्रीजिनाय विमलाय निर्दिवं ॥ १६५ ॥ पद्मसेनजगतीपतिस्ततो द्वादशामरनिवासपोऽजनि । यस्तु केवलविभूतिनायकः
 पातु नः स विमलोऽमलः सदा ॥ १६६ ॥ मध्यपङ्कजदिधामणिं हरिं मोहवारणतर्ता कलानिधिं । निर्जरेशशिखिभुक्ततौ श्रिये भोजना
 उत्ताप मिटानेवाले हैं प्रिय भव्य जीवो ! उन भगवान विमलनाथकी कल्याणकी प्राप्तिकी अभिलाषा
 से तुम्हें सदा सेवा करनी चाहिये ॥ १६३—१६४ ॥

प्रशस्ति



जो काष्ठासंघ समस्त पृथ्वी पर प्रसिद्ध है तीनोंलोकके स्वामो जिसकी स्तुति करते हैं ।
 जिसमें अगणित मुनि होचुके हैं एवं जिसमें अनेक विद्याओंका समारोह रहा है उसमें एक राम-
 सेन नामके भट्टारक हुए जो कि आचार्योंमें राजा स्वरूप थे सिद्धान्त रूपी समुद्रके पारगामी थे ।
 चन्द्रमाके समान कीर्त्तिसे शोभायमान थे । ध्यान रूपी जलके प्रवाहसे पाप रूपी संतापके दूर
 करनेवाले थे और अन्धकारके लिये सूर्य स्वरूप थे ॥ १६५ ॥ उसी काष्ठासंघमें आचार्य रामसेनके
 बाद भट्टारक सोमकीर्त्ति हुए जो कि मुनि आदिके गण रूपी पर्वतके लिये सूर्य स्वरूप थे ।

मनुष्य रूपी चकोर पक्षियोंके लिये चंद्रमा स्वरूप एवं जिनकी कीर्त्तिका गान नागकुमारियां करतीं
 थीं । आचार्य सोमकीर्त्तिके पद पर विजयसेन नामके भट्टारक हुए जो कि समस्त जनोंको वास्तविक
 ज्ञान प्रदान करनेवाले थे । कीर्त्ति कांति रूपी लक्ष्मीके लिये समुद्र स्वरूप थे और कुबुद्धियोंके
 विजेता थे ॥ १६७ ॥ भट्टारक विजयसेनके पदपर आचार्योंमें प्रधान श्री यशःकीर्त्ति नामके देव हुए

भजत बेमल' मुदा ॥ १६७ ॥ विख्याते जगतीतले त्रिभुवनस्वामिस्तुतेऽभून्महान् काष्ठासंघसुनामनि प्रभुयतौ विद्यागणे सूरिराट् ! सा
गार्णवपारशो विधुयशाः श्रीरामसेनोजिनः पार्श्वोऽक्षितप्रभूतशृङ्गिनी भानुस्तमोऽशिशु ॥ १६८ ॥ तत्कमेण गणभूधरभानुः सोम
कीर्तिरिव शीतमयूकः । संवभूव जनताशिखिभुक्षु नागनायदयिताकृततेजाः ॥ १६९ ॥ तत्पदे विजयसेनभदन्तो घोघिताखिलजनः
कमनीयः । कीर्तिकीर्तिकमलाजलराशिः संवभूव विजयी कुमतीनां ॥ २०० ॥ तत्पट्ट सूरिराजः सकलगुणनिधिः श्रीयशःकीर्तिदेव
स्तत्पादभोजपादसकलशशिमुखो वादिनगेन्द्रसिंहः । संजज्ञे प्रांतसेनोदय इति वचसां विस्तरं संप्रवीणः, तत्पद्मार्जलिशकलि
जो कि समस्त गुणोंके भण्डार थे । भण्डारक यशःकीर्तिके चरण कमलोंमें भ्रमर स्वरूप एवं अखण्ड
चन्द्रमाके समान मुखसे शोभायमान वादी नागेन्द्र सिंह नामके भण्डारक हुए । उनके शिष्य उदय
सेन नामके भण्डारक हुए जो कि सिद्धांतके पूर्ण ज्ञाता और व्याख्याता थे उनके बाद आर्य उदय-
सेनके चरण कमलोंके सेवक एवं तीनों लोकमें जिनकी महिमा गाई जाती थी ऐसे भण्डारत्रिभुवन
कीर्ति हुए ॥ १६८ ॥ भण्डारक त्रिभुवन कीर्तिके शिष्य भण्डारक रत्नभूषण हुए जो कि पृथ्वी
तलपर चन्द्रमाके समान स्वच्छ प्रकाशके धारक थे । भण्डारक त्रिभुवन कीर्तिके पट्टरूपी उदयाचल
पर्वतके लिये सूर्य स्वरूप थे । तर्क नाटक आदि शास्त्रोंके रहस्यके पारगामी थे और कवियोंमें
राजा स्वरूप थे ॥ १६९ ॥

इसी पृथ्वीपर लोहाकर नामका एक पुर है उसमें एक हर्षनामके महानुभाव रहते थे जो कि
पुरवासियोंमें प्रधान माने जाते थे । महानुभाव हर्षकी स्त्रीका नाम वीरिका था जो कि एक सज्जन
स्वभावकी थी अनेक गुणोंकी स्थान थी एवं साध्वी थी माता वीरिकाका पुत्र मैं (ग्रन्थकार) कृष्णदास
था जो कि सुन्दरतामें कामदेवके समान था । पूर्ण ब्रह्मचारी था सुन्दर कीर्तिका धारक था एवं
भगवान् ऋषभदेवके चरण कमलोंमें भ्रमर स्वरूप था ॥ २०० ॥ मेरे छोटे भाईका नाम मंगल

भुवनमहिमा तन्मुखप्रांतकीर्तिः ॥ २०१ ॥ राजते रजनिनाथशशः की तत्पद्मोदयनगाहिमदीतिः । तनाटककुर्कलागमदक्षो रत्नभूषण
महाकविराजः ॥ २०२ ॥ श्रीमल्लोहाकरेऽभूदरमपुरवरे हर्षनामा वरीयान् तत्पटनी साधुशाला गुणगणसदनं वीरिकाख्येव साधवी ।
पुत्रः श्रीकृष्णदासो रतिप इव तयोर्ब्रह्मचारीश्वरश्च सत्कीर्ती राजते वै कृष्णभजिनपदाभोजपट्टात्समानः ॥ २०३ ॥ मङ्गलेर्मकरकेतुदीति-
भिर्वर्णिभिः सह मया कृतोऽयम् । ग्रन्थ एव ! विदुषां सुखप्रदः शोधयन्तु विबुधाः खलेतराः ॥ २०४ ॥ गूजरे जनपदे पुरे कृतः कल्पवल्ली
भिध एव सादरात् । वर्धमानशशसा मया पुरोः पत्कजाहितसुचेतसा ध्रुवं ॥ २०५ ॥ मेरुभूधरपतिः जतारका सन्ति सागरधरा नभो-
मणिः । तावदेव विदुषां मनोऽतरेऽलंकृतः सततमेव भातु मे ॥ २०६ ॥ जलिसंख्यतशतान्वितोऽधिको वेदपट्टप्रमितकाव्यराजिभिः ।
पण्डितैर्मतिविकारवर्जितैः संलिखाप्य पठनाय दीयतां ॥ २०७ ॥ देवर्षिपट्टचन्द्रमितेऽथ वर्षे पक्षेऽसिते मासि नभस्थले मे । एकादशी-
शुक्लमृगर्क्षयोगे ध्रौव्यान्धिते निर्मित एव एव ॥ २०८ ॥ इति श्री विमलनाथपुराणे म० श्रीरत्नभूषणास्त्रायालंकारखण्डकृष्णदासेविरचिते
ब्रह्ममंगलदाससहाय्यसापेक्षे निर्वाण नाटक मेरुव्यानोपसर्गमेरुमंदरनिर्वाणनिरूपणो नाम दशमः सर्गः सनातः ॥ १० ॥
दास था जो कि चंद्रमाके समान कांसिसे शोभायमान थे ब्रह्मचारी थे उनकी सहायतासे यह
कल्याण प्रदान करनेवाला ग्रन्थ रचा गया है। सज्जन विद्वानोंसे यह प्रार्थना है कि जहां इसमें
त्रुटियाँ रह गई हो उन्हें शुद्धकर पढ़ें और पढ़ावें ॥ २०१ ॥ गुजरात देशमें एक कल्पवल्ली नामका
नगर है उसी नगरमें बैठकर बढती हुई कीर्तिसे शोभायमान और गुरुके चरण कमलोंके भक्त मैंने
इस ग्रन्थका बड़े आदरसे निर्माण किया है ॥ २०२ ॥ जब तक संसारमें मेरुपर्वत नक्षत्र समुद्र तारे समुद्र
पृथ्वी सूर्य आदि पदार्थ विद्यमान रहें तब तक यह ग्रन्थ भी विद्वानोंके हृदयका अलंकार बन सदा
शोभायमान रहे ॥ २०३ ॥ तीन हजार छयालीस श्लोकोंसे शोभायमान यह ग्रन्थराज विमलनाथ
पुराण पूर्णविद्वान पंडितोंको अवश्य लिखाकर देना चाहिये ॥ २०४ ॥ श्रावण वदी एकादशी संवत्
१६७४ सोलहसौ चौहत्तर जब कि मृगर्क्ष योग नित्य रूपसे विद्यमान था उससमय यह ग्रन्थ
पूरा हुआ था ॥ २०५ ॥

इस कार्यालय द्वारा प्रकाशित ग्रन्थोंकी सूची ।

	पृष्ठ	संख्या	
१ श्री पद्म पुराणजी			१०००
२ श्री शांतिनाथ पुराणजी	"	"	४१६
३ श्री मल्लिनाथ पुराणजी (सचित्र)	"	"	२००
४ श्री तत्त्वार्थ राजवातिक (प्रथम खण्ड)	"	"	४१६
५ श्री विमलनाथ पुराण	"	"	४००
६ श्री षोडश संस्कार	"	"	१६०
७ श्री मौनव्रत कथा	"	"	६०
८ श्री सरल नित्यपाठ संग्रह (सचित्र)	"	"	१६०

उक्त ग्रन्थोंके संग्रहानेके पते:—

- १ जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, पो० ब० ६७४८ कलकत्ता ।
- २ श्री जैनग्रंथ कार्यालय, देवरी (सागर) C. P.
- ३ श्री जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, हीरागांव—गिरवाग बम्बई ।
- ४ श्री जैन साहित्य प्रसारक कार्यालय, हीरागांव—गिरवाग बम्बई ।

इसप्रकार मंदिरारक्षकभूषणकी आभ्यायके अलङ्कारस्वरूप ब्रह्मचारी मंगलदाकी सहायतापूर्वक ब्रह्मचारी

कृष्णदास विरचित बृहत् विमलनाथ पुराणमें भगवान विमलनाथका निर्वाण कल्याण मुनिराज

मेरुका ध्यान और उपसर्ग एवं मेरुमंदिरका निर्वाण कल्याण वर्णन करने वाला

दशवां सर्ग समाप्त ॥ १० ॥